Issue-08/Vol-27/June-Sep. 2020 ISSN No. 2319 - 5908
An International Multidisciplinary Peer Reviewed Quarterly Journal

शोध संदर्श

शोध संदर्श

SHODH SANDARSH

शिक्षा, साहित्य, इतिहास, कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य आदि

Chief Editor :
Dr. V.K. Pandey

Editor :
Dr. V.K. Mishra
Dr. V.P. Tiwari

विविध ज्ञान - विज्ञान - विषय का मन्थन एवं विमर्श।
नव - उन्मेषी दशा - दिशा से भरा 'शोध - सन्दर्श' ॥

Issue-08/Vol-27/June-Sep. 2020 (UGC Approved Peer Reviewed Journal) SHODH SANDARSH ISSN No. 2319 - 5908

ISSUE-08 / Vol.-27 / June-Sep.-2020 **ISSN NO. 2319-5908**

An International Multidisciplinary Peer Reviewed Quarterly Journal

SHODH SANDARSH

शोध संदर्श

Education, Literature, History, Art, Culture, Science, Commerce etc.

Patron

Prof. (Dr.) A.P. Ojha
Head.
Deptt. of AIHC & Archaeology
Allahabad Central University, Allahabad

Prof. R.P. Tripathi
Ex. Head.
Deptt. of AIHC Archaeology
Allahabad Central University, Allahabad

Chief Editor

Dr. Vimlesh Kumar Pandey
Associate Professor
P.G. Deptt. of AIHC & Archaeology
S.B.P.G. College, Badlapur, Jaunpur

Editors

Prof. Sushaim Bedi
Deptt. of Hindi
Colambia University USA

Dr. Vijay Pratap Tiwari
Mentor of SSIJ and Educationist,
Delhi, India

Dr. Vijay Kumar Mishra
Founder VP Print Media and Research Institute, Prayagraj, India

Dr. Pramod Kumar Pandey
Prof. & Head of Maithili
T.M. Bhagalpur University, Bhagalpur Bihar

Co-editor

Nar Narayan "Shastri"

Editorial Managerable Office

Vijay Pratap Tiwari

539-A, Bukhshi Khurd, Daraganj, Prayagraj-211006
Email : shodhsandarshalld@gmail.com
Website : www.shodhsandarsh.com
Mobile : 09415627149, 09450586526, 09015465436

Publisher & Printer

Vagisha Prakashan, Old Jhunsi, Kohna, Jhunsi, Prayagraj
Email : Vijaykumarmishra1976@gmail.com

SHODH SANDARSH

शोध संदर्श

Education, Literature, History, Art, Culture, Science, Commerce etc.

Editorial Board

Prof. (Dr.) Saroj Goswami
Head Deptt. of Hindi
Govt. Girls P.G. College, Rewa (M.P.)

Dr. Girja Prasad Mishra
Associate Professor (B.Ed)
P.G. College Patti Pratapgarh (U.P.)

Dr. Rakesh Dwivedi
Asstt. Prof. DAVPG. College, Varanasi (U.P.)

Dr. Sanjay Kumar Singh
Economic and Statistical Officer, (U.P.)

Dr. Vijai Kumar Srivastava
Associate Prof. Deptt. of physics
DDU Gorakhpur University, Gorakhpur

Anil Kumar Swadeshi
Associate Prof. Deptt. of English
PGDA V College, Delhi University, Delhi

Ananda Srivastava
Programmer (Group 'A')
Jamia Millia Islamia, (Central University), New Delhi

Manohar Pathak
Work as Research Intern at CSIR-NISCAIR for Indian Journal of Natural Products and Resources

Dr. Jamil Ahmed
Asstt. Professor, Deptt. of AIHC & Arch.
Ishwar Saran P.G. College, Prayagraj

Dr. Ashish Kumar Mishra
Associate Prof. Dept. of Hindi
Nehru Gram Bharati Deemed University, Prayagraj

Peer Reviewed Committee

Prof. Sita Ram Dubey
Ex. Head
Deptt. of AIHC & Archaeology Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

Dr. Shashi Kumar Singh
Associate Professor Deptt. of Sanskrit
Dr. Hari Singh Gaur University, Sagar (M.P.)

Dr. Lal Sahab Singh
Associate Professor
Head Deptt. of Political Science
R.R.P.G. College Amethi, (U.P.)

Prof. Anurag Bhadoria
Associate Professor Deptt. of Mahagement
Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

Prof. (Dr,) Sachchidanand Chaturvedi
Head Deptt. of Hindi
Central University, Hyderabad, (Telangana)

Prof. P.D. Singh
Associate Professor
Deptt. of Sanskrit
Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.)

Dr. Vijendra Pratap Singh
Assistant Professor
Deptt. of Hindi, Govt. P.G. College, Jalesar, Etah (U.P.)

Dr. Dev Brat Mishra 'Dev'
Assistant Prof. P.G. Deptt. of Zoology
T.D.P.G. College, Jaunpur (U.P.)

Dr. Bare Lal Jain
Assistant Prof. Deptt. of Hindi
A.P.S. University, Rewa (M.P.)

Legal Advisor

Dhirendra Kumar Mishra

सम्पादकीय

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के अनुभव के सम्मुख कोविड-19 एक विषम परिस्थिति के रूप में उपस्थित होकर अपने गम्भीर परिणामों से समूची मानव जाति और उसकी व्यवस्था को झकझोर दिया है। आर्थिक मंदि, बेरोजगारी, शून्यता, अकेलापन आदि अन्यान्य कारकों ने परिवार, सामाजिक एवं मानसिक समस्याओं को जन्म दिया है। कोरोना संकट काल में स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था के बाद सर्वाधिक प्रभावित शिक्षा व्यवस्था हुई है। महामारी से पूर्व भी देश को शिक्षा के गम्भीर संकट का सामना करना पड़ रहा था, ग्रामीण क्षेत्रों में कक्षा पाँच के लगभग 50% कक्षा दो के स्तर की पढ़ाई से भी असमर्थ थे। ऐसे में महामारी ने 'कोढ़ में खुजली' का काम कर दिया। लगभग 16-17 महीनों से स्कूलों के बन्द रहने के कारण स्थिति निश्चित रूपेण और बदतर हो गई है। एक अध्ययन के अनुसार कक्षा दो से छः के 92% बच्चों ने अपना भाषा कौशल और 82% ने गणित कौशल खो दिया है। स्कूलो के बन्द होने के कीमत में लम्बे समय तक चुकानी पड़ेगी और इससे एक पूरी पीढ़ी प्रभावित होगी।

महामारी से उपजी इस समस्या से निजात पाने के निमित्त सरकार ने 'ई लर्निंग' की तकनीक का सहारा लिया गया और ऑनलाइन पढ़ाई कराई गई जिसमें डिजिटल असमानता का व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ा। आधे भारतीय इण्टरनेट के लाभा से वंचित हैं। ग्रामीण क्षत्रों में 36% एवं शहरी क्षेत्रों में 64% इण्टरनेट का उपयोग होता है। नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी, ऑटो आदि का लाभ जाहिर है, सम्पन्न लोगों तक ही सीमित है। इण्टरनेट की स्पीड एक अलग समस्या है। इस तकनीक की अपनी अच्छाइयाँ एवं बुराइयाँ भी हैं।

ऑन लाइन पढ़ाई तो फौरी तौर पर पर तो सही लगती है किन्तु भावी जीवन के लिए अन्याय पूर्ण है क्योंकि सामाजिक प्राणी होने के कारण व्यक्ति की शिक्षा उसके सामाजीकरण में सहायक होती है जो ऑन लाइन के कारण सम्पूर्ण नहीं हो पा रही है। गूगल गुरू के सहारे शिक्षा की दुर्दशा को समाप्त करने की कल्पना साकार नहीं हो पा रही है क्योंकि ज्ञान-विज्ञान की मूल आत्मा विवेचना, गूढ़ार्थ, निहितार्थ, शब्दार्थ, खण्डन-मण्डन, मन्थन की आशा करना गूगल गुरु से करना व्यर्थ है। ब्लैक बोर्ड से लेकर स्मार्ट बोर्ड तक बदलती तकनीकी के उपयोग से समाजीकरण की प्रक्रिया को तो बढ़ाया जा रहा है किन्तु व्यक्ति एवं चरित्र निर्माण, समाज कल्याण और ज्ञान के निरन्तर विकास का लक्ष्य प्रश्न चिह्नित हो रहा है। विश्लेषण क्षमता, रचनात्मकता, नेतृत्वशीलता एवं नवाचार जैसे गुणों की अनदेखी छात्रों के मानसिक एवं शारीरिक विकास हेतु अत्यन्त घातक है। प्रत्येक वर्ष परीक्षा परिणामों के बाद

होने वाली आत्महत्याओं से इसके दुष्प्रभाव को समझा जा सकता है।

शिक्षा संस्थानों को खोलने, दुबारा शैक्षणिक माहौल बनाना विमर्श का विषय है क्योंकि कोरोना की अगली लहर का आना अभी बाकी है जैसा कि आंकलन किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में हमें शिक्षा व्यवस्था में ऐसे परिवर्तनों के बारे में भी सोचने की आवश्यकता है जी आपदाओं एवं महामारियों से मुकाबले के लिए हमें सक्षम बनाते हों एतदर्थ हमें शिक्षकों, कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों को आपदा प्रबन्धन के प्रशिक्षण का प्रबन्धन करने एवं परिसरों को ऐसे बनाने की आवश्यकता है जिससे महामारी एवं प्राकृतिक आपनदा की स्थिति में पठन-पाठन सुचारु रूप से चलता रहे, साथ ही वार्षिक मूल्यांकन (परीक्षा) के स्थान पर कक्षा-कार्य, गृहकार्य, मासिक टेस्ट, प्रोजेक्ट वर्क आदि वर्ष पर्यन्त चलने वाले सतत् मूल्यांकन को क्रियान्वित करने की आवश्यकता जिससे छात्रों की प्रतिभा एवं परिश्रम का बहुआयामी परीक्षण होता है। साधन हीन एवं सम्नन्न वर्गों एवं क्षेत्रों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि सामाजिक विभेद न बढ़ सके और सबको शिक्षा समान रूप से प्राप्त हो सके।

अतः इस समय इस वैश्विक महामारी ने छात्रों एवं समाज के सभी वर्गों के सामने एक विषम समस्या खड़ी कर दी है परन्तु अब सोचने और मन्थन का समय है कि इस तरह की आने वाली किसी भी विषम परिस्थिति से निपटने के लिए सरकार और समाज के विभिन्न वर्गों के लिए एक शोध का विषय है।

सम्पादक

Content

- **Urban Sustainable Sanitation and Septage : A Study of The Ganga Cities in Uttar Pradesh**–*Dr. Nilu Singh* **1-5**
- **Mergers The Commercial Bank Industry : Impact and Challenges** –*Dr. Yadvendra Pratap Singh* **6-11**
- **Performance Appraisal** –*Richa Rajshree* **12-15**
- **A Comparative Analysis on Old and New Systems of GST Implications Post COVID-19**–*Dr. Deepa Saxena & Dr. Sheshpal Namdeo* **16-19**
- **भक्ति काल में नवजागरण की दशा**–*अमर बहादुर वर्मा* **20-24**
- **D. Manchaiah-The Benificiary of the Harijan's Well-being and Harijana Bandhu Magazine** –*Dr. K. Guruswamy* **25-28**
- **उत्तरवैदिक सामाजिक संरचना एवं रीति-रिवाज**–*डॉ. बीरेन्द्र कुमार यादव* **29-34**
- **नारायण सुर्वे के माझे विद्यपीठ का हिन्दी अनुवाद : अर्थगत सममूल्यता का तुलनात्मक अध्ययन**–*डॉ. प्रवीण मन्मथ केंद्रे* **35-38**
- **Representation of Caste System, Myth & Fantasy in Shiva Trilogy** –*Ashutosh Srivastava & Dr. Hira Bose* **39-44**
- **Innovation in Agriculture Sector: A Case Study of Jakhania Tahsil in the Context of IRDP**–*Dr. Krishna Singh* **45-51**
- **कविवर गंग और रहीम का नीति वर्णन**–*डॉ. स्वाति जैन* **52-56**
- **बी.एड्. एवं डी.एल.एड्. प्रशिक्षणर्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन** –*डॉ. मुकेश कुमार सिंह* **57-63**
- **छायावाद : महादेवी वर्मा की रचनाओं में नारी** –*प्रतिभा यादव* **64-66**
- **कमलेश्वर के उपन्यासों में स्त्री के विविध रूपों का चित्रण**–*प्रियंका सहाय* **67-70**
- **उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालय सम्बन्धी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन**–*डॉ. रामेन्द्र तिवारी* **71-77**
- **An Empirical Analysis Of Education Intelligence and Academic Performance** –*Malay Tiwari & Pradhyuman Singh Lakhawat* **78-86**
- **बौद्ध धर्म में संघीय जीवन एवं स्त्री प्रव्रज्या**–*डॉ. नीता सिंह* **87-91**
- **A Report of Sir Creek : Water Pollutant and the Effects of Contaminants** *Dr. Ravi Kumar Mishra & Dr. Sachin Bhatt* **92-95**
- **ब्राह्मणवाद और दलित अस्मिता का प्रतिरोध**–*रजनी कनौजिया* **96-99**
- **अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की विसंगतियाँ**–*शेषनाथ यादव* **100-103**
- **विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता की उपयोगिता**–*सन्तोष कुमार यादव* **104-109**
- **सत्तनामी-सम्प्रदाय की उदय-कालीन देशव्यापी विविध परिस्थितियाँ** –*डॉ. (कु.) अनुश्री सिंह* **110-117**
- **Geographical Information System : Applicability in Environmental Monitoring and Process Modelling & Tourism Management** –*Babita Shukla & Dr. Sanjay Kumar Singh* **118-127**
- **नाथ संप्रदाय के सांस्कृतिक एवं सामाजिक अवदानों का संक्षिप्त विश्लेषण** –*प्रमिला द्विवेदी (मिश्रा) एवं डॉ. अजय कुमार मिश्र* **128-132**

- बिहारी की मानव-जीवन सम्बन्धी गहन अनुभूति–*डॉ. सायरा बानो* 133-135
- **India Towards Rejuvenation : Positive Journalism & Covid-19**–*Vishakha* 136-142
- **The Contextual Exploration of Toni Morrison's "Recitatif" : A Socio-Historical Approach**–*N.R. Gopal* 143-146
- अग्निपुराण में निरूपित प्राणी चिकित्सा-औषध एवं मंत्रों के द्वारा–*कृष्ण कुमार यादव* 147-151
- माध्यमिक स्तर पर अध्यापकों की शिक्षण अभिक्षमता–*डॉ. समर बहादुर सिंह* 152-155
- कांकेर जिले में जनजातीय महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि–*सुरेश कुमार एवं डॉ. एल.आर. सिन्हा* 156-161
- माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के रुचियों एवं व्यावसायिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन –*जनार्दन यादव एवं डॉ. नीता तिवारी* 162-164
- महिला समाख्या संगठन द्वारा महिला शिक्षा की दिशा में किए गए योगदान का अध्ययन –*विकास सिंह एवं डॉ. श्रद्धा सिंह* 165-168
- **Relation Between Spirituality and Well Being Among Adolescents** –*Smriti Srivastava & Dr. janhvi Srivastava* 169-177
- पूर्व मध्यकालीन भारत में महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था : ऐतिहासिक अध्ययन–*डॉ. प्रवीन कुमार मिश्र* 178-181
- **Wordsworth's Tintern Abbey : An Ecocritical Reading** –*Dr. Shiv Narayan Yadav* 182-187
- समकालीन हिन्दी उपन्यास में आदिवासी अस्मिता का प्रश्न–*नीलू सिंह* 188-191
- महिला सशक्तिकरण : राजनीतिक सहभागिता के संदर्भ में–*मनोज कुमार वर्मा* 192-197
- सुभाष पंतजी का उपन्यास 'पहाड़ चोर' में औद्योगिक परिदृश्य–*डॉ. रश्मि मालगी* 198-201
- **A Conceptual Framework of Chinese Diaspora**–*Sunil Kumar Dwivedi* 202-205
- ममता कालिया के कहानियों पर एक दृष्टि–*मनोरमा सिंह* 206-207
- रस, भाव एवं ठुमरी–*प्रगति मिश्रा* 208-211
- आधुनिक परिवेश में रामचरित मानस की सांस्कृतिक प्रासंगिकता–*डॉ. आभा सिंह* 212-214
- छत्तीसगढ़ में कृषि विकास : ग्रामीण बैंकों की भूमिका–*रवि शंकर गुप्ता* 215-216
- हिन्दी कथा साहित्य और स्त्री जीवन–*डॉ. पदमा राम परिहार* 217-220
- विकासखण्ड सोंधी जनपद जौनपुर में साक्षरता की क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप का भौगोलिक अध्ययन–*प्रशान्त यादव एवं डॉ. अनामिका सिंह* 221-226
- **Impact of Cement Industry Pollution on Physio-Morphology Attributes of Kadam (*Anthocephaluscadamba*) around K.J.S. Cement** –*Sandeep Pratap Singh & Manoj Kumar Singh* 227-230
- अंग प्रदेश की लोकगाथा बिहुला विषहरी : संदेश एवं चरित्र–*डॉ. कुमार चैतन्य प्रकाश* 231-233
- इतिहास में कौरवी प्रदेश–*डॉ. कविता त्यागी* 234-237
- उच्चतर माध्यम स्तर पर अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन–*मुहम्मद आसिफ अन्सारी एवं डॉ. राजेन्द्र कुमार जायसवाल* 238-243
- आचार्य बल्लभ का ब्रह्म, जगत एवं जीव विचार–*डॉ. दल सिंगार सिंह* 244-258
- सन्त विनोबा भावे की राजनीतिक दृष्टि–*डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय* 259-265
- जनजातियाँ, कहानी और मानवाधिकार–*मनोज कुमार राघव* 266-269
- वैदिक साहित्य में नारी का स्थान एवं शिक्षा-दिक्षा–*डॉ. रंजना तिवारी* 270-272
- अमरकान्त के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ (एक विशेष संदर्भ में) –*किरन चौरसिया* 273-276

******

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Home Sci.: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 1-5

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Urban Sustainable Sanitation and Septage: A Study of The Ganga Cities in Uttar Pradesh

Dr. Nilu Singh*

ABSTRACT : *ULBs are mandated to undertake planning, design, implementation, operation and maintenance of water supply and sanitation services in cities and towns. There is a direct relationship between water, sanitation and health. In order to minimize these impacts, Government of India has under taken several measures including increased investment in urban sanitation, policy initiatives, regulations, and public campaigns to improve sanitary conditions in the country. Government of India launched Swachh Bharat Mission in 2014 with a view to eliminate open defecation and improving the sanitary conditions in urban areas.Currently on-site pit latrines, septic tanks and other such systems account for a substantial proportion of toilets in urban areas while the containment of human waste will be largely achieved under SBM, its treatment still poses a huge challenge. In the absence of adequate safe and sustainable sanitation, many Indian cities are already suffering the consequences, in the form of health ailments and serious pollution of water and soil resources. In the absence of adequate safe and sustainable sanitation, many Indian cities are already suffering the consequences, in the form of health ailments and serious pollution of water and soil resources. In many instances, faecal sludge and septage is dumped in drains and open areas agriculture fields posing considerable health and environmental risks. The problem of faecal sludge and septage / sewerage must be addressed in a holistic manner, with a strategy that provides for minimum needs and is appropriate and affordable for all areas and population considering the local situation. Against this backdrop, present study purports to examine the status of urban sanitation in selected cities and suggesting roadmap for improving sanitation conditions.*

Relevance of the Study for the Society : The present study will be of paramount importance for policy implications as Government of India has already implementing centrally sponsored schemes of AMRUT, Swachh Bharat Mission and Namai Gange for improving the conditions of urban sanitation , management of waste water and faecal sludge. The study will be important for operational view point as it will be useful in understanding the dynamics of urban sanitation , septage , faecal sludge and waste water disposal besides suggesting roadmap and action plan for improving the urban sanitation and effective management of faecal sludge and waste water management .There is a direct relationship between water, sanitation and health. Consumption of unsafe drinking water, improper disposal of human excreta, improper environmental sanitation and lack of personal and food hygiene have been major causes of many diseases in developing countries. India is no exception to this. Proper sanitation is important not only from the general health point of view but it has a vital role to play in our individual and social life too. Sanitation is access to, and use of, excreta and waste water facilities and services that ensure privacy and dignity, ensuring a clean and healthy living environment for all. Facilities

* *Assistant Professor Maa Sudami Devi Mahila Mahavidhyalaya Kariyabar Semri, Azamgarh*

and services should include the collection, transport, treatment and disposal of human excreta, domestic wastewater and solid waste, and associated hygiene promotion. The urban community will also be benefitted from the study to learn the sound practices of urban sanitation and disposal of faecal sludge and waste water.

Introduction : Ministry of Urban Development, Government of India, launched Swachh Bharat Mission in October, 2014 with a view to eliminate open defecation and improving the sanitary conditions in urban areas. Weak sanitation has significant health costs and untreated sewage from cities is the single biggest source of water resource pollution in India. This indicates both the scale of the challenge ahead of the Indian cities and the huge costs incurred from not addressing them. India's bigger cities have large, centralized sewerage systems with vast underground pipelines, pumping stations and huge treatment plants. These systems are expensive to build and even more expensive to operate, as they require continuous power, a large amount of water, skilled operators and extensive electro-mechanical maintenance. The problem of faecal sludge and septage / sewerage must be addressed in a holistic manner, with a strategy that provides for minimum needs and is appropriate and affordable for all areas and population considering the local situation. FSM should be given priority in urban sanitation programmes and there should be an increased convergence between AMRUT and SBM goals of making India ODF. Achieving ODF should not merely be restricted to the act of going for open defecation but the faecal matter should also be properly disposed to reduce its ill effects. Separate faecal sludge disposal station needs to be constructed such as SWM plants. Need to ensure that there is a reliable fee-based service for FSM at the ULB level by incorporating this requirement as a precondition for funding under SBM. The scheme should strongly incentivize the development of local service providers based on PPP models and encourage resource recovery. Skill development of personnel on plumbing, mechanical desludging of septic tanks/ pits, truck operation with immediate job placement is required. Access to sanitation is unequal across income groups, cities and states. Indian cities can be divided into various class sizes according their population.

Environmental sanitation aims at improving the quality of life of the individuals and at contributing to social development. This includes disposal or hygienic management of liquid and solid human waste, control of disease vectors and provision of washing facilities for personal and domestic hygiene. Environmental sanitation comprises both behavior and facilities to form a hygienic environment. Most diseases associated with water supply and sanitation, such as diarrhea, are spread by pathogens found in human excreta. The faecal-oral mechanism, in which some of the faeces of an infected individual are transmitted to the mouth of a new host through one of a variety of routes, is by far the most significant transmission mechanism. This mechanism works through a variety of routes. Primary interventions with the greatest impact on health often relate to the management of faeces at the household level. This is because (a) a large percentage of hygiene-related activity takes place in or close to the home and (b) first steps to improving hygienic practices is often easiest to implement at the household level. Secondary barriers are hygiene practices preventing faecal pathogens, which have entered the environment via stools or on hands, from multiplying and reaching new hosts. Secondary barriers thus include washing hands before preparing food or eating, and preparing, cooking, storing, and re-heating food in such a way as to avoid pathogen survival and multiplication. The water supply and sanitation provide the necessary barrier between the pollutants, natural - built environment and humans.

Literature Review : According to WSP (2008) there are significant differences between cities and states in general, there are limited facilities for safe emptying of pits or de-sludging of septic tanks. While some urban local bodies provide these services, a majority of households enlist the services of

sweepers to manually empty the pits and tanks or private mechanical emptiers . There are very few treatment facilities for faecal sludge; most of the existing treatment involves co treatment at conventional STPs. In most cases, the collected waste is dumped in the open without any treatment (AECOM & SANDEC, 2010; WSP-TARU, 2008). Selection of user interface depends on the following six technical and physical criteria :(1) availability of space (2) ground condition (3) groundwater level and contamination (4) water availability and (5) climate (IWA, 2014) . Women defecating in open are not only exposed to the risk of hygiene , but also they face threats of harassments , teasing , lewd remarks and even sexual assault in open fields after dark (Bisaria,2015). Several studies and surveys depict the poor plight of scavengers. Owen Lynch in his study of the low caste Jatav of Agra (1969) noted that there was a definite opposition to marriage with Bhangis. In Uttar Pradesh, Chamars (leather workers) avoid social contact with Bhangis. Chaplin, Susan E (1997) review the scavenging conditions and status of scavengers in India. He analyzed the governmental efforts to improve the socio economic status of scavengers. Sharma. (1991) has analyzed the educational status of scavengers in Rajasthan. He stated that female literacy rate in female scavengers has been reported to be dismal. Shyamlal (1992) in his study also found dismal literacy rate and low educational levels. In another study on Bhangis in Jodhpur (Rajasthan) in 1973, Shyamlal showed that while Bhangis found employment in 70 different occupations, 80.29 per cent were still dependent on sweeping and scavenging. He stated that horizontal occupational mobility is fairly limited despite the scope offered by urban environment. Sharma's (1991) study of Bhangis in Delhi in 1980s presents a similar picture of traditional employment. In this study, it was found that scavenging as an occupation to women is still predominant among the Bhangis and their occupational mobility has not really improved over three generations. Searle Chatterjee in her study of scavengers, in Varanasi (1998) argues that they have been able to make effective use of trade unionism because no other caste in interested in challenging their monopoly of the low status occupation. Singh in his Study (1999) on socio economic status of female scavengers and sweepers in municipal institutions of Uttar Pradesh concluded that scavengers remain marginalized in Indian society today despite the constitutional provisions which direct the state to promote their educational and economic interests. Singh (2014) in his study of selected cities in Uttar Pradesh and West Bengal highlighted that slum dwellers are being deprived of better sanitation facilities due to lack of infrastructure and poor delivery of services. Faruqui (2014) in her study also highlighted that there is lack of sanitation infrastructure and poor delivery of sanitation services in slums of Uttar Pradesh and Bihar. She is of the view that Integrated Low Cost Sanitation Scheme has positive impact on urban sanitation and better access of toilets to women in slums. Singh (2014) is of the view that India losses 6.4 percent of GDP annually for lack of basic sanitation and sanitation facilities. The Swachh Bharat Mission is likely to bridge the gap of urban sanitation infrastructure and reduce the open defecation in urban centers. Kalkoti (2014) has reviewed the status of urban sanitation and examined the emerging challenges as well as new initiatives; however, lack of sewerage network is causing concern. Jaiswal (2014) in her paper highlighted that government initiatives for public health and hygiene are not adequate in India as open defecation is rampant. A study by Wankhade et. all (2014) has highlighted the problems of urban water and sanitation sector in India are complex and require concerted efforts to the sustain the policy momentum. The study has also reviewed the key policy responses and recent initiatives of the recent decades. Pillai and Parekh (2015) are of the view that modernization has played important role in improving sanitation conditions in India however, we need strong political will which will bring modern amenities and public health education to the door steps of people. Agarwal (2015) is of the view that policies and schemes on urban sanitation would have a limited impact unless they are backed

by adequate budgets and effective implementation. Kaul (2015) is of the view that the launch of Swachh Bharat Mission marks the beginning of the most ambitious programme on sanitation in the country till date. Pathak (2015) said that in order to achieve the targets of total sanitation by the year 2019, government needs additional support from all sections of society.

Objectives of the Study :

1. To study the policy and legal perspective of urban sanitation, septage and faecal sludge management in India, and particularly in selected state ;

2. To examine the sanitation conditions and present system of waste water , septage and faecal sludge management in selected towns in selected state ;

3. To review the municipal norms, provisions and institutional arrangements relating to septage , waste water, faecal sludge management including collection, emptying of tanks, transportation , treatment , and disposal, role of faecal sludge operators and their operational structures;

4. To study the technological options for management of waste water, faecal sludge, septage and also to examine the affordability and equity issues in sanitation services;

5. To examine the problems and challenges in management of sanitation, septage and waste water including faecal sludge urban centres in general and slums in particular ;

6. To study financial mechanism and suitable business models for septage , waste water and faecal sludge management in Uttar Pradesh;

7. To suggest policy measures, action plan and strategies for sustainable urban sanitation, septage, faecal sludge and waste water management in India.

Research Methodology :

1. The present study will be empirical in nature and based on mainly primary data collected through field survey. Besides, the study will be analytical in its approach as it will envisage critical review of the pertinent literature on waste water management, seepage and faecal sludge

2. The towns. In-depth interview will be conducted with the key stakeholders, including peoples representatives of ULBs, (Councilors), municipal officials, private and government sludge operators, contractors, and representatives of Resident Welfare Associations, NGOs, and community based organizations.

· **Data Analysis :** The filled in interview schedules will be thoroughly checked and processed through use of SPSS package while data will be tabulated with the help of relevant statistical tools. The primary and secondary data will be analyzed, interpreted and discussed besides critical appreciation of pertinent literature. The policy measures will be based on analysis of data and review of literature.

Relevance and Anticipated Outcomes : The present study will be of paramount importance for policy implications as Government of India has already implementing centrally sponsored schemes of AMRUT, Swachh Bharat Mission and Namai Gange for improving the conditions of urban sanitation , management of waste water and faecal sludge. The study will be important for operational view point as it will be useful in understanding the dynamics of urban sanitation , septage , faecal sludge and waste water disposal besides suggesting roadmap and action plan for improving the urban sanitation and effective management of faecal sludge and waste water management .There is a direct relationship between water, sanitation and health. Consumption of unsafe drinking water, improper disposal of human excreta, improper environmental sanitation and lack of personal and food hygiene have been major causes of many diseases in developing countries. India is no exception to this. Proper sanitation is important not only from the general health point of view but it has a vital role to play in our

individual and social life too. Sanitation is access to, and use of, excreta and waste water facilities and services that ensure privacy and dignity, ensuring a clean and healthy living environment for all. Facilities and services should include the collection, transport, treatment and disposal of human excreta, domestic wastewater and solid waste, and associated hygiene promotion. The urban community will also be benefitted from the study to learn the sound practices of urban sanitation and disposal of faecal sludge and waste water. Government of India has launched Swachh Barat Mission, AMRUT and Namami Gange for addressing the issues of urban sanitation Faecal sludge management should be given priority in urban sanitation programmes. Achieving ODF should not merely be restricted to the act of going for open defecation but the faecal matter should also be properly disposed to reduce its ill effects. The present study will be of paramount importance for policy implications for improving the conditions of urban sanitation,

References

1. AECOM, & SANDEC. (2010). A Rapid Assessment of Septage Management in Asia: Policies and Practices in India, Indonesia, Malaysia, the Philippines, Sri Lanka, Thailand, and Vietnam Thailand

2. Agarwal, Trisha (2015) Urban Sanitation in India, Yojana, January

3. Bisaria , Leela (2015) Sanitation in India with Focus on Toilets and Disposal of Human Excreta , Gyan Publishing House, New Delhi

4. Blackett, I., Hawkins, P. & C. Heymans (2014). The missing link in sanitation service delivery: A review of fecal sludge management in 12 cities. Washington, DC: Water and Sanitation Program, International Bank for Reconstruction and Development /The World Bank.

5. Chaplin, S.E., (1997), Scavengers: Still Marginalized, the *Administrator,* Vol. XII, January-March.

6. CPCB. (2009). Status of Water Supply, Wastewater Generation and Treatment in Class-I Cities & Class-II Towns of India. New Delhi: Central Pollution Control Board.

7. Faruqui, Neelu (2014), Report of Urban Sanitation and Rehabilitation of Manual Scavengers: A Study of Uttar Pradesh and Bihar, ICSSR Supported Project, Lucknow

8. Franceys, R., Pickford, J. & Reed, R. (1992). A guide to the development of on-site sanitation. Geneva, Switzerland: World Health Organization.

9. IWA (2014) Compendium of Sanitation Systems and Technologies , IWA, London

10. Jaiswal, Vaishali (2014) Sanitation Interventions for Public Health and Hygiene , Kurukshetra, December

11. Jayanthi, C. (1995), The Sewage Problem, The Pioneer, 14 Dec.

12. Kalkoti K. G. (2014) Improving Effectiveness in Urban Sanitation, Kurukshetra, December

13. Kaul, Kanika (2015) Social Exclusion in The Context of Swachh Bharat Abhiyan , Yojana, January

14. Listorti, James & F.M. Documam (2001), "Environmental Health: Bridging the Gaps", World Bank Discussion Paper, NO. 422, Washington D.C.

15. NIUA. (2005). Status of Water Supply, Sanitation and Solid Waste Management in Urban Areas. New Delhi: National Institute of Urban Affairs.

16. Opel, A. (2012). Absence of faecal sludge management shatters the gains of improved sanitation coverage in Bangladesh. Sustainable Sanitation Practice Journal, (13 10/ 2012).

17. Pais, Richard (2015) Sociology of Sanitation, Gyan Publishing House, New Delhi

18. Pathak, K.N. (2015) Swachh Bharat Abhiyan : A Tool For Progressive India , Yojana, January

19. Richard, E.P. "The Role of Medical and Public Health Services in Sustainable Development",

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Commerce: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 6-11

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Mergers The Commercial Bank Industry : Impact and Challenges

Dr. Yadvendra Pratap Singh*

ABSTRACT : *The world of competition is like a jungle where monsters gobble smaller ones therefore one has to be competent enough to win the rivalry. There are evidences that large enterprises have merged smaller competitors in themselves. The finance minister is said that the 27 public sector banks existing in 2017 will be reduced to 12 after the mergers announced are implemented. Merger of six smaller PSBs with State Bank of India and the merger of Vijaya Bank, Dena Bank with Bank of Baroda has already taken place. Therefore, 10 public sector banks have already been reduced to two larger ones i.e the post-merger SBI and post-merger BoB.*

OVERVIEW OF COMERCIAL BANKING INDUSTRY : History of Indian Banking shows that seeds of banking in India were sown back in the 18th century when efforts were made to establish the General Bank of India and Bank of Hindustan in 1786 and 1790 respectively. Later some more banks like Bank of Bengal, Bank of Bombay and the Bank of Madras were established under the charter of British East India Company. These three banks were merged in 1921 and it formed the Imperial Bank of India, which later became the State Bank of India. The period between 1906 and 1911 witnessed the establishment of banks such as Bank of India, Bank of Baroda, Canara Bank, Corporation Bank, Indian Bank and Central Bank of India; these banks have survived to the present. The banking sector in India can be divided into two era i.e. pre-liberalization era and postliberalization era since 1991. In the pre-liberalization era, the Government of India nationalized the 14 largest commercial banks in 1969. A second dose of nationalization of six more commercial banks followed in 1980. The stated reason for the nationalization was to give the government more control of credit delivery. Later, in the year 1993, the government merged New Bank of India with Punjab National Bank. It was only the merger between nationalized banks and resulted in the reduction of the number of nationalized banks from 20 to 19.With 27 public sector banks, including the second largest PNB, being merged and reduced to 12, almost every other individual who has a savings account or fixed deposit with a public sector bank is likely to be impacted.

The banking sector has seen a tremendous amount of change in the post liberalization era i.e. in the early 1991; the then NarasimhaRao government embarked the policy of liberalization. Licences were given to small number of private banks like Global Trust Bank, which later merger with Oriental Bank of Commerce, Axis Bank (earlier UTI Bank), ICICI Bank and HDFC Bank. This move had augmented the growth in Indian Banking. Along with the rapid growth in the economy of India, followed by the growth with strong contribution from all the three sectors of banks, viz. government banks, private

* *Assistant Professor Subhash Chandra Bose Institute Of Higher Education IIM Road Mubarakpur Lucknow*

banks and foreign banks. The impact of globalization on Indian Banking has caused many changes in terms of regulations and structural. With the changing environment, many different strategies have been adopted by this sector to remain efficient and to surge at the forefront in the global arena. One such strategy is in the course of consolidation is merger and acquisition.

CONCEPTUAL FRAMEWORK : Indian industries have started restructuring their operations around their core business activities through merger, and takeovers because of their increasing exposure to competition both domestically and internationally. According to Accounting Standard (AS) 14, 'Accounting for Amalgamations', issued by the Council of the Institute of Chartered Accountants of India, amalgamations fall into two broad categories. In the first category are those amalgamations where there is a genuine pooling not only of the assets and of liabilities of the amalgamating companies but also of the shareholders' interests and of the businesses of these companies. Such amalgamations are in the nature of 'merger' and the accounting treatment of such amalgamations should ensure that the resultant figures of assets, liabilities, capital and reserves more or less represent the sum of the relevant figures of the amalgamating companies. In the second category, those amalgamations which are in effect a mode by which one company acquires another company and, as a consequence, the shareholders of the company which is acquired normally do not continue to have a proportionate share in the equity of the combined company, or the business of the company which is acquired is not intended to be continued. Such amalgamations are amalgamations in the nature of 'purchase.

NEED OF MERGERS AND ACQUISITIONS IN BANKING INDUSTRY OF INDIA : It is observed in literature that most of the work done on mergers the financial & accounting aspect like performance of banking institutions based on. Devos, Kadapakkam& Krishnamurthy (2008) studied merger as value creation, efficiency improvements as explanations for synergies and produced evidence that suggests mergers generate gains by improving resource allocation rather than by reducing tax payments of increasing the market power of the combined firm. Kemal (2011) has used accounting ratios to compare the post-merger profitability of two banks i.e. RBS and ABN AMRO. DeLong (2003) studied sample of 54 bank mergers announced between 1991 and 1995, tests several facets of focus and diversification. The study found that upon announcement, the market rewards the merger of partners that focus their geography and activities and earning stream. Only of these facets, focusing earning streams enhances long-term performance. Shanmugam& Nair (2004) identified factors in their study on mergers and acquisitions of banks in Malaysia like globalization, liberalization and information technology developments have contributed to the need for a more competitive, resilient and robust financial systems. There are few efforts have been made to measure the impact of bank's merger on their employees and staff. However, apart from this some efforts have been made to study the state of customers in the course of merger.

Mergers often have a negative impact on employee behavior resulting in counterproductive practices, absenteeism, low morale, and job dissatisfaction.

It appearsthat an important factor affecting the successful outcome of mergers is top management's ability to gain employee trust. Panwar (2011) studied ongoing merger trends in Indian banking from the viewpoint of two important stakeholders of a banking firm- stockholders and managers. The findings shows that the trend of consolidation in Indian banking industry has so far been limited mainly to restructuring of weak banks and harmonization of banks and financial institutions. Voluntary mergers demonstrating market dynamics are very few. She concluded that Indian financial system requires very large banks to absorb various risks emanating from operating in domestic and global environments.

MERGERS OF INDIAN BANKS

Anchor bank	Amalgamating bank
Punjab National Bank	Oriental Bank of Commerce, United Bank of India
Canara Bank	Syndicate Bank
Union Bank of India	Andhra Bank, Corporation Bank
Indian Bank	Allahabad Bank
State bank of India	BhartiyaMahila bank(BMB) State Bank of Bikaner and Jaipur (SBBJ) State Bank of Hyderabad (SBH) State Bank of Mysore (SBM) State Bank of Patiala (SBP) State Bank of Travancore (SBT)
Kotak Mahindra bank	ING Vysya bank
Icici bank	Bank of Rajasthan
Hdfc bank	Centurion bank of Punjab
Indian overseas bank	Bharat overseas bank
Federal bank	Ganesh bank of kurandwad

BENEFITS OF MERGER TO INDIAN : BANKS After clearly understanding the motives and rationale for merger, we studied the mergers of 12 banks in India. In this analysis, we can identify following benefits of mergers to the all participants.

1. Sick banks survived after merger.
2. Enhanced branch network geographically.
3. Larger customer base (rural reach).
4. Increased market share.
5. Attainment of infrastructure.

EMERGING ISSUES IN MERGER : Growth is an ongoing process that reflects various issues pertaining to the various dimensions of business. Mergers in any industry are prerequisite for growth but it surely affects the customers, employees, shareholders and all concerned departments. There are studies, which reveal significant relationships between mergers and constituents of business. In our study, we find following emerging issues that are required more attention by researchers in order to successfully implement merger.

1. Employees' Perception : There is an evidence of employees' agitation and strike resultant of merger of the Bank of Rajasthan Ltd. into ICICI Bank Ltd. Empirical studies are conducted to know the perception of banking services in the wake of bank mergers. George &Hegde (2004) reported a case for the delicate aspect of employees' attitudes, their satisfaction and motivation, which are posited as prerequisites for customer satisfaction, which is, again necessary for the competitive sustenance of the organization.

Schneider, Parkington and Buxton (1980) conducted research on some boundary-spanning theory and on some practical realities. Assumptions underlying the use of perception-based diagnoses were also explained. Results revealed some strong relationships between employee perceptions of branch practices and procedures in relation to service and customer perceptions of service practices and quality. Schneider and Bowen (1985) found a significant relationship between branch employees' perceptions of organizational human resources practices and branch customers' attitudes about service.

Mylonakis (2006b) has examined in his article that how bank employees perceive bank' mergers and how it is expected to affect their personal and professional career. The result showed that bank

employees feel personally threatened by mergers, which are not consideredto be justified and necessary entrepreneurial activities conducive to enhanced, quality banking services. Wickramasinghe&Chandana (2009) took views of 109 employees of two banks of Sri Lanka, which had undergone an extension merger and a collaborative merger and reported that the type of the merger affects employee perceptions and employees are less satisfied in the collaborative merger than in the extension merger.

2. Branch Size : According to Mylonakis (2006a), an important parameter in the relationship between the number of branches and employment is branch size. He has used most well-known indicators for the evaluation of staff efficiency in banking sector. The operating revenue per employee, personnel expenses per employee and pre-tax profits to personnel expenses. He observed that operating revenue either fall or remains stable, administrative expenses per employee increase for every examined bank and pre-tax profits to personnel expenses indicator showed how many euros are gained by the bank for every euro spent in staff payroll.

3. Customer Perception : Sureshchandar, Rajendran, &Anantharaman (2002) have used factor analysis approach to determine customer-perceived service quality in banking industry. They have brought to light some of the critical determinants of service quality that have been overlooked in the literature & proposed a comprehensive model & an instrument framework for measuring customer perceived service quality. Hossain& Leo (2009) conducted an analytical study to measure customer perception on service quality in retail banking in Qatar and covered 18 parameters with sample size of 120, chosen on a convenient basis from 4 banks. They have used five-point Likert scale to conclude the results that customer's perception is hightest in the tangibles area and lowest in the competence area.

4. Communication : Nikandrou, Papalexandris and Bourantas (2000) explored a number of variables that bear an impact on managerial trustworthiness, for example frequent communication before and after acquisition, and the already existing qualities of employee relations seem to play the most important role. Therefore, a carefully planned, employee-centered communication programme, together with a good level of employee relations, seem to form the basis for a successful outcome as far as employee relations in the face of mergers. Literature shows that communication also plays vital role in the success of a merger.

Appelbaum, Gandell, Yortis, Proper &Jobin (2000) concludes that communications throughout the merger of process plays a crucial role in its eventual success. Providing clear, consistent, factual sympathetic and up-to-date information in various ways will increase the cooping abilities of employees, which will in turn increase their productivity. This increased productivity will positively affect firm's performance and create sustained competitive advantage by achieving the projected strategic fit and synergies.

5. Change Management Strategies : Kavanagh (2006) conducted longitudinal study that examined mergers between three large multi-site public-sector organizations. Both qualitative and quantitative methods of analysis were used to examine the effect of leadership and change management strategies on acceptance of cultural change by individuals occurred due to merger. Findings indicate that in many cases the change that occurs as a result of a merger is imposed on the leaders themselves. In this respect, the success of a merger depends on individual's perceptions about the manner in which the process is handled and the direction in which the culture is moved.

6. Human Resource Management : Researchers in some articles also raise issues related to human resource management. Bryson, (2003) reviewed the literature around managing HRM risk in a merger. He found that poor merger results are often attributed to HRM and organizational problems, and that several factors related to maintaining workforce stability are identified as important in managing HRM risk. Schraeder and Self (2003) found that organizational culture is one factor as a potential catalyst to merger success. Chew and Sharma (2005) examined the effectiveness of human resource

management (HRM) and organizational culture on financial performance of Singapore-based companies involved in mergers activities. They used the method of content analysis to collect information on cultural values and HRM effectiveness, using Kabanoff's content analysis. Culture profiles were then assigned to organizations in the sample following the results from cluster analysis. Various financial ratios were used to measure organizational performance. Finally, regression analysis was performed to test various hypotheses. The key finding of the study suggests that organizations with elite and potential leader, when complemented by human resource effectiveness, had a better financial performance as compared to other organizations. At the end, it was concluded that to achieve better financial results by undertaking merger and acquisition activities organizations need to have elite or leadership value profile.

7. Other Issues : There are evidences in literature that media plays an important role in shaping the social context for mergers. Schneider and Dunbar (1992).Schweiger and DeNisi (1991) suggest that it is the uncertainty that creates stress for employees rather than the actual changes associated with the merger. Communication and a transparent change process are important. Leaders need to be competent and trained in the process of transforming organizations to ensure that individuals within the organization accept the changes prompted by a merger.

SUMMARY AND CONCLUSION : Banking sector is one of the fastest growing areas in the developing economies like India. Merger is discussed as one of the most useful tool for growth, which has evoked the interest of researchers and scholars. Indian economy has witnessed fast pace of growth post liberalization era and banking is one of them. Merger in banking sector has provided evidences that it is the useful tool for survival of weak banks by merging into larger bank. It is found in our study that small and local banks face difficulty in bearing the impact of global economy therefore, they need support and it is one of the reasons for merger. There is huge potential in rural markets of India, which is not yet explored by the major banks. Therefore bank has used mergers as their expansion strategy in rural market. They are successful in making their presence in rural India. It strengthens their networks across geographical boundary, improves customer base and market share. Any action of the object leads to the reactions on the other hand and that is what happened in the merger of the Bank. When employees got agitated when the news about the merger was released. Consequently, various emerging issues have been identified for further attention of researchers and scholars.

REFERENCES

1. Appelbaum, Steven H., Gandell, Joy, Yortis, Harry, Proper, Shay &Jobin, Francois (2000). Anatomy of a Merger: Behavior of Organizational Factors and Processes Throughout the Pre-during-post Stages (Part 1).

2. Management Decision 38(9) p. 649-661. Bryson, Jane (2003).

3. Managing HRM risk in a merger. Employee Relations 25(1) p. 14-30. Calipha, R., Tarba, S. & Brock, D (2011).

4. Mergers and Acquisitions: A Review of Phases, Motives and Success Factors. In Cary L. Cooper & Sydney Finkelstein (eds.). Advances in Mergers and Acquisitions. Emerald Group Publishing Limited.

5. Chew, I.K.H., & Sharma, B. (2005). The Effects of Culture and HRM Practices on Firm Performance: Empirical Evidence from Singapore. International Journal of Manpower 26(6) p 560-581. DeLong, G.L. (2003). Does Long Term Performance of Mergers Match Market Expectations? Evidence from the US Banking Industry.

6. Financial Management, p. 5-25. Devos, E., Kadapakkam, P.R., & Krishnamurthy, S. (2008). How Do Mergers Create Value? A Comparison of Taxes, Market Power, and Efficiency Improvements and

Explanations for Synergies.The Review of Financial Studies 22(3), March 27, 2008, from Net Library Database at MohanlalSukhadia University, Udaipur.DeYoung, R., Evanoff, D.D. &Molyneux P. (2009).

7. Merger and Acquisitions of Financial Institutions: A Review of the Post-2000 Literature. J FinancServ Res 36, p. 87-110. George, B.P. &Hegde, P. G. (2004). Employee Attitude towards Customers & Customer Care Challenges in Banks. International journal of Bank Marketing 22(6) p. 390-406.Hossain, M. & Leo, S (2009). Customer Perception on Service Quality in Retail Banking in Middle East: The Case of Qatar.

8. International Journal of Islamic and Middle Eastern Finance and Management 2(4), p. 338-350. Humphrey, D.B., Willesson, M., Bergendahl, G. &Lindblom, T. (2006). Benefits from a Changing Payment Technology in European banking, Journal of bank finance 30, p. 1631-1652. Kavanagh, M.H. (2006).

WEBSITES

http://www.anz.com/australia/aboutanz/corporateinformation/historyofanz/default.asp

http://www.banknetindia.com/banking/80142.htm http://www.banknetindia.com/banking/70836.htm http://www.indianexpress.com/fe/daily/19990526/fco26022.html

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Management:Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 12-15

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Performance Appraisal

*Richa Rajshree**

1. INTRODUCTION : Employee performance has always been a prime focus by human resource managers. As a result, a number of performance appraisal techniques have over time been devised to help establish employee‘s performance. In the contemporary times, the use of performance appraisals has been extended beyond rating of the employee‘s performance to aspects such as motivation. The specific aspects of performance appraisal systems (PAS) that help improve motivation include the linking of performance to rewards; using the PAS to help set objectives and benchmarks; as well as the use of PA to help identify employee‘s strength and weaknesses.

Performance appraisals are one of the most important, time-consuming, and unpopular tasks in management. Despite this, remarkably little is known about how performance appraisals operate, especially their consequences. Indeed, much of what is written from a practitioner perspective typically suggests that they do little.The apraisals are informative and directly influence many dimensions of employee outcomes, including employee bonuses, merit pay, employee promotions, and decisions to exit the firm. The evidence shows that the appraisal process here is consistent with a relational, open-ended view of employment. It is not consistent with the common economic view that performance appraisals simply settle-up contractually based employment relationships.

2. THE CONCEPT OF PERFORMANCE APPRAISAL : Performance appraisal is the evaluation of an individual‘s work with the main aim of arriving at objective personnel decisions. It is also considered as the process of obtaining, analysing as well as recording information that revolves about the relative worth of the employee to the organisation . This takes place through the planned interaction between an organisation‘s supervisors and employees in which the former assess the performance of the latter. One of the main goals in this case is the identification of strengths and weaknesses that form the basis of recommending actions for improved employee performance.

Performance appraisals form an essential part of the HR department as they provide important and useful information for the assessment of employee’s skill, knowledge, ability and overall job performance. These appraisals are not only used to eliminate behavior and productivity issues, but also to motivate employees to contribute more.

There are many methods that organisations can implement depending on their preference as most have their specific advantages as well as limitations.

3. TYPES OF PERFORMANCE APPRAISAL

(i) 360 Degree/Multi-Rater Performance Appraisal

(ii) Management by Objectives (MBO)

(iii) Graphical Rating Scales

3.1 360 Degree/Multi-Rater Performance Appraisal : A 360-degree evaluation is an assessment tool that provides employees with the opportunity to receive performance feedback from supervisors,

peers, co-workers and also external parties such as suppliers and customers. The 360-degree evaluation process also enables organizations to gain insight into the performance and potential of future leaders, and to determine the development needs of employees.

Companies that have employees who work for remote managers, who work for several managers, who work different shifts than their manager or who work on project teams often find they need to gather multirater feedback as input for their performance appraisal process in order to give their managers the insight they need into employee performance. Whenever an employee's manager is not in a position to directly observe the employee's performance, 360 degree evaluations help make performance appraisals fairer, and the feedback given to employees more comprehensive and helpful.

If you're conducting your 360 degree multirater evaluations to assess the development needs of current or potential leaders, or to determine development needs for your employees, you can conduct the evaluations at any time. However, you might want to gather the feedback either shortly before, or after your performance appraisal process so that you couple the associated development planning with your performance appraisals.

With development focused multirater evaluations, you also need to consider how often to reassess staff. You'll only reap the benefits of your 360 degree evaluations if you include follow up development planning and regular re-evaluations as part of the process to ensure skill gaps are addressed and development is occurring.

If you are gathering 360 degree multirater feedback to provide broader feedback for performance appraisals, you simply need to allow enough time for participants to complete their evaluations in time for managers to use them as part of their employee performance appraisals.

When, where and how the 360 degree multirater feedback gets communicated to the affected employee is an important consideration. Depending on the purpose of your program, and your organizational culture, you might find it better to have the employee's manager, a coach or an HR representative present the results to the employee and help them interpret them.

Some programs simply aggregate the feedback, remove any assessor identification and deliver it to the employee in the form of a report. If you are conducting 360 degree evaluations as part of a leadership development initiative, typically the candidate requests the evaluation and HR runs the process then delivers the results and required coaching to the employee.

If you are using 360 degree multirater feedback for development planning only, you should ensure that the results are not viewed before or even consulted during the performance appraisal since they might skew the managers' perceptions/ratings.

Human nature makes it difficult to receive negative feedback. Employees often need help to interpret the feedback they are given and see it in a positive light. They also often need help to consider personality type and social styles when interpreting feedback. How we perceive others is largely a measure of who we are. Assessors may in part be reacting to differences in personality and social style in providing ratings. This needs to be taken into account when considering feedback and factored in to any associated development planning.

Finally, it's vital to set up a process for taking action based on the feedback, and following up to ensure actions have been taken and have been effective in impacting performance. Without this follow through, the process of collecting 360 degree multirater feedback becomes meaningless.

3.2 Management by Objectives (MBO) : Management by objectives as one of the key appraisal methods is defined as a result-based evaluative program. In greater detail, the goals of the performance appraisal system from an MBO perspective are mutually defined by a number of key stakeholders who include the subordinates, supervisors and employees as well.

An MBO or management by objectives system is where the manager and employee sit down together, determine objectives, then after a period of time, the manager assesses whether those objectives have been met. This can create great development opportunities for the employee and a good working relationship between the employee and manager.

An MBO's objectives should be SMART: specific, measurable, attainable, results oriented, and time limited.

A typical MBO appraisal system consists of several steps.

Steps in Management by Objectives Process

1. Define organization goals : Setting objectives is not only critical to the success of any company, but it also serves a variety of purposes. It needs to include several different types of managers in setting goals. The objectives set by the supervisors are provisional, based on an interpretation and evaluation of what the company can and should achieve within a specified time.

2. Define employee objectives : Once the employees are briefed about the general objectives, plan, and the strategies to follow, the managers can start working with their subordinates on establishing their personal objectives. This will be a one-on-one discussion where the subordinates will let the managers know about their targets and which goals they can accomplish within a specific time and with what resources. They can then share some tentative thoughts about which goals the organization or department can find feasible.

3. Continuous monitoring performance and progress : Though the management by objectives approach is necessary for increasing the effectiveness of managers, it is equally essential for monitoring the performance and progress of each employee in the organization.

4. Performance evaluation : Within the MBO framework, the performance review is achieved by the participation of the managers concerned.

5. Providing feedback : In the management by objectives approach, the most essential step is the continuous feedback on the results and objectives, as it enables the employees to track and make corrections to their actions. The ongoing feedback is complemented by frequent formal evaluation meetings in which superiors and subordinates may discuss progress towards objectives, leading to more feedback.

6. Performance appraisal : Performance reviews are a routine review of the success of employees within MBO organizations.

Benefits of Management by Objectives :

- Management by objectives helps employees appreciate their on-the-job roles and responsibilities.
- The Key Result Areas (KRAs) planned are specific to each employee, depending on their interest, educational qualification, and specialization.
- The MBO approach usually results in better teamwork and communication.

Management by Objectives (MBO) is an approach adopted by managers to control their employees by implementing a series of concrete goals that both the employee and the organization aim to accomplish in the immediate future and work accordingly to achieve.

The MBO approach is implemented to ensure that the employees get a clear understanding of their roles and responsibilities, along with expectations, so that they can understand the relation of their activities to the overall success of the organization.

If the management by objectives strategy is not adequately set, decided upon, and controlled by organizations, self-centered workers can be likely to misinterpret results, wrongly portraying the achievement of short-term, narrow-minded goals.

3.3 Graphical Rating Scales : The graphic rating scale, a behavioral method, is perhaps the most popular choice for performance evaluations. This type of evaluation lists traits required for the job and asks the source to rate the individual on each attribute. A discrete scale is one that shows a number of different points. The ratings can include a scale of 1–10; excellent, average, or poor; or meets, exceeds, or doesn't meet expectations, for example. A continuous scale shows a scale and the manager puts a mark on the continuum scale that best represents the employee's performance.

A graphic rating scale lists the traits each employee should have and rates workers on a numbered scale for each trait. The scores are meant to separate employees into tiers of performers, which can play a role in determining promotions and salary adjustments. The method is easy to understand and quite user friendly. It allows behaviors to be quantified making appraisal system much easier.

However, the scale has disadvantages that make it difficult to use as an effective management tool. Even with intense training, some evaluators will be too strict. Some will be too lenient, and others may find it hard to screen out their personal agendas. Although it is good at identifying the best and poorest of employees, it does not help while differentiating between the average employees.

References

1. Doran, G. T., "There's a S.M.A.R.T. Way to Write Management's Goals and Objectives," Management Review 70, no. 11 (1981): 35.

2. Drucker, P., The Practice of Management (New York: Harper, 2006).

3. Grote, R., Forced Ranking: Making Performance Management Work (Boston: Harvard Business School Press, 2005).

4. Lowery, M., "Forcing the Issue," Human Resource Executive Online, n.d., accessed August 15, 2011, http://www.hrexecutive.com/HRE/story.jsp?storyId=4222111&query=ranks.

5. Sprenkel, L., "Forced Ranking: A Good Thing for Business?" Workforce Management, n.d., accessed August 15, 2011, http://homepages.uwp.edu/crooker/790-iep-pm/Articles/meth-fd-workforce.pdf.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Management: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 16-19

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

A Comparative Analysis on Old and New Systems of GST Implications Post COVID-19

Dr. Deepa Saxena Dr. Sheshpal Namdeo***

Abstract : The implementation of Goods and Services tax was introduced from 1st July 2017 by the Government of India and it has come a long distance productively, in addition. GST Council has put its efforts on regular intervals to make things easier and more apparent. But, a large number of taxpayers in the country still have been facing problems with GST and its compliances particularly the small entrepreneurs. The taxpayers are trying to adapt to GST using various technologies but in the times of Pandemic such as COVID-19, when businesses are facing lockdown, they need to have less rigidity in the rules and regulations regarding GST. Govt. is planning to introduce flexibility in existing systems of GST Post COVID which may be helpful for the entrepreneurs. This research paper has enumerated some of those measures in brief.

Keywords : *Good and Service Tax, Flexibility, COVID-19, Taxpayers, entrepreneurs.*

Introduction : The completion of Goods and Services tax was brought into effect from 1st July 2017 by the Indian Government and it has been executed by the business people more or less successfully as well. GST Council has exercised its best efforts, through time-to-time GST Council meet, to make things easier and more obvious. But, a large number of taxpayers in the country still have been facing problems with GST and its compliances especially the small entrepreneurs. Though GST was implemented in 2018 in India, some of the provisions of the GST law do need an improvement. Taxpayers are continuously trying to comprehend the applicability of the provisions and the impact of the same on their business by taking the help of the people like, chartered accountants. The taxpayers are making their efforts to get adapted to GST by means of an assortment of technologies although in the times of Pandemic such COVID-19, when businesses are facing Lockdown. They have definite expectations from the Government which Government is trying to accomplish. Such methods will also be discussed in this paper.

Literature Review : Many authors have contributed in the study of GST and problems related to its implementation. Vasanthagopal (2011) studied, "GST in India: A Big Leap in the Indirect Taxation System" and has finally come to the conclusion that making a shift to GST from existing intricate indirect tax system in India may be a constructive step in thriving Indian economy. Success of GST will result in its recognition by more than 140 countries in world and a new preferred outline of indirect tax system in Asia moreover.

As per Nitin Kumar (2014), concluded in his study that implementation of GST in India will assist in eradicating economic deformation by current indirect tax system and is expected to promote unprejudiced tax structure which is unsympathetic to geographical locations. The research paper

* *Faculty, Department of Business Administration, Awadhesh Pratap Singh University, Rewa (MP)*
** *Faculty, Department of Business Administration, Awadhesh Pratap Singh University, Rewa (MP)*

Sehrawat (2015) focuses on benefits of GST and challenges faced by a huge country like, India in its execution.

It also highlights that its implementation denotes a consistent tax system which will include most of current indirect taxes which will lead to higher output in long run and can also add to more employment opportunities and prosper GDP. The research paper by Dr. D. Amutha (2018) discusses the economic effects on Indian economy because of introduction of GST.

The paper also discusses the potential predictions and obstacles for GST implementation. It states that GST is mammoth concept that makes current tax system in India simple and easy to understand. Objectives of the study: The study was carried out to make a detailed analysis of old and new systems of GST implications Post COVID-19 and compare them.

Objectives of the Study :

The study was carried out to make a detailed analysis of old and new systems of GST implications Post COVID-19 and compare them.

Research Methodology : Research methodology adopted is descriptive and a secondary source of data is used. For preparing this research paper, various secondary sources have been explored. Journals and Newspapers, magazines and websites which carry the vital information regarding GST have been studied.

Before Going Through the Plans of Govt. Post COVID, we should have some Understanding of Existing System of GST. Some of them have been Given as Under : Small shopkeepers and even dealers are the main victims of current complications of GST. They are now making effort to acquire their daily grocery supplies from GST compliant wholesale chains. It possibly will increase the prices of daily needs to some extent, although the major impact will be in the unorganised sector which will need to maintain proper GST compliant bills as well as invoices if they aspire to carry on in the post-GST regime.

Creating Invoices and Filing Returns Tricky : Currently, Small shopkeepers need to create diverse invoices for goods with different GST rates. The perplexity is about whether they are required to make different bills for such products or mention break up of tax information in the same bill. But there are many types of items which come under different GST categories, it is more or less impossible to maintain separate invoices.

Filing GST Return Remains an Issue : The tax return filing modus operandi under GST is also becoming a foremost cause of a headache for small businesses. The suitable process for filing GST return is required utmost .

Diversity of Taxes : GST is considered as a single-tax system as there are five different tax rates.

Different Rates for Different Geographic Locations : Given that GST is still not implemented entirely by every business running across country, the prices of some products are altering as per the location. The logistics cost and dealer margins also affect the price of the products for diverse situation.

The apparent difference can be observed between the price of the products even after the implementation of GST.

GST on Local (GST Exempted) Goods : People are perplexed if this rule is pertinent only to local products which are purchased from local market or on identical products purchased from big shops as well. The point to be noted is that shopkeepers producing computerized bills and having installed an AC in the shop are allowed to charge GST on all their goods.

Some Pertinent Issues for Small Traders : Small businesses are not capable to have enough money to pay for the cost of computers and accountants required to make bills and file tax returns. It is intricate to assign MRP to handmade products. Most small artisans are uneducated and consequently find themselves unable to write MRP on their products and/or do any paperwork. Dealers are baffled about rates of such products. Small businesses which have low annual turnover and are exempted from GST are still frightened to supply as they do not have any proof that they are exempted from GST. Buyers make the demand of bills from even those shops which are exempted from GST although they do not have proof of that. Many dealers are still making their purchase from unregistered wholesalers by paying cash with or without bills.

Issues for E-commerce Companies : Many of the e-commerce companies have been fearful because of the provisions of TCS which is to be accumulated by the company itself from the sellers at the time of payment. The issues concerned is that the capital obstruction will be hindering most of the prerequisites in daily practice.

The labour as well as daily operational cost will be exaggerated as a result of TCS provision. The GST council has made declared that the 1 percent TCS over the deduction can be made while making a payment to the sellers however still it remains foremost issue for the e-commerce companies.

Issues for Transport Companies : While the GST e-way bill is a key concern for most of the companies which are on a regular basis into the business of transporting goods along with sending material over the locations, the transport company is also under the scanner as to how it will deal the GST e-way bill provision. As soon the bill expired the transport company or the trucker himself have to produce the GST e-way bill on his own even in case the trucker doesn't have the precise comprehension of the process. The council or the authorities must bring in a number of straightforward process for the transport companies in case when the bill expires or the time remains the constant barriers to making the delivery of the goods.

Hard Adaptability to IT Ecosystem : The procedure of changing from manual to automatic filing of taxes is regarded as multifaceted task in the Indian context is because of multiple reasons. Out of which an assortment of issues trapped with technical manpower, infrastructure as well as awareness for procedural acquaintance and its development.

Flexibility in the new system of GST : Some of the challenges which may be encountered in the implementation as well as execution of the new GST return system.

1. Educating the Client : The taxpayers will need some time to be aware of the changes in tax laws. For the duration of this uncertain phase, taxpayers will get sufficient time to obey with the law. However, it is a immense challenge for a chartered accountant to instruct a taxpayer about new GST return system.

2. Invoice Upload : New GST return systemwill provide the facility for taxpayers to upload invoices constantly on a real-time basis in GST ANX-1. If the taxpayers intend to upload invoices incessantly, they will require a new mechanism that will capture and upload all the invoices which have been issued and other related documents into the GST portal. This becomes a challenge to a taxpayer as there is no such concept of real-time invoice upload under the present return system. The taxpayer has to make extra effort to upload the invoices with precise details constantly.

3. Frequent Matching : The taxpayer more often than not matches their invoices with books of account at the time of filing their GST return. The main point involved in frequent matching is that the taxpayer has to allocate time from his daily business activities or he has to dedicate personnel to

perform the same task. The invoices uploaded by the supplier in his GST ANX-1 will auto-populate to GST ANX-2 of the recipient.

4. Invoice Tracking : Invoice tracking earlier when someone lost the invoice then they had to to track these missing invoices and had to let the supplier know about the invoices. The recipient has to endlessly make sure if or not the supplier has uploaded invoices on the portal which can be avoided in the next system of GST.

5. Traders' Communication : Traders' Communication Merchant communication plays a crucial part in the new GST return system. The merchant has to give attention to on accounts receivables and accounts payables when compared with the current return filing system. Therefore, vendor communication is imperative while following up for misplaced invoices and correcting differences.

6. Shift to the New GST Return System : Shift to the new GST return system Taxpayers can make use of the latest technologies available in the market so the adapting process to new GST returns becomes uncomplicated. New features like, upload of the documents together and tracking of invoices, customary bringing together of books of accounts with GST returns, unremitting follow up with vendors, and comfortable contact with wholesalers will be accessible.

Conclusion of the Study : When it was first announced that the government would be implementing a tax on consumer goods and services, it became apparent that businesses whether small and big were required to register and have a GST-compliant system in place. But still, almost all business owners are finding system of GST as complicated due to various issues which have been discussed in the study. New system is to be introduced although there may be countless challenges towards the implementation of GST which are anticipated in any economic reform initiated by Govt. So the pessimistic impacts cannot be ignored completely, but they can be worked out and in addition to it, remedial measures which include revisions in the comprehensive reforms can be initiated in phased manner for the interest of the nation.

References

1. Vasanthagopal, R.. (2011). Gst In India: A Big Leap In The Indirect Taxation System. International Journal Of Trade, Economics And Finance. 144-146. 10.7763/Ijtef.2011.V2.93.
2. Nitin Kumar (2014), "Goods And Service Tax In India-A Way Forward", Global Journal Of Multidisciplinary Studies, Vol 3, Issue6, May 2014.
3. Sehrawat Monika And Dhanda Upasna, 2015, "Gst In India: A Key Tax Reform", International Journal Of Research Granthlaya, Vol.3 (Iss.12): December, 2015, Issn- 2350-0530(O) Issn- 2394-3629(P).
4. Amutha, D., Economic Consequences Of Gst In India (January 8, 2018). Available At Ssrn: Https://Ssrn.Com/Abstract=3098357 Or Http://Dx.Doi.Org/10.2139/Ssrn.3098357
5. https://www.profitbooks.net/
6. https://www.cleartax.in/

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 20-24

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

भक्ति काल में नवजागरण की दशा

अमर बहादुर वर्मा *

हिन्दी साहित्य के संदर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणाम स्वरूप भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था और उसकी लोकान्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे–धीरे लोक प्रचलित भाषाएँ भक्ति भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गयी और कालान्तर में भक्ति विषयक विपुल साहित्य की बाढ़ सी आ गयी।''[1] किसी भी राष्ट्र का सुव्यवस्थित निर्माण एक दिन में नहीं होता, उसके स्वरूप को बनने में शताब्दियाँ लग जाती हैं। राष्ट्र की उत्पत्ति इतिहास सम्पोषण, वर्तमान की गोद में होता है। पृथ्वी उसे स्वरूप देती है। जन उसे प्राण देता है तथा संस्कृति उसे सौष्ठव प्रदान करती है। राष्ट्रीयता मुख्यतयः मनोवैज्ञानिक भाव है अतः भक्तिकालीन नवजागरण विषयक चेतना पर विचार करता समसामयिक ही नहीं वरन् प्रासंगिक भी है।

(क) संत साहित्य में विद्यमान नवजागरण : संत साहित्य हिन्दी साहित्य का आधारभूत ढाँचा है। रामानन्द की अगुवाई में गठित नवजागरण की पंक्ति में 'कबीर' सेनाध्यक्ष की भूमिका में नजर आते हैं वे समाज में मौजूद आततताईयों को समूल नाश करने हेतु अपने सहयोगियों रैदास, धर्मदास, पीपा, धन्ना, सेन आदि के साथ मुकाबले के लिए आगे आते हैं। जैसा कि विदित है कि मध्यकालीन समाज विभिन्न समस्याओं से घिरा था, खासकर सामाजिक असमानता, धर्म आडम्बर, जाँति–पाँति, छुआ–छूत, भेद–भाव, ऊँच–नीच व साम्प्रदायिकता का बोल बाला था। सन्तों ने देखा कि हिन्दू–मुसलमान आपस में लड़–झगड़ रहें हैं वे दूसरों के खून के प्यासे बने हुए हैं धर्म के नाम पर कत्लेआम हो रहा है ऐसी स्थिति में दोनों को फटकारते हुए कहते हैं–

हिन्दू तुरूक हटा नहिं पावैं, स्वाद सबनि को मीठा
हिन्दू बरति एकादशि साधें, दूध सिंघारा सेती।

x x x x x

वै हलाल वे झटका मारै, आगि दुनौ घर लागी।[2]

संतों का स्पष्ट मत था कि हिन्दू हो चाहे मुसलमान सभी का ईश्वर एक है, सबकी रक्षा करने वाला वही है। ईश्वर अपनी बनाई हुई सत्ता में सबको बराबर अधिकार देता है उसमें भेदभाव नाम की कोई चीज नहीं है भेद तो मनुष्यकृत हैं इसमें ईश्वर का क्या दोष? जब एक पवन है एक पानी है, एक गगन है, एक पृथ्वी है तो हिन्दु–मुसलमान बीच में कहाँ से आ गये। इनके द्वारा बनाये गये मन्दिर–मस्जिद कृत्रिम हैं, केवल ये सब विभेद करने वाले हैं, इन्हें मान्यता प्राप्त ईश्वरीय आदेश न माना जाय। यदि समाज में एकता व भाईचारा स्थापित करना है तो एक धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है, वह मानव धर्म। इन बातों का अवलोकन किया जाय तो संतों की यह वाणी नवजागरण की ही घोतक है–

''हिन्दू मुए राम कह, मुसलमान खुदाय।
कहै कबीर जो जावता, दह में कदे न जाय।।''[3]

संत किसी जाति बन्धन को नहीं मानता वह समाज के प्रत्येक प्राणी को समरूप में देखता है। संत शुद्ध मानवतावाद के पूजक थे, वे जन–जीवन में व्याप्त गन्दगी को निकाल फेंकने के लिए व्याकुल थे। वे समाज के उपेक्षित वर्ग को सहारा देकर ऊपर उठाना चाहते थे। संतों ने घूम–घूम कर यही प्रचार करना शुरू किया कि ईश्वर एक है, सबका मालिक वही है, वह जो भी कुछ करता है भलाई के लिए करता है। ''अकबर के दीन–ए–इलाही का उद्घोष तथा राज्य द्वारा सभी प्रजा के लिए एक धर्म की मान्यता अप्रत्यक्ष रूप से कबीर की ही देन है।''[4]

* *नेट/पी.एच-डी., हिन्दी विभाग, एम.डी.पी.जी. कॉलेज (डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या) प्रतापगढ़ (उ.प्र.)*

महात्मा कबीर ने हिन्दू–मुस्लिम एकता के माध्यम से सामाजिक एवं राष्ट्रीय नवजागरण का निर्भीक शंखनाद किया। उनके विचार इतने क्रांतिकारी व उदार थे कि हिन्दू व मुसलमान दोनों ने ही उन्हें अपना समझा। कबीर अपने को न हिन्दू मानते थे न मुसलमान, अपितु अपने को परमात्मा की संतान, मनुष्य मात्र मानते थे। कबीर का विद्रोह केवल हिन्दू समाज तक ही नहीं था। उन्होंने पीर, औलिया, मुल्ला और पंडित के कथनी और करनी के द्वैत को उजागर करके जनता को उनसे बचने का आग्रह किया, साथ ही योगी सिद्ध, यती, मुनि और जटाधर आदि साधुओं से भी बचने का संकेत किया। प्रो0 मालती तिवारी के अनुसार–''भक्तिकाल की कुंठित दबी हुई मनोवृत्ति को सम्भवतः पहली बार कबीर ने सबसे पहले प्रबल रूप से उद्घाटित किया। सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के प्रति कबीर की वाणी में प्रबल इच्छाशक्ति व्यक्त हुई है। इस वाणी के माध्यम से हमें तत्कालीन यथार्थ का t hou i fj p; çkIr gksk gS**[5] संतों ने विद्रूप समाज का जो चित्र खींचा उससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समाज कितना कमजोर व अकर्मण्य हो गया था। भ्रष्टाचार चरम सीमा पर पहुँच गया था समाज के ठेकेदारों द्वारा निरीह जनता का शोषण व उनके साथ अमानवीय यातनाएँ देखकर संतों के हृदय में सामाजिक परिवर्तन के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई और वही हुआ जिसे आज हम अक्षरशः स्वीकार करते हैं कि नवजागरण अलख संतों ने ही जगाई। राष्ट्रीय एकता व अखण्डता की मिसाल हमें मध्यकालीन संतों में देखने को मिलती है, साम्प्रादायिक सौहार्द्र भी संतों में दिखाई पड़ता है कबीर के विषय में डॉ0 झारखण्ड चौबे एवं डॉ० कन्हैयालाल श्रीवास्तव के विचार इस सन्दर्भ में प्रासंगिक रहेंगे–''कबीर ने हिन्दू–मुस्लिम सामांजस्य की पृष्ठभूमि प्रदान करके महर्षि दयानन्द, महात्मा गाँधी तथा जवाहर लाल नेहरू का पथ प्रदर्शन किया, जिन्होंने भारत की नैया का खिवैया बनकर देश को साम्प्रदायिकता की विभीषिका से बचाया।''[6]

संतों के साहित्य में आर्थिक विषमता पर भी दृष्टि डाली जाय तो पता चलता है कि उन्होंने भावी पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित किया और जब देश दिवालिएपन के कागार पर आ खड़ा हुआ तो अपने खर्चे और ऐशो आराम कम करने के बजाय राष्ट्र की अस्मत् को अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों और अमरीकी आकाओं के हाथों गिरवी रख दिया। अपने विशाल बाजार को ही विदेशी कम्पनियों द्वारा उपभोग की सामाग्रियाँ बेचने और शोषण करने के लिए मुक्त कर दिया।''[7] वस्तुतः इन सब समस्याओं का यदि निदान खोजा जाय तो संतमत की वाणियाँ ही हमारा मार्गदर्शन कर सकती है। संतों की अपरिग्रह, इन्द्रिय निग्रह, धन वैभव की नश्वरता, सादा जीवन, संयमित जीवन, परोपकारिता, दया, भ्रातृत्व आदि की प्रेरणाप्रद वाणियाँ मौजूद हैं, जिन्हें जीवन में आचरित करने से ही आर्थिक शोषण, भ्रष्टाचार, भूख–प्यास, गरीबी, ऊँच–नीच की दुर्भावना पर नियन्त्रण किया जा सकता है और तभी मनुष्यमात्र का कल्याण सम्भव है। कबीर के शब्दों में–

''उदर समाता अन्न लै, तनहिं समाता चीर।
अधिकहि संग्रह ना करै, ताका नाम फकीर।।''

संतों ने सामाजिक मूल्यों के उच्चादर्शों को बनाये रखने के लिए महान कार्य किया। निश्चित ही कहा जा सकता है कि संतों ने चाहे समाज की सांस्कृतिक व्यवस्था हो या राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों से उपजी घोर अव्यवस्था। इन सभी के विरूद्ध अपनी आवाज बुलन्द की। इन्हें किसी का डर नहीं था, जो कुछ कहना होता निडर एवं साहसिक भाव से कहते–कबीर की यह बानी नवजागरण की ही घोतक है–''तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।'' समाज में नवजागरण की अलख जगाने वाला जमीनी हकीकत से जुड़ा होता है वह व्यक्ति और समाज की कड़ी होता है। संतों का समूह किसी उच्चवर्ग से सम्बन्ध नहीं रखता बल्कि निम्न स्तर से उठकर ही उच्च आदर्शों की पुर्नस्थापना करता है। संतों के मानवतावादी विचार ही हमें नवजागरण के रूप में मिलते हैं। संतों ने तत्कालीन समाज का परिशोधन किया। ओम प्रकाश त्रिपाठी ने ठीक ही कहा है–''आज की हिन्दी कविता किसी भी स्तर पर उन उस समय का समाज भी धन के भ्रष्टाचार में निमग्न था। मुगल बादशाहों में एशो–आराम व विलासिता की बू आती है। राजा, निरीह प्रजा का शोषण अपने सामन्तों, दासों, रजवाड़ों व अपने कारिन्दों से करवाता है और विभिन्न प्रकार के करों को लागू कर आम आदमी की जिन्दगी कुत्तों से भी बदतर जीने को मजबूर करता है। संतों ने अतिशय धन संग्रह की प्रवृत्ति को पाप माना तथा लोभ को पाप का मूल। संत शिरोमणि कबीर कहते हैं–

''साई इतना दीजिए, जामे कुटुम्ब समाय।
मै भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।।''

धन की भूख आज इतनी बढ़ गयी है कि आदमी तुरन्त धनी बनने की मानसिकता के चलते अच्छे–बुरे सभी काम कर रहा है। वैसे तो हर क्षेत्र में आचरण की भ्रष्टता दिखाई है किन्तु आर्थिक भ्रष्टाचार का वजूद देखते ही बनता है। आज भ्रष्टाचार का अर्थ हो गया है–आर्थिक गबन, घोटाला, रिश्वत खोरी, सुविधा शुल्क आदि। भ्रष्टता व बेईमानी इतनी बढ़ गयी है कि माता का पुत्र से, भाई का भाई से, पिता का पुत्र से, भाई बहन जैसे पवित्र रिश्ते भी कलंकित हो रहे हैं। परधन की इच्छा समाज में अभिशाप बनकर विकट समस्या खड़ी कर दी है। आम जनता की बात जाने दीजिए, जनता द्वारा चुनी हुई सरकारें भी घोटाले के आकंठ में डूबी हुई हैं। खाद्यान्न घोटाले, बोफोर्स घोटाला, चीनी घोटाला, हथियार खरीद घोटाला जैसे घोटालों की खेप ही खेप है। मध्यकालीन संतों के समय घोटाले तो अशिक्षित, निर्धन, शोषित के बीच होते थे, लेकिन आज पढ़ा लिखा वर्ग ही घोटाले को अंजाम देता है जिम्मेदार व्यक्ति ही खजाने में सेंध लगाता है राजा ही प्रजा को अरबों–खरबों का चूना लगाता है और आम आदमी को बदले में मिलती है कमर तोड़ मंहगाई।

डॉ० सुभाष कश्यप ने ठीकही कहा है–''सारी व्यवस्था क्षत–विक्षत एवं टूट फूट गयी। भ्रष्टाचार और लूट खसोट के होड़ में सभी दलों के नेताओं ने अपनी तिजोरियाँ भरी, विदेशी बैंकों के खातों में भारी रकमें जमा की, घोटाले पर घोटाले किये, अपनी सत कवियों को काटकर नहीं चल सकती जिन्होंने जो सिर काटै आपना चलै हमारे साथ' कहकर लोकमंगल का नेतृत्व किया था।''[8]

(ख) राम और कृष्ण भक्त कवियों की लोकदृष्टि–राम और कृष्ण भक्त कवियों की लोक दृष्टि मानव जाति को भलाई के लिए मध्यकाल में जनवादी विचार धारा का ऐसा प्राचीन अभिलेख है जो वर्तमान में तत्कालीन समाज का यथार्थ प्रतिबिम्ब है। राम और कृष्ण भक्त कवियों ने जनता में नई चेतना का प्रादुर्भाव किया। उनकी लोकदृष्टि समाज के हर वर्ग पर थी। राम भक्त कवियों ने जहाँ अपना आराध्य भगवान राम को माना वहीं कृष्ण भक्तों ने श्री कृष्ण को। ध्यातव्य है कि दोनों युगावतारी हैं तथा लीलाओं के माध्यम से दुष्टों का संहार करते हैं। राम जहाँ अत्याचारी शासक रावण का वध करते हैं वहीं कृष्ण कंस का। दोनों ही अलौकिक होते हुए भी जनमानस में लोक द्रष्टा है। तुलसी के राम जहाँ लोकमंगल दायक हैं वही सूर के कृष्ण लोक रंजक। दोनों को मिलाया जाय तो राम और कृष्ण लोकद्रष्टा थे। आचार्य हजारी प्रसाद के अनुसार–भारत का लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय समाज में नाना प्रकार की परस्पर विराधी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचारनिष्ठा और विचार पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता में समन्वयकारी चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे।''[9] तुलसीदास ने यद्यपि अपनी काव्य रचना का उद्देश्य स्वतः सुखाय बताया है तथापि उनकी साहित्य संवेदना, आत्महीनताग्रस्त और प्रसुप्त भारतीय मानस को जगाने तथा उसमें अपनी दीनहीन दशा पर विचार करने की इच्छा अंकुरण की प्रछन्न प्रेरणा से अनुप्रेरित है। मध्यकाल के किसी भी ईमानदार रचनाकार के लिए यह जरूरी था कि वह अपने समय के बेसुध और विग्रह में खोये समाज की जागृति के लिए उसकी रूचि और मान्यताओं, रूढ़ियों और परम्पराओं के अनुरूप बात कहकर उसे चिन्तन की प्रक्रिया से जोड़े। अतः कहा जा सकता है कि प्रत्येक युग की अपनी अवधारणाओं ओर चिंताओं के बीच अंकित होन वाली प्रेरणाएँ–

बोले राम सकोप तब भय बिनु होई न प्रीति।।

कहने का तात्पर्य यही है कि तत्कालीन समाज में अनुनय–विनय से काम कम डॉट–डपट से लोग ज्यादा ही सक्रिय रहते थे। तुलसी ने लिखा है कि जो राजा कमजोर, डरपोक रहता है, वह राजपाट से हाथ धो बैठता है। राम को लोकनायक की श्रेणी में खड़ाकर एक सुव्यवस्थित राज्य की स्थापना तुलसी ही कर सकते हैं। अतएव कह सकते है कि रामकाव्य परम्परा के नायक तुलसीदास ने अपनी कतियों में लोकदृष्टि का परिचय दिया है–''रामराज्य बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब शोका'' सुन्दर राज्यवस्था के सन्दर्भ में कहने के बाद उन आततायी शासकों को भी सचेत किया जिसने जनता का शोषण किया–

जासु राम प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।

तुलसीदास जनकवि हैं। वे अपने समय के जनमानस में व्याप्त भुखमरी और बेरोजगारी जैसी यथार्थता को स्वीकार करते हैं–

जायो कुल मंगन, बधावनी बजायो, सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।

बारे ते ललात विललात द्वार–द्वारा दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।।[10]

दुनिया में यदि कोई आग है तो पेट की जठराग्नि। यह अग्नि बड़वानल और दावा नल से भी भयावह है। तुलसी कहते हैं कि–''किसबी, किसान–कुछ, बनिक, भिखारी, भाटः चाकर, चपल, नटचोर, चार, चेटकी।

x x x x x

पेट ही को पचत बेचत बेटा–बेटकी।।

तुलसीदास सामाजिक यथार्थ चित्रण के तत्कालिक नायक हैं, वे सच्चे लोकद्रष्टा है, वे कालजयी बिन्दु हैं जो मनुष्य को और अधिक मनुष्य बनाने की अनिवार्य रेखाओं का निर्माण करते हैं। राम काव्य परम्परा के महानायक तुलसीदास समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था के खिलाफ हैं, वे स्वयं कहते हैं।–'धूत कहौं, अवधूत कहौं, राजपूत कहौ, जुलाहा कहौ कोऊ। वे आगे कहते हैं कि राम का अपने में रचने के लिए जाति–पाँति, धन–धर्म के अहंकार से अलग होना पड़ता है– **'जाति–पाँति धन, धर्म बडाई। सब तजि तुमहि रहहिं लौ लाई।''**

तुलसीदास ने तत्कालीन समाज का जो चित्र खींचा उसमें उनकी बौद्धिक प्रतिभा का संकेत मिलता है– रामराज्य की अवधारणा, संत–असंत, ज्ञान–भक्ति, सगुण–निर्गुण का समन्वय तथा पारिवारिक एकता की मिसाल तुलसी के काव्यों में देखी जा सकती है। ग्रामीण अंचलों में शादी–विवाह के अवसरों पर जो गीत गाये जाते थे उसका सुन्दर चित्रण तथा बच्चों के जन्म पर स्त्रियों द्वारा मंगल गीत गाया जाना तुलसी की लोकदृष्टि ही है। तुलसीदास ने उसी काव्य को सर्वश्रेष्ठ माना है जा गंगा जी की तरह सबका कल्याण करने वाला हो–

'कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब करूहित होई।।'[11]

तुलसीदास मर्यादावादी समाज सुधारक संत थे। वे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे, जिसमें सभी लोग वैदिक धर्म के अनुयायी हों, वर्णाश्रम का पालन करने वाले हों, सज्जन और धर्म में रत होकर रामभक्त हो। गोस्वामी जी लोगों को लोभ–मोह को त्यागकर सात्विक विचारों में रहने की सलाह दी। तुलसी दास तत्कालीन समाज में भ्रष्टाचार में लीन जनता को देखकर द्रवित हो जाते हैं। जड़ता और मूर्खता पर कैसा चित्र उन्होंने खीचा, जब राम समुद्र पर पुल बनाने के लिए उससे सप्रेम विनती की लेकिन वह नहीं माना जब राम को क्रोध आया तब समुद्र प्रकट हुआ–

'विनय न मानत जलधि जड़ गये तीनि दिन बीत'

जन–जन की पीड़ा को समझने वाले हैं। ग्रियर्सन ने ठीक ही कहा है कि–बुद्धदेव के बाद के लोक नायक तुलसी ही हैं।

कृष्ण काव्य में सुगुण भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण को ही अपना आराध्य स्वीकार किया है। महाभारत, गीता, पुराणों में भी श्रीकृष्ण परब्रह्म, नारायण, विष्णु आदि कि रूप में प्रतिष्ठित हैं। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश काव्यों में भी श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन मिलता है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य का प्रारम्भ मैथिल–कोकिल विद्यापति से स्वीकार किया जाता है। मध्ययुगीन भक्ति सम्प्रदायों में कृष्ण–वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी व गौड़ीय सम्प्रदाय में मिलते हैं।

हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति की अजस्र धारा को प्रवाहित करने वाले भक्त कवियों में सूरदास का स्थान मूर्धन्य है। सूरदास का काव्य लोकधर्म से विमुख नहीं है। कृष्ण की बाल लीलाओं का जो वर्णन सूर ने किया है उसकी समानता दूसरा कवि नहीं कर सका है। माखन खाते हुये कृष्ण का चित्र कवि ने इस प्रकार खींचा–

शोभित कर नवनीत लिये
घुटुरून चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये

श्रीकृष्ण की किलकारी भरी हँसी एवं मणि–जटित आँगन में अपने प्रतिबिम्ब को पकड़ने के लिये दौड़ते समय का चित्र भी बड़ा ही हृदयग्राही है–

किलक त कान्ह घुटुरूवनि आवत मनिमय कनक नन्द के आँगन बिम्ब पकरिबे धावत।।

सूर ने बालकों के हृदय मनोभावों बुद्धि–चातुर्य, स्पर्धा, खीझ, प्रतिद्वन्दिता, अपराध करके उसे छिपाने एवं उसके बारे में कुशलता के साथ सफाई देने की प्रवृत्ति का मनोहरी चित्रण किया है–

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी

x x x x x

कँचौ दूध पियावत पचि–पचि देत न माखन रोटी,

सूरदास लोक दृष्टा कवि हैं उन्हें समाज की हरगति विधि के बारे में पता है वे श्रीकृष्ण को लोक रक्षक के रूप में प्रतिष्ठित कर उनकी महिमा का गान करते हैं। सूर का 'भ्रमर गीत' सच्चा लोक साहित्य है, यह व्यवस्थिति एवं श्रृंखला–बद्ध है, क्योंकि इसके आरम्भ में कृष्ण की गोकुल सम्बन्धी चिन्ता, उद्धव का ज्ञान सम्बन्धी अहंकार, कृष्ण का उद्धव के अहंकार को दूर करने के बारे में विचार, उद्धव को ही संदेश लेकर गोकुल भेजने का उपक्रम, नन्द–यशोदा और गोप–गोपिकाओं के लिये पत्र, कुल द्वारा पत्र की व्यवस्था, उद्धव की ब्रजयात्रा उद्धव का ब्रजागमन, उद्धव का उपदेश गोपियों का व्यंग्य एवं उपालम्भ द्वारा उस उपदेश का खण्डन और अन्त में निर्गुणोपासक उद्धव का सगुणोपासक बन जाने की व्यवस्था का बखूबी चित्रण किया है। सूरदास ने ग्रामीण परिवेश को अपने काव्य का आधार बनाया। उन्होंने जाति, धर्म, पाखण्ड, सम्प्रदाय व वासनाओं से परे बाल रूप का वर्णन किया है। स्त्रियों के आभूषण में नूपुर, पैंजनी, बेसरी, वांटक, बाजूबन्द, पहुँची, मुद्रिका, लटकन, नथुनी, चूड़ी टीका आरसी, चम्पाकली आदि का वर्णन प्रचुर मात्रा में सूर ने किया है।

सामाजिक समरसता का प्रतीक संगीतशास्त्र सूर का प्रिय विषय है, पर्व उसकी वर्णन कवि ने मनोरम ढंग से किया है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ. पीठिका भक्तिकाल
2. वासुदेव सिंह, हिन्दी सन्त काव्य : समाज शास्त्रीय अध्ययन, पृ. 218
3. सम्पादक भगवतस्वरूप मिश्र, कबीर ग्रन्थावली, पृ. 28
4. डॉ. ताराचन्द, इनफ्लुएंस ऑफ इस्लाम ऑन इण्डिया कल्चर, पृ. 165
5. डॉ. मालती तिवारी, कबीर संग्रह, प्रस्तुत संकलन, पृ. 7
6. डॉ. चौबे एवं श्रीवास्तव, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृ. 354
7. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संविधान समीक्षा, पॉलिटिक्स इण्डिया, मासिक अगस्त, 1998 में प्रकाशित मेरठ, पृ. 33
8. ओम प्रकाश त्रिपाठी, सन्त साहित्य और लोकमंगल, पृ. 148
9. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 98
10. तुलसीदास, कवितावली
11. गोस्वामी तुलसीदास, श्री रामचरित मानस–बालकाण्ड

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 25-28

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

D. Manchaiah-The Benificiary of the Harijan's Well-being and HarijanaBandhu Magazine

*Dr. K. Guruswamy**

In the time of 18th and 19th centuries British government provided good English education to Indians without any discrimination in the society. As a result of it many untouchable communities got opportunities to gain education knowledge for thinking progressively. Based on this English education these sections educated personalities rise there voice against social evil systems through their social movements. Thus the British English education system creates the new generations in India to questioned injustice attitudes and practices ofupper castes in the public sector.As well as that educated became social reformers and workers. So they started many Organizations, SanghaSamajas, Newspapers, weekly magazines, journals to create awareness against blind faith and orthodox inequality practices in the minds of depressed class. In conjunction with they organized them fight for their rights. Among such Rajaram Mohan Roy, Henry Louis Vivian Derozio, Swami DayanandaSaraswati, JyotibaPhule, SavitribaiPhule, Swami Vivekananda, Gandhiji, Narayanaguru, PeriyarRamswamyNaikar, B.R. Ambedkaretc the most important ones.Based on their inspiration many social promoters of India involving their whole life for uplifting of these oppressed classes eminently.This type of sensibility progenitors made the press as a 'weapon of social justice' for the enlightened life of exploited sections in society. In such a line D. Manchaiah'sand his HarijanaBandhu Kannada magazine come and stand. In this background I would like to present 'Native place of D. Manchaiah', 'Influence of Gandhiji on D. Manchaiah's Progressive Thinking', 'Work efficiency of D. Manchaiah's behalf of Exploited Communities', 'HarijanaBandhu Magazine – Start and It's Nature', 'The Personality of the Protagonist of D. Manchaiah' in my this research oriented article.

Native place of D. Manchaiah : D. Manchaiah was belonged to Doddarasinakere village, Maddurutaluk, Mandya district, Karntaka.He was famous in the name of DoddarasinakereManchaiah in the mouth of people of the district.He had born as a son of KariyanaDasaiah and Boramma in 1920 decades in the scheduled caste family. He studied only 4th standard education. But he got intelligence knowledge in all sectors in the society through the social education. He was observing since his childhood days anti society activities of upper caste people against Harijana communities. By his bitter experience these type of inhuman practices he comes forward to oppose his soft rationalistic and theoretical progressive mind. Because he was very influenced by Gandhiji's protest tools like, Truth, Peace, Nonviolence, Satyagraha. So he adopted ways Gandhijito get social and political justice behalf of untouchables.[1]

Influence of Gandhiji on D. Manchaiah'sProgressive Thinking : D. Manchaiah's was appreciable social sensible worker in the 1960's decades Madya district. He became a symbol of peace, nonviolence, truth protests against castiest people.He was strictly following the scrupulous and

* *Social-Science Teacher Minority Morarji Desai Residential School Chittanahalli, HolenarasipuraTown, Hassan, Karnataka*

moral values of socialism. Because sincere follower of Gandhiji, B.R. Ambedkar, Rama ManoharaLohiya'screates the equal society thoughts in his mind. By the inspiration from them he adopted his whole life the values of tolerance, softness, love, affection, liking, sympathy, humanism concepts. Especially he got highest virtues character's asymmetry by the influence ofGandhiji.

Because Gandhiji's scarified his whole life for getting Indian Independence from the British. For this purpose he did many satyagraha, agitation, protests against the British in the peace, softness, nonviolence and rational thoughts of John Ruskin and Leo Tolstoy. As well as for the upliftment of Harijana communities he introduced structural programmes. Based on this development process of Gandhiji's D. Manchaiah and his friends dedicate themselves for do the social services behalf of weaker sections of the society as a members of 'HarijanaSevakaSangha' in Mandya branch.[2] And also they participated ShivapuraDhvaja Satyagraha and Quit India movement.[3]Not only that by the inspiration of Gandhiji's published magazines like 'Sarvodaya', 'Young India' and 'Harijana', D. Manchaiah's also come forward to implementing independence of social and political justice in his career.[4] Therefore D. Manchaiah was started peaceful opposing against untouchability practices through path of Gandhiji thoughts and philosophy.

Work efficiency of D. Manchaiah's behalf of Exploited Communities : In the time of Pre-Independence and Post-Independence naturally if called exploited communities in the society considered asuntouchable castes. These communities' people deprived all fundamental facilities from public sectors in the whole corners of the country. For these upper caste people prohibited the entry of the temples, lakes, canals, well's, hotels, barber shops, public shops and upper caste people streets. As well as untouchable castes wouldn't wear good cloths, slippers, a sandal, dhotis, lunges. And also they had been pushed away from ritual practices like, village festivals, fairs, god festivals, god idol procession etc. So no one wouldn't come forward bravely to question this inequality treatment.Castist people were treating them inhumanly like slaves, forced labours. In addition upper classes imprisoned them the shackles of servitude. And also Harijan classes was pushed to live aurora.[5] Thus Harijana communities were suffering from this types of atrocities by their sorrowful silence without any questions. It was commonly going on in district of Mandya also.

In this critical situation D. Manchaiah's embodied to oppose these type of exploitation from upper caste landlords. At the same time D. Manchaiah got the B. Hattaiah, KowdleChoudaiah, GuttaluDevaiah, M.S. Siddappa, M.K. Bommaiah, kottattiHombaiah's cooperation and support for this process. In particularly B. Hattaiah, KowdleChoudaiah and GuttaluDevaiah were giving the support to D. Manchaiahserved as triads.[6] They were preoccupied peacefully against atrocities of upper caste people. D. Manchaiah's always inculcating to Dalit's if get the dignity, honorary, self-respect, employment in the society to equal to upper caste, they should to be well educated.

D. Manchaiah's have had membership of college hostel student's selection committee in district of Mandya. In this time he was giving placement to poor student's Dalit communities for their education.As well as D. Manchaiah was helping to that student's to get government job in the time of interview. Because D. Manchaiah had affectionate relationship with at that ministers of Karnataka government like, B. Basavalingappa, N. Rachaiah, and B. Rachaiah's. Not only that D. Manchaiah's was sanction government lands (DarakastuBhoomi) to landless poor peasants without any expecting from them by the support of above mentioned politicians.[7]It's a mirror caught his action.

D. Manchaiah's had affectionate concern on Harijana communities for their liberty in all sectors in the society. So, for this purpose he was creating the awareness among Dalit communities against merciless caste exploitation from the upper caste through his one magazine. That magazine name considered as 'HarijanaBandhu Magazine'.

HarijanaBandhu Magazine – Start and It's Nature : HarijanaBandhu Kannada Weekly Magazine started on 1962 in Mandya district. D. Manchaiah was producer of this magazine.This magazine started by the influence of 'Harijan Magazine' of Gandhiji. In addition his friend Mallaiah, Huligerepura, Maddurutaluk, Mandya district, he started 'Kesari Magazine' in Kannada language from the influence of BalagangadharaTilak in this event. So, by his support D. Manchaiahwas publishing 'HarijanBandhu' weekly kannada magazine. This magazine was spreading path of Gandhi principles, Gandhism and prosperity of Harijan communities as a face voice of them.[8]

HarijanaBandhu Kannada weekly magazine was being published the chief editorship of D. Manchaiah. It had consisted 4 pages and verities of volumes and issues. It was attracted flenty of reader group as reliable magazine. Its facing price was 6 to 10 Paise. This magazine every week printed in ShriJayalakshmi Printing Press near railway station of hub center of Mandya city. C.G. Padmaraja Sharma was owner of that printing press. He knows the virtue character of D. Manchaiah in the field of social service. So, by the friendly relationship every week he printing tthat magazine to D. Manchaiah. This magazine had annual subscribers. They were paying 6 Rupees subscribe amount every year along with post charges. D. Manchaiah's was himself roaming village to villages in whole district through bus, bicycle, foot walk for the accumulate of the information regarding Dalit's social conditions. As well as he was individually reporting matters of dominant treatment of upper castes on Harijan's and upliftmentprogrammes of the government behalf of Dalit's in his magazine.[9]But he didn't appoint any press reporters for collection of daily news's in the society. Because he was loving his work.[10]

This magazine facing page had the title 'HarijanBandhu'Kannada weekly magazine. Aside and beside of this title put the two burnt lamps. It's indicating enlightened lamp of Harijan's life. As well as left side margin of this magazine small Gandhijicercleshap photo existed. Near this photo,!!AhimsaaParamo Dharma!! Head line also appeared. Samyakdarshan, Samyakjnana, Samyakcharitraaspects of life values printed.It's below part of right side mentioned valume number, in left side issues numbers and in center place date, month, year of printing mentioned without fail.[11]

In a same ways inner page of this magazine below mention prominent matters was publishing. Like, structural programmes of Gandhiji's for the upliftment of Harijan's, establishment of hostels for Dalit students comfortable education, government plans of reformation to Dalit's economic conditions, sanitation of illiteracy, disasters from the alcoholic drinking etc. matters it was publishing.[12]Subsequently, D. Manchaiah was demanding to the government for implementation of Gandhiji'sHarijanaGirijana development programmes. And also insisting government must be providing to Harijan's their lifel leading requires like sufficient food, shelter, clothes and employment.Based on this demand government also sanctioned crores of money for enrichment of Dalit's.In addition D. Manchaiah's were concentrating to publish the thoughts of socialism like 'all rights reserved to all' in their magazine.[13]

Totally HarijanaBandhu magazine approximately was active till two decades from 1962to1982. But later on lack of maintenance amount, printing expenditure cost, competitions of other magazines and newspapers and as old age approached to D. Manchaiah's, that magazine completely stagnated. Later on D. Manchaiah's passed away on 1991.[14]Though his life human welfare activities and service o HarijanaBandhu magazine today also he got permanent place in the heart of Mandyapeople.

The Personality of the Protagonist of D. Manchaiah : D. Manchaiah's dedicate himself as a well-wisher of betterment life of Harijan's .For the sake of the public he thought his mind in a 'service of mankind is aservice of god'. He had a secular mind. So, he was helping all caste poor families members by his open heart careness. Because of this B. Basavalingappa, N. Rachaiah and B. Rachaiah, M.K. Bommaiahetc the prominent ministers of Government of Karnataka influenced by virtue personality

of D. Manchaiah. So, they were maintain amicable relationship with him continuously. And also his good character and social service D. Manchaiah'sgot retired journalist's masasana. He was first journalist gets it in Mandya district. Today by inspiration from D. Manchaiah's his son Yoganada'sto make it easier for his father name he started 'Dheenabandhu'proximal newspaper in Mandya district from 2001to till now. As well as he is involving Dalit movements in Mandya district actively.[15]

Conclusion : Everyone who is involving themselves for the public service in the society, they must be away from selfishness, greediness, expectation and desire aspiration. Because if that social workers expecting this types of desire they certainly forget for all round development of oppressed communities in the society. As well as they will come forward to develop self-interests.As a result of this social movements paths will fall without any success regarding enrich development of depressed classes in the society. Hence, I would like to say, todayvery essential to emerge humanist, determination leaders and perfect destination progenitor as like a D. Manchaiah in the human society.

D. Manchaiah's Photo

His Harijanabandhu Magazine

End Notes

1. The interview of SundalliNagaraju's(Founder of Ambedkar Youth Associatons and Dalit Movement agitator, Mandya) , Saturday, 14 November, 2020.
2. The interview of Yogananda(The son of D. Manchaiah and Chief editor of Dheenabandhu Magazine, Mandya), Sunday, 14 February, 2021.
3. The interview of D.S. Veeraiah (Farmer Member of MLC, Karnataka, Kadukottanahalli), Friday, 8 January, 2021
4. D.T. Joshi, AdhunikaBharatadaItihasa, VidyanidhiPrakashana, Gadaga, 2011, Pp265.
5. Scarlet Episton, 1962, Economic Development and Social Change in South India, TheUnivesity Press, New York.
6. B.R.Ambedkar , Annihilation of Caste, 1936, Pp4.
7. The interview of Yogananda(The son of D. Manchaiah and Chief editor of Dheenabandhu Magazine, Mandya), Sunday, 14 February, 2021.
8. Ibid…..
9. Editor- D. Manchaiah, Mandya,HarijanaBandhu Kannada Weekly magazine, Volume5, Issue13, Dated:26.1.1968.
10. Editor- D. Manchaiah, Mandya,HarijanaBandhu Kannada Weekly magazine, Volume8, Issue40, Dated:26.1.1969.
11. Editor- D. Manchaiah, Mandya,HarijanaBandhu Kannada Weekly magazine, Volume5, Issue13, Dated:26.1.1968, Pp1-4.
12. Editor- D. Manchaiah, Mandya,HarijanaBandhu Kannada Weekly magazine, Volume8, Issue40, Dated:8.10.1969, Pp4
13. Editor- D. Manchaiah, Mandya,HarijanaBandhu Kannada Weekly magazine, Volume5, Issue13, Dated:26.1.1968, Pp1-4.
14. The interview of Yogananda(The son of D. Manchaiah and Chief editor of Dheenabandhu Magazine, Mandya), Sunday, 14 February, 2021.
15. Ibid…….

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 29-34

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

उत्तरवैदिक सामाजिक संरचना एवं रीति-रिवाज

डॉ. बीरेन्द्र कुमार यादव *

उत्तर वैदिक काल में सम्पूर्ण भारत में जीवन के विभिन्न पक्षों में एक निश्चित दिशा की ओर परिवर्तन हुए। इस युग में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से एक ऐसे ढाँचे का आविर्भाव हुआ जो सामान्य परिवर्तनों के साथ लम्बे काल तक चलता रहा। इस युग की प्रमुख विशेषताएं थी–कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था, कबायली संरचना में विघटन, वर्णव्यवस्था का जन्म और क्षेत्रगत साम्राज्यों का उदय। उत्तर वैदिक काल में आर्यों के सामाजिक जवीन में स्थायित्व ही नहीं देखा जाता है बल्कि पूर्वकाल की तुलना में महत्वपूर्ण परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते हैं। आर्य यद्यपि ग्रामों में निवास करते थे, किन्तु इस युग में बड़े–बड़े नगरों का विकास हुआ। इस काल तक आते–आते वर्ण का अभिप्राय भी बदल रहा था। शूद्र को सम्मिलित करते हुए चार वर्णों की परिकल्पना की गई। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के लिए वर्ण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। ऋग्वेद काल में किसी भी वर्ग का व्यक्ति अपनी इच्छा तथा क्षमता के अनुसार किसी भी वर्ण का कार्य अपना सकता था। किन्तु उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था में पूर्ववत लचीलापन नहीं देखा जाता। प्रत्येक वर्ण में परस्पर पृथकता दर्शाने की दृष्टि से नियम एवं विधान बना दिये गये थे। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि गायत्री मंत्र का प्रारम्भ ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अलग–अलग ढंग से करें। सामान्यतः शूद्रों को धार्मिक कृत्यों के अधिकार से वंचित रखा गया।

ब्राह्मण–ब्राह्मण ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य संहिताओं के विवरण से भी ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों के कर्तव्यों में विभाजक रेखायें स्पष्ट हो गई थीं। तैतरीय संहिता में विवेचन मिलता है कि ब्राह्मण ऐसे देवता है जिन्हें हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं।[1] देवता के दो प्रकार है, देवता तो देवता हैं ही और ब्राह्मण भी जो पवित्र ज्ञान अर्जन करते हैं और उसे अन्य को प्रदान करते हैं अतः मानव देवता है। ऐतरेय ब्राह्मण में आया है कि जब वरुण से कहा गया कि राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र के स्थान पर ब्राह्मण पुत्र की बलि दी जायेगी तो वरुण ने कहा कि ब्राह्मण तो क्षत्रिय से उत्तम समझा ही जाता है।[2] ब्राह्मण को दिव्य वर्ण का कहा गया और उसमें समस्त देवताओं का निवास माना गया।[3] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्राह्मणों के चार विलक्षण गुण हैं–ब्राह्मण (ब्राह्मण के रूप में पवित्र पैतृकता), प्रतिरूपचर्य (पवित्राचरण) यश (महत्ता) एवं लोकपंक्ति (लोगों को पढ़ाना या पूर्ण करना)। जन सामान्य द्वारा ब्राह्मण से ज्ञान अर्जित किये जाने पर उसे चार विशेषाधिकार मिलते थे– अर्चा (आदर), दान, अज्येयता (कोई कष्ट न देना) एवं अवध्यता।[4] कीथ ने उल्लेख किया है कि इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों को सोमपान करने, भोजन प्राप्त करने, कहीं भी भ्रमण करने अथवा कहीं भी जाने के अधिकार भी प्राप्त थे।[5] इस युग के ब्राह्मणों को दो भागों में विभक्त किया है– पहला–राजाओं के पुरोहित जिन्हें राज्याश्रय प्राप्त था, वे बड़े–बड़े अनुष्ठानों एवं धार्मिक कृत्यों में व्यस्त रहते थे। दूसरे ग्राम स्तर पर रहने वाले ब्राह्मणों की स्थिति दयनीय थी, उन्हें मात्र बड़े लोगों अथवा व्यापारिक कार्य में लगे वैश्यों के यहाँ यदा–कदा होने वाले अनुष्ठानों से ही संतुष्ट रहना पड़ता था।[6] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजा पर निर्भर होने पर भी ब्राह्मण राजा से श्रेष्ठ है।[7] वाजसनेयी संहिता में ब्राह्मणों को राजा से उत्तम कहा गया है। अथर्ववेद में विवेचन मिलता है कि समाज में ब्राह्मण को कष्ट मिलने पर जल में टूटी हुई नाव की तरह राजा नष्ट हो जाता है।[8] अतः शतपथ ब्राह्मण भी राजा की शक्ति का आधार ब्राह्मण को ही मानता है। किन्तु दूसरी ओर काठक संहिता में ब्राह्मण के ऊपर क्षत्रिय की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है और ऐतरेय ब्राह्मण में भी एक स्थान पर ब्राह्मण को क्षत्रिय से नीचा कहा गया है।

इन तथ्यों के आधर पर कुछ विद्वानों ने ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के बीच गंभीर संघर्ष की कल्पना की है जो उचित नहीं जान पड़ता। इससे केवल यह प्रदर्शित होता है कि इस समय समाज के कुछ वर्गों में जिसमें ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों ही सम्मिलित थे पुरोहितीय कर्मकाण्ड पर प्रहार हो रहा था। इसी युग में मिथिला नरेश राजर्षि जनक को याज्ञवल्क्य जैस महर्षि ब्राह्मण ने आध्यात्म ज्ञान की शिक्षा दी थी।

क्षत्रिय– इस काल में राजपद को नई शक्ति एवं अधिकार मिलने के फलस्वरूप क्षत्रिय वर्ग को नया स्वरूप प्राप्त होता है। राजा को सभी वर्गों से श्रेष्ठ माना गया। इस युग में राजा को ब्राह्मण को निष्कासित करने, वैश्य से कर वसूल करने तथा शूद्र को दण्डित करने के अधिकार प्राप्त थे।[9] ब्राह्मणों को क्षत्रियों से नीचे रखते हुए बृहदारण्यक उपनिषद् ने उनकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। राजन्य वर्ग में यह धारणा थी कि वाजपेय, राजसूय, आदि यज्ञों के माध्यम से राजा की महिमा में अभिवृद्धि होती है और इन यज्ञों का सम्पादन ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा किया जाता था। जब राजा को राज्याभिषेक के अवसर पर मुकुट पहनाया जाता था तो यह समझा जाता था कि एक सबका अधिपति एवं ब्राह्मणों एवं धर्म की रक्षा करने वाला उत्पन्न किया गया है।[10] क्षत्रिय को कोई कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व ब्राह्मण के पास जाना चाहिए, ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के सहयोग से यश मिलता है। एक ब्राह्मण बिना राजा के रह सकता है किन्तु एक राजा बिना पुरोहित के नहीं रह सकता। यहाँ तक कि देवताओं के लिए भी पुरोहित की आवश्यकता मानी गई।[11] शतपथ ब्राहण में अन्य राजा के समक्ष बलशाली होने के लिए राजा को ब्राह्मण के प्रति नम्रता पूर्ण व्यवहार करने का निर्देश मिलता है।[12] ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि यदि राजा ब्राह्मण के निर्देशन में कार्य करता है तो राष्ट्र समृद्ध बनता है।[13]

इससे परिलक्षित होता है कि तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के मध्य एक घनिष्ठ संबंध की परिकल्पना की गई एवं राष्ट्र के लिए दोनों के एकत्व पर जोर दिया। ऋग्वेद काल से ही पुरोहितोचित एवं राजोचित कर्तव्यों में एक निश्चित भेद कर दिया गया था जिससे किसी भी वर्ग की दूसरे के कर्तव्य क्षेत्र में हस्तक्षेप की संभावना नहीं रहती थी। यद्यपि एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण का कार्य कर सकता था। ऐसे विवरण मिलते हैं कि ब्राह्मण राजपद पाकर क्षत्रिय बन सकता था एवं क्षत्रिय पौरोहित्य कर्म द्वारा ब्राह्मण। विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे किन्तु उन्हें ब्राह्मण पद प्राप्त हुआ। इस युग के शासक मात्र राजा ही नहीं थे बल्कि उच्चकोटि के दार्शनिक, शिक्षक एवं विद्वानों के संरक्षक थे। विदेहराज जनक, प्रवाहण जाबालि, अश्वपति कैकेय एवं काशी नरेश अजातशत्रु ऐसे ही विद्वान शासक थे, जिन्होंने विद्या एवं शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। ब्राह्मण श्वेतकेतु के पिता उद्दालक पंचाग्नि विद्या के प्रवर्तक क्षत्रिय पांचाल नरेश प्रवाहण जाबालि के पास ज्ञान प्राप्ति हेतु गए थे। प्रवाहण जाबालि ने स्वयं उद्दालक ऋषि को आसन और अर्घ्य द्वारा सम्मानित किया एवं तदन्तर उन्हें अपना अन्तेवासी बनाकर उनकी जिज्ञासाओं का समाधान किया।[14] कहा जा सकता है कि क्षत्रिय ब्राह्मण का कार्य कर सकता था और ब्राह्मण एवं क्षत्रियों में परस्पर विवाह हो सकते थे किन्तु इस काल में वर्ण परिवर्तन की आवश्यकता नहीं थी। कीथ ने उल्लेख किया है कि दो उच्च वर्णों में कुछ सीमा तक परस्पर संबंध इस युग में भी देखे जाते हैं परन्तु सामान्य वर्ग का इनसे कोई संबंध नहीं था।[15]

वैश्य–उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मण एवं राजन्य वर्ग की तुलना में वैश्य वर्ग की सामाजिक स्थिति निरन्तर देखी जाती है। ऐतरेय ब्राह्मण में उसे 'अनस्य बलिकृत' कहा है।[16]

याज्ञिक क्रियाओं में भी वैश्यवर्ग का सहयोग अपेक्षित माना गया था।[17] कहा गया है कि जब देवता लोग पराजित हुए तो वे वैश्य की दशा को प्राप्त हो गये।[18] राजा के लिए 'विशमता' अथवा 'विश' का भक्षक पद उनकी निम्न स्थिति को इंगित करता है। मनुष्यों में वैश्य तथा पशुओं में गाये अन्य लोगों के उपभोग की वस्तुएं कहीं गई हैं। महत्वपूर्ण व्यवसायों पर इस वर्ग का आधिपत्य था अतः आर्थिक दृष्टि से यह वर्ग काफी सम्पन्न था। फलस्वरूप इसे सामान्यतः अन्य दो वर्णों के समकक्ष ही रखा जाता था। मुख्यतः यह वर्ण कृषि कार्य, पशुपालन, विविध उद्योग एवं वाणिज्य व्यापार में संलग्न था। बहुसंख्यक पशुओं का स्वामी होना विशेष गर्व की बात मानी जाती थी। वैश्य को न केवल यज्ञादि कर्म करने का अधिकार प्राप्त था बल्कि उपनयन एवं वैदिक शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार भी थे। ऐतरेय ब्राह्मण में विवेचन मिलता है कि वैश्य अन्य लोगों के लिए अन्न उत्पादित करते थे एवं कर देते थे।[19] इससे प्रतिध्वनित होता है कि वैश्य अन्य दोनों उच्च वर्णों की तुलना में संख्या में अधिक थे एवं कृषि, पशुपालन एवं व्यापार करते थे। वे ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों से दूर रहते थे और उनकी आज्ञा पालन करते थे।[20]

शूद्र– समाज में परिचायक के कार्य करने वाले शूद्रों का स्थान चौथा था। कुछ विद्वानों की धारणा है कि शूद्रों में दास तथ ऐसे व्यति हो सकते हैं जिनका जन्म आर्यों एवं दासों के मिश्रण से हुआ था। चौथे वर्ण में मिश्रण एवं परिवर्तन अश्वयमभावी था और इसकी व्याख्या वर्णसंकरत्व के मूल रूप में की जाती थी। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि चौथे वर्ण का आधार जाति एवं व्यवसाय दोनों ही थे।[21] किन्तु आर.एस. शर्मा इन्हें ऋग्वैदिक आर्यों के पश्चात आये आर्यों का एक वर्ग मानते हैं।[22] दूसरी ओर कीथ की धारणा है कि उपलबध साक्ष्यों से इसमें किसी

प्रकार का संदेह नहीं रह जाता है कि मूलतः शूद्र वर्ग में आर्येत्तर तत्व का प्राधान्य था। राव ने आर.एस. शर्मा के मत से असहमति प्रकट करते हुए शूद्रों को आर्यों से सम्बन्धित करना ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं माना है।[23] धर्म सूत्रों में शूद्रों को काले वर्ण का कहा गया है। तैतिरीय संहिता में शूद्रों को यज्ञाधिकार से वंचित किया गया है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि आर्यों के स्थायी रूप से बस जाने से जातीय मिश्रण हुआ जिससे आर्य एवं आर्येत्तर वर्गों में भेद शीघ्रता से लुप्त हो गया और उत्तर वैदिक काल में वर्गगत विभेद की भावना तथा रंग भेद की प्रवृत्ति को कोई स्थान नहीं रह गया था। ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिता आचार्य महिदास ऐतरेय के विशय में मान्यता है कि अनिर्ज्ञात आचार्य की पत्नी इतरा (शूद्र भार्या) के वह पुत्र थे आचार्य ऐतरेय की ख्याति उस युग की वर्ण व्यवस्था के लचीलेपन को इंगित करती है। इनके अतिरिक्त वेदों के संकलन एवं वर्गीकरण का श्रेण ऋषि व्यास को प्राप्त है, जिन्हें धीवर कन्या से उत्पन्न कहा गया है इसी तरह पराशर ऋषि श्वपाक नारी से, वशिष्ठ ऋषि गाणिका से कपि जांवाद चांडाल नारी से उत्पन्न कहे गये हैं। साथ ही ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि शूद्रों ने ऋषियों से ज्ञानार्जन किया। छान्दोग्य उपनिषद से ज्ञात होता है कि शूद्रों ने ऋषियों से ज्ञान प्राप्त किया। छान्दोग्य उपनिषद से ज्ञात होता है कि जानश्रुति शूद्र थे जिन्हें प्राण एवं वायु के ज्ञान महर्षि रैक्व ने दिया था।[24]

जैसा पी.वी. काणे ने लिखा है आश्चर्य एवं संतोष की बात यह है कि कम से कम एक आचार्य बादरि ने शूद्रों के अधिकार के लिए मत प्रकाशित किया कि वे वैदिक यज्ञों के योग्य है।[25]

बौधायन गृहाशेषसुत्र ने क्षत्रियों, वैश्यों, रथकारों एवं अम्बष्ठों आदि के लिए उपनयन के नियमों का उल्लेख किया है। अतः आर.एस. वर्मा ने यह विचार व्यक्त किया है कि प्रारम्भ में संभवत शूद्रों का उपनयन होता था किन्तु जी.एस.पी. मिश्र ने लिखा है कि शूद्रों को उपनयन तथा वेदाध्यन के अधिकार प्राप्त नहीं थे।

उत्तर वैदिक काल में शूद्र वर्ण में दो प्रकार के जातियों का अविर्भाव हुआ कुछ व्यवसाय सम्बंधी जातियां भी जो व्यवस्थित एवं धनी थीं दूसरी अन्त्यज जातियां थीं जिनका समाज में अति निम्न स्थान था। व्यावसायिक जातियों के विषय में कहा गया है कि–

चाण्डाल–तैत्तरीय ब्राह्मण एवं छान्दोग्य उपनिषद में चन्दाल का उल्लेख हुआ है। इसे शूद्र एवं ब्राह्मण से उत्पन्न संतान कहा है मनुस्मुति में आया है कि चाण्डालों एवं श्वपचों को ग्राम से बाहर रहना चाहिए।[26]

पौल्कस–पुल्कस का उल्लेख वाजसनेयी संहिता में आया है एवं चाण्डाल के सदृश इसे अति निम्न स्तर पर रखा है।

निशाद– तैत्तिरीय संहिता में इसका विवरण आया है ऐतरेय ब्राह्मण में निषादों को चैरवृत्ति का अनुसरण करने वाला पापकर्म रत कहा है।

उग्र–वृहदारण्यक उपनिषद इस जाति का उल्लेख करता है ये लोग शर–सत्य निर्माण करते थे।

आयोगव–वैदिक साहित्य में 'आयोगू' शब्द आया है तैतिरीय ब्राह्मण में इसे प्रतिलोम संतान कहा है। मगध का उल्लेख भी इसी ब्राह्मण में हुआ है। वैदेहक को शर–सव्य निर्माण द्वारा जीविकोपार्जन करने वाला कहा है। वृहदारण्यक उपनिषद में भी इसका उल्लेख आया है।

तुलनात्मक दृष्टि से समाज में शूद्रों का स्थान निम्न था किन्तु वास्तविक रूप से ऐसा नही था जैसा शतपथ ब्राह्मण ने लिखा है शूद्र श्रम है किन्तु संस्कारित व्यक्ति को शूद्र से संभाषण नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण ने उल्लेख किया है– शूद्र दूसरों द्वारा आनुशासित होते हैं वह आदेशानुसार खड़ा होता है उसे कभी भी पीटा जा सकता है।[27] जैसा पूर्व में उल्लेख किया गया है। अनेक विद्वान शूद्र वर्ण से सम्बंधित थे जिन्होंने भारतीय संस्कृति से सम्बन्ध अनेक ग्रन्थों की रचना की इसके अतिरिक्त शूद्र वर्ण में जैसा हमें ज्ञात है सामान्यतः दो वर्ग थे प्रथम विविध कामगार एवं व्यवसायी वर्ग, दूसरे अन्त्यज वर्ग प्रथम वर्ग को सामान्यतः समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। इस वर्ग के लोगों को अनेक धार्मिक अनुष्ठान यज्ञादि के अधिकार भी प्राप्त थे। यद्यपि इन व्यवसायी वर्गों को शूद्र संज्ञक कहा गया है किन्तु वास्तविक रूप में यह वर्ग समाज से निकटता से सम्बन्ध था समाज के व्यवसायी वर्ग रूद्र की उपासना करते थे वासनेयी संहिता में रथकार, कर्मकार, ईषुकार, धनन्वकृत कुलाल निषाद आदि को रुद्र गणों की संज्ञा प्रदान की गई है।

इस संदर्भ में कीथ का यह मत युक्ति संगत–प्रतीत होता है कि शूद्र वर्ग में अन्य वर्णों द्वारा किये जाने वाले विवाह सम्बन्ध (अन्तर्वर्णीय) को प्रोत्साहित नहीं किया जाता था। तथापि अन्य वर्ण के लोग इस वर्ण (शूद्र) से विवाह सम्बन्ध भी रखते थे। जैसा विदित है व्यास धीवर की कन्या से उत्पन्न हुई।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तर वैदिक काल में यद्यपि शूद्रों का स्थान चतुर्थ था किन्तु इसमें से एक बहुत बड़े वर्ग को समाज में सम्मान जनक स्थिति प्राप्त थी। इस वर्ग को कभी भी पीटे जाने के रूप में व्याख्यायित करना सर्वथा अनुचित ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति को निम्नस्तरीय बनाये जाने का प्रयास कहा जायेगा। यर्थाथ में कुछ प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में शूद्रों के सम्बन्ध में आपत्तिनजक वक्तव्य अतिशयोक्तिपूर्ण कथन के रूप में लिये जाने चाहिए।

परिवार–पूर्व काल की भांति इस काल में भी संयुक्त परिवार की परम्परा सामान्यता बनी रही। आर्यों के पितृ सत्तात्मक समाज में पिता को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था परिवार के अन्य सदस्यों पर उसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। उत्तर वैदिक कालीन पिता की स्थिति के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण में विवेचित शुनः शेष आयान एवं कठोपनिषद् का नचिकेतापाख्यान उल्लेखनीय है। नचिकेता आख्यान के अनुसार उसके पिता ने यमराज को दान दे दिया था। किन्तु मात्र इन आख्यानों के आधार पर ऐसा नहीं कहा जा सकता कि पिता के अधिकार असीमित थे। हम देखते हैं कि पिता के अधिकारों पर नियंत्रण की प्रक्रिया भी इस काल में शुरू हो गई थी। जैमिनीय ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि पिता की वृद्धावस्था में सम्पत्ति के बँटवारे की माँग की गई।[28] ऐतरेय ब्राह्मण से जानकारी मिलती है कि मनु के पुत्रों ने अपने पिता की जीवितावस्था में ही सम्पत्ति का विभाजन कर लिया था।[29] इससे प्रतिलक्षित होता है कि संयुक्त परिवार के स्वरूप में बदलाव आने लगा था।

ऋग्वेद काल में विवाह का उद्देश्य गृहस्थ होकर संतानोत्पत्ति करना तथा समाज एवं देव जगत के लिए यज्ञ करना था।[30] यज्ञ से तात्पर्य ''समर्पण'' या एक दूसरे के लिए त्याग की भावना से लिया जाता था। परवर्ती काल में भी विवाह के पीछे यही धारणा कार्य करती रही। शतपथ ब्राह्मण में पत्नी को पति की अर्धांगिनी कहा गया एवं सन्तानोत्पत्ति के अभाव में इन्हें अपूर्ण समझा जाता था।[31] आर्य जनों का प्रारम्भ से ही पुत्र की कामना विवाह का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। उत्तरवैदिक काल में तीन ऋणों की अवधारणा अस्तित्व में आ चुकी थी जिसमें पितृ ऋण की सम्पूर्ति हेतु विवाह द्वारा पुत्रोत्पत्ति एक अनिवार्य धार्मिक, सामाजिक कर्तव्य माना गया। यज्ञ के सम्पादन के लिए पत्नी का होना आवश्यक था यद्यपि इस काल में एक पत्नीकता का ही नियम एवं आदर्श था किन्तु बहुपत्नीकता के भी दृष्टान्त मिलते हैं। ऋषि याज्ञवल्क्य की मैत्रेयी एवं कात्यायनी दो विदुषी पत्नियाँ थीं। तैतिरीय संहिता में त्यागी हुई महिषी रानी की चर्चा मिलती है।[32] शतपथ ब्राह्मण में आया है कि एक व्यक्ति की सेवा में चार पत्नियां लगी हुई थीं। तैतिरीय ब्राह्मण बहुपत्नित्व को सौगन्ध का सूचक मानता है। दूसरी ओर बहुपतिकता का विरोध देखा जाता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार धर्म एवं सन्तति से युक्त एक ही पत्नि यथेष्ठ है। किन्तु धर्म एवं संतान के अभाव में इसकी पूर्ति के लिए एक पत्नी और भी की जा सकती है।[33] सामान्यतः सजातीय विवाहों का प्रचलन था किन्तु जैसा पूर्व में भी उल्लेख किया गया है कि उच्च वर्ग के लोगों द्वारा निम्न वर्ग के कन्याओं से विवाह किये जाते थे। छान्दोग्य उपनिषद से विदित होता है कि जनश्रुति नामक शूद्रराजा ने अपनी पुत्री का विवाह एक ब्राह्मण से किया।[34] किन्तु इस प्रकार के विवाहों को सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं थी एवं न ही उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

पूर्व काल के समान इस युग की स्त्रियों को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था किन्तु हम परवर्ती कालीन हीन स्थिति का आरम्भ इस काल में होता हुआ देखते हैं। उसके लिए निन्दनीय शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा, शपतथ ब्राह्मण में उसे असत्यभाषी और 'अनृत' कहा गया।[35] यज्ञ एवं अनुष्ठान के अवसर पर सोम पान से वंचित किये जाने का उल्लेख भी आया है यह तथ्य समाज में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट का प्रतीक माना जा सकता है। अथर्ववेद में पुत्री के जन्म पर खिन्नता का उल्लेख हुआ है। पितृसत्तात्मक समाज में पुत्र का विशेष महत्व देना स्वभाविक तथ्य था। तथापि इस युग में भी स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। कन्याओं को शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही विवाह के योग्य माना जाता था।[36] आजीवन आध्यत्म चिन्तन प्रवृत्त स्त्रियों का भी उल्लेख मिलती हैं। जिन्हे ब्रह्मवादिनी की संज्ञा दी जाती थी जो विवाह से पूर्व वेद मंत्रों एवं याज्ञिक प्रार्थनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेती थी तथा ब्रह्मवादिनी आजीवन वैदिक शिक्षा में व्यतीत करती थी। ऋषि कुशध्वज की पुत्री वेदवती ऐसी ही ब्रह्मवादिनी स्त्री थी। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी में विवाह के उपरान्त आध्यात्मिक जिज्ञासा होना तत्कालीन उच्च स्तरीय स्त्री शिक्षा का अनुपम उदाहरण माना जा सकता है।[37] मैत्रेयी ने कात्यायनी के पक्ष में अपनी सम्पत्ति का अधिकार त्याग कर एक मात्र ज्ञान दान की याचना की थी। जनक के राज्य सभा में होने वाली शास्त्रार्थ में गार्गी ने अपनी अद्भुत तर्क शक्ति से याज्ञवल्क्य जैसे विद्वान महर्षि को भी प्रभावित किया था।[38] सामवेद के मंत्रों के ज्ञान में स्त्रियां विशेष रूचि रखती थी जो उनकी ज्ञान विद्या में अभिरुचि के साथ वैदिक मंत्रों

के विधिवत एवं विशुद्ध उच्चारण को भी इंगित करती है। स्त्रियों विवाह के बाद पुरुष की सहचारणी बनती थी। विवाह प्रक्रिया द्वरा अनेक धार्मिक अधिकार एवं सामाजिक स्वतंत्रता मिलती थी। स्त्रियाँ सभा में भाग लेती थी एवं यज्ञादि कार्यों में समान रूप से सहभागी होती थी। किन्तु पति–पत्नी के व्यवहार में पति के श्रेष्ठता को स्वीकार किया जाता था। पति के भोजन के पश्चात पत्नी को भोजन करने के निर्देश तत्कालीन साहित्य में मिलते हैं।[39] इतना ही नहीं पत्नी के शरीर पर पति के अधिकार की चर्चा भी मिलती है।

उत्तर वैदिक काल में विधवा विवाह का प्रचलन था। विधवा के पुनर्विवाह के उल्लेख मिलते हैं। विधवा के पुनर्विवाह के (समय) विषय में अर्थववेद में आया है, यदि कोई स्त्री पहले दस अब्राह्मण पति करें, किन्तु अन्त में यदि वह ब्राह्मण से विवाह करें, तो वह उसका वास्तविक पति है।[40] तैतिरीय संहिता में विधवा के पुत्र का उल्लेख है।[41] वैदिक साहित्य में सती होने के विषय में कोई निर्देश नहीं मिलता है। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि सती प्रथा के सम्बन्ध में लोगों को जानकारी थी तथापि इसे निम्न समझा जाता था।

वैदिक साहित्य का आपार भण्डार इस तथ्य का घोतक है कि प्राचीन काल में शिक्षा की सुनियोजित व्यवस्था थी। उत्तर वैदिक काल को बौद्धिक विकास का युग कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि इसी काल में विशाल वैदिक साहित्य का सृजन हुआ, जिसका आधार था उपनयन संस्कार के द्वारा विधार्थी जीवन के साथ ही सुनियोजित शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ।

उपनयन का अभिप्राय है पास या सन्निकट ले जाना। संभवतः प्रारम्भ में आचार्य के पास शिक्षण के लिए ले जाने से इसका तात्पर्य रहा होगा। वैदिक शिक्षा पद्वति का प्रधान आधार था शिक्षक, जिसे आचार्य या गुरु आदि कहा जाता था। प्राचीन काल में शिक्षा का अभिप्राय केवल पुस्तकीय ज्ञान न हो कर अन्तर्दृष्टि का विकास भी कहा गया है एवं ऐसी अन्तर्दृष्टि का विकास जिससे मोक्ष प्राप्त हो सके 'सा विधाया विमुक्तये'। प्रारम्भ में संभवत पिता से ही पुत्र को शिक्षा मिलती थी जैसे कि हमें वृहदारण्यक उपनिषद के श्वेत केतु आरुणेय आख्यान से ज्ञात होता है। गुरुकुल प्रणाली प्राचीन भारतीय शिक्षा की प्रमुख विशेषता थी जिसके अन्तर्गत विद्यार्थी को 'अन्तेवासी' अर्थात आचार्य के सानिध्य में रहना होता था। इस दौरान विद्यार्थी का प्रमुख कार्य गुरु के पास रह कर गुरु की सेवा तथा अध्ययन करना था। आश्रम में प्रत्येक शिष्य का स्तर समान होता था, सबको समान रूप से जलाने की लकड़ियाँ एकत्र करना, गौचारण तथा भिक्षाटन करना होता था इस प्रक्रिया से विद्यार्थियों में छोटे–बड़े की भावना का विकास नहीं हो पाता था।

वैदिक काल में अध्ययन का साहित्य बहुत विशाल था। शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय के अन्तर्गत ऋचाओं, यजुष, साम एवं अथर्ववेद, इतिहास, पुराण गाथाओं का उल्लेख किया है।[42] गोपथ ब्राह्मण सभी वेद, कल्प, रहस्य, ब्राह्मण उपनिषद, इतिहास अन्वाख्यान, पुराण, अनुशासन आदि अध्ययन योग्य साहित्य का उल्लेख मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद में विवरण मिलता है कि नारद सनत्कुमार से कहते हैं कि नारद चारो वेद, इतिहास पुराण व्याकरण, राशि, दैव (लक्षण विधा) निधि, एकायन (राजनीति), देव विधा, ब्रह्म विधा (छन्द एवं ध्वनि विधा) क्षत्र विधा (धनुर्वेद), नक्षत विधा, सर्पविधा एवं देवजन विधा (गान एवं नित्य) सीख ली थी इससे प्रतीत होता है कि उस युग में इन विषयों की शिक्षा दी जाती थी।

आश्रमों में विशेष रूप से ब्रह्म विधा सीखने का अवसर मिलता था जिससे शिष्य का आत्मिक विकास एवं नैतिक उत्थान होता था यही भारतीय शिक्षा पद्वति की रीढ़ थी। इसी परिप्रेक्ष्य में विशाल वैदिक, साहित्य का सृजन संभव हुआ। कन्याओं को नृत्य–संगति एवं ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। तैतिरीय संहिता से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ नृत्य–संगीत में विशेष अभिरुचि लेती थी।[43] वेदाध्ययन के लिए पहले कोई शुल्क निर्धारित नहीं था प्राचीन शिक्षण पद्धति की यह एक विचित्र विशेषता थी। वृहदारण्यक उपनिषद में विवरण आया है जिसमें याज्ञवल्क्य ने कहा कि मेरे पिता का मत था कि बिना पूर्ण पढ़ाये शिष्य से कोई पुरस्कार नहीं लेना चाहिए।[44]

संदर्भ–सूची

1. ऐत वै देवाः प्रत्यक्ष यद् ब्राह्मण, तैत्तिरीय संहिता 1/7/3/1
2. ऐतरेय ब्राह्मण–3/34
3. तैत्तिरीय आरण्यक, 2/15
4. शतपथ ब्राह्मण, 11/5/7/1

5. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, जि.–1 पृ. 114
6. कीथ, हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ. 114
7. शतपथ ब्राह्मण, 1/2/3/3
8. अथर्ववेद 5/19/8/15
9. ऐतरेय ब्राह्मण, 7/29
10. ऐतरेय ब्राह्मण, 39/3
11. तैत्तिरीय संहिता, 2/5/1/31
12. शतपथ, ब्राह्मण, 5/4/4/15
13. ऐतरेय ब्राह्मण, 8/9
14. बृहदारयण्क उपनिषद्, 6/2/4
15. The Cambridge History of India vol.-IP 114
16. ऐतरेय ब्राह्मण, 7/29
17. ऐतरेय ब्राह्मण, 2/19
18. तैत्तिरीय संहिता, 2/3/7/1
19. ऐतरेय ब्राह्मण, 35/3
20. पी.वी. काणे धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. 114
21. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, (100 ई0पू0 से 1526 ई0), 1975, पृ. 29–30
22. आर.एस. शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृ. 33
23. विजय बहादुर राव, उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति, पृ. 108–111
24. धर्मशास्त्र का इतिहास, 1980 सं. पृ. 113
25. आर.एस. शर्मा, शूद्राज इन इण्डिया, पृ. 68–70
26. वासांसि मृत चेलानि भिन्न भाण्डेषु भोजनम्, मनुस्मृति 10/52
27. ऐतरेय ब्राह्मण, 35/3
28. जैमिनीय ब्राह्मण, 3/156
29. ऐतरेय ब्राह्मण, 5/14
30. ऋग्वेद, 5/28/3
31. शतपथ ब्राह्मण, 8/7/2/3
32. तैत्तिरीय संहिता, 1/8/9
33. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/5/11/12–13
34. छान्दोग्य उपनिषद्, 4/2/2
35. शतपथ ब्राह्मण, 14/1/1/31
36. अथर्ववेद, 11/5/18
37. बृहदारण्यक उपनिषद, 4/5
38. बृहदारण्यक उपनिषद, 3/6/1
39. शतपथ ब्राह्मण, 1/1/4/16
40. अथर्ववेद, 5/17/8–9
41. तैत्तिरीय संहिता, 3/2/4/4
42. शतपथ ब्राह्मण, 11/5/7/4–8
43. तैत्तिरीय संहिता, 6/1/6/5
44 वृहदारण्यक उपनिषद, 4/1/2

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 35-38

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

नारायण सुर्वे के माझे विद्यपीठ का हिन्दी अनुवाद : अर्थगत सममूल्यता का तुलनात्मक अध्ययन

*डॉ. प्रवीण मन्मथ केंद्रे**

श्री नारायण सुर्वे मराठी साहित्य के प्रमुख कवियों में से एक है। अब तक सुर्वे जी के चार काव्य संग्रहों का प्रकाशन हुआ है–'ऐसा गा मी ब्रह्म' (1962), 'माझे विद्यापीठ' (1966), 'जाहीरनामा' (1975), 'सनद' (1982)।

आधुनिक मराठी कविता आत्मनिष्ठ, लौकिक जीवन, उच्च तथा मध्यम वर्ग की परिधि में बंधी हुई थी। सुर्वे जी ने 'ऐसा गा मी ब्रह्म', 'माझे विद्यापीठ' की रचना कर मराठी साहित्य को अपरिचित भाव संसार से परिचित किया। सुर्वे जी की कविताओं में अभिव्यक्त भाव–संसार मजदूरों, उपेक्षितों तथा अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने वालों का है। जीवन व्यतीत करने हेतु जिन्हें रोज ही संघर्ष करना पड़ता है, ऐसे लोगों के मानस संसार की अभिव्यक्ति सुर्वे जी की कविता (माझे विद्यापीठ) का उद्देश्य है।

नारायण सुर्वे का काव्य–संग्रह 'माझे विद्यापीठ' समाज, परिवार, देशभक्ति, मानवी गुण आदि विषयों की कविताओं का संग्रह है। प्रस्तुत संग्रह में कवि ने मजदूरों का उपेक्षित जीवन, वेश्याओं का जीवन, पति–पत्नी के संबंध, स्वतंत्रता हेतु क्रांतिकारियों का संघर्ष आदि की अभिव्यक्ति की है। माझे विद्यापीठ में अलंकार, प्रतीक, बिंब, शब्द योजना, शब्द शक्ति आदि काव्य उपकरणों का प्रयोग मिलता है।

भारत बहुभाषी राष्ट्र है। भारत के एक प्रांत की भाषा का दूसरे प्रांत की भाषा में अनुवाद की धारा प्राचीन काल से लेकर अब तक निरंतर बहती चली आ रही है। मराठी साहित्य के कविता, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, जीवनी आदि विधाओं का हिंदी अनुवाद संबंधी समृद्ध इतिहास है। प्राचीन मराठी साहित्य से लेकर आधुनिक तथा समकालीन साहित्य तक मराठी से हिंदी में अनूदित काव्य–कृतियों की सम्मानजनक संख्या उपलब्ध होती है।

एक ही कृति के दो अनुवादों के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता संबंधी कहा जाए तो एक ही कृति के दो अनुवादों के तुलनात्मक अध्ययन से अनुवादक की योग्यता, सृजनशीलता, काव्य प्रतिभा, कविता की समझ तथा सही काव्यानुवाद की पद्धति, काव्यानुवाद के दोष आदि महत्वपूर्ण पक्ष प्रकाशमान हो सकते हैं।

नारायण सुर्वे के 'माझे विद्यापीठ' तथा मराठी के हिंदी में अनूदित काव्य–कृतियों के सामान्य परिचय के उपरांत 'माझे विद्यापीठ' के अनुवादकों तुलनात्मक अध्ययन हेतु अनुवाद प्रक्रिया की प्रकृति के मूल तत्वों (सममूल्यता, द्वंद्वात्मकता, परिवृत्ति) को आधार बनाना उचित होगा।

सममूल्यता : अनुवाद के संदर्भ में स्रोत और लक्ष्य भाषा पाठ में आई हुई विभिन्न स्तरीय समानता को सममूल्यता कहा जाता है। डॉ. सुरेश कुमार ने सममूल्यता को स्पष्ट करते हुए कहा है–''अनुवाद कार्य में हम मूलभाषा पाठ के लक्ष्य भाषागत पर्यायों के जिस समानता की बात करते हैं, वह मूल्य (वैल्यू) की दृष्टि से होती है। यह मूल्य का तत्व भाषा के शब्दार्थ तथा व्याकरण के तथ्यों तक सीमित नहीं होता अपितु प्रायः उससे कुछ अधिक तथा भाषा प्रयोग के संदर्भ से (आंतरिक और बाहय दोनों) से उद्भूत होता है।''[1]

'माझे विद्यापीठ' का तुलनात्मक अध्ययन अर्थगत तथा अभिव्यक्तिगत सममूल्यता के आधार पर करना अपेक्षित है।

अर्थगत सममूल्यता : अर्थगत सममूल्यता तब देखी जाती है जब कोई अनुवादक स्रोत भाषा में निहित अर्थ यथास्वरूप लक्ष्य भाषा में उतारता है। 'माझे विद्यापीठ' के अनुवादों का अर्थगत सममूल्यता संबंधी तुलनात्मक अध्ययन मूल अर्थ, मूल से अधिक अर्थ, मूल में निहित लाक्षणिक अर्थ, मूल से अधिक अर्थ, मूल में निहित लाक्षणिक अर्थ, मूल अर्थ से दूर जा पड़ने वाला अर्थ शीर्षकों के आधार पर किया जा रहा है।

* *हिन्दी विभाग, संगमनेर नगरपालिका कला, दा.ज. मालपाणी वाणिज्य तथा ब.ना. सारडा विज्ञाण महाविद्यालय, संगमनेर, अहमदनगर, महाराष्ट्र*

1. मूल अर्थ का निर्वाह : अनुवाद में मूल अर्थ की अभिव्यक्ति अवश्यंभावी है। 'माझे विद्यापीठ' के अनुवादों के तुलनात्मक अध्ययन में कौन–सा अनुवादक मूल अर्थ का निर्वाह करने में अधिक सक्षम रहा है, देखना रोचक होगा।

मूल मराठी : अशा देण्यात आलेल्या उठवळ आयुष्याची उठबस करता करताकृ
टोपलीखाली माझ्यासह जग झाकीत दररोज अंधार येत जात होता[2]

हिंदी अनुवाद–

मनोज सोनकर :

बोझिल और ऊबाऊ जीवन जो मुझ पर थोपा गया था
मैं किसी तरह उसे ढो रहा था
अंधेरा हर रोज
मेरे साथ औरों को भी
अपने झाँपे के नीचे ढंक रहा था।[3]

पांडुरंग कापडणीस :ऐसी उस बख्शी गई निकम्मी जिंदगी की आवभगत करते करते टोकरी तले मुझ समेत दुनिया ढँकता हुआ अंधेरा हररोज अवाजाही करता रहा।[4]

प्रस्तुत अनुवाद की मूल पंक्ति में 'उठवळ आयुष्याची' तथा 'टोपलीखाली माझ्यासह जग झाकीत' के लिए अनुवादक मनोज सोनकर 'बोझिल और ऊबाऊ जीवन' तथा 'मेरे साथ औरों को भी अपने झाँपे' का प्रयोग कर सटीक अर्थ निर्वाह का प्रयास किया है। अनुवादक कापडणीस जी ने प्रस्तुत स्थलों के लिए 'बख्शी गई निकम्मी' तथा 'टोकरी तले मुझ समेत' के रूप में अनुवाद किया है। कापडणीस जी भी अधिकांश जगहों पर मूल अर्थ की अभिव्यक्ति में सफल रहे हैं किंतु उनका अनुवाद अधिकांश जगहों पर शब्दानुवाद प्रतीत होता है। अंततः कह सकते हैं कि दोनों अनुवादक मूल अर्थ की अभिव्यक्ति में अधिकांश जगहों पर सफल रहे हैं।

2. मूल से अधिक अर्थ की अभिव्यक्ति : अनुवादक मूल कृति के अध्ययन, मनन, चिंतन तथा अपनी सृजनशीलता, काव्य प्रतिभा के बल से विशिष्ट शब्दों, विशेषणों का प्रयोग कर कभी–कभी मूल से अधिक अर्थ देता है। 'माझे विद्यापीठ' के हिंदी अनुवादों में निहित मूल से अधिक अर्थ का अध्ययन निम्न उदाहरण द्वारा करना उचित होगा–

मूल मराठी :

हे सगळे पाहून आजही वाटते,''हे नारायणा आपण कसे हेलकावतच राहिलो
चुकचुकतो कधी जीव; वाटते, हया युगाच्या हातून नाहकच मारले गेलो.[5]

हिंदी अनुवाद–

मनोज सोनकर :

यह सब देखकर
अब भी मुझे लगता है–
मैं त्रिशंकु की तरह
बीच में लटका हुआ हूँ।
कभी–कभी पश्चाताप से भर जाता हूँ
लगता है–
नाहक ही यांत्रिक युग के हाथों
मार दिया गया हूँ।[6]

पांडूरंग कापडणीस :

इतना सबकुछ देखकर अब भी लगता है,'' हे नारायण! हम फिर भी कैसे झूलते रहे।
कसकने लकता है दिल कभी, लगता है, बेकार में मारे गए इस युग के हाथों।[7]

प्रस्तुत उदाहरण की मूल पंक्ति 'हया युगाच्या हातून' में जो अर्थ व्यक्त होता है, उससे अधिक अर्थ मनोज सोनकर द्वारा प्रयुक्त 'यांत्रिक युग' विशेषण द्वारा हो रहा है।

कापडणीस द्वारा किए गए अनुवाद से मूल से अधिक अर्थ की अभिव्यक्ति नहीं है। साथ ही अनुवादक कहीं–कहीं मूल अर्थ की अभिव्यक्ति में अक्षम प्रतीत होता है। उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत उदाहरण की मूल पंक्ति 'चुकचुकतो कधी जीव' का सटीक अर्थ 'कसकने लगता है' में नहीं आ पाया है।

3. मूल में निहित लाक्षणिक अर्थ की अभिव्यक्ति : कुछ कवि भावों को सरल शब्दों में व्यक्त करने की अपेक्षा लाक्षणिक तथा व्यंग्यात्मक शैली में अभिव्यक्त करने के अधिक इच्छुक होते हैं। सुर्वे जी ने संग्रह 'माझे विद्यापीठ' में कहीं–कहीं लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग किया है। यहा मनोज सोनकर तथा पांडुरंग कापडणीस द्वारा किए गए अनुवाद में कौन अधिक सटीक लाक्षणिक अभिव्यक्ति करने में सफल रहा है, के संबंध में अध्ययन रोचक होगा–

मूल मराठी–

अशा तांबलेल्या, भाकरीसाठी करपलेल्या, उदास बांदेवाडीच्या वस्तीत
टांगे येत होते, घोडे लोळण घेत होते, उभा होतो नालीचा खोका सांभाळीत[8]

हिंदी अनुवाद–

मनाज सोनकर–

ऐसी जंग लगी जिंदगी जीने वाले
राटी से जले हुए
उदास लोगो की 'बांदेवाडी' बस्ती में
तांगे आते थे, घोड़े लिटाये जाते थे
और मैं
नाल की पेटी संभाले खड़ा रहता था।[9]

पांडुरंग कापडणीस–

ऐसी उस ललौही जली राटी के वास्ते, उदास बांदेवाडी की बस्ती में
ताँगे आते रहे, गिराए जाते रहे घोड़े, खड़ा था मैं नालोंवाला डिब्बा थामे।[10]

प्रस्तुत उदाहरण की मूल पंक्ति 'अशा तांबलेल्या, भाकरीसाठी करपलेल्या, उदास बांदेवाडीच्या वस्तीत' में लक्ष्यार्थ निहित है। अनुवादक मनोज सोनकर मूल के यथा–योग्य लक्ष्यार्थ 'ऐसी जंग लगी जिंदगी जीने वाले, राटी से जले हुए' का प्रयोग करने में सफल रहे हैं। प्रस्तुत लक्ष्यार्थ का निर्वाह पांडुरंग कापडणीस ने इस प्रकार किया है–'ऐसी उस ललौही जली राटी के वास्ते, उदास बांदेवाडी की बस्ती में।' कापडणीस जी द्वारा किए गए अनुवाद में सटीक लक्ष्यार्थ की अभिव्यक्ति का अभाव प्रतीत होता है।

4. मूल अर्थ से दूर जा पड़नेवाला अर्थ : 'माझे विद्यापीठ' के अनुवादों का तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कहीं–कहीं अनुवादक मूल अर्थ से दूर जा पड़े हैं। उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

मूल मराठी–

कळो आले तेराव्यात पिंडा शिवला न काक...[11]

हिंदी अनुवाद–

मनोज सोनकर

तेरहवीं के दिन, कौवों ने छुआ पिण्ड
यह भी मौने जाना। यह भी मैंने जानाकृ.[12]

पांडुरंग कापडणीस :

समझ पाया तेरही में छू न सका पिण्ड काक[13]

मूल मराठी पंक्ति से तेरहवीं के दिन काक ने पिण्ड को नहीं छुआ का अर्थ मिलता है। मनोज सोनकर के अनुवाद 'तेरहवीं के दिन, कौवों ने छुआ पिण्ड' में मूल का अर्थ नहीं आया है। अतः अर्थ मूल से दूर जा पड़ा है। पांडुरंग कापडणीस के अनुवाद में मूल अर्थ सुरक्षित है।

मनोज सोनकर तथा पांडुरंग कापडणीस द्वारा कृत अनुवादों के अर्थपक्षीय सममूल्यता के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दोनों अनुवादक मूल अर्थ की अभिव्यक्ति में अधिकांश स्थलों पर सफल रहे हैं। मूल में निहित लक्ष्यार्थ की अभिव्यक्ति में कापडणीस की तुलना में सोनकर जी अधिक सफल रहे हैं। सोनकर जी के अनुवाद में मूल से अधिक अर्थ देनेवाले उदाहरण अधिक हैं किंतु कापडणीस जी के अनुवाद में यह प्रवृत्ति नहीं है।

संदर्भ–सूची

1. डॉ. सुरेश कुमार, अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा, पृ. 48
2. नारायण सुर्वे, माझे विद्यापीठ, पृ. 13
3. अनुवादक–मनोज सोनकर, माझे विद्यापीठ, पृ. 9
4. अनुवादक–पांडुरंग कापडणीस, नारायण सुर्वे की कविता, पृ. 4
5. नारायण सुर्वे, माझे विद्यापीठ, पृ. 5
6. अनुवादक–मनोज सोनकर, माझे विद्यापीठ, पृ. 12
7. अनुवादक–पांडुरंग कापडणीस, नारायण सुर्वे की कविता, पृ. 16
8. नारायण सुर्वे, माझे विद्यापीठ, पृ. 8
9. अनुवादक–मनोज सोनकर, माझे विद्यापीठ, पृ. 10
10. अनुवादक–पांडुरंग कापडणीस, नारायण सुर्वे की कविता, पृ. 15
11. नारायण सुर्वे, माझे विद्यापीठ, पृ. 52
12. अनुवादक–मनोज सोनकर, माझे विद्यापीठ, पृ. 68
13. अनुवादक–पांडुरंग कापडणीस, नारायण सुर्वे की कविता, पृ. 54

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

English Litt.: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 39-44

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Representation of Caste System, Myth & Fantasy in Shiva Trilogy

*Ashutosh Srivastava** *Dr. Hira Bose***

Abstract : Amish Tripathi has firm belief that Myths are some jumbled memories of true past which because of one or other reason has been buried under the heaps of earth and lack of knowledge. He believes that the Hindus Gods are not mythical but they are just like human being.

The Immortals of Melhua, written by Amish is an enthralling mythological tale composed in modern style. His beautiful depiction of nature attracts us. Evaluating this brilliantly composed piece of literature is like dipping into icy and admired waters of Manasarovar. In Fact reading the novel, we can feel the melodious sound of Shiva's Damru (Gadgad) and the sagacity of stimulating Chillum.

The Shiva Triology is based on Hindu mythological characters in the imagination of Tripathi; though he does not own the characters from Hinduism as it is. In Meluha cast was on the basis of characteristics and interest of every individual. Even in ancient time people's occupation was based upon Karma, not birth. The writer of Hindu's religious book; ' The Ramayan', Valmiki was of a low caste by birth but he is known as a great saint and known as Maharshi.

Correspondingly, the originator of the great Hindu epic 'Mahabharta', Ved Vyas' mother was a fisherwoman. The caste system which exists today, which is based on birth is totally against our traditional culture. Melhuan women have a great position in the society and they have all the rights. In Melhua, the Prime Minister is a woman.

The Chief doctor of Melhua, Ayurvati too is woman and she holds all the responsibility to treat Shiva, his people and all the Melhuan very well. Sati, who is bold, fearless and beautifully represents an ideal character. Even Some women who are capable enough to bear the quality of a Kshatriyas, are made Kshatriyas through the system of Maika.

Keywords : *Varna, Caste, Vikarma Maika, Shudra, Melhua*

Introduction : Amish an MBA from IIM, a 14 year experience holder in financial industry is popularly known for his novels. He got name and fame through the **'Shiva Trilogy'** which is a series of three novels:

The Immortals of Meluha, The Secret of the Nagas and The Oath of the Vayuputras.

After completing Graduation he went to do his MBA from IIM Kolkata. As per the author Amish himself, he never deliberately desired to trail his career in writing [1]. Studying finance and science also fascinated him to turn into an industrialist or a scientist.

His father was an engineer who worked in the renowned construction company, L&T and had a passion for music also. Amish Tripathi was born on 18 October 1974 in Mumbai and grew up near Rourkela, Odisha. Amish's ancestors belong to Benares. His grand -father was a Pandit and a teacher at Benares Hindu University, Benares. His family is a religious family. Benares is a secret city and has a long religious background, people here worship Lord Shiva. The Temple Kashi Vishwanath is

* *Research Scholar, Deptt. of English Sam Higginbottom University of Agriculture Technology and Sciences Prayagraj*

* * *Assistant Prof., Deptt. of English Sam Higginbottom University of Agriculture Technology and Sciences Prayagraj*

famous worldwide. The family environment of spirituality encouraged him the religious and worldly learning. It is said that Amish studied most of his Hindu divinity and knowledge of religion from his grand-father and his very pious parents [2]. His family environment gave him the substance for writing his books and his study and work experience facilitated him in marketing his book. Amish is a passionate devotee of Shiva.

Shiva Trilogy : "Immortals of Meluha" is a gripping mythological tale written in modern style. Reading, this strikingly written creation is similar to plummeting into the venerable and icy waters of Mansarovar.

The **"Immortals of Meluha"** is the opening novel of the Shiva Trilogy series by Amish Tripathi. This novel introduce Shiva as a head of Guna tribe. The story is placed in the terra firma of Meluha and begins with the coming of the Shiva. The residents of Meluha think that Shiva (the fabled Neelkanth) is their savior. Shiva comes to a decision to assist Meluhans in their crusade against the Chandravanshis, who had joined hand with the winzed Nagas. During his journey to Melhua and different places of Melhua, Shiva came to know how much and why to the Melhuans he was influential.

"The Secret of the Nagas" is the next novel from the series of Shiva Trilogy. The plot is developed in the fantasy land of Melhua and discusses how the residents of that terrain are put aside from wars by a migrant named mythical Neelkanth, Shiva. The Secret of the Nagas visualizes us into that epoch and spreads an adorable picture in our mind. The depiction about various temples and areas can become different at times. In the course of the Secret of the Nagas, Shiva learns that appearance can be misleading. It starts from where its forerunner, The Immortals of Melhua, ended. In the previous work Shiva was making efforts to rescue Sati from the attacks of Naga. Afterward Shiva guides his troop and travels remote east to the popular land of Branga, and there he desires to get a clue to arrive at the Naga people. Shiva comes to know that Sati's 1st child was not born dead but it is still alive. He also gets the information that Sati's twin sister is alive. His voyage finally guides him to the Panchvati, the capital of Naga, where he became quite surprised to know a secret.

Oath of the Vayuputras is, the next and last book in the series of Shiva Trilogy. It finishes the mythical tale about a fantasy land Melhua and how its residents were rescued by a nomad named Shiva. It starts from the same place where the previous installment, The Secret of Naga ended. Shiva finds out that Somras, which is assumed as a nector is the true sin in real sense in The Oath of the Vayuputras. Shiva then announces a secret war to the people who continued to use it. The story comes to an end with Shiva and his followers being admired as Gods because of their acts and deeds.

Amish Tripathi, has amalgamated Mythology with fantasy in Caste system in Shiva Trilogy.

Caste System and Position of Women in the Society in Shiva Trilogy : In the Novel The Immortals of Melhua there are several references where cast system has been described in brief. Melhuan society was divided into Four Varna; Kshatriya, Brahmin, Shudra and Vaishya. In Melhua the cast was not based on birth but it was based on Karma. At the starting of civilization the Varna, which means color, showed the dissection of society, establishiing by the arrival of Arya in waves and blending up of their civilization and culture with inhabitant culture of the land developed a social structure established on the theory of Varna (Colour), Dharma (Duty) and Karma (Deed). Caste had its cultural roots as signified by Jati, traditional and emblematic significance in its Varna facets. The four Varnas continued the same. These Varnas were never less or more than four, for over 2000 years. But by the time, within each Varna numerous castes and sub castes emerged.

'Most scholars think that there was no Aryan attack from the North, in fact, some even have belief that the Aryans if they did exist, actually originated in South Africa and spread from there in Europe.

Many castes are acknowledged to be from tribal origin, as proved from different features that apparent themselves in groups. The system of caste in Northern India can have expanded as a group structure from within tribes. 'Something very like castes was in India'. Even before Aryan speakers entered India[3]

According to Justice Markendey Katju, judge Supreme Court of India, 'Some persons deny that the Aryans came from outside India and asserts that India was the original home (Aryavarta) from where a section of them migrated to Europe. It is difficult to accepts this view because from uncomfortable area to comfortable area. Why should anyone migrate from a comfortable country like India which has leveled an idea for agriculture to a place like Afghanistan or Russia which is cold, mountainous and therefore uncomfortable? Indian history bears and therefore uncomfortable. Indian history bears out the view that almost all invasions, Immigrations were from outside India into India'.[4]

Blend of History and Mythology with Fantasy in Varna and Caste System : In Meluhan civilization the system of Caste was not based on the birth; no one was born in a caste. In ancient time too Varna was on the basis of Karma, not birth. Valmiki, the writer of the original Ramayana belonged; took birth in a low caste but he did the work of a Brahmin; is known as a great sage. Similarly, Ved Vyas, the writer of the epic; the Mahabharat, was from a fisher woman family. Today's caste system is on the basis of birth of an individual and this is against our traditional culture.

Meluhan women enjoys a great freedom and equal rights. A woman is the prime minister of Meluha. The main doctor who provides medical treatment to Shiva and his people when they arrive in Shrinagar from Tibet, Ayurvati is a woman. Sati presents a picture of an ideal Meluhan woman, who is brave, fearless and gorgeous.

There are certain references of Varna and Caste system in the Shiva trilogy. Amish Tripathi, using fantasy, presented the origin of Varna and caste system with history and mythology.

The period which Amish has portrayed, was free from Varna and Caste system. The following are few examples how he has through the mouth of various characters in Shiva Trilogy, presented the origin of caste and Varna system.

From the following conversation one finds about the presence of four Varnas.

"Yes it has! The doctors are seriously gifted: Shiva".

'You know, the doctors are called as Brahmin': Bhadra.

'Like Ayurvati?' asked Shiva, passing the chillum back to Bhadra.

'Yes, but the Bramhins don't just care the people. They are too teachers, lawyers, priests basically any intellectual profession'.

'Talented people; sniffed Shiva'.

'That is not all'; said Bhadra, in between a long inhalation. 'They have a concept of specialization. So in addition to the Brahmins they have group called Kshatriyas, who are the warriors and rulers. Even the women can be Kashtriyas.' 'Really! They allow women into their army?' 'Well, apparently there are not too many female Kshatriyas, but they are allowed into the army.' [5]

There is the reference of Shudra in following way, "A Shudra came in, reset the Prahar lamp precisely and left as quietly as he came." [6]

As well as reference of Kshtriya. "That would be wonderful! Smiled Nandi, who hated simple Brahmin, pressured vegetarian food which was served at the regal guest house. He missed the piquant meats that were dished up in coarse Kshatriya restaurants. [7]

Amish has presented wonderful theory about the beginning of Varna system with the help of fantasy, which is as follows.

In the words of Shiva "We were going to discuss the alterations that Lord Ram carried out , your Highness, and how he overcomed the revolt of the renegade Brahmin. But the core problem ran deeper; it was not just a matter of some Brahmins, not following the code. There was a clash between a person's natural Karma and what society forced him to do."

"I don't understand your Highness" said Shiva "Let me explain, do you know what the essential problem with the renegade Brahmins was? Some of them wanted to be Kshatriyas and rule. Some of them wanted to be Vaishyas, make money and live a life of luxury. However their birth confined them to being Brahmins".

"But I thought that Lord Brahma had decreed that people became Brahmins through a competitive examination process" said Shiva.

"That is true my Lord. But overtime this process of selection lost its fairness. Children of Brahmins became Brahmins. Children of Kshtriyas became Kshatriyas and so on. The formal system of selection soon ceased to exist.

Discussing over the rigidity of caste system Daksha told Shiva that the father ensures about all the required resources for the children to grow up and become a strong member of his caste. Shiva made a question that it means caste system is depended on birth. Parveteshwar admitted it but said that Lord Ram believed that the caste of a person should be determined only by that person's Karma, not his birth, not his sex, no other consideration should interfere.

Parvateshwar made an interesting disclosure that in Melhua the division of caste is made in an interesting manner. In Melhua every child is sent to Gurukul after birth and the identity of child is kept very secret; even parents does not know their child. Similar education is given to all the students and after the competition of education, at adulthood their cast is decided on the basis of a comprehensive examination. After it according to their expertise they are sent to the same cast what they deserve. Then parents accept that child as their own.

"And society is perfect", marveled Shiva, "Each person is given a position in society based only on his own abilities. The efficiency and……. [8]

Amish Tripathi has amalgamated his concept of origin of Varna system with the help of fantasy. According to history and mythology the origin of Varna is as follows.

There are religious mystical theories, biological theories are there and socio-historical theories are also there. The religious theories explain, about the foundation of four Varnas but this theory does not explain about the foundation of cast in each Varna or untouchable people.

According to Rigveda diverse Varnas were formed from various parts of primal Man-Purush' body. Other religious theory is of the view that different Varnas were formed from the different body organs of Lord Brahma, who is known as the creator of the whole world.

The Socio-historical theory explains the about the formation of the Varnas, Jats and of untouchable. According to this theory, the system of caste started with the advent of Aryans in India. The Aryans came to India around 1500BC. In order to safe guard their status, the Aryans made some religious and social rules, which allowed them to have the position of the priests, fighters and the businessman of the society. The skin was important feature in the system of caste. The sense of the word Varna is neither class nor status but skin colour. Behind time the Aryans, creator of the caste system, adjoined to their system, Non-Aryans. Different castes who asserted different professions were amalgamated in different Varnas as per their profession. Most of the communities who used to live in India before the Aryans, who professed fouled professions were made out-castes.

The Brahmins love cleanliness. Earlier people of this belief that diseases can also spread through air besides physical touch, probably because of this reason the problem of untouchability, because of this reason they were not allowed to touch and they had to stand at a certain distance.

People who did not follow the social norms, had been made untouchable as a punishment. The caste system is old its evidence is found in Vedas, Sanskrit language texts in 1500 BC too.

The Rigveda, from 1700-1100 BC hardly mentions caste distinctions & gives an indication that the issue of social mobility was very common. The caste system was not very strict during much of the history of India. For instance the renowned Gupta Emperor, which ruled in India from 320- 550 CE were from Vaishya caste, rather than the Kshtriya. [9]

The Foundation of Varna in Vedas : The first sign of the caste system sketched in the tune to Purusha (Rig Veda). The embodied human soul, who is on 4th creature and three fourth eternal, lives. The Brahmin caste was to be the chief priests and teachers. Rajanya represented the king, head of the warrior or Kshtriya caste, Vaishyas are the merchants, craftsmen and framers and the Shudras are the workers. (Rig Veda x:85)

By the tenth century BC and there after the conquest, Aryans has advanced from the North West and Punjab to wrap Northern India. Land and wealth was being handled by only some ruling families. Because of poverty the other people were forced to live like slave. The priests were at the highest level of the caste system, as they supervised the religion. This time caste system was more flexible.

During the period of Atharva Veda 'The Brahmin caste became even stronger their prosperity can be observed by the faith that the cow belonged solely to them. Taxes were collected most likely by the Kshatriya caste from Vaishya artisans, farmers and merchants. The Shudra workers were very poor and they could not give tax while Brahmins were exempted from it. (Atharvaved 3:29:3)

Between 900 & 700 BC the 'Brahmins' were involved in teaching the Vedas and explaining it. At this time the caste system was spreading its root and was on the basis of colour (Varna) but it was not very rigid

The basic difference was at the light skinned Aryans who declared the top 3 castes of the saint Brahmins, fighter Kshtriyas and artisan Vaishays and the shady skinned Dadas who were the attendant Shudras. Shudras like women couldn't own property and only rarely they rise above service position. The Vaishyas were considered inferior to the Brahmins and Kshtriyas, they were the basic of commercial system of trade, farming and crafts.

Out of God (Brahman) came the Brahmin caste of priests and teachers and the Kshatriyas as to rule, development through Vaishyas and Shudras, however the principle was created as justice (Dharma) than which nothing is higher so that, a weak person may control by strong as if by a king. They say that those who speak truth speak justice and Vice-Versa, because they are the same.

By meditating on the soul (Atma) alone, one does not perish and can create whatever one wants. Whatever suffering occur remains with the creature, only the good goes to soul because evil does not go to good [10]

The Theory of Vikarma in Shiva Trilogy : In Shiva Trilogy, Amish have presented the concept of Vikarma which is very equal to untouchables in India. We can find description and references regarding Vikramas

'As they turned and walked into the lane.' Shiva asked, "Who are Vikarma women?" "Vikarma People, my Lord' Said Nandi sighing deeply, "are people who have been punished in this birth for the sins of their previous birth. Hence they have to live this life without dignity and tolerate their present sufferings with grace.

Further Nandi told that this was the only way through which they can wipe their Karma and can overcome from the sin of previous birth. On this Shiva was surprised the way they judge the sin of previous year. That sounds pretty ridiculous to him, A woman could have given birth to a underdeveloped or overdeveloped child simply because she did not take proper care while she was pregnant, or it could just be a disease. How can anyone say that she is being punished for the sins of her previous birth?" [11]

Amalgamation of Historical Elements in the Concept of Vikarma as Untouchables : In the concept of Vikarma as untouchables In India we find social hierarchy in the form of caste, based on the birth of the individual in a particular caste family, the word caste is originated from the Spanish word 'Casta', means race, breed, strain or a composite of hereditary qualities. The English word caste is a modification of original word casta.

Caste started as with the division on the basis of occupation, gradually caste system became an essential part of religious doctrine which divided the person into superior & inferior groups. It is an cumulative of persons whose benefits are fixed from birth and sanctioned by religion, based on the idea of high and low, superior and inferior, touchable, untouchable pure and impure,. Caste system is mainly based on two major characteristics; one is hereditary and another is birth.

The various restrictions were put on Shudra and Atishudra, in the matter of residence, marriage. The theory of pollution also played important role, even simple touch of Shudra used to pollute, defile the upper caste Hindus, thus rendering the existence of Shudras worse than animals. In Kerala, a Nair can approach a Nambodiri Brahmin but should definitely not touch him. While a Tiyan must keep a distance of 36 steps from the Brahmin and a Pulayan may not approach him within as 96 paces.' [12]

Several Social thinkers' philosophers and scholars have tried to find out the origin of caste system in India. No definite and concrete proof is available, on the basis of which the date of caste system may be pointed out.

According to traditional theory, members of the different castes were taken birth out of various parts of body of original man Brahma, the creator of the universe. This theory receives a classical interpretation in the account of Manu. 'Occupation is the main basis of caste system, some occupations are considered as superior and some are inferior.

The followers of these occupations were considered as superior and inferior. The caste system like other social instructions has originated as a result of the process of the evolution.

On the basis of economic policy and division in society, several groups were formed. In order to maintain their prestige and status these group clashed with one another. As a result the Purohits became prominent and they did not only set up their supremacy but they also founded the practice of endogamy. The other groups followed the similar pattern and because of this different castes immerged. [13]

References

1. Reflection Of Vedic Age In Women Character Of Amish Tripathi's 'The Immortals of Meluha' Dr. Manisha Dwivedi H.o.D. Dept. of English Dr. C.V. Raman University Kota, Bilaspur (C.G.)

2. https://en.wikipedia.org/wiki/Amish_Tripathi

3. https://ar.scribd.com/..../..../The origin of castesystem-in-india-vs-and-how-it-relat.

4. Justicekatju.blogspot.in/2012/02/caste system in India.

5. Tripathi Amish 'The immortals of Meluha' P-28.

6. Tripathi Amish 'The immortals of Meluha' P-85.

7. Tripathi Amish 'The immortals of Meluha' P-89. 8. Tripathi Amish 'The immortals of Meluha' P-95-99.

9. Adqnial-tripod.com/origin.htm.Caste system tripod (Information of Indian Caste system).

10. www.san.beak.org/ECT.vedas.html vedas and upnishadas.

11. Tripathi Amish 'The immortals of Meluha' P-92-93.

12. Shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/5/3314 /04-cont.pdf (The historical book grand of caste system and atrocities on SC and ST).

13. www.preservearticles.com/—/notes-on-the-origin-of-caste-system-in-India.html.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Geography: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 45-51

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Innovation in Agriculture Sector: A Case Study of Jakhania Tahsil in the Context of IRDP

Dr. Krishna Singh*

Planning and development policies in India have started since the inception of the Five -Year Plan. Though, importance of rural development was recognised in the earlier plans, it was only from the sixth Plan onwards due emphasis was laid on rural development. The Government of India formulates various plans on rural development and did so during the plan periods by formulating strategies for future plans and allocating substantial amount to attain faster rural development. This particular concept was giver due importance in each and every Five- Year Plan. Basing on the Five- Year Plan the government framed and implemented various rural development programmes in our country from time to time to achieve balanced development in the country. These development programmes redesigned and targeted to eradicate poverty, inequality, low socio- economic growth, regional imbalance, illiteracy and unemployment and to gain rural development.

The main purpose of this study is to examine the agriculture conditions of the Jakhania Tahsil and to assess the local resources and their utilisation pattern so as to suggest ways for their optimum use in agricultural sector. The study area, i.e., Jakhania Tahsil, is selected because it is representative of the geographical and socio-economic conditions of the regional district and highlights the present development constraints and measures to overcome them.

Keywords : *Planning & Development, IRDP, Five-Year Plan, Innovation, Population Growth, Latitude, longitude*

The government to overcome some of the inadequacies observed in various approaches for rural development emphasized an integrated area planning by selectively integrating various functional, spatial, and consequential aspects of rural development. It has been thus realized that rural development in certainly different for the concepts of growth and economic development. The series of target programmes and strategies for rural development had given valuable lessons. Thus, the concept of integrated rural development based on area approach is snowballing with multi-laboured splendour. The strategy of integrated rural development based on area approach is supposed to convey much more than the earlier strategies. Integrated rural development of rural area and the promotion of activities carried out in such areas, agriculture, forestry, fishery, rural crafts and industries, the building of social and economic infrastructures with the ultimate aim of achieving a fuller utilization of available physical and human resources and thus higher incomes and better living conditions for the rural poor and effective participation of the later n the development process. The government has also recognized by this time that the concept, which is more relevant for this purpose, is integrated area development. Now generally used as integrated rural development.

Jakhania Tahsil is one of the Five tahsils of Ghazipur District, situated at 25° 40' 8" N to 25° 50' 10" N Latitude and 83° 18' 49"E to 83° 26' 35"E Longitude in the North-West region of the Ghazipur

* *PGT-Geography, Jeevan Jyoti Higher Secondary Inclusive School, Sarnath, Varanasi*

district, which is 40km away from the district headquarter. This tahsil includes three developmental blocks, namely, Jakhania block and some part of Manihari and Sadat blocks, covering an area of 664.3 km^2. It lies in the south-west of Mau District and in south-east of Azamgarh District.

Jakhania tahsil includes 502 villages and one town having 10 wards. The total population of Jakhania tahsil is 4,64,309 in which 2,29,367 are male while 2,34,942 are female (2001). The rural population of the area is 4,53,973 and the urban population of the area is 10,336 (2001). The literacy rate of the study area is 57.4% in which male literacy rate is 74.0% and female literacy rate is 41.5%), while the rural literacy rate is 57.1%) (73.8% male, 54.6% female) and the urban literacy rate is 69.3% (83.2% male, 54.6% female). The tahsil is joined by Railway route of Varanasi - Gorakhpur line and is connected with the North -Eastern Railway.

The region in which the study area lies, comprises purely of Ganga alluvium. During the Pleistocene to such recent alluvial deposits of the Indo-Gangetic System have completely surrounded the old land surface to the depth of over 500 feet, entirely during all the past geological formation (Narain, 1965). Here, as everywhere in the Gangetic plain, the alluvium consists of inter-blended deposits of sand, clay and gravels.

The thickness of the alluvial sediments varies from place to place. According to Oldham it is between 4000-6000 m deep (Oldham, 1917). This plain is a depression between the Himalayas in the north and the Deccan Plateau in the south. It has been filled with alluvium commenced after the final upheaval of the mountains and has continual throughout the Pleistocene period up to the present (Wadia, 1953). The study area is a part of middle plain region of Ganga, which is constructed by the alluvium during the Pleistocene period. Its slope is normal which is about 0.3 percent. Jakhania Tahsil lies in the Ganga plain, hence, its climate is very similar to that of the plain as a whole. Jakhania Tahsil, generally, has a dry climate like the whole of the district Ghazipur. It experiences tropical monsoon type of climate with its characteristics seasonal rhythm made by the northeast and southeast monsoon.

Cultural Constraints : It is well known fact that, agriculture is the major economic factor in our country. Various development programmes for rural areas are tuned for proper development of the economy. In the study area, agriculture is the main occupation and basis of economy as the area has no minerals or has any other natural resources. Thus the agricultural development is of a greater significance. The important cultural constraints impeding transformation of agriculture are fragmentation and consolidation of holdings, mode of actual cultivation or tenurial arrangements, regime of land ownership, and average size of operational holdings.

Category	Operational size holding (in ha.)	No. of villages	%of villages
Very low	<0.5	65	11.9
Low	0.5 - 2.00	171	39.7
Medium	?. 00 - 3 50	155	34.1
High	3.50-5.00	54	5.2
Very high	>500	27	4.3
	Nil	30	4.8
		502	100

Size of Holdings : The production and adoption of new agricultural technology totally depends on the size of farms. But the most significant thing is that it has begun to shrink due to great decadal addition in number of individual cultivators. There IS no sign of the number of cultivators decreasing in the near future, nor is there any great possibility of either a shift from agriculture to other occupations or of increasing the land under cultivation. The study area is not untouched by the problem of small size of farmers. The increasing burden on agricultural land and laws of inheritance has contributed to division of large holdings.

Farm Technology : The technification covers three aspects of farm technology, namely mechanical, biological and chemical. These are some of the basic ingredients which influence progress in farm production and are instrumental in ushering in the green revolution. The mechanical aspects of modern farm technology are of great significance. These aspects are tractors, threshers, seed drills, combines and more efficient iron farm implements. The primary effect of improved mechanical techniques is to save labour but, at the same time, they also contribute to increasing yield per hectare by making possible more intensive cultivation and the application of advanced biological and chemical techniques. Breeding of high yielding seeds, improved methods of crop fertilization, and the application of new crop-protection measures are the progressive biological chemical aspect that increase productivity per hectare.

Along with irrigation, tractorizational mechanisation is thus the second vital variable behind the imbalances in multiplicity of cropping and agricultural productivity. These imbalances are responsible for many social, economic and political implications facing the nation.

Use of Fertilizers : Use of chemical fertilizer is one of the most important practices in agriculture. The higher agricultural productivity is linked with the application of bio-chemical inputs, yield-raising technology, better water management, etc. It has been estimated that the use of one ton of plant nutrients would equivalent to adding above four hectares of cropland in terms of additional production. In the study area use of fertilizers is continuously increasing since 1981. The use of fertilizer per 100 ha of gross sown area is 61 kg in 1995-96, which was 74.1 kg in-93 in the study area. The total distribution of fertilizers are recorded 2256 metric tons in 1991 which include Nitrogen (1801 metric tons), Phosphorus (435 metric ton) and Potassium (20 metric ton).

Land use Efficiency : The land use efficiency can be explained in forms of increase in production capacity of land due to capital, and labour. In the study area, land use efficiency has been developed on the ranking co-efficient method (Bhatia, 1967). The land use efficiency is a function of several variables, such as extension of cultivation, fallow land, cropping intensity and crop security etc. In the present study four variables net sown area, cultivable waste including fallow land, cropping intensity in terms of double cropped area and crop security (showing irrigated area) have been taken into account to compute the land use efficiency. After calculating the deviation index three categories of land use efficiency have been obtained:

High Land Use Efficiency : Majority of villages indicating high efficiency, i.e., below 1.0, where cropping intensity is high and security is better, while fallow lands are less. On the whole only 157 villages show high efficiency which itself speaks of the dismal state of affair of land use in the region. There were only 93 villages in this category.

Medium Land Use Efficiency : This category of land use efficiency is presented by 78 villages. These villages falling in the category have moderate proportion of their areas under cultivation, moderate crop security and intensity as well. It was 70 in 1981, which falls to 49 villages.

Low Land Use Efficiency : Out of 153 villages, 20 villages have shown low land use efficiency. Due to over exploitation of soil, irrigable water and use of other chemicals, the number of villages in 1981 (54) have increased to 82 villages.

Food Grains : Food grains play a major role in the cropping of land under cultivation due to their importance in providing substance for human beings and feed straw for livestock. Looking at the population increasing at a faster rate than even before, India cannot afford a significant shift of cropland from food grains to fodders. Therefore, any major dietary improvement must await a reduction in the rate of population growth.

Food crops are generally less demanding and less exacting in their soil and moisture requirements than fibre crops, and are favoured by both natural conditions and socio-economic characteristics suitable for farming in areas of moisture problems, in particular inadequacy and truancy in rainfall. The cropping of some food pulses is essential in the cropping pattern as it lends to a satisfactory crop-sequence. On average, about 74 per cent of the total cropped area was under food-grain crops, i.e., cereals (rice, wheat, maize, and barley), millets (bajra, bajri, jowar and ragi), and pulses (gram, tur, black gram, green gram, brown gram and lentil). The food crops are classified into 4 categories in the area.

Area under Food Crops

Category	Percent to GSA	No. of Villages	Per cent of Villages
Low	< 80	35	9.49
Medium	80-85	64	16.99
High	85-90	143	35.94
Very High	> 90	160	38.56
Total		502	100.00

There are only 35 villages (9.49%) falls under low category. In these villages the area under food crops is below 80 per cent to gross sown area. In medium category there are 64 (16.99%) villages falls and 143 in High. The percentage of area under medium and low category is 80 to 85 per cent and 85 to 90 per cent respectively. Food grain crops are treated under three different categories, viz., cereals, millets and pulses. The overall predominance of these crops is not wholly due to the advantages of climatic and soils conditions, but also to socio-economic factors.

Cereal : Among the food grain crops, cereals are of unrivalled importance and, apparently, have always been since the dawn of agriculture. In aggregate, wheat, maize and barley accounted for over two-fifths of the total cropped area and all are used mainly as food and most are eaten directly in India. The role of cereals in India's economy is intimately associated with the geographic distribution of agro-environments and inhabitants. Wheat is by far the most important cereals. The reason for dominance of wheat in continental locations is alluvial soil, irrigation facilities and temperate climatic conditions during winters.

Wheat : It is the largest growing food grain of Rabi season and is the main staple food crop of the area, ranking first as to areal coverage and production. The stalk and the straw, after threshing the grains, are mixed with green fodder or ground gram is an important source of livestock feed throughout the year. It is generally produced in the most favourable parts where fertile soil and irrigation facilities are available.

Fodder Crops : The fodder crops are mainly cultivated for feeding of livestock. In the study area, fodder crops occupy about 5 per cent land of gross cropped. These crops are mainly grown on infertile lands. With the improving number of existing farm animals, it is of great importance to produce more fodder crops.

Regional Imbalance in Food Production : The cropping intensity signifies that no land should be left fallow for getting maximum output from a' particular patch of land by growing crops more than once in a year (Mitra, 1981). It is the planning of successive crops on the same land throughout the year. It is defined as the ratio between Net Sown Area (NSA) and Gross Cropped Area (GCA) expressed in per cent. It indicates the additional percentage share of the area sown more than once to NSA. Thus, it reflects upon the number of times the agricultural lands have been cultivated during a year. It is expressed as

C.I (GCA/NSA) × 100

Where, C.I Cropping intensity (in per cent)

GCA Gross Cropped Area

NSA Net sown Area

In the study area, three main regions of cropping intensity have been distinguished: High cropping intensity regions (> 200%); Moderate cropping intensity regions (150-200%); and Low cropping intensity regions (< 150%).

Regions of High Cropping Intensity.

This category occupies the lowest acreage covering only 40 villages where cropping intensity is above 200 percent. It coincides with the areas where irrigation facilities are available, consisting of loam and sandy loam soil with high fertility. The number of villages under this category during 1981 was 29.

Regions of Moderate Cropping Intensity : This region carries the largest area, spreading over 92 villages where cropping intensity index varies from 150-200 per cent. These villages have loam and sandy loam soils with low to high soil fertility status. In this region irrigation facility is well distributed. There were only 136 villages under this category during 1981.

Regions of Low Cropping Intensity : This region consists of 51 villages, where cropping intensity index is below 150 per cent. It is because of inadequate irrigation facilities, rugged topography, and moderate to low density of population, unaware-ness farmers and very low fertility of soil. There were 72 villages under this category during 1981. Due to development of irrigation facilities and overall development, the number of villages falls to 51 in 1991.

The comparison of the cropping intensity index during 1981 and 1991 is shown in the figure. The change in intensity of cropping due to improvement in irrigation facilities and the exceptionally high growth of rural population from immigrations. Besides these two factors, commercialisation in agriculture, workability and fecundity of soil, size of operational holdings and human capital are some other factors that determine dynamism in intensity of cropping.

Developmental Plan : The plan should aim at optimal utilization of land by dividing suitable cropping pattern and providing desirable input requirements. There should also be adequate storage facilities to preserve the produce after the harvest season, and regulate markets to ensure a fair and stable price to the farmer. Following developmental plans can be applied for development purposes-

1. Removal of physical and cultural constraints - the physical constraints refer to the vagaries of monsoon, infertile soil and bad surface drainage etc., which directly affect the production. For that provision of assured irrigation nutrition inputs in soil and artificial drainage at appropriate places becomes an imperative. The cultural constraints mean bed tenure system and fragmented holdings, which need immediate attention. For that there should be made time-bound legal provisions by the government authorities.

2. Institutional and structural changes - In this regard, special mention may be made of two ambitious land reform programmes - ceiling on land holdings and its consolidation.

3. Adoption of Seed-fertilizer-irrigation technology - The returns and profitability of investment in agriculture have been greatly enhanced by the development of seed-fertilizer-irrigation technology. A contemporary feature of this development has been a large increase in the use of fertilisers and pesticides, much greater demand for irrigation and a fairly widespread tendency to adopt mechanisation of various field operations.

4. Post-harvest facilities - Among the post-harvest facilities marketing and processing are the most important ones. The small farmer sells their produce to the retailers or wholesalers on much cheaper rates partly due to lack of storage facilities. For that building the rural godowns at each primary co-operative society (Sadhan Sahkari Samiti) to prevent the distress sales of grains by small and marginal farmers.

5. Water Resources - At present, it is being utilised for drinking, irrigation, and pisciculture purposes in the area. In the context of irrigation, much can be conserved if concerned people are kept aware of the actual time and quantity of water to be used. Rain-water harvesting technique is to be used for restricting the ground water depletion.

6. Livestock Resources - The livestock development can also be introduced as mixed farming among the farmers. This may create additional employment opportunities, especially during the off period and raise the income and drought force for agriculture. This will also contribute to soil fertility through cattle manuring. There is provision of financial aid to the small and marginal farmers for this purpose, but due to indifference and corrupt attitude of public officials they are unable to take full advantage of the scheme. The other obstacle in this regard is the poor marketing facility for milk and milk products. The government can be of much help in the matter by developing organised co-operative system of dairy farming.

Summary : Integrated Area Development requires a projection of plan into a decade or two to see that the results are visible .For an effective and balanced development of the block , the plan envisage three types of integration with in an overall strategy, to say, the functional integration of agriculture, industry and social facilities has been adopted in the plan, making use of a spatial model in which development in one sector opens up possibilities for development in another; secondly the existing hierarchical linkages between villages and towns based on trade and service relations have been adopted for the optimum locations of new investments as well as for the decentralised development activities; thirdly, the potentialities of irrigated areas have been viewed in relation to the needs and the backwardness of the irrigated areas have been viewed in relation to the needs and backwardness of the unirrigated areas. The spatial model used for these levels of irrigation is based on carefully selected basic units of planning, various hierarchic levels and their linkages.

References

Balishter and Singh, Roshan (2001), Rural Development and Cooperatives, *Yojana,* Vol.45, July.

Berry, B.J.L. (1964), Geography of Market. Centres and Retail Distribution, *Prentice Hall, Inc. Englewood Cliffs.*

Berry, B.1L. (1967), Geography of Market Centres and Retail Distribution, Prantice *Hall, Inc. Englewood Cliffs, National Geog., Allahabad,* pAl.

Berry, B.J.L. and Garrison, W.L. (1958), Recent Development of Central Place Theory, *Proceedings, Regional Science Association,* VolA, p. 120.

Budhraja, J.C. (1987), Micro-Level Development Planning: Rural Growth Centre Strategy, *Commonwealth Publication, Delhi,* p.53.

Bhatnagar, R.K. (2000), Participatory Rural Development, *Kurukshetra,* Vo1.48(6), March, p.31.

Bhattacharya, S.N. (1970), Community Development: An Analysis of the Programme in India, *Academic Publication, Calcutta,* p.l.

Budhraja, J.e. (1987), Micro-level Planning: Rural Growth-Centre Strategy, Dacey, M.F. (1965), The Geometery of Central Places, *Gcografiska Annaler,* B47-2, p. ll3.

Ensminger, D. (1974), Rural Development, What is it? (Its Contribution to Nation building), paper presented at East West countries Conference on

Gaur, Archana (1985), Integrated Rural Area Development, *B.R. Publishing Corporation, Delhi.*

Gaur, Archana (1985), Integrated Rural Area Development, *B.R. Publishing Corporation, Delhi.*

Giri, OK(2002), Peoples' Participation and Rural Development, *Kurukshetra,* Vol.50 (6), April, p. 11.

Joshi, Anil. P. (2001), Decentralised Approach to Rural Development in Uttaranchal, *Kurukshetra,* Vol. 49 (4), p.36.

Misra, R.P & Achyutha, R.N. eds. (1990), Micro-Level Rural Planning, *Concept Publishing,* New Delhi.

Nag, Prithvish and Sengupta, Smita (1999): Geography of India, *Concept Publishing Company, New Delhi-59,* pp. 105.

Raj, K.N. (1997), Planning: Getting the Economy on the Track, *The Hindu: India,* August 15, p. 107.

Rao, M.B.S. (1991), Integrated Rural Area Development and Planning in India, *Anmol Publications, New Delhi.*

Rao, Vasudev. D. (1985), Facets of Rural Development in India, *Ashish Publishing House, New Delhi.*

Singh, K.K. and Ali, S. (2000), Encyclopedia of Rural Planning and Development, *Sarup and Sons, New Delhi,* p.5.

Singh, Katar (2000), Rural Development: Principles, Policies and Management, *Sage Publication, New Delhi,* p.307.

Singh, T.B. (1988), Rural Development in District Ballia (U.P.), A Geographical Analysis of Strategies and Approaches, Approved thesis in the Dept. of Geography, *Banaras Hindu University, Varanasi.*

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 52-56

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

कविवर गंग और रहीम का नीति वर्णन

*डॉ. स्वाति जैन**

भारतीय इतिहास में मुगल शासकों के मध्य सम्राट अकबर का शासन काल भारतीय संस्कृति और जनजीवन के लिए सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इतिहासकारों ने अकबर की उदार नीति की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। वह सभी धर्मों का समान रूप से आदर करता था। वह हिन्दू धर्मानुयायी विद्वानों को अपने दरबार में आमन्त्रित करता था और उच्च पदों पर आसीन भी करता था। अनेक विद्वान कवियों ने उसके दरबार में सम्मान पाया था। इन दरबारी कवियों में कविवर गंग और रहीम को विशिष्ट स्थान प्राप्त था। दोनेां मित्र थे और एक दूसरे के प्रशंसक भी। रहीम अपनी धर्मनीति और लोकनीति के लिए प्रसिद्ध हुए, तो गंग अपने वाग्वैदग्ध्य और भाषा सौष्ठव के लिए। अकबरी दरबार के सम्मानित कवियों में रहीम का काव्य तो 'रहीम ग्रन्थावली' में संरक्षित है किन्तु कवित्त और सवैया के आदि रचनाकार कविवर गंग का अधिकांश काव्य काल के गर्त में विलुप्त हो गया। गंग का नाम केवल इतिहासग्रन्थों में उल्लिखित है। जनमानस तो क्या हिन्दी साहित्य के अध्येता भी उनके काव्य से अद्यतन अपरिचित ही हैं।

हमारे विवेच्य कवि गंग और रहीम दोनों के सम्बन्ध में डॉ0 नगेन्द्र ने कहा था–''दोनों कवियों को अकबरी दरबार में विशेष स्थान प्राप्त था।[1] आचार्य कवि भिखारी दास ने गंग को तुलसी के समकक्ष रखते हुए लिखा है– ''तुलसी गंग दोऊ भये सुकविन के सरदार।''[2] उक्त कथन गंग के काव्य गौरव को ही प्रकट नहीं करता वरन् हिन्दी साहित्य में उनके श्रेष्ठतर स्थान को भी व्याख्यायित करता है। गंग के समकालीन रहीम ने भी अकबरी दरबार में रहते हुए जीवन के अनेक उतार चढ़ाव देखे थे। दोनों ही सुख–दुख के साथी थे। राजदरबार में रहते हुए भौतिकता से सराबोर जीवनयापन करते हुए भी शुद्ध काव्य के प्रणेता थे। दोनों ही कवियों की लेखनी को नीति, भक्ति और श्रृंगार आदि विषयों पर समान अधिकार प्राप्त था। दरबारी वातावरण की एक विशेषता होती है कि वहाँ की मर्यादा तथा राजा की रुचि और अवसर को देखकर बात करनी पड़ती है। ऐसे वातावरण में रहने वाला कवि तभी अपने प्रतिस्पर्धियों से बाजी मार सकता है जब उसका लोक ज्ञान विस्तृत हो और भावाभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता उसकी वाणी में विद्यमान हो। गंग के काव्य में विविध विषयों का वर्णन उनके विस्तृत लोक ज्ञान तथा सूक्ष्म निरीक्षिणी दृश्टि का परिचायक है। रहीम कलम और करवाल दोनों के धनी थे। वे अकबर वे विष्वस्त सेनापति थे, उनके निर्देशन में कई युद्धों के विजय प्राप्त योद्धा थे। उनका श्रेष्ठ कवि कर्म ही गंग को उनके निकट लाया और मित्र भाव में परिणत हुआ।

नीति शब्द ''णीय'' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है ले जाना या पथप्रदर्शन करना। प्रस्तुत संदर्भ में समाज को स्वस्थ एवं सन्तुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को धर्म, अर्थ काम और मोक्ष नामक पुरुषार्थों को उचित रीति से प्राप्त करने के लिए जिन विधि निषेधों का विधान देशकाल और पात्र के सम्बन्ध में किया जाता है, उसे नीति शब्द से अभिहित किया जा सकता है।[3] नीति का उद्भव और विकास सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की आवश्यकताओं के फलस्वरूप हुआ है। आचार धर्म का मूल है और नैतिकता आचार की अधिष्ठात्री है। वस्तुतः समाज, धर्म, राष्ट्र और मानवता द्वारा निर्मित नियमों के अनुकूल चलने का नाम नीति है।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में तुलती, गंग, रहीम वृन्द आदि कवियों का नीति काव्य धर्म तथा आचार से सम्बन्धित है। भक्तिकाल के उत्तरार्द्ध में राज्याश्रित कवियों द्वारा राजदरबारों और सभाओं में सुनायी जाने वाली

* *995, शम्भूनगर, शिकोहाबाद, उ.प्र.*

कविता में नीति विषय कथन विशेष हुआ करते थे। नीति सम्बन्धी काव्यों को शैली की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है ––

(क) उपदेशपरक नीतिकथन।

(ख) अन्योक्तिपरक नीतिकथन।

(ग) सूक्तिपरक नीतिकथन।

(क) उपदेशपरक नीतिकथन–उक्त उभय कवियों ने उपदेशपरक नीति काव्य का सृजन पृथुलता से किया है जिसमें वैराग्य, संगति, प्रभाव मित्रता, मर्यादापालन, निष्कपटता, सज्जनता, सुपुत्र–कुपुत्र वाणी महत्ता आदि विषयों पर पर्याप्त काव्य रचना हुई है। जीवन में वैराग्य का अन्यतम महत्व है।[4] कविवर गंग ने पुत्र–कलत्रादि को ईश्वर से दूर से जाने वाला कहा है। उनके अनुसार वृद्धावस्था में कम से कम व्यक्ति को संसार से विरक्त होकर भगवद्भजन करना चाहिए–

काम क्रोध लोभ मोह तिनही के बस परयो,
तिहुँपुर नायक विसार्‌यो तिहुँ पन में।
कालिमा के चलत कलानि ज्यों चेत होत,
केस आये सेत हैं न केसौ आये मन में।''[5]

कविवर रहीम की प्रवृत्ति भी उपदेशपरक नीति कथन से भरपूर रही है। उनकी नीति की उक्तियाँ हृदय संवलित होकर सामने आयी हैं। उनके नीति परक दोहों ने लोक में प्रसिद्धि प्राप्त की है। उन्होंने संसार की नश्वरता का वर्णन करते हुएए मानव मन में वैराग्य का उदय करना चाहा है ––

कहु रहीम केतिक रही, केतिकगयी विलाय।
माया ममता मोह परि अन्त चले पछिताय।।[6]

संगति का प्रभाव अकाट्य होता है, मानव का नैतिक विकास सज्जनों की संगति में होता है। आचार्य शुक्ल ने कुसंग को ज्वर के समान बताया है। सत्संग यदि व्यक्ति को सज्जन बनाता है, तो कुसंग से अच्छे व्यक्ति भी दुर्जन बन जाते हैं। गंग ने कुसंग के परिणामों का उल्लेख करते हुए मानव को सत्संग के प्रति प्रेरित करने का प्रयास किया है, निम्न छन्द में ––

लैहसन गाँठ कपूर के नीर में, बार पचासक धोय मँगाई।
केसर के पुट दै दै के फेरि, सुचन्दन वृच्छ की छाँह सुखाई।
मोगरे मेलि लपेटि धरी गंग, बास सुबास न आब न आई।
ऐसेहि नीच को ऊँच संगति, कोटि करौ पै कुटेव न जाई।।[7]

कविवर रहीम भी यही कहते हैं कि दुष्ट के साथ रहकर किसी का हित नहीं हो सकता। कुसंग के दोषदर्शन हेतु उन्होंने पौराणिक आख्यान की मार्मिक व्यंजना की है। इस प्रकार जहाँ उन्होंने अपने वाग्वैदग्ध्य का परिचय दिया है, वही कुसंग से बचने का उपदेश भी––

बसि कुसंग चाहत कुशल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस।।[8]

भारतीय नीति शास्त्र में सज्जनों की मित्रता को आदर्श माना गया है। सच्चा मित्र आपातकाल में सदैव मित्र का साथ देता है। कविवर गंग ने समाज को अपनी खुली आँखों से देखा था। उन्होंने पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों की घनिश्टता के लिए मन का मिलना आवश्यक माना है। वे सन्मित्र का लक्षण बताते हुए कहते हैं––

धनदैवे धाम देवै बात को विराम देवै,
राजा को लगाम देवै एसो प्रिय पेख्यो है।
X X X
कहत हैं कवि गंग सुनो मेरे दिल्ली पति,
समय पै सीख देबै ऐसो कोई देख्यो है।[9]

कविवर रहीम ने भी नीरं–क्षीर मित्रता को आदर्श माना है। सच्चा मित्र आपत्ति में भी मित्र का साथ नहीं छोड़ता जैसे कि अग्नि का संयोग होने पर पानी दूध से पहले अपने को जला करके अपने मित्र पर आंच नहीं आने देता है––

जलहि मिलाय रहीम ज्यों कियो आप सम छीर।
अंगवहि आयुहि आय त्यों सकल आँच की भीर।।[10]

जीवन में अकृत्रिमता और निष्कपटता अति मूल्यवान है। सत्य और स्पष्टता जीवन के नैतिक सिद्धान्त हैं। कपटाचार अनास्था को जन्म देता है। कपटाचार कभी छिपता नहीं, उसे छिपाने का व्यक्ति चाहे कितने ही उपाय करें ––

चंचल नारि के नैन छिपै नहिं, प्रीति छिपै नहि पीठ दिखाए।
गंग कहे सुनि साह अकब्बर, कर्म छिपै न भभूत लगाए।[11]

रहीम ने भी जीवन में निष्कपटता को अति महत्व दिया है। रहीम ने उन लोगों की कटु आलोचना की है, जो खिज़ाब लगाकर बुढ़ापे को जबानी में बदलना चाहते हैं ––

रहिमन थोरे दिनन को कौन करै मुँह स्याह।
नहीं छलन को परतिया, नहीं करन को व्याह।[12]

'बुभिक्षितं किन्न करोति पापम्' कहकर संस्कृत विद्वान ने भूख को सभी बुराइयों का मूल माना है। लोक में क्षुधा से प्रखर कोई वस्तु नहीं होती। भूख अभाव का तीव्रतम रूप है। गंग ने मानव की इस प्रथम आवश्यकता का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है –

भूख में राज को तेज घटै, अरु भूख में सिद्ध की बुद्धि हू हारी।
भूख में गंग बनै न भजन्नहु, चारहु वेद से भूख है न्यारी।।[13]

गंग के समान ही रहीम ने भी भूख को समस्त कष्टों का कारण मानाा है। रहीम का काव्य जीवन की भट्टी में तपाया हुआ खरा सोना है। वहाँ शब्दों का आडम्बर नहीं, सर्वत्र अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है। वे सरल शब्दों में भी मार्मिक अभिव्यक्ति कर सकते हैं –

रहिमन अपने पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय।
जौ तू अनखाए रहे, तो सो को अनखाय।[14]

इसी प्रकार वाणी महत्ता, मूर्ख को शिक्षा निषेध, भिक्षावृत्ति, सदाचार, पालन, क्षमाधारण, परोपकार आदि अनेक विषयों पर शिक्षा परक उक्तियों दोनों कवियों के काव्य में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है।

(ख) अन्योक्ति परक नीति कथन–अन्योक्ति (अन्य+उक्ति) अर्थात् अन्य कथन के माध्यम से बात को कहना। अन्योक्ति अप्रस्तुत विधान की चरम अवस्था है। अन्योक्ति में भावों की समाहाार शक्ति और भाषा की समास शक्ति कार्य करती है। अन्योक्ति की शक्ति है व्यंजना या ध्वनि। इसी ध्वनि का उपयोग जब कवि करता है, तो कविता में एक अद्भुत आभा छलक उठती है तथा अर्थगाौरव भी बढ़ जाता है।'[15] अन्योक्तियॉ व्यक्ति के हृदय पर तीव्र प्रभाव डालती हैं, उनमें व्यंग्य की प्रधानता होती है, जो लक्षित व्यक्ति को तिलमिला कर रख देती है। अनेक स्थलों पर कविवर गंग ने अन्य उपादानों के माध्यम से नीति का बखान किया है –

देखत कै वृच्छन में दीरघ सुभायमान,
कीर चल्यो चाखिवै को प्रेम जियजग्यो है।

X X X X

ऐसो फलहीन बृच्छ, बसुधा में भयो यारो,
सेमर बिसासी बहुतेरन ठग्यो है।[16]

दुष्ट के साथ सज्जन का निर्वाह कभी नहीं हो सकता है। इस तथ्य को बेरी और केला के माध्यम से कविवर रहीम ने दुष्टों पर तीखा व्यंग्य किया है –

कहु रहीम कैसे निभै बेरि केरि को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटक अंग।।[17]

रहीम जहाँगीर के शासन काल तक दरबार में रहे थे। जहाँगीर अत्यधिक राज्यलोलुप था, उसने राज्य प्राप्ति के लिए अपने भाई को भी मार दिया था। ऐसे भ्रातृहन्ता जहाँगीर को रहीम ने शीतल चन्द्रमा के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है –

रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तपै तरैयन खोय।[18]

(ग) सूक्तिपरक नीति कथन–सु उपसर्गपूर्वक 'उक्ति' पद के योग से बने सूक्ति शब्द का शब्दिक अर्थ है– सुन्दर कथन। सूक्ति में किसी सार्वभौमिक तथ्य की अवतारणा हुआ करती है। इसी आधार पर सूक्ति काव्य उसे कहा जाता है जिसमें कवि के जीवन अनुभवों का सार चेतावनी के रूप में अभिव्यक्त होता है।'[19] सूक्ति काव्य का लक्ष्य पाठक का मनोरंजन करना मात्र नहीं होता वरन् उसमें इहलौकिक और पारलौकिक जीवन का परिमार्जन और परिशोधन करना होता है। प्राचीनकाल से ही सूक्ति की परम्परा सतत चली आ रही है। सूक्ति जीवनी रंग से भरी हुई पिचकारियाँ होती हैं, जिनके छूटते ही श्रोता आनन्द में सराबोर हो जाता है। सूक्ति जीवन के निरीक्षण और गहरी अनुभूति से जब उभरती है, तो सटीक बैठती है। गंग काव्य में ऐसी सारगर्भित सूक्तियों का सागर लहराता दिखाई देता है। कवि ने जहाँ अपने जीवन की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है वहाँ काव्य में अति हृदय स्पर्शी सूक्तियों की सर्जना स्वतः हो गयी है। कतिपय सूक्तियाँ अवलोकनीय है–

(अ) आपस की फूटै कहूँ काहु को भलो भयो।[20]

(आ) आदमी को मोल एक बोलतें पिछानिएँ।[21]

(इ) गर्ज बड़ी त्रय लोकन में अरु गर्ज बिना कोउ आबै न जाबै।[22]

(ई) गंग कहै अकबर सुनौ सबतें बुरो है माँगनो।[23]

(उ) गंग कहै सुन साह अकब्बर, कर्म छिपैन भभूत लगाये।[24]

गंग के समान ही कविवर रहीम की सूक्तियाँ भी इतिहास प्रसिद्ध है। रहीम काव्य का आधार उनकी भाव–सम्पदा है। धर्म दर्शन और नीति सम्बन्धी उनके अनेक कथन मार्मिक सूक्ति बन गये हैं। उनकी अनुभूतिपूर्ण संवेदनशील सूक्तियाँ बरबस ही पाठक को अपना बना लेती हैं। अपनी सूक्तियों की पुष्टि करने के लिए रहीम ने लोक–जीवन का सहारा लिया है, जिनके चयन में कवि की गहन निरीक्षण शक्ति और जीवनानुभूमि का पता चल जाता है ––

(अ) पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय।[25]

(आ) पासे अपने हाथ में दाव न अपने हाथ।[26]

(इ) मीठो भावै लोन पै अरू मीठे पै लोन।[27]

(ई) काटे चाटे स्वान के दोउ भाँति विपरीत।[28]

(उ) बन्धुमध्य धनहीन है बसिबो उचित न जोग।[29]

निष्कर्ष–उपर्युक्त उदाहरण तो हमारे विवेच्य कवियों की सूक्तियों की बानगी भर है, उभय कवियों के काव्य में ऐसी मार्मिक सूक्तियों का सागर लहराता है। दोनों कवियों के नीति सम्बन्धी छन्दों में मानव स्वरूप के विभिन्न पहलुओं और उसके दैनिक आचरण का सच्चा चिट्ठा प्राप्त होता है। कवित्त और सवैया छन्दों को अपनाने के कारण गंग को अपनी बात को अनेक प्रमाणों से सिद्ध करने की सुविधा रही है किन्तु रहीम ने तो दो पंक्तियों के दोहा छन्द में ही अपनी बात को सटीक सूक्ति के माध्यम से प्रमाणित कर दिया है। शाही दरबार में रहने के कारण गंग ने कहीं–कहीं दोसुखनों की शैली को भी अपनाया है, जो दरबारों में उक्ति वैचित्र्य के लिए प्रयोग की जाती थी। रहीम ने अपने दोहों में समास शक्ति का उपयोग करते हुए कथन के सम्पूर्ण भाव को एक पंक्ति अथवा दोहे के एक चरण में ही समेट लिया है। उनके ऐसे नीति कथन भारतीयों की जिह्वा पर सदा नाचते रहते हैं। निश्चय ही उभय कवियों की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति बेजोड़ थी और नीति की उक्तियों को अभिव्यक्त करने में दोनों ही कवियों को महारत हासिल था। दोनों को अपने समकालीन कवियों के मध्य सम्मानजनक स्थान प्राप्त है।

सन्दर्भ

1. डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स नोएडा, 24वाँ संस्करण पृ. 246–247
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, 34वॉ संस्करण सं0 2056 वि. पृ. 112
3. सं0 डा0 धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश'– भाग 1, ज्ञान मंडल लिमि0 वाराणसी द्वितीय संस्करण सं0 2020 वि. पृ. 457 टिप्पणीकार– डॉ. उदयशंकर शास्त्री।
4. डॉ. श्री निवास बुड़लाकोटी, महापुराणों में पुरुषार्थ चतुष्टम्', इण्डोविजन, प्रा0लि0 गाजियाबाद, प्रथम संस्करण 1992 पृ. 37
5. सं. बटेकृष्ण, गंग कवित्त, नागरी प्रचारणी सभा काशी, प्रथम संस्करण सन् 2017 वि0 छन्द क्रमांक 379
6. सं. विद्यानिवास मिश्र, रहीम ग्रन्थावली, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004ई0 'दोहावली' क्रमांक 34
7. गंग कवित्त', वही, छन्द क्रमांक 412
8. रहीम ग्रन्थावली, वही, दोहावली, क्रमांक 138
9. गंग कवित्त– वही, छन्द क्रमांक 392
10. रहीम ग्रन्थावली, वही, दोहावली, क्रमांक 64
11. गंग कवित्त– वही छन्द क्रमांक 405
12. रहीम ग्रन्थावली– वही, दोहावली, क्रमांक 208
13. गंग कवित्त– वही, छन्द क्रमांक 423
14. 'रहीम ग्रन्थावली'– वही, दोहावली, क्रमांक 177
15. डॉ. सुधीन्द्र, 'हिन्दी कविता में युगान्तर', सतसाहित्य प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 139
16. गंग कवित्त, वही, छन्द, क्रमांक 415
17. रहीम ग्रन्थावली, वही, दोहावली क्रमांक 35
18. रहीम ग्रन्थावली, वही, दोहावली क्रमांक 240
19. हिन्दी साहित्य कोश भाग–1 वही पृ. 935 टिप्पणीकार– डॉ0 शम्भूनाथ सिंह
20. गंग कवित्त, वही, छन्द क्रमांक 407
21. गंग कवित्त, वही, छन्द क्रमांक 396
22. गंग कवित्त, वही, छन्द क्रमांक 431
23. गंग कवित्त, वही, छन्द क्रमांक 434
24. गंग कवित्त, वही, छन्द क्रमांक 406
25. रहीम ग्रन्थावली, वही, दोहावली क्रमांक 26
26. रहीम ग्रन्थावली– वही, दोहावली क्रमांक 120
27. रहीम ग्रन्थावली, वही, दोहावली क्रमांक 121
28. रहीम ग्रन्थावली, वही, दोहावली क्रमांक 184
29. रहीम ग्रन्थावली, वही, दोहावली क्रमांक 263

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 57-63

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

बी.एड्. एवं डी.एल.एड्. प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन

*डॉ. मुकेश कुमार सिंह**

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र विज्ञान, कला, साहित्य, संगीत एवं राजनीति में सृजनात्मकता की आवश्यकता होती है। किसी भी देश का बहुमुखी विकास सृजनशील व्यक्तियों पर ही आधारित होता है।

सृजनात्मकता व्यक्तित्व और बुद्धि की अपेक्षा कम अन्वेषित है। भारत में विदेशों की अपेक्षा इस क्षेत्र में कम शोध कार्य हुए है। प्राचीनकाल में इसका क्षेत्र साहित्य, संगीत, गणित आदि कुछ ही विषयों तक सीमित था परन्तु अब धीरे–धीरे इसका क्षेत्र व्यापक होता जा रहा है।

वर्तमान समय के प्रतियोगितापूर्ण समय में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र सृजनात्मक मस्तिष्क की आवश्यकता है। अतः प्रत्येक देश का यह कर्त्तव्य है कि वह सृजनात्मकता को प्रश्रय देने का समुचित प्रबन्ध करें ताकि यही बालक और युवा छात्र भविष्य में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समाज को निर्देशित करने में राष्ट्र की सफलता एवं प्रगति के पथ पर ले जाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

शिक्षा व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया है और चरित्र उसी विकास का परिणाम है। शिक्षा जीवन पर्यन्त चलती रहती है। अपनी गत्यात्मक प्रकृति के कारण शिक्षा के क्षेत्र में समय–समय पर अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती रहती है। शिक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित व्यक्तियों को उत्पन्न समस्या समाधान हेतु अनेक प्रकार के प्रयास करने पड़ते है। शिक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की नीतियों का निर्धारण शिक्षा के क्षेत्र से सम्बन्धित प्रशासकों को करना पड़ता है। परन्तु समाज में व्याप्त विभिन्न अन्तर्विरोधों के कारण आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में गुणवत्ता के मूल्यांकन की आवश्यकता अत्यन्त गम्भीर हो गयी है। शिक्षा व्यवस्था को सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए शैक्षिक संस्थानों में सृजनात्मक ढंग से शिक्षक प्रशिक्षण प्रक्रिया की सराहनीय भूमिका होती है। सृजनात्मक ढंग से शिक्षक प्रशिक्षण की प्रक्रिया विद्यालय एवं अभिभावकों आदि के लिए अत्यन्त महत्व रखती है। सृजनात्मकता की प्रक्रिया कहीं न कहीं से विद्यालय की व्यवस्था छात्रों की सम्प्राप्ति, शिक्षक की शिक्षण विधि, अभिभावकों के अपने पाल्यों की प्रगति को प्रभावित करती रहती है।

एक प्रशिक्षित कुशल प्रशिक्षुओं के बनाने के लिए जितनी आवश्यकता शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की है, उससे ज्यादा प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे पुरुष एवं महिला प्रशिक्षुओं को सृजनात्मकता से होती है। अतः लघु शोध के माध्यम से प्रशिक्षुओं में सृजनात्मकता के विभिन्न तत्त्वों के आधार पर अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य–प्रस्तुत शोध अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं–

1. बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रषिक्षणार्थियों की सष्जनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 महिला प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

1. परिकल्पना–बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

2. बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 महिला प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

* *असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

4. शोध विधि

5. प्रस्तुत शोध कार्य हेतु अनुसंधानकर्त्ता ने प्रयागराज जनपद के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों का चयन किया गया है तथा इनमें से 100 बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थी (25 पुरुष प्रशिक्षु एवं 25 महिला प्रशिक्षु) तथा डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थी (25 पुरुष प्रशिक्षु एवं 25 महिला प्रशिक्षु) का चयन किया जायेगा।

क्र0	महाविद्यालय का नाम	बी0एड0		डी0एल0एड्0	
		पुरुष	महिला	पुरुष	महिला
1.	नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज	12	13	12	13
2.	जगपत सिंह सिंगरौर डिग्री कालेज, प्रयागराज	13	12	13	12
	योग	**25**	**25**	**25**	**25**

प्रस्तुत अध्ययन के लिए **डॉ0 रोमा पाल** का **सृजनात्मक शाब्दिक परीक्षण** को अपने शोध में उपकरण हेतु लिया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण–

H_1 बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के प्रवाह (Fluency) पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर है।

H_{01} – बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के प्रवाह (Fluency) पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर नही है।

तालिका–4.1

बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के प्रवाह (Fluency) का मध्यमान, मानक त्रुटि एवं क्रान्तिक अनुपात

क्र0 सं0	समूह	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	मध्यमानों का अन्तर (M_1~M_2)	मानक त्रुटि (S_{ED})	क्रान्तिक अनुपात (C.R. Value)	परिणाम
1	बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थी	50	51.12	8.89	0.05	1.48	0.033	असार्थक< 0. 05(1.98)
2	डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थी	50	51.17	8.55				असार्थक< 0. 01(2.63)

तालिका संख्या 4.1 से स्पष्ट है कि बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के की प्रवाह (Fluency) के प्राप्तांकों का मध्यमान क्रमशः 51.12 तथा 51.17 है तथा दोनों वर्गों का मानक विचलन क्रमशः 8.89 तथा 8.55 है। जिसकी मानक त्रुटि 1.48 है। दोनों समूह के परिगणित क्रान्तिक अनुपात (CR) का मान 0.033 है जो .05 तथा .01 सार्थकता स्तर पर स्वायत्तता अंश ∞ के लिये दिये गये सारणी मान 1.98 तथा 2.63 से कम है। अतः

मध्यमान का अन्तर उक्त सार्थकता स्तर पर असार्थक है और शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है तथा शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

अतः निष्कर्षतः बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के प्रवाह (Fluency) पर प्राप्तांकों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् दोनों में समान प्रवाह है।

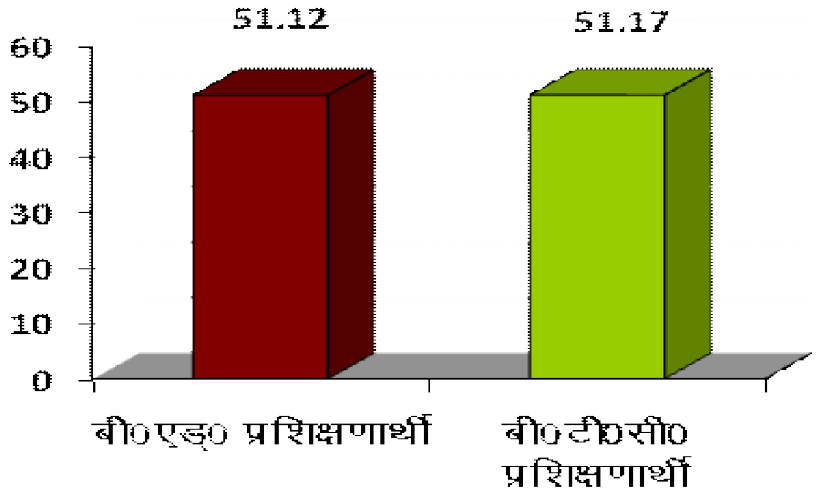

आरेख चित्र–4.1

बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के प्रवाह (Fluency) का मध्यमान का आरेख चित्र

H_2 – बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के विविधता (Flexibility) पर प्राप्तांकों के मध्य सार्थक अन्तर है।

H_{02} – बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के विविधता (Flexibility) पर प्राप्तांकों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका – 4.2

बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के विविधता (Flexibility) का मध्यमान, मानक त्रुटि एवं क्रान्तिक अनुपात

क्र0 सं0	समूह	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	मध्यमानों का अन्तर (M_1~M_2)	मानक त्रुटि (S_{ED})	क्रान्तिक अनुपात (C.R. Value)	परिणाम
1	बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थी	50	51.30	7.71	0.32	1.39	0.229	असार्थक< 0. 05(1.98)
2	डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थी	50	51.62	6.16				असार्थक< 0. 01(2.63)

तालिका संख्या 4.2 से स्पष्ट है कि बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के की विविधता (Flexibility) के प्राप्तांकों का मध्यमान क्रमशः 51.30 तथा 51.62 है तथा दोनों वर्गों का मानक विचलन क्रमशः 7.71 तथा 6. 16 है। जिसकी मानक त्रुटि 1.39 है। दोनों समूह के परिगणित क्रान्तिक अनुपात (CR) का मान 0.229 है जो .

05 तथा .01 सार्थकता स्तर पर स्वायत्तता अंश ∞ के लिये दिये गये सारणी मान 1.98 तथा 2.63 से कम है। अतः मध्यमान का अन्तर उक्त सार्थकता स्तर पर असार्थक है और शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है तथा शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

अतः निष्कर्षतः बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के विविधता (Flexibility) पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर नही है अर्थात् दोनों के मध्य विविधता में समानता है।

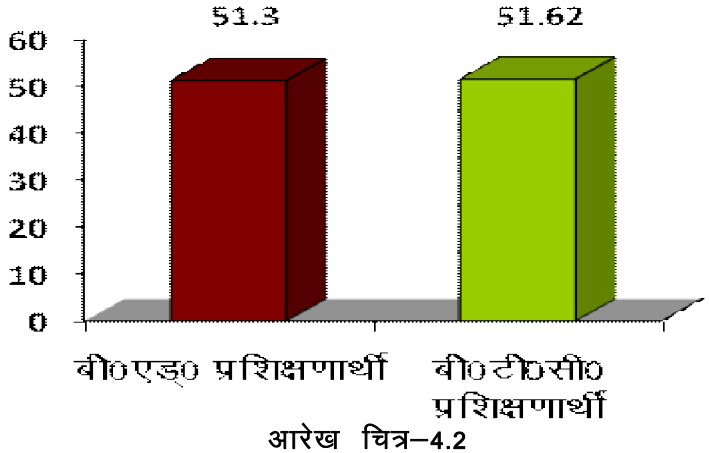

आरेख चित्र–4.2

बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के विविधता (Flexibility) **का मध्यमान का आरेख चित्र**

H_3 - बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के मौलिकता (Originality) **पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर है।**

H_{03} - बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के मौलिकता (Originality) **पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर नही है।**

तालिका – 4.3

बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के मौलिकता (Originality) का मध्यमान, मानक त्रुटि एवं क्रान्तिक अनुपात

क्र0 सं0	समूह	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	मध्यमानों का अन्तर (M_1~M_2)	मानक त्रुटि (S_{ED})	क्रान्तिक अनुपात (C.R. Value)	परिणाम
1	बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थी	50	54.42	2.26	1.08	0.53	2.037	सार्थक< 0.05(1.98)
2	डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थी	50	53.34	2.99				असार्थक< 0.01(2.63)

तालिका संख्या 4.3 से स्पष्ट है कि बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के की मौलिकता (Originality) के प्राप्तांकों का मध्यमान क्रमशः 54.42 तथा 53.34 है तथा दोनों वर्गों का मानक विचलन क्रमशः 2.26 तथा 2.99 है। जिसकी मानक त्रुटि 0.53 है। दोनों समूह के परिगणित क्रान्तिक अनुपात (CR) का मान 2.037 है जो .01 सार्थकता स्तर पर स्वायत्तता अंश ∞ के लिये दिये गये सारणी मान 2.63 से कम है। अतः मध्यमान का अन्तर उक्त सार्थकता स्तर पर असार्थक है और शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है तथा शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

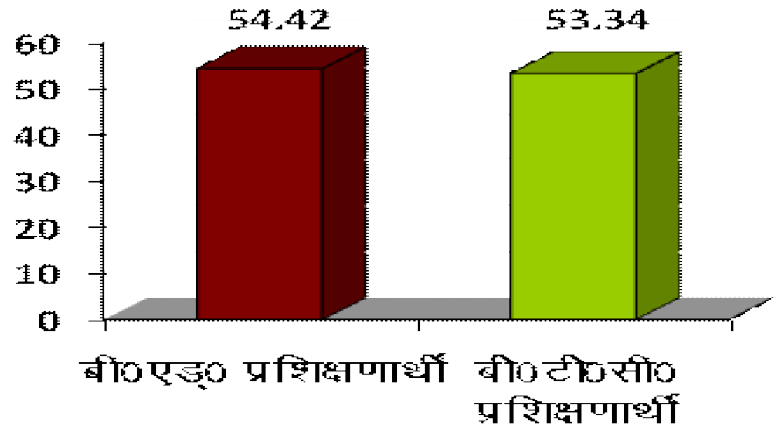

आरेख चित्र–4.3

बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के मौलिकता (Originality) **का मध्यमान का आरेख चित्र**

H_4 – बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मकता (Creativity) **पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर है।**

H_{04} – बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मकता (Creativity) **पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।**

तालिका – 4.4

बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मकता (Creativity) **का मध्यमान, मानक त्रुटि एवं क्रान्तिक अनुपात**

क्र0 सं0	समूह	संख्या **(N)**	मध्यमान **(M)**	मानक विचलन **(SD)**	मध्यमानों का अन्तर **(M_1~M_2)**	मानक त्रुटि **(S_{ED})**	क्रान्तिक अनुपात **(C.R. Value)**	**परिणाम**
1	बी0एड्0 प्रशिक्षणार्थी	50	156.84	16.96	0.71	2.94	0.242	असार्थक< 0. 05(1.98)
2	डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थी	50	156.13	11.98				असार्थक< 0. 01(2.63)

तालिका संख्या 4.4 से स्पष्ट है कि बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता (Creativity) के प्राप्तांकों का मध्यमान क्रमशः 156.84 तथा 156.13 है तथा दोनों वर्गों का मानक विचलन क्रमशः 16.96 तथा 11.98 है। जिसकी मानक त्रुटि 2.94 है। दोनों समूह के परिगणित क्रान्तिक अनुपात (CR) का मान 0.242 है जो .05 एवं .01 सार्थकता स्तर पर स्वायत्तता अंश ∞ के लिये दिये गये सारणी मान 1.98 एवं 2.63 से कम है। अतः मध्यमान का अन्तर उक्त सार्थकता स्तर पर असार्थक है और शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है तथा शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

अतः निष्कर्षतः .01 सार्थकता स्तर पर बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मकता (Creativity) पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् दोनों के मध्य सृजनात्मकता में समानता है।

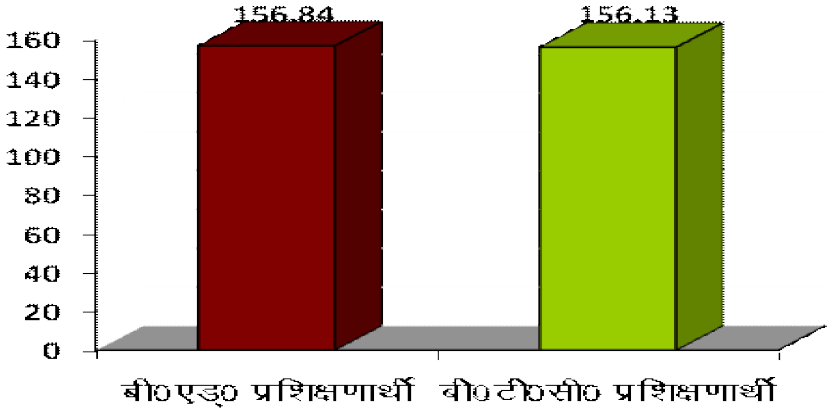

आरेख चित्र–4.4

बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मकता (Creativity) **का मध्यमान का आरेख चित्र**

शोध निष्कर्ष–विभिन्न सांख्यिकीय गणना के आधार पर निष्कर्ष–

- .05 एवं .01 दोनों स्तर पर बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के प्रवाह (Fluency) पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् दोनों में समान प्रवाह है।
- .05 एवं .01 दोनों स्तर पर बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के विविधता (Flexibility) पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् दोनों के मध्य विविधता में समानता है।
- .01 सार्थकता स्तर पर बी0एड्0 एवं डी0एल0एड्0 प्रशिक्षणार्थियों के मौलिकता (Originality) पर प्राप्ताकों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् दोनों के मध्य मौलिकता में समानता है।

शैक्षिक निहितार्थ–मनुष्य द्वारा बुद्धिमता पूर्ण किया गया कार्य निरूद्देश्य का महत्व भी उसकी उपयोगिता पर ही निर्भर करता है। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में किया गया शैक्षिक अनुसंधान तक तक सफल और सार्थक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक उसकी शैक्षिक उपयोगिता न हो, सृजनशीलता के परीक्षण का सर्वाधिक उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में ही किया जाता है। प्रस्तुत शोध की उपयोगिता निम्नलिखित महत्वों के कारण और भी बढ़ जाता है क्योंकि–

- सृजनशीलता बालकों की पहचान कर लेने के उपरान्त सम्बन्धित विषयों की रुचियों के अनुसार उपयुक्त कार्यों में लगाया जा सकता है, जिससे वे उत्तरोत्तर वृद्धि कर सकेंगे।
- प्रशिक्षणार्थियों की व्यक्तिगत सृजनशीलता स्तर को ज्ञात करके उनको व्यक्तिगत विभिन्नता को ध्यान में रखकर अधिगम कराया जा सकता है।
- सृजनशीलता बालकों को अभिप्रेरित कर उनकी प्रतिभा को अधिकतम् बिन्दु पर बढ़ाया जा सकता है।
- प्रशिक्षाणार्थियों के व्यवहार की जाँच की जा सकती है।
- व्यवहार के किसी भी क्षेत्र में श्रेष्ठता का पता लगाया जा सकता है।
- बुद्धि की गहराई का पता लगाकर उसे आगे बढ़ाने में सहायता दी जा सकती है।
- इसके द्वारा प्रशिक्षणार्थियों में समायोजन क्षमता का मापन किया जा सकता है।
- सृजनात्मकता मापन के आधार पर व्यक्तित्व परीक्षण किया जा सकता है।
- विशिष्ट योग्यता की जानकारी प्राप्त हो सकती है और तद्नुकूल व्यवसायिक ज्ञान तथा निर्देशन देने की व्यवसायिक ज्ञान तथा निर्देशन देने की व्यवस्था की जा सकती है।
- कलाकार, वैज्ञानिक, उत्पादक बनने के लिए प्रयोज्यों की पहचान की जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कपिल, एच.के. (2010), *अनुसंधान विधियाँ,* एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

2. कोबस, रीना; मैक्सवेल ली; प्रोवो, जेनेट (2007) इन्क्रीजिग मोटीवेशन ऑफ एलीमेटंरी एंड मिडिल स्कूल स्टूडेट्स थ्रू पोजिटिव रेनफोर्समेट एडं स्टूडेट सेल्फ एसेस्मेटस, डिजर्टेशन, ई0आर0आई0सी0 वेब पोर्टल।

3. क्वोन, ओह नाम; पार्क, जुंग सोक; पार्क जी हून (2006) कल्टीवेटिंग डाइवरजेंट थिंकिंग इन मैथमैटिक्स थ्रू एन ओपेन एंडेड अप्रोच, एशिया पैसिफिक एजजुकेशन रिव्यू अंक 7 सं0 2 पृ. 51–61, ई0आर0आई0 सी0 वेब पोर्टल।

4. कैरोकीन, डिया (2005) क्रियेटिविटी–कैन इट बी ट्रेंन्ड? अ सांइटिफिक एजुकोलोजी ऑफ क्रियेटिविटी,, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकोलॉजी लिथुअनियन इंस्टी,0, पृ. 31–51 ई0आर0आई0सी0वेब पोर्टल।

5. कूपर, कैरोलीन आर0; बाम, सूसन एम; न्यूटेरी डब्ल्यू (2006) डेवलपिंग साइंटिफिक टेलेंट इन स्टूडेट्स विद स्पेशल नीड्स एन अल्टरनेटिव मॉडेल फॉर आइडेंटिफाइंग, क्यूरिकूलम एंड असेसमेट, जर्नल ऑफ क्रियेटिविटी, अंक 12 सं 3 पृ. 146–154 ई0 आर0 आई0 सी0 वेब पोर्टल।

6. किंग नैंसी (2007), डेवलपिंग इमेजिनेशन, क्रियेटिविटी एंड लिटरेसी थ्रू कोलेबोरेटिव स्टोरी मेकिंग अ वे ऑफ नोइंग, हारवर्ड एजुकेशनल रिव्यू, अंक 77, सं. 2, पृ. 204–227, ई0आर0आई0सी0 वेब पोर्टल।

7. गुप्ता, डॉ.एस.पी. (2008), *आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन,* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

8. गुप्ता, डॉ.एस.पी. (2009), *शिक्षा मनोविज्ञान,* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

9. गुप्त, डॉ. गौरी शंकर (1996–97), *सृजनशीलता : स्वरूप और विकास,* प्रकाशक–श्रीमती गणेश्वरी देवी गुप्ता, नहरबाग, फैजाबाद।

10. गुप्ता, रामबाबू (2003), *शिक्षा मनोविज्ञान,* अलका प्रकाशन, कानपुर–5

11. गुंथर, एलेक्स (1995), व्हाट एजुकेटर्स एंड पैरेंट्स नीड टू नो एबाउट ए0 डी0, एच0 डी0 क्रियेटिविटी एंड गिफ्टेड स्टूडेंट्स, द नेशनल रिसर्च सेंटर आन द गिफ्टेड एंड टेलेंटेड, यूनिवर्सिटी आफ कनेक्टिकर, अंक 18 सं0 4 पृ. 3–6, ई0 आर0 आई0 सी0 वेब मोर्टल।

12. गैरेट, हेनरी ई0 (2004), *इस्टैटिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन,* पैरागोन इण्टरनेशनल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

13. चतुर्वेदी, अरूण कुमार (2008). इलाहाबाद नगर के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थियों की सृजनशीलता का तुलनात्मक अध्ययन, अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध, एग्रीकल्चर डीम्ड विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

14. जांबोजस्की जूडिथ एस0; मैकार्थी लिन (2007) न्यूमरेसी इन प्रैक्टिस, प्रिंसिपल लीडर शिप, अंक 7 सं0 5 पृ. 32–37

15. जायसवाल, विजय (2007), ए स्टडी ऑफ साइंटिफिक क्रियेटीविटी एण्ड अचीवमेन्ट मोटिवेशन ऑफ ग्रेड टेन्थ स्टूडेन्ट्स ऑफ डिफरेन्ट एजुकेशनल बोर्ड्स ऑफ कानपुर सिटी,, जर्नल ऑफ टीचर एजुकेशन एण्ड रिसर्च, नोएडा : राम–ईश इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, अंक–2 सं.–1, पृ. 40–45

16. डनबार के0 (1995) हाऊ साइंटिस्ट्स मिली रीजन साइंटिफिक रीजनिंग इन रीमलवर्ड लैबोरेटरीज, कैम्ब्रिज, एम0ए0एम आई0 टी0 प्रेस पृ. 365–395 डार्ट माऊथ वेब पोर्टल।

17. तिवारी, श्वेता (2014), माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि एवं सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन, अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

18. थैगार्ड, पी0; होलीओक, के0 जे0 (1995) मेटल लीप्स एम0आई0टी0 प्रेस0, कैम्ब्रिज, एम0 ए0, डार्टमाऊथ बेव पोर्टल।

19. पाठक, पी0डी0, *शिक्षा मनोविज्ञान,* अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

20. प्रसाद, बीना (1999), क्रियेटिविटि इन रिलेशन ट् स्टडी हैबिट एण्ड एट्टीट्यूडस टुअर्ड स्टूडेन्ट्स ऑफ हाईस्कूल प्यूपिल ऑफ कानपुर, पी0 एच0 डी0, एजुकेशन छ0शा0म0 यूनि0 कानपुर

21. प्रताप, अजित (2012), छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत महिला एवं पुरुष प्रशिक्षुओं की सृजनशीलता का तुलनात्मक अध्ययन, अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 64-66

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

छायावाद : महादेवी वर्मा की रचनाओं में नारी

*प्रतिभा यादव**

हिंदी कविता के क्षेत्र में छायावाद का उल्लेख 1918 ई0 के आस–पास मिलने लगता है। इस काल के आस–पास साहित्य में एक नये मोड़ का आरम्भ हो गया था, जो पुरानी काव्य–पद्धति को छोड़कर एक नयी पद्धति के निर्माण का सूचक था। यह युग हिंदी साहित्य में आधुनिकीकरण का युग है। यह काव्य पूर्ण और सर्वांगीण–जीवन के उच्चतम आदर्श को व्यक्त करने का प्रयास करता है। छायावाद के इस काल में अत्यंत विपुल काव्यराशि का निर्माण हुआ। एक ओर प्रसाद, निराला, पंत आदि कवि भी इसी युग में हुए, जिनका प्रधान लक्ष्य साहित्य–साधना था वहीं इसी युग में महादेवी वर्मा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उनका साहित्य–व्यक्तित्व बहुआयामी है। आधुनिक हिंदी साहित्य के विराट प्रकाश स्तम्भों में महादेवी वर्मा एक स्थापित प्रकाश स्तम्भ है। संवेदना, दृढ़ता और आक्रोश का अद्भुत संतुलन है उनमें, चाहे वह अध्यापक का स्वरूप हो अथवा कवि, गद्यकार, समाज सेवी, पशु प्रेमी और विदुषी का। उनकी रचनाओं में समाज की विषाक्त रुढ़ियों, भ्रष्टाचारों तथा कुण्ठाओं का ही समावेश है और उन्होंने उन रूढ़ियों, भ्रष्टाचारों को दूर करने का भरसक प्रयास भी किया है। महादेवी वर्मा नारी के लिए कहती हैं कि–''भारतीय नारी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राण प्रवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं।''[1]

महादेवी वर्मा के संस्कारजन्य व्यक्तित्व में नारी की कोमलता, करूणा और खिन्न भावना भी निहित है। नारी की कोमलता ने उनके व्यक्तित्व को मधुर बनाने के साथ सौम्य भी बनाया है। महादेवी वर्मा का मन दीनहीन, परंपरा में जकड़ी नारियों और असहाय–विवश मानवों के कल्याण के लिए सदैव संवेदनशील रहा है। महादेवी जी ने अपने पद्य एवं गद्य के माध्यम से अन्यान्य विषयों पर चर्चा की है। उन्हीं विषयों में एक विषय स्त्री विमर्श को भी उन्होंने बड़ी दृढ़ता से उठाया है। महादेवी जी की इन दो पंक्तियों से नारी मुक्ति की भावना उग्र होती है–

''तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है,
जा रहे जिस पन्त से युग–कल्प उस छोर क्या है।
क्यों मुझे प्राचीर बनकर आज मेरे श्वास घेरे
फिर विकल है प्राण मेरे।''[2]

महादेवी वर्मा स्त्री के उस रूप की चर्चा करती हैं जो अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही है। अपने विचारों में स्त्री पराधीनता को, उनके मुक्ति के स्वप्न को चरम पर रखती हैं। उन्होंने नारी मन को न केवल गहरे तक टटोल कर स्त्री विमर्श की शुरूआत की बल्कि आज से करीब आठ दशक पहले कुरीतियों को नकारने का साहस भी दिखाया था। उपेक्षित एवं उत्पीड़ित नारी की आन्तरिक वेदना की मार्मिक आख्यान वे प्रस्तुत करती हैं। महादेवी वर्मा अपने गद्य साहित्य में भारतीय नारी के पीड़ित जीवन के वास्तविक अनुभव को अभिव्यक्ति देती हैं, महादेवी ने समस्त भारतीय नारी के दुःखों, कष्टों का अनुभव कर उसे अभिव्यक्त किया है–

''मैं नीर भरी दुःख की बदली,
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मछली।''[3]

* *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

इस पंक्ति में वह सिर्फ अपनी ही व्यथा नहीं कहती हैं उनकी व्यथा सम्पूर्ण नारी जाति की व्यथा थी। स्त्रियों की स्थिति के बारे में कलम के जरिए पहली आवाज उन्होंने ही उठाई। महादेवी वर्मा आधुनिक भारत में स्त्री विमर्श की जननी हैं। 'श्रृंखला की कड़ियाँ में' स्त्रियों की मुक्ति और विकास के लिए उन्होंने जिस साहस व दृढ़ता से आवाज उठाई है उससे उन्हें महिला मुक्तिवादी भी कहा गया।

इन्द्रनाथ मदान कहते हैं–''एक नारी होने के कारण उन्होंने अतहत प्रेम को खुलकर व्यक्त करने की अपेक्षा प्रतीक पद्धति का आश्रय लिया। इसलिए उनकी वेदना तथा पीड़ा का स्वरूप लौकिक न होकर अलौकिक है, मानवीय न होकर रहस्यात्मक है।''[4] स्त्री मुक्ति से जुड़े अनेक प्रश्न, उन प्रश्नों से जुड़ी उनकी सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक बेबसी और उससे उत्पन्न स्त्री की मनःस्थिति का चित्रण अनेक स्तरों पर हुआ है। श्रृंखला की कड़ियाँ पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि यह स्त्रीवादी लेखन का अप्रतिम उदाहरण है क्योंकि श्रृंखला की सभी कड़ियाँ स्त्री गुलामी की कड़ियाँ है। इसलिए आलोचक प्रो0 मैनेजर पांडेय ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' का महत्व बताते हुए कहा है कि 'ऐसा लगता है कि नारीवादी और अन्य लेखिकाएं भी श्रृंखला की कड़ियों के महत्व से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। वे सिमोन द बउवा की किताब पढ़ती हैं लेकिन महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नहीं, क्योंकि वह हिंदी में लिखी गई है, फ्रेंच या अंग्रेजी में नहीं।

महादेवी वर्मा के निबन्ध भारतीय नारी की सामाजिक मुक्ति तथा बन्धन को व्यक्त करते हैं। उन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से केवल जीवन और साहित्य का ही विश्लेषण नहीं किया अपितु साहित्य में जीवन की सर्वांगीण प्रतिष्ठा और मानवतावादी समीक्षा को प्रस्तुत किया है। पंत जी कहते है–''वह विगत सामाजिक राग–मूल्यों के बन्धनों, जर्जर–रोपों की श्रृंखलाओं से मुक्ति भी चाहती है।''[5]

महादेवी वर्मा के काव्य में नारी अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक है, वह अपने अस्तित्व को कहीं भी कम करके नहीं आंकती और बराबरी का दावा करती है–

''उनसे कैसे छोटा है, मेरा यह भिक्षुक जीवन''[6] –**(यामा)**

नारी जीवन की समस्याओं, अतिरिक्त भावनाओं एवं कुण्ठाओं के साथ महादेवी ने अपने साहित्य में उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता की पुकार का भी विशुद्ध वर्णन किया है–

''विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द
शून्य होने को बढ़ते मेघ
दीप जलता होने को मन्द''[7] **(नीहार)**

महादेवी की कविता में अंधकार से जो आलोक का संघर्ष है वह भारतीय स्त्री के जीवन की पराधीनता के अंधकार से स्वाधीनता की आकांक्षा का संघर्ष है। महादेवी वर्मा भारतीय स्त्री की प्रतिनिधि के रूप में उसकी पराधीनता की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए कहती हैं–

''रात सी नीरव व्यथा,
तम सी अगम मेरी कहानी।''[8]

महादेवी वर्मा जी ने अपनी रचना कर्मों में नारी की स्थिति के कई पहलुओं को छुआ है। महादेवी वर्मा के संस्मरणों में अनेक विशेषताएं हैं। महादेवी ने अपने संपर्क में आये सामान्यजनों को अपने संस्मरणों का विषय बनाया। साथ ही नारी समस्या एवं मानवीय मूल्यों को संस्मरणात्मक ढंग से चित्रित करना उनकी निजी कला है। 'अतीत के चलचित्र' महादेवी वर्मा की समाज केन्द्रित रचना है। इस संसार में नारी का मन दुःख से ग्रसित है। महादेवी जी नारी की समस्याओं से दुखित हैं। वे कहती हैं– ''जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया, वैसे ही घर के एक कोने से दूसरे तक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। बड़ी–बूटीयाँ संकेत से मूक गाने वालियों को जाने के लिए कह देती और बड़े–बूढ़े इशारे से नीरव बाजा वालों को विदा देते हैं–यदि ऐसे अतिथि का भार उठाना परिवार की शक्ति से बाहर होता, तो उसे बैरंग लौटा देने के उपाय भी सहज थे।''[9]

महादेवी वर्मा अपनी गद्य रचनाओं ' श्रृंखला की कड़ियाँ', 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाओं के माध्यम से नारी की पराधीनता को दूर करने का प्रयास किया है। नारी के विविध रूप पात्रों के माध्यम से समाज में स्थापित

कुरीति, छुआ–छूत, विडम्बना एवं असमानता को दर्शाया है तथा जहाँ एक ओर नारी को अकिंचन, असहाय, निर्बल और अबला दर्शाते हुए उसकी करूणा को प्रकट किया है वहीं दूसरी तरफ नारी की सबलता, सहनशीलता और प्रखरता स्थापित करने में उनका बहुत बड़ा योगदान रहा। महादेवी जी ने अपने काव्य एवं गद्य विधाओं के माध्यम से नारी पात्र को समाज में प्रतिष्ठित करने का कार्य किया है। महादेवी वर्मा ने लिखा है– ''स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारतीय नारी की स्थिति में राजनीतिक और वैधानिक दृष्टि से जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए उनके अनुसार समाज में परिवर्तन नहीं हो सका।''[10]

महादेवी वर्मा ने स्त्रियों के प्रति जो उद्‌गार व्यक्त किये वह उनके गद्य एवं पद्य दोनों में व्यक्त होते हैं। स्त्री विमर्श पर महादेवी ने स्वानुभूति की भावना एवं नारी मुक्ति को प्रदर्शित किया है। अपना विनम्र साहसिकता के सहारे शब्द संसार में उन्होंने जो कुछ दिया है वह कालजयी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ. 9
2. सं. ममता कालिया, उत्तर प्रदेश पत्रिका, स्त्री विशेषांक, मई– 2003 उ.प्र. सरकार
3. महादेवी वर्मा, यामा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. सं. इन्द्रनाथ मदान, महादेवी वर्मा : चिन्तन व कला, पृ. 58, राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली।
5. इन्द्रनाथ मदान, महादेवी वर्मा : चिन्तन व कला, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
6. महादेवी वर्मा, यामा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
7. महादेवी वर्मा, यामा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. महादेवी वर्मा, यामा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ. 18
10. महादेवी वर्मा, नये दशक में महिलाओं का स्थान, पृ. 12

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 67-70

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

कमलेश्वर के उपन्यासों में स्त्री के विविध रूपों का चित्रण

*प्रियंका सहाय**

जहाँ सृष्टि की उत्पत्ति व दुनिया की आधी आबादी का आधार स्त्री ही रही है, फिर भी वह अपने अधिकारों से वंचित नजर आती दिखाई देती है। लेकिन 20वीं शती के बाद से स्त्रियों में, अपनी अस्मिता को लेकर संघर्ष दिखाई देना प्रारम्भ हो जाता है। वे स्वयं को स्थापित करने के लिए अग्रसरन्मुखी होती नजर आयी हैं।

प्रस्तुत विषय के अन्तर्गत कमलेश्वर के उपन्यासों में स्त्री पात्रों के विविध रूपों का बखूबी अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने नारी के जीवन के सभी पक्षों–यातना, कर्म, संघर्ष, अवमान को पूरी तरह से उद्घाटित किया गया है। साथ ही उसकी मानवीय अस्मिता की वकालत भी करते हैं और उसके प्रति होने वाले किसी भी प्रकार के शोषण को बेनकाब करने में पूरी दृष्टि लगा देते है। कमलेश्वर अपनी यात्रा–गांव, कस्बे से लेकर शहर और महानगर तक रही और वर्गों के विविध परिवारों, विविध नारियों का साक्षात्कार किया।

ग्रामीण तथा कस्बाई स्त्री–अगर देखा जाय तो भारत की सच्ची तस्वीर हमें गांवों में ही देखने को मिलती है। भारतीय संस्कृति का संरक्षण ग्रामीणों के कारण ही हुआ। वहां के तीज, त्यौहार, व्रत, धर्म, पूजा उत्सव–पर्व, लोक गीत व लोक संगीत, खान–पान, रहन–सहन, बोली भाषा तथा रुढ़ि परम्पराओं का पालन अभिन्न अंग रहा है। प्रकृति प्रेम, खेत–खलिहान आदि से लगाव आदि होता है। उसी प्रकार हम कस्बा को देखे तो, वह जो पूरी तरह न गांव हो, न पूरी तरह शहर हो, दोनों का मिला–जुला रूप ही कस्बा कहलाता है।

इस तरह कमलेश्वर के उपन्यासों में कस्बाई और ग्रामीण दोनों का यथार्थ रूप सजीव हो उठा है। जहां जनसंख्या की आधी आबादी से तात्पर्य है स्त्री। क्योंकि नारी के बिना हमारे देश की जनसंख्या को पूरी नहीं कही जा सकती है। स्त्री–पुरुष जो परिस्थितियों से आपस में लड़ते–झगड़ते संघर्ष करते नजर आते हैं जिसका विश्लेषण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

निम्नवर्गीय अशिक्षित स्त्री–कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में निम्नवर्गीय अशिक्षित स्त्री के बारे में भी उनके आंतरिक गुणों को बहुत ही अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है। जैसा कि धार्मिक ग्रंथों, वेदों, पुराणों में नारी शिक्षा से स्त्रियों को वंचित रखा गया और जहां ग्रामीण, महिलाओं का शिक्षा का प्रश्न उठता है तो उसके उत्तर में हमारी व्यवस्था की नकारात्मक सोच और परंपरागत मान्यताएं बाधा बनती हुई दिखाई देती है। लेकिन जहां परिवार की बात आती है। वहां पर वह पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलती हुई दिखाई देती है।

'सुबह–दोपहर शाम' उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्र 'बड़ी दादी' का चरित्र बहुत ही अनूठा रहा है। जो एक संयुक्त परिवार की महत्वपूर्ण ईकाई के रूप में सामने आती है। जो बड़ी दादी है उन्हें प्रकृति से विशेष प्रेम है। वह अशिक्षित जरूर है पर गँवार नहीं हैं। उन्हें व्यावहारिक और प्राकृतिक ज्ञान बहुत अधिक है। इसलिए कमलेश्वर ने उपन्यास के आरम्भ में ही दादी को, जीव–जन्तुओं से अर्थात् चिड़ियों, साँपों, प्राणियों तथा पेड़–पौधों से बातें करते हुए चित्रित किया है।

'बड़ी दादी' के पति महाराज राजा साहब के खास सिपहसालार थे। जिन्होंने अपनी जान की बाजी लगाकर, राजा साहब की जान बचाई। उनके पति अंग्रेजों की गोलियों के शिकार हुए थे। इसी कारण दादी को अंग्रेजी हुकूमत से नफरत थी। अंग्रेजों से बदला लेने के लिए उन्होंने अपने वंशों के पुरुष (बेटे–पोतों) से अनेक अपेक्षाएं रखती हैं, पर बड़ी दादी का दुर्भाग्य ही रहा, न ही बेटा उनके पति का बदला लेता है और न ही पोता। दोनों मक्कार और डरपोक निकलते है। तब बड़ी दादी को बहुत तकलीफ होती है। वह जसवंत से कहती है ''देख जसवंत! रोटी

* *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, कोटवा, जमुनीपुर दुबावल, प्रयागराज*

को कुत्ता भी खाता है, जो टुकड़ा फेंक दो, उसे ही खा लेता है, पर मानुष रोटी–रोटी में भेद करता है। तू रोटी का भेद भूल गया है। जैसे तेरी बुआ भूल गई है। तेरी बुआ इसी पेट की जाई है, पर मेरी कोख उसे जन्म देकर चौदह बरस बाद काली पड़ गई। वह अपने आदमी के साथ अंग्रेजी बहादुर की रोटी तोड़नी लगी।''[1]

बड़ी दादी अशिक्षित ग्रामीण होते हुए, भी उसके चरित्र में हमें एक आदर्श महिला देशभक्त के दर्शन होते हैं।

बंसिरी–यह कमलेश्वर के उपन्यास–'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' की नायिका बंसिरी अशिक्षित नारी जरूरी है पर वह एक नौटंकी कलाकार है। जो पेट की भूख और मजबूरी के कारण शिक्षा ग्रहण नहीं कर पायी। उसके मन की अनेक अपेक्षाएं है वह महत्वाकांक्षिणी स्त्री है। ऊँचे–ऊँचे सपने देखती है। वह नौटंकी की मुख्य नायिका है, अनपढ़ होते हुए भी वह अभिनय कुशल नारी है, उसका पहला प्रेमी सरनाम सिंह उसके बारें में कहता है– ''बंसिरी कितनी बदल–सी गई है, कैसे कूल्हे मटकाना सीख गयी है। कुछ लाज शरम भी नहीं है। इसी कारण उसके भोलेपन का फायदा नौटंकी की हर व्यक्ति उठाना चाहता है। लेकिन बंसिरी जागरूक नारी है। बंसिरी नाट्य मंडली के एक नट को डाँटते हुए कहती है–''जा–जा अपने तबेले में सो, इधर का रूख किया तो जान सलामत नहीं।''[2]

निम्न–मध्यवर्गीय शिक्षित नारी–आधुनिक समय में स्त्री अपनी शिक्षा के प्रति जागरूक है वह अपने अधिकारों और अस्तित्व को शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व को निखारती है।

शांता–कमलेश्वर के नवीनतम् उपन्यास 'अम्मा' में केन्द्र बिन्दु शांता के चरित्र पर आधारित है। जो अपने स्वतन्त्र बौद्धिकता और अस्मिता के कारण पाठकों के मानस पटल पर अमिट छाप छोड़ती है। उसका बचपन गाँव में बीता और उसका विवाह एक कस्बे में हेड मास्टर प्रवीन के साथ हुआ, लेकिन वह अपने गाँव के संस्कारों को भुला नहीं पायी वह घर की सारी जिम्मेदारियाँ बखूबी निभाती है। अपने क्रांतिकारी देवर नवीन की हर वक्त व हर संभव सहायता करती है। तथा कई बार अंग्रेज अफसर से नवीन की जान बचाती है। अपने पति प्रवीन की गद्दार प्रवृत्ति के कारण उसे धिक्कारती भी है–''तुमने नवीन के साथ विश्वासघात नहीं किया बल्कि अपने देश के साथ गद्दारी की है...तुम गद्दार हो...देश के दुश्मन हो...आज से मेरा–तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं।''[3]

इस शिक्षा के कारण ही अपने देश के प्रति स्वाभिमान की भावना उसमें जागृत हुई है, अच्छे–बुरे की पहचान है। उसके साथ ही परिवार व कुल मर्यादा का भी वह भली–भांति निर्वाह करती है। सास–ससुर का बुढ़ापे का सहारा बनकर, आदर्श का निर्माण करती है।

'सलमा' 'लौटे हुए मुसाफिर' में एक स्वावलंबी नारी का रूप है। वह अपने अंधे बाप की सेवा करती है और वह घर की जिम्मेदारी उठाने के लिए, वह कस्बे के जनाने अस्पताल में नर्स की नौकरी करती है। उसका विवाह मकसूद से होता है, जो कि औरतों की तरह सजता–धजता है। सलमा पर अत्याचार भी करता है। जिसके कारण सलमा मकसूद को छोड़कर मैनपुरी कस्बे में रहने के लिए आती है।

सलमा के स्वावलंबन को इन शब्दों में कमलेश्वर ने चित्रित किया है–''वैसे वह जनाने अस्पताल में डॉक्टरनी की निजी नौकरानी है। मुँहफट होने के कारण साईं की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उसे बुलाकर कुछ कहे। सलमा पाँच वर्षों से मकसूद को छोड़कर अपने पिता जी के साथ रह रही थी।''[4]

निम्न मध्यवर्गीय सलमा अपने स्वतन्त्रता और अस्मिता के लिए सजग दिखाई देती है।

शोषित स्त्री–संतो/शांता 'सुबह–दोपहर, शाम' उपन्यास की 'संतो' एक शोषित स्त्री पात्र है। जिसका विवाह मैनपुरी कस्बे के प्रवीन के साथ हुआ जो हेडमास्टर है। उसके पिता जसवंत है जो नासिक रेलवे स्टेशन पर गार्ड की नौकरी करते हैं। प्रवीन संतो का शारीरिक मानसिक रूप से उत्पीड़न करता है। तब सांता प्रवीन की उपेक्षा करती है। प्रवीन गाँधी विचारधारा का व्यक्ति है। प्रवीन अपने भाई नवीन का विरोधी है। लेकिन, संतों अपने देवर नवीन के पक्ष में रहती है। यही कारण था कि प्रवीन उस पर अत्याचार करता है। लेकिन संतो को अपने गद्दार पति से कोई हमदर्दी नहीं है बल्कि तरस आता है वह कहती है ''तुम मेरा सुहाग जरूर हो लेकिन...देश के लिए कलंक हो।''[5]

इस पर प्रवीन संतो को मारता–पीटता है। बिरादरी के खातिर भी संतो प्रवीन का अत्याचार सहती हुई दिखाई देती है। हवेली वाली उसे हमेशा मानसिक रूप से प्रताड़ित करती रहती है।

बंसिरी 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' की नायिका बंसिरी भी न जाने कितनों के शोषण का शिकार हुई। रंगीले के हाथ चढ़ने के पहले ही कितने के सौदेबाजी का शिकार हो चुकी थी। सरनाम कहता है–''नौटंकी की बंसिरी और सत्तार और फिर कृष्ण मंडली के साथ बलराम से आंखे लड़ाती हुई...जो उसे पहचान कर भी नहीं, पहचानना चाहती थी और फिर गेंदा कवि के साथ रही हुई, बंसिरी न जाने कितने गेंदा, बलराम और सत्तारं।''[6]

आजादी के बाद वेश्या का नाम, रूप सब कुछ बदल गया है। पर नारी शरीर की सौदेबाजी में कोई बदलाव नहीं आया है। उसकी जिदंगी तो खिलौने की तरह है, जी भर खेला, खेल खत्म होते ही फेंक दिया। कमलेश्वर ने श्लील–अश्लील से परे जा कर सच्चाई का चित्रण किया है।

परावलंबी स्त्री–सुशीला–'रेगिस्तान' उपन्यास की ऐसी नायिका पात्र है–जो अपने पिता की आर्थिक तंगी के कारण अधेड़ उम्र के लड़के साथ, विश्वनाथ के दूर के रिश्ते से बड़े भाई से कर दिया जाता है। जिसका कारण यह होता है कि उसे हर चीजें के लिए अपने पति से समझौता करना पड़ता है। कई साल गुजर जाने पर भी कोई संतान नहीं होती। वह मातृत्व की इच्छा से भी वंचित रहती है। पति की मृत्यु के बाद वह पूरी तरह बेसहारा हो जाती है। वह कहती है–''बेकार धरती कितना करती है और लेकिन हासिल भी कुछ नहीं।''[7] सुशीला के इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह जिन्दगी से हार गई है। मन की इच्छा और आकांक्षाएँ मन में दबी रहीं। मानो कि उम्र की नहर ही सूख गई।

शहरी तथा महानगरीय नारी–कमलेश्वर जी ने शहरी तथा महानगरीय दोनों जिंदगियों की झाँकी अपने उपन्यासों में बखूबी चित्रित किया है। अपनी कलात्मकता और व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उनके कई उपन्यास और कहानियों में नगर–महानगर की संस्कृति और सभ्यता की पहचान कराते दिखाये दिये है।

शिक्षित स्त्री–'चित्रा' 'तीसरा आदमी' उपन्यास की नायिका है जो एक सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुन्दर, व समझदार नारी के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। विवाह के बाद उसके पति 'नरेश' इलाहाबाद आकाशवाणी से दिल्ली आकाशवाणी में ट्रान्सफर करवा लेते हैं। उसके पति की आर्थिक स्थिति नाजुक होने पर भी परिस्थिति के अनुरूप, वह स्वयं को उसी परिवेश में ढ़ाल लेती है। यहाँ तक कि नरेश खुद किराये का मकान नहीं ले सकता। नरेश के दूर के रिश्ते का भाई सुमंत जहाँ एक कमरे में रहता था। उसी बदबूदार–सीलन भरे कमरे में, वह अपनी गृहस्थी की शुरूआत करती है। चित्रा और नरेश दोनों को सहज वैवाहिक सम्बंध स्थापित करने में भी कठिन होता था, क्योंकि एक कमरे में तीन लोग रहते थें। नरेश चित्रा की इच्छा, आकांक्षाओं की पूर्ति करने में भी असमर्थ दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में चित्रा का सुमंत के प्रति सहज ही आकर्षण का होना स्वाभाविक है। क्योंकि सुमंत चित्रा की भावनाओं की कद्र करता हुआ नजर आता है। परिणाम यह हुआ कि चित्रा अपनी परम्परागत पति–पत्नी के सम्बन्ध को तोड़कर वह सुमंत से सम्बन्ध स्थापित करती है।

'चित्रा' का भाषा और साहित्य पर विशेष अधिकार था। इसीलिए वह प्रूफ रीडर का भी काम करती है। साथ ही किसी लेखक या कहानी में यदि उल्टी–सीधी बात हो या नारी के प्रति किसी लेखक की गलत धारणा हो, तो उसका वह डटकर विरोध भी प्रकट करती हुई दिखाई देती है। वह प्रूफ़ चेक करते हुए सुनंत से कहती है–''कितने गधे होते हैं तुम्हारे ये लेखक। इन्हें इतनी भी तमीज नहीं कि क्या लिख रहे है। इतना ही नहीं, वह नारी के प्रति प्रतिष्ठा और मान मर्यादा का ख्याल भी करती है। इसलिए वह आगे कहती है–तुम्हारे ये लेखक नारी को समझते कुछ नहीं, सिर्फ दिल की भड़ास निकालते है।''[8]

विद्या–संस्कृत ग्रंथ में कहा गया है कि 'विद्या विनयेन शोभते।' यह सचमुच विद्या से तात्पर्य शिक्षा–दीक्षा से व्यक्ति में विनम्रता आती है। जिसके अंदर भी विनयशीलता होती है वह स्वतः ही शोभायमान जाता है। एक शिक्षित व्यक्ति ही समाज को एक नई दिशा प्रदान कर सकता है। इसी कारण शिक्षा के बिना न व्यक्ति का न समाज का किसी का भी विकास हो पाना संभव नहीं है।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास की 'विद्या' प्रमुख स्त्री पात्र तथा प्रेमिका उच्च शिक्षित है। वह फतेहगढ़ की रहने वाली तथा इलाहाबाद जैसे साहित्यिक सांस्कृतिक केन्द्र माने जाने वाले शहर में पढ़ाई के लिए आती है वह बी0एस0सी0 द्वितीय वर्ष तक की पढ़ाई पूरी कर चुकी है। उसमें सूझ–बूझ अधिक है। विद्या का चरित्र भी शिक्षा के कारण विकसिसत हुआ है वह (अदीब) से प्रेम करती है, लेकिन सबके सामने अभिव्यक्त नहीं करती।

इसी तरह **'समीरा'** वही बात' उपन्यास की मध्यवर्ग की शिक्षित नारी है। उसका विवाह मिस्टर प्रशांत चीफ इंजीनियर से हुआ। जो आदिवासी इलाके में एक डैम के निर्माण करने के लिए, अपने पति के साथ वही रहती है।

प्रशांत अपने काम में इतना व्यस्त हो जाता है कि समीरा को समय नहीं दे पाता, बल्कि 'समीरा' कई दिनों व हफ्ते–हफ्ते तक अकेले विरान मकान में रहती है। कारण यह हुआ कि समीरा गुमसुम रहने लगी। क्योंकि वहाँ कोई किसी प्रकार की मनोरंजन की सुख–सुविधाएँ नहीं थी, एक ही पत्र–पत्रिकाओं को न जाने कितनी बार उसने पढ़ रखी थी। वह शिक्षित नारी है, जिसके कारण अपनी उपेक्षा वह सहन नहीं करती। अंततः वह नकुल के साथ अपनी जिन्दगी का क्रांतिकारी फैसला लेती है। और प्रशांत से अपना वैवाहिक संबंध खत्म करके नकुल के साथ वैवाहिक संबंध के लिए अग्रसर होती है। नकुल से वह कहती है–''तुम्हारे साथ मैं कितना पूरापन महसूस करती हूँ, नकुल! लगता है, कोई मेरे लिए है...सिर्फ मेरे लिए''[9] लेखक कमलेश्वर जी ने इस प्रकार के नये सामाजिक संबंधों का समर्थन किया है।

विद्रोही स्त्री–''मालती'' (पुत्री के रूप में विद्रोही) 'काली आँधी' उपन्यास की पुत्री के रूप में विद्रोही नायिका के रूप में नजर आती है। वह उच्च शिक्षित नारी है। मालती पिता बैरिस्टर प्रताप राय की इकलौती पुत्री है जिसे उन्होंने बहुत ही लाड–प्यार से पाला है। उसे उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेजना चाहते हैं, परन्तु वह विदेश इसलिए नहीं जाती कि वह मध्यवर्गीय परिवार के युवक जगदीश बाबू से प्रेम करती है और उससे शादी करना चाहती है। इस पर उसके पिता जी कहते है ''कैरियर के लिए दोबारा समय नहीं मिलता शादी तो कभी हो सकती है।''[10] इस पर भी पिता की बात मालती नहीं मानती शादी करती है और विदेश नहीं जाती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कमलेश्वर के उपन्यासों में स्त्री के विविध रूपों को चरितार्थ करने में इन्होंने सामंजस्यपूर्ण स्थिति को प्रस्तुति दी है। ये स्त्री स्वयं को कहीं, पराधीन तो, कहीं स्वावलंबी, तो कहीं विद्रोही, शिक्षित व अशिक्षित नजर आती हुई, हमारे समक्ष प्रस्तुत हुयी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सुबह दोपहर शाम, कमलेश्वर, 578
2. वही, पृ. 31
3. कमलेश्वर, पृ. 59
4. समग्र उपन्यास, कमलेश्वर, पृ. 94
5. सुबह दोपहर शाम, कमलेश्वर पृ. 94
6. एक सड़क सलावन गलियाँ, कमलेश्वर पृ. 65
7. समग्र उपन्यास, कमलेश्वर, पृ. 70
8. तीसरा आदमी, कमलेश्वर, पृ. 37
9. वही बात, कमलेश्वर, पृ. 57
10. काली आँधी, कमलेश्वर पृ. 14

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 71-77

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालय सम्बन्धी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन

*डॉ. रामेन्द्र तिवारी**

सारांश–प्रस्तुत अध्ययन उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालय सम्बन्धी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन है। अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में इलाहाबाद जनपद के प्रयागराज जिले के बहादुरपुर ब्लाक में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में सम्मिलित किया गया है। विद्यार्थियों की उपलब्धता की दृष्टि से आकस्मिक न्यादर्श विधि द्वारा 4 विद्यालयों का चयन किया जायेगा। तात्पश्चात् यादृच्छिक न्यायदर्शन विधि द्वारा प्रत्येक विद्यालय से 50–50 छात्र–छात्राओं का चयन अर्थात् कुल 100 छात्रों का चयन किया जायेगा। उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की समस्याओं के मापन हेतु एम. वर्मा द्वारा निर्मित यूथ प्रॉब्लम इन्वेन्ट्री वाई पी आई) का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–टेस्ट का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी सम्बन्धी समस्याओं में अन्तर है अर्थात् मध्यमानों के आधार पर छात्राओं में पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी सम्बन्धी समस्याएँ छात्रों की अपेक्षा अधिक है।

की–वर्ड–*उच्च माध्यमिक स्तर, छात्र, छात्राएँ, पारिवारिक, सामाजिक, विद्यालय, समस्याएँ।*

प्रस्तावना–आधुनिक समाज बहुत सक्रिय है और तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है। इसके परिणाम स्वरूप युवाओं में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी है। युवाओं की समस्याएँ, सम्पूर्ण समाज की कमियों एवं दोषों को प्रदर्शित करती है। उदाहरण के लिए बेरोजगारी आज हमारे देश के युवा वर्ग की बहुत ही महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या है। हमारे देश के युवा वर्ग में व्याप्त बेरोजगारी जैसी समस्या के लिए देश की आर्थिक अस्थिरता, पर्याप्त संख्या में रोजगार उपलब्ध कराने में सरकारों की असमर्थता तथा कम कुशल एवं अनुभवहीन युवाओं को स्वीकार करने के लिए नियोक्ताओं की अनिच्छा मुख्य रूप से जिम्मेवार है। युवाओं को नियोजित न कर पाने के पीछे युवा वर्ग द्वारा प्रदर्शित वित्तीय दावें भी शामिल है जिन्हें नियोक्ता द्वारा साझा नहीं किया जाता है। इस प्रकार युवा आजीविका की तलाश में अपनी पढ़ाई पूरी करने के पश्चात् इधर–उधर भटक रहा है। परिणामस्वरूप गैर कानूनी कमाई की खोज उसके द्वारा प्रारम्भ हो जाती है जो प्रायः अपराध, नशीले पदार्थों पर निर्भरता की ओर जाता है और गरीबी में वृद्धि करता है। ऐसी समस्याओं से ग्रसित युवा वर्ग जीवन की क्षीण होती सम्भावनाओं से संघर्ष करता हुआ आपराधिक दुनिया में प्रवेश करने के लिए मजबूर हो जाता है। परिवार द्वारा सामाजिक सुरक्षा न प्रदान करने की स्थिति में युवा वर्ग रोजगार की तलाश में अपनी पढ़ाई से दूर होता चला जा रहा है तथा शिक्षा के स्तर के अनुरूप कार्य या रोजगार न मिलने की परिस्थिति में अवसाद से घिरता चला जा रहा है और ऐसे युवाओं को नशाखोरी की आदतों ने अपने चंगुल में जकड़ रखा है। युवाओं में धूम्रपान की समस्या ने अपना घर बना लिया है। ताजा सर्वे के अनुसार भारत में हर तीसरा युवा धूम्रपान करता है। युवाओं में धूम्रपान की लत उनके लिए प्रतिष्ठा बन गयी है तथा वो धूम्रपान को अपनी स्वतंत्रता एवं फैशन का द्योतक मानने लगे है।

भारत का युवा वर्ग पाश्चात्य संस्कृति से अधिक प्रभावित हो रहा है। उसका दृष्टिकोण उपभोक्तावादी होता जा रहा है तथा वो आध्यात्मिक सुख के बजाय भौतिक सुखों को अधिक महत्व प्रदान कर रहा है। वह अपने अवकाश के समय का उचित उपयोग नहीं कर पा रहा है तथा उसका जीवन टीवी, कम्प्यूटर तथा इण्टरनेट में

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा संकाय, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, कोटवा, जमुनीपुर दुबावल, प्रयागराज*

ही समाप्त होता जा रहा है और इस प्रकार वह वास्तविक समाज से दूर रहकर एक आभासी समाज में जीवन यापन को मजबूर होता जा रहा है।

हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था युवाओं में फैल असन्तोष का सर्वाधिक प्रमुख कारक है। स्वतंत्रता के छः दशकों के बाद भी हमारी शिक्षा व्यवस्था में वह परिवर्तन नहीं हो पाया है जिसकी आवश्यकता है। हमारी शिक्षा का स्वरूप आज भी सैद्धान्तिक अधिक एवं प्रयोगात्मक कम है जिसके कारण उस शिक्षा का व्यवहारिक कार्य क्षेत्र में पर्याप्त लाभ नहीं मिल पा रहा है। परिणामस्वरूप हमारे देश में बेरोजगारी की समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। शिक्षा पूरी करने के पश्चात् भी लाखों युवक रोजगार की तलाश में भटकते रहते हैं जिसके कारण उनमें निराशा, हताशा, कुण्ठा एवं असन्तोष बढ़ता चला जाता है तथा इन सब के बाद हमारे देश में व्याप्त भ्रष्टाचार युवाओं की इस पीड़ा में आग में घी की तरह काम कर रहा है। सभी विभागों, कार्यालयों में रिश्वत, भाई–भतीजावाद इत्यादि के चलते योग्य युवाओं को पढ़ाई अथवा रोजगार का अवसर मिल पाना अत्यन्त कठिन हो गया है। इसके अतिरिक्त हमारे देश की सरकारों की नीतियाँ भी युवाओं में असन्तोष का कारण बनती जा रही है। ये नीतियाँ या तो दोषपूर्ण है या उनका क्रियान्वयन सुचारू ढंग से नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप इसका समुचित लाभ हमारे युवा वर्ग के प्राप्त नहीं हो पा रहा है।

आज हमारे देश का युवा वर्ग कुण्ठा से ग्रसित है। चारों ओर निराशा एवं हताशा का वातावरण व्याप्त है। हर तरफ अव्यवस्था जन्म ले रही है। दिन–प्रतिदिन हत्याएँ, लूटमार, आगजनी, चोरी आदि की घटनाओं में वृद्धि हो रही है। आए दिन हड़ताल की खबरें समाचार–पत्रों की सुर्खियों में होती है। छात्रगण कभी कक्षाओं का बहिष्कार करते है तो कभी परीक्षाओं का। ये समस्त घटनाएं युवा वर्ग में बढ़ते असन्तोष का ही परिणाम है जो युवा समस्या का द्योतक है।

आजकल हमारे समाज, विद्यालय, परिवार, एवं शैक्षिक विकास में अस्थिरता व असन्तोष की भावना व्याप्त है। इस अस्थिरता के बाहरी व आन्तरिक दो कारण हैं। बाह्य कारण के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक दशा तथा समाज की राजनैतिक वातावरण है। आन्तरिक कारणों में सामाजिक प्रशासन शिक्षण तथा छात्रों से सम्बन्धित समस्याएँ भी है। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि छात्रों की यह अस्थिरता, आर्थिक, सामाजिक स्तर, प्रवेश के लिए प्रमाणित मानदण्ड का अभाव, अध्यापकों तथा प्रशासकों द्वारा पक्षपातपूर्ण व्यवहार तथा बेरोजगारी को लेकर है। ये कारण कम या अधिक मात्रा में युवाओं में समस्याएँ उत्पन्न करते हैं।

आज की युवा पीढ़ी की समस्याएँ सबसे ऊपर है जो बेरोजगारी के मार्ग से गुजर रहा है। इतनी मँहगाई में माता–पिता एवं परिवार को बच्चों को पढ़ाने में काफी दिक्कतें आ रही है। विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय की इतनी मँहगी पढ़ाई होती जा रही है जिससे युवाओं को आगे पढ़ने में काफी दिक्कतें हो रही हैं। आज की दिखावटी समाज में युवाओं का खर्च बढ़ा दिया जैसे मोबाइल, मोटर साइकिल, लैपटाप, बड़े–बड़े टोहल में घूमना इत्यादि खर्च इतने बढ़ गये हैं उनको उस वातावरण में अपने को समाहित करने में दिक्कत हो रही है। एक दूसरे की देखा–देखी आज की युवा अपने को उच्च पैसे वालों से आगे रखना चाह रही है इसके लिए उन्हें पैसों की जरूरत होती है इन्हीं जरूरतों को पूरा करने के लिए आज की युवा पीढ़ी पढ़ाई को छोड़कर नौकरी के पीछे भाग रही है। इन सभी समस्याओं को देखते हुए शोधार्थी ने इस विषय पर शोध करने की आवश्यकता हुई।

1.4 समस्या कथन–प्रस्तुत अध्ययन का कथन निम्नलिखित शीर्षकबद्ध है–

''उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालय सम्बन्धी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन।''

अध्ययन के उद्देश्य–प्रस्तुत अध्ययन में निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं :–

1. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करना।
2. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की विद्यालय सम्बन्धी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालय सम्बन्धी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–प्रस्तुत अध्ययन में उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है–

1. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक समस्याओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक समस्याओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की विद्यालय सम्बन्धी समस्याओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
4. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालय सम्बन्धी समस्याओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध–प्रविधि–अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में इलाहाबाद जनपद के प्रयागराज जिले के बहादुरपुर ब्लाक में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में सम्मिलित किया गया है। विद्यार्थियों की उपलब्धता की दृष्टि से आकस्मिक न्यादर्श विधि द्वारा 4 विद्यालयों का चयन किया जायेगा। तात्पश्चात् यादृच्छिक न्यायदर्शन विधि द्वारा प्रत्येक विद्यालय से 50–50 छात्र–छात्राओं का चयन अर्थात् कुल 100 छात्रों का चयन किया जायेगा। उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की समस्याओं के मापन हेतु एम. वर्मा द्वारा निर्मित यूथ प्रॉब्लम इन्वेन्ट्री वाई पी आई. का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–टेस्ट का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

1. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सारणी सं0 1

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक समस्याओं का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात

क्र0 सं0	न्यादर्श	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (S.D.)	$D=(M_1\sim M_2)$	δ_D	टी–अनुपात	सारणी मान
1.	छात्र	50	20.92	8.65	3.00	1.62	1.85	1.98 df=98
2.	छात्राएँ	50	23.92	7.52				

व्याख्या–उपर्युक्त सारणी 1 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक समस्याओं का मध्यमान क्रमशः 20.92 एवं 23.92 तथा मानक विचलन क्रमशः 8.65 एवं 7.52 परिगणित टी–अनुपात का मान 1.85 है। मुक्तांश 98 तथा 0.05 सार्थकता स्तर के लिए द्विपुच्छीय परीक्षण पर टी–अनुपात का सारणी मान 1.98 है। अर्थात् परिगणित टी–अनुपात सारणीमान से कम है, अतः कहा जा सकता है कि 0.05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मध्यमानों के आधार पर छात्राओं की पारिवारिक समस्याओं छात्रों की अपेक्षा अधिक है।

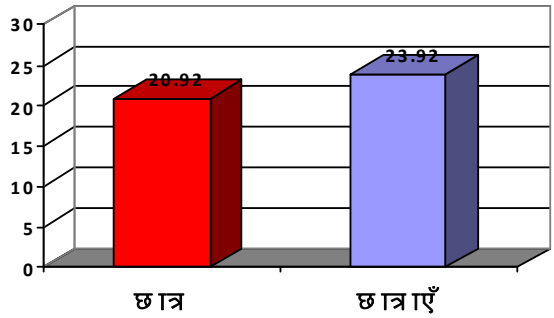

आरेख सं0 1 : उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक समस्याओं के मध्यमानों का आरेख चित्र

2. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सारणी सं0 2

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक समस्याओं का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात

क्र0 सं0	न्यादर्श	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (S.D.)	D= (M_1~M_2)	δ_D	टी–अनुपात	सारणी मान
1.	छात्र	50	5.54	2.12	0.88	0.45	1.95	1.98 df=98
2.	छात्राएँ	50	6.42	2.36				

व्याख्या–उपर्युक्त सारणी 2 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक समस्याओं का मध्यमान क्रमशः 5.54 एवं 6.42 तथा मानक विचलन क्रमशः 2.12 एवं 2.36 परिगणित टी–अनुपात का मान 1.95 है। मुक्तांश 98 तथा 0.05 सार्थकता स्तर के लिए द्विपुच्छीय परीक्षण पर टी–अनुपात का सारणी मान 1.98 है। अर्थात् परिगणित टी–अनुपात सारणीमान से कम है, अतः कहा जा सकता है कि 0.05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मध्यमानों के आधार पर छात्राओं की सामाजिक समस्याएँ छात्रों की अपेक्षा अधिक है।

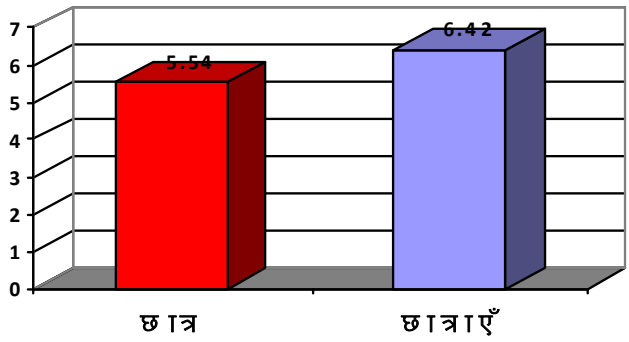

आरेख सं0 2

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक समस्याओं के मध्यमानों का आरेख चित्र

3. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की विद्यालयी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सारणी सं0 3

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की विद्यालयी समस्याओं का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात

क्र0 सं0	न्यादर्श	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (S.D.)	D= (M_1~M_2)	δ_D	टी–अनुपात	सारणी मान
1.	छात्र	50	12.08	7.19	2.48	1.27	1.95	1.98 df=98
2.	छात्राएँ	50	14.56	5.34				

व्याख्या–उपर्युक्त सारणी 3 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की विद्यालयी समस्याओं का मध्यमान क्रमशः 12.08 एवं 14.56 तथा मानक विचलन क्रमशः 7.19 एवं 5.34 परिगणित टी–अनुपात का मान 1.95 है। मुक्तांश 98 तथा 0.05 सार्थकता स्तर के लिए द्विपुच्छीय परीक्षण पर टी–अनुपात का सारणी मान 1.98 है। अर्थात् परिगणित टी–अनुपात सारणीमान से कम है, अतः कहा जा सकता है कि 0.05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मध्यमानों के आधार पर छात्राओं में विद्यालयी समस्याएँ छात्रों की अपेक्षा अधिक है।

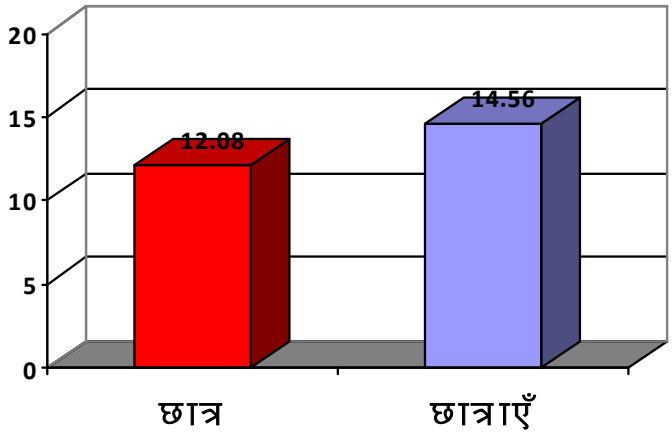

आरेख सं0 3

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की विद्यालयी समस्याओं के मध्यमानों का आरेख चित्र

4. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी सम्बन्धी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सारणी सं0 4

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी सम्बन्धी समस्याओं का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात

क्र0 सं0	न्यादर्श	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (S.D.)	$D=(M_1 \sim M_2)$	δ_D	टी–अनुपात	सारणी मान
1.	छात्र	50	38.54	14.38	6.36	2.68	2.37	1.98 df=98
2.	छात्राएँ	50	44.90	12.35				

व्याख्या–उपर्युक्त सारणी 4 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी सम्बन्धी समस्याओं का मध्यमान क्रमशः 38.54 एवं 44.90 तथा मानक विचलन क्रमशः 14.38 एवं 12.35 परिगणित टी–अनुपात का मान 2.37 है। मुक्तांश 98 तथा 0.05 सार्थकता स्तर के लिए द्विपुच्छीय परीक्षण पर टी–अनुपात का सारणी मान 1.98 है। अर्थात् परिगणित टी–अनुपात सारणीमान से अधिक है, अतः कहा जा सकता है कि 0.05 सार्थकता स्तर पर शून्य परिकल्पना निरस्त की जाती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी सम्बन्धी समस्याओं में कोई सार्थक अन्तर है अर्थात् छात्राओं में पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी सम्बन्धी समस्याएँ छात्रों की अपेक्षा अधिक है।

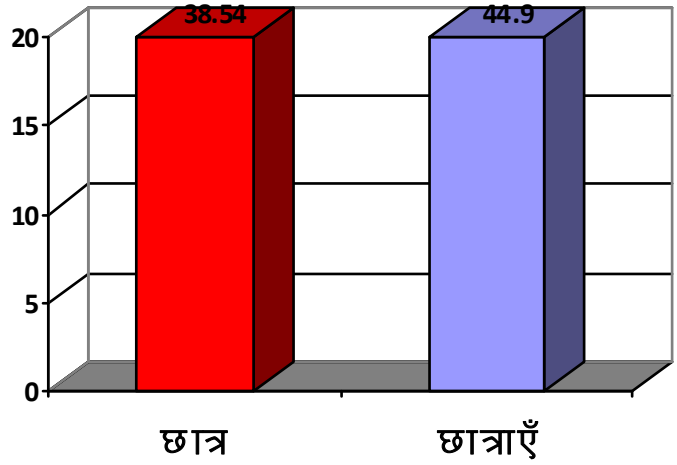

आरेख सं0 4

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी सम्बन्धी समस्याओं के मध्यमानों का आरेख चित्र

निष्कर्ष–प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक समस्याओं में अन्तर नहीं है जबकि मध्यमानों के आधार पर छात्राओं में पारिवारिक समस्याएँ छात्रों की अपेक्षा अधिक है।
- उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक समस्याओं में अन्तर नहीं है जबकि मध्यमानों के आधार पर छात्राओं में सामाजिक समस्याएँ छात्रों की अपेक्षा अधिक है।
- उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की विद्यालयी समस्याओं में अन्तर नहीं है जबकि मध्यमानों के आधार पर छात्राओं में विद्यालयी समस्याएँ छात्रों की अपेक्षा अधिक है।
- उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी सम्बन्धी समस्याओं में अन्तर है अर्थात् मध्यमानों के आधार पर छात्राओं में पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी सम्बन्धी समस्याएँ छात्रों की अपेक्षा अधिक है।

सुझाव–विद्यार्थियों में समस्याओं के कारण सम्भवतः शिक्षा की उद्देश्य हीनता, अनिश्चित भविष्य, विद्यार्थियों में हीनता ग्रन्थि, आत्म–विश्वास की कमी, जीवन की वास्तविकता का सामना करने में अक्षमता अध्यापकों व परिवार कें सदस्यों द्वारा बालकों से अति उच्च अपेक्षाओं को रखना एवं सहानुभूति की कमी हो सकती है। विद्यार्थियों को माध्यमिक शिक्षा के साथ–साथ उन्हें व्यवसायिक शिक्षा का भी ज्ञान देना चाहिए जिससे वे उच्च माध्यमिक स्तर पर पहुँचने पर पढ़ाई के साथ–साथ कुछ कार्य भी कर सके जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में परेशानी न हो और वे अपने माता–पिता के ऊपर निर्भर न रह सके। परिवार को चाहिए कि बच्चे को पढ़ाने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए और फिजूलखर्चों को खत्म करके अपने बच्चों के शिक्षा के लिए पैसे इकट्ठे करने चाहिए। विद्यार्थियों को भी अपने पारिवारिक परिस्थितियों को समझना चाहिए और उन्हें भी अपने परिवार की समस्याओं में सहयोग करना चाहिए और ट्यूशन पढ़ा करके एवं पार्ट टाइम जॉब करके अपनी आर्थिक एवं पारिवारिक समस्याओं को दूर कर सकते हैं एवं उन्हें सकारात्मक सोच रखनी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. के0टी0 भाटिया (1984), ''द इमोशनल पर्सनल एण्ड सोशल प्रॉब्लम्स ऑफ एडजस्टमेन्ट ऑफ एडोलसेन्ट अन्डर इण्डियन कंडीशन विद स्पेशल रिफरेन्स टू वैलूज ऑफ लाइफ'', *फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन.* प्रथम, नई दिल्ली : एन0सी0ई0आर0टी0, पृ. 347

2. गुप्ता, एस0पी0 (2009), *आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन,* इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।

3. गुप्ता, एस0पी0 एवं गुप्ता, अल्का (2012), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0 510

4. गेहलावत, एम0 (2011). ए स्टडी ऑफ ऐडजेस्टमेंट एमंग हाईस्कूल स्टूडेंट्स इन रिलेशन टू देयर जेंडर। *इन्टरनेशनल रेफरीड रिसर्च जर्नल,* 3(33), 14–15

5. गनाई, एम0वाई0 एवं मिर, एम0ए0 (2013), ए कम्पैरेटिव स्टडी ऑफ ऐडजेस्टमेंट ऐण्ड एकेडमिक एचिवमेंट ऑफ कॉलेज स्टूडेन्ट्स। *जर्नल ऑफ एजूकेशनल रिसर्च ऐण्ड एसे,* 1(1), 5–8

6. घण्टा, रमेश एवं राव, डी0बी0 (1998), *एन्वायरनमेन्टल प्राब्लम्स एण्ड प्रास्पेक्ट्स,* नई दिल्ली, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस।

7. चौहान, वी0 (2013), ए स्टडी ऑन ऐडजेस्टमेंट ऑफ हॉयर सेकेण्ड्री स्कूल स्टूडेन्ट्स ऑफ दुर्ग डिस्ट्रिक्ट। *जर्नल ऑफ रिसर्च ऐण्ड मेथड इन एजूकेशन,* 1(1), 50–52

8. जहाँ, कमर (1990), *स्टडी ऑफ कामुनल प्रेजीडेस ऐज रिलेटेड टू एडजस्टमेन्ट,* साइक्लॉजिकल एब्स्ट्रैक्ट, नं0 3, पेज–79

9. देवी, एन0 (2011). ए स्टडी ऑफ ऐडजेस्टमेन्ट ऑफ स्टूडेन्ट्स इन रिलेशन टू पर्सनॉलिटी ऐण्ड एचिवमेन्ट मोटिवेशन। *भारतीय इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजूकेशन ऐण्ड रिसर्च,* 1(1), 329–332

10. नगरा, वी0 (2014). सोशल इंटेलिजेंस एण्ड ऐडजेस्टमेन्ट ऑफ सेकेण्ड्री स्कूल स्टूडेन्ट्स, *इण्डियन जर्नल ऑफ रिसर्च,* 3(4), 86–87

11. भटनागर, डॉ0 आर0पी0 व डॉ0 मीनाक्षी, शिक्षा अनुसंधान, लायल बुक डिपो मेरठ, संस्करण–2, 2007, पृ. सं0 25

12. रेड्डी, जी0 नारायण (1990), *इन्वायरमेन्टल एजुकेशन थ्रॉट नर्सरी स्कूल प्रोग्राम, प्रोगेसिव एजुकेशन हेराल्ड,* वॉल्यूम–अ, पेज–30–35

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 78-86

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

An Empirical Analysis Of Education Intelligence and Academic Performance

*Malay Tiwari** *Pradhyuman Singh Lakhawat***

Introduction : Nowadays students face lots of pressure in their academic life because of the competition, parental and peer expectations, pressure to fit in the globalized world, aspirations, ambitions and the benchmark they set for themselves. Rising cases of student suicides due to failure in academics and increasing rate of school dropouts are proof of this. Acquisition of knowledge has taken a backseat as education process has become mechanised. Value systems and teaching and evaluation methods have seen a constant decline in quality. The impact of all these factors has had an enormous impact on the students especially the college going ones. In this changing scenario, the student must realize his true potential and develop a constructive attitude to handle the day to day problems. Students must have the ability to understand and manage their emotions and be able to develop personal and social awareness.

Effect of EI on students' performance thus becomes all the more important in today's academic settings.

Emotional Intelligence : The concept of EI was first introduced by Salovey and Mayer in the early 1990's and made popular by Daniel Goleman with the publication of his book, "Emotional Intelligence, Why it can matter more than IQ" in 1995. Emotional intelligence (EI) is the ability to identify, assess, and control the emotions of oneself, others and of groups. Salovey and Mayer defined EI as "the ability to perceive emotion, integrate emotion to facilitate thought, understand emotions and to regulate emotions to promote personal growth (Mayer, 1990)." EI includes components like self-awareness, ability to manage moods, motivation, empathy and social skills such as cooperation and leadership (Goleman, 1998). Emotions can be viewed as useful sources of information that help one to make sense of and navigate the social environment in which one exists. One should be able to perceive, use, understand and manage one's emotion as well as those of others. A person should be able to interpret his emotions as it forms the basis for further processing of emotional information. An individual with high EQ will be able to decipher the emotions and feelings and use them to facilitate his cognitive abilities like problem-solving and can adjust his task priorities according to his moods. Such people have the ability to understand how emotions evolve over the lifetime as they are sensitive to emotional changes that take place with different experiences. Hence, they are better adept at managing emotions to their advantage. According to Goleman (1995), EI comprises of five components: (Goleman, 1995)

Self - regulation: Ability to control one's emotions, impulses & adaptability.

Self - awareness: Ability to recognise one's emotions, personality, strengths, and weaknesses.

Empathy: Ability to recognize the feelings of others; sensitivity to others' feelings.

* *Associate Professor, SIET, Prayagraj*
** *Assistant Professor, SHUATS, Prayagraj*

Self - motivation: Ability to gather one's feelings & to direct oneself towards a set goal.

Managing relationship (Social Skills)*:* The ability to solve problems without insulting co-workers and to maintain good relations with others.

Singh defines EI as "the ability of an individual to appropriately and successfully respond to a vast variety of emotional stimuli being elicited from the inner self and immediate environment (Singh, 2006)."

Cooper (1996)states that emotional intelligence is "an ability to sense, understand and effectively apply the power and acumen of emotions as the source of human energy, information, trust, creativity and influence (Cooper, 1996)."

In 1985, Wayne Leon Payne used the term "emotional intelligence" in the title of his doctoral dissertation. That was the first academic use of the term "emotional intelligence". Then in 1990, the work of two American university professors, John Mayer, and Peter Salovey, was published in two academic journal articles. These authors found that some people were better than others at things like identifying oneself's as well as other's feelings and solving problems involving emotional issues. The title of one of these papers was "Emotional Intelligence". However, both practitioners and academics were almost remained unaware of the emotional intelligence till the publication muchcelebrated work of Daniel Goleman came to light in 1995. Following shortly behind this development, Bar-On (1997) introduced his work on emotional intelligence.

Academic Performance : Academic performance defined as student's ability to deal with their studies and how they handle the various tasks given to them by their teachers. It is also an ability to study and remember facts and being able to communicate the knowledge verbally or down on paper. It is the outcome of education the extent to which a student, teacher or institution has achieved their educational goals. Academic performance is measured by marks or grades obtained by a student at all levels of education. A student's capabilities and performance level is assessed through various tests conducted on a regular basis. Besides the grades obtained other success parameters like knowledge, attitude, skills, etc., can be used to judge his overall performance. Success in career and life, adjustment levels, maturity both cognitive and emotional, social popularity and acceptability should also be taken into consideration. The differences in individual academic performance have been linked to various factors. Students with higher mental ability as demonstrated by IQ tests (quick learners) and those with high conscientiousness tend to perform high in academic settings.

Emotional Intelligence & Academic Performance : In today's competitive environment, there is enormous psychological pressure on the youth population to perform well and succeed in life. Their success is measured against certain socially determined parameters, one of them is Emotional intelligence. Several authors explored the relationship of emotional intelligence with other variables such as personality, achievement, and well-being. EI has a greater bearing on youth especially college going students. Youth is that stage of life where the intensity of emotions is the strongest. Their nature does not permit them to pause and analyze their behavior. Control over emotions is something alien to them. These emotions can be harnessed and constructively channelized for better overall personal health and development. Changing business scenario has necessitated a shift in students' perception about themselves. Globalization has put great stress on their personality to meet the demands and expectations of their work area. That is why the study of EI and its effect on overall performance and personal development has gained prominence in the last decade. Students have to be taught the ability to read emotions of self and of others. In this competitive global world, where values, ethics, emotions, morality, etc. are losing their essence, it becomes important that the students are taught the importance

of emotional intelligence. Individuals having control over their emotions will also respect others emotions thus improving peace and harmony in the world. Understanding the importance of emotional intelligence has now become extremely crucial. Emotional intelligence and cognitive intelligence are important for attaining success in life. Mostly success depends on EI; therefore, it is essential for the individuals to know their EI level which in turn will help them in making right choices. This study attempts to measure Emotional Intelligence of college students and find the effect of EI on academic performance and also the gender impact on EI and academic performance.

Research Hypotheses : The following hypotheses have been formulated :

Hypotheses 1: Emotional Intelligence and Academic Performance is correlated.

Hypotheses 2: Gender influences the Emotional Intelligence level.

Hypotheses 3: Gender influences the Academic Performance.

Research Methodology

Data Collection and Participants : A sample of 50 management students pursuing their MBA degree in a business school in Allahabad region was selected out of which 48 (21 male: 27 female) responses were received. The students were selected randomly, and data was collected using structured questionnaire. A set of 34 questions was administered to the students to assess their emotional intelligence and collect data about their gender and academic performance. The age of the students ranged from 22 years to 25 years.

Dependent Variable : Academic Performance: Examination results of the students were used as a measure of academic performance.

Independent Variable : Emotional Intelligence

Emotional Intelligence Scale developed by **Hyde, Pethe, and Dhar (2002)** was used (A Hyde, 2002) in the study to measure the level of emotional intelligence. The scale comprises of 10 factors having 34 items, standardized on the Indian population. The following table shows reliability statistics for scale used. The value of Cronbach's Alfa significantly high which indicates that used scale enjoys high reliability.

Reliability Statistics

Cronbach's Alpha	Cronbach's Alpha Based on Standardized Items	No. of Items
.863	.871	34

The scale includes items on self-awareness, empathy, self-motivation, managing relations, emotional stability, integrity, self-development, commitment and altruistic behavior, value-orientation. Responses to all the items were taken using 5 point Likert scale.

The ten factors are as follows:

(1) **Self Awareness**is defined as being aware of oneself and is measured by the following questions:
   (a) "I can continue to do what I believe in, even under severe conditions,"
   (b) "I have my priorities clear,"
   (c) "I believe in myself", and
   (d) "I have built rapport and maintained personal friendships with work associates."

(2) **Empathy** is feeling and understanding the other person. The following questions were used :

(a) "I pay attention to the worries and concerns of others",

(b) "I can listen to someone without the urge to say something",

(c) "I can try to see the other person's point of view",

(d) "I can stay focused under pressure", and

(e) "I am able to handle multiple demands."

(3) **Self Motivation**refers to being motivated internally and is measured by:

(a) "People tell me that I am an inspiration for them",

(b) "I am able to make intelligent decisions using a healthy balance of emotions and reason",

(c) "I am able to assess the situation and then behave",

(d) "I can concentrate on the task at hand in spite of disturbances",

(e) "I think feelings should be managed", and

(f) "I believe that happiness is an attitude".

(4) **Emotional Stability** defined as the state of an individual that enables him or her to have appropriate feelings about common experiences and act in a rational manner. It is measured by:

(a) "I do not mix unnecessary emotions with issues at hand",

(b) "I am to stay composed in both good and bad situations",

(c) "I am comfortable and open to novel ideas and new information", and

(d) "I am persistent in pursuing goals despite obstacles and setbacks".

(5) **Managing Relations** is the art or science of establishing and promoting a favourable relationship in the organisation and measured by the following items:

(a) "I can encourage others to work even when things are not favourable",

(b) "I do not depend on others' encouragement to do my work well",

(c) "I am perceived as friendly and outgoing", and

(d) "I can see the brighter side of any situation".

(6) **Integrity** defined as a quality of a person's character. Integrity means being responsible for what you seek and undertake in life and being able to own up one's own faults in case of failures. It is measured by:

(a) "I can stand up for my beliefs",

(b) "I pursue goals beyond what is required of me", and

(c) "I am aware of my weakness".

(7) **Self Development**reflects efforts toward self-fulfillment, either through formal study programs or on one's own and is measured by the following two items:

(a) "I am able to identify and separate my emotions", and

(b) "I feel that I must develop myself even when my job does not demand it".

(8) **Value Orientation** refers to the principles of right and wrong that are accepted by an individual or a social group. It is measured by:

(a) "I am able to maintain the standards of honesty and integrity", and

(b) "I am able to confront unethical actions in others".

(9) **Commitment** is a virtue and a personal trait that is learned very early in life. Being committed is a state of mind and is determined by number of factors. It is based on one's own personal choices as well as

the expectations from other people around us. It is also determined by the quality of relationship we share with people, groups, organizations or tasks that we are supposed to be committed to be. It is measured by:

(a) "I am able to meet commitments and keep promises", and

(b) "I am organized and careful in my work".

(10) **Altruistic Behavior**is the deliberate pursuit of the interests or welfare of others or the public interest**.** It is measured by:

(a) "I am able to encourage people to take initiative", and

(b) "I can handle conflicts around me".

Below 51	***Low Emotional Intelligence***
52– 84	***Normal Emotional Intelligence***
85 and Above	***High Emotional Intelligence***

Data Analysis : To assess the relationship between EI and Academic Performance we performed t-test, ANOVA and Pearson correlations.

Results : The study investigates the relationship between EI and Academic performance. Table 1 shows descriptive statistics of different parameters of EI and Academic Performance.

Table 1 : Descriptive Statistics

	N	Minimum	Maximum	Mean	Std. Deviation
Managing Relation	48	9.00	19.00	15.3333	2.25344
Self Motivation	48	14.00	23.00 10.00	18.4167	2.44804
Altruistic Behaviour	48	5.00		7.6250	1.23124
Self Awareness	48	9.00	20.00	15.6667	2.02467
Empathy	48	12.00	23.00	18.1875	2.41146
Integrity	48	5.00	15.00	11.5208	1.67573
Emotional Stability	48	6.00	19.00	14.4792	2.31544
Value Orientation	48	4.00	9.00	7.5833	1.12672
Commitment	48	3.00	10.00	8.1667	1.27719
Self Development	48	4.00	10.00	7.1458	1.20265
Total Emotional Intelligence	48	83.00	152.00	124.1250	12.11580
Academic Performace	48	52.00	72.00	62.2083	4.83761
Valid N (listwise)	48				

Bivariate correlation was applied to see if there would be significant relationship between the predictor variables (EI variables) and the criterion variable (academic performance). Table 2 shows linear correlation between various parameters of EI, total EI and overall academic performance. There is a positive correlation among all the EI factors (Managing Relation, Self Motivation, Altruistic Behaviour, Self Awareness, Empathy, Integrity, Emotional Stability, Value Orientation, Commitment, Self Development), with one another, and with total EI score. There is also a positive correlation between the total EI scores and academic performance with 0.05 level significance. There is a negative correlation between Self Development and Academic Performance.

Table 2 : Correlations of EI Parameters with One Another

		MR	SM	AB	SA	EM	IN	ES	VO	CM	SD	EI	AP
MR	Pearson Correlation	1	.410**	.376**	.543**	.619**	.201	.601**	.282	.631**	.037	.760**	.237
	Sig. (2-tailed)		.004	.008	.000	.000	.171	.000	.052	.000	.805	.000	.104
SM	Pearson Correlation	.410**	1	.462**	.333*	.405**	.325*	.486**	.573**	.345*	.232	.712**	.154
	Sig. (2-tailed)	.004		.001	.021	.004	.024	.000	.000	.016	.113	.000	.295
AB	Pearson Correlation	.376**	.462**	1	.452**	.454**	.458**	.497**	.376**	.298*	.253	.681**	.224
	Sig. (2-tailed)	.008	.001		.001	.001	.001	.000	.008	.040	.082	.000	.126
SA	Pearson Correlation	.543**	.333*	.452**	1	.353*	.454**	.493**	.441**	.507**	.160	.719**	.344*
	Sig. (2-tailed)	.000	.021	.001		.014	.001	.000	.002	.000	.277	.000	.017
EM	Pearson Correlation	.619**	.405**	.454**	.353*	1	.181	.327*	.296*	.480**	.122	.679**	.090
	Sig. (2-tailed)	.000	.004	.001	.014		.219	.024	.041	.001	.407	.000	.545
IN	Pearson Correlation	.201	.325*	.458**	.454**	.181	1	.450**	.320*	.346*	.162	.568**	.333*
	Sig. (2-tailed)	.171	.024	.001	.001	.219		.001	.026	.016	.271	.000	.021
ES	Pearson Correlation	.601**	.486**	.497**	.493**	.327*	.450**	1	.388**	.519**	.204	.772**	.190
	Sig. (2-tailed)	.000	.000	.000	.000	.024	.001		.006	.000	.165	.000	.195
VO	Pearson Correlation	.282	.573**	.376**	.441**	.296*	.320*	.388**	1	.508**	.171	.621**	.250
	Sig. (2-tailed)	.052	.000	.008	.002	.041	.026	.006		.000	.244	.000	.086
CM	Pearson Correlation	.631**	.345*	.298*	.507**	.480**	.346*	.519**	.508**	1	.122	.709**	.149
	Sig. (2-tailed)	.000	.016	.040	.000	.001	.016	.000	.000		.407	.000	.311
SD	Pearson Correlation	.037	.232	.253	.160	.122	.162	.204	.171	.122	1	.320*	-.020
	Sig. (2-tailed)	.805	.113	.082	.277	.407	.271	.165	.244	.407		.027	.893
EI	Pearson Correlation	.760**	.712**	.681**	.719**	.679**	.568**	.772**	.621**	.709**	.320*	1	.293*
	Sig. (2-tailed)	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.027		.043
AP	Pearson Correlation	.237	.154	.224	.344*	.090	.333*	.190	.250	.149	-.020	.293*	1
	Sig. (2-tailed)	.104	.295	.126	.017	.545	.021	.195	.086	.311	.893	.043	

**. Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).

*. Correlation is significant at the 0.05 level (2-tailed).

Table 3 shows the ANOVA result of performance with the EI factors, i.e., Managing Relation, Self Motivation, Altruistic Behaviour, Self Awareness, Empathy, Integrity, Emotional Stability, Value Orientation, Commitment, and Self Development. This test was carried out to determine which of these factors was a major contributor to academic performance? The respondents were divided among three separate groups based on their percentage, i.e., low, medium, and high with a low group having a performance score up to 60, a medium group having a score between 61 and 70, and a high group having a score more than 71. The ***F*** values of different factors of emotional intelligence show that ***Self Awareness*** is the major contributor towards the academic performance.

Table 3: ANOVA

Emotional Intelligence Factors	Performance Grade			Total	*F*	Significance
	Low	Medium	High			
MR	17.3333	15.5217	14.8636	15.3333	1.799	.177
SM	22.0000	18.0870	18.2727	18.4167	3.885	.028
AB	9.0000	7.7391	7.3182	7.6250	2.863	.068
SA	19.0000	15.8261	15.0455	15.6667	6.350	.004
EM	19.6667	17.9565	18.2273	18.1875	.663	.520
IN	12.6667	12.0870	10.7727	11.5208	4.905	.012
ES	15.0000	15.0435	13.8182	14.4792	1.705	.193
VO	8.3333	7.8261	7.2273	7.5833	2.437	.099
CM	8.6667	8.3913	7.8636	8.1667	1.216	.306
SD	7.3333	7.8636	7.1818	7.1458	.071	.932
EI	139.0000	7.1818	120.5909	124.1250	3.753	.031
Number	3	23	22	48		

Further, to have an idea on whether control variable i.e., gender have any significant effect on emotional intelligence and academic performance, *t tests* were used table 4 and table 5 gives the results of tests.

Table 4: t test for Emotional Intelligence

EI Parameters	Gender		t-value	p-Level (two tailed)
	Male(N=21)	Female(N=27)		
Managing Relation	15.9048	14.8889	1.550	.129
Self Motivation	18.7619	18.1481	.849	.401
Altruistic Behaviour	7.8095	7.4815	.911	.367
Self Awareness	15.7143	15.6296	.138	.891
Empathy	19.0476	17.5185	2.355	.023
Integrity	11.3810	11.6296	-.480	.633
Emotional Stability	14.4762	14.4815	-.007	.994
Value Orientation	7.6667	7.5185	.425	.674
Commitment	8.2381	8.1111	.321	.750
Self Development	7.0476	7.2222	-.478	.636
Emotional Intelligence	126.0476	122.6296	.939	.354

Above table shows that gender (male *vs.* female) do not have any significant effect on academic performance also.

Gender		t-value	p-Level (two tailed)
Male(N=21)	Female (N=27)		
61.7619	62.5556	-.558	.580

Thus, hypothesis 1 and 3 are supported, and hypothesis 2 is partly supported.

Discussion : This study investigates empirically the relationship between emotional intelligence and academic performance of management students. This study was focused on three main objectives (1) finding the relationship between emotional intelligence and academic performance; (2) to determine which factor of emotional intelligence is a major contributor towards academic performance and (3) to find out the effect of gender on emotional intelligence and academic performance.

Finding of the study reveals that there is a significant relationship between emotional intelligence and academic performance. The result of the study that EI has a predictive effect on academic performance is in line with the previous researcher's findings. The present study and previous researches show that the emotional wellbeing is the strongest predictor of academic achievement and success in life. Since emotional intelligence provides the ability to control the impulses and emotions well it holds much value than IQ in one's life for the success and achievements. Emotional Intelligence helps one in remain hopeful in times of setbacks and develops empathy and social skills. (Mohapatra, 2010)

Although all the EI factors contribute towards academic achievement but Self Awareness has been found major contributor among them. The probable explanations for this finding lie in an attribute of this factor which says that it is responsible for having clear priorities and believe in self and handling severe conditions tactfully.

The study also shows that there is no significant effect of gender differences neither on overall emotional intelligence and nor on academic performance which is line of previous studies. Empathy was the only factor on which the effect of gender differs significantly. This factor is responsible for understanding others.

Conclusion : Emotional intelligence has been found positively correlated with academic performance. This study has revealed through empirical analysis the relationship between emotional intelligence and academic performance. This finding suggests that academic institutes should pay attention towards improving emotional intelligence of students, and they should be trained to handle emotions positively and tactfully which would ultimately result in not only better grades but a better life and society.

Emotional skills cannot be taught in traditional classroom settings and through simple lectures; it requires personal involvement. Role- plays, use of metaphors, value educations classes, simulation, live projects, games are some of the effective methods of training for imparting emotional skills.

References

1. A Hyde, S. P. (2002). *Manual for Emotional Intelligence Scale.* Lucknow: Vedanta Publication.

2. Bar-On, R. (2006). The Bar-On model of emotional-social intelligence (ESI). *Psicothema* , 13-25.

3. Cooper, R. (1996). *Executive EQ: Emotional Intelligence in Leadership and Organizations.*New York: Berkley Publication Group.

4. David R. Caruso, J. D. (2002). Relation of an Ability Measure of Emotional Intelligence to Personalty. *JOURNAL OF PERSONALITY ASSESSMENT*, 306320.

5. Goleman, D. (1995). *Emotional Intelligence: Why it Matters More than IQ.* New York: Bantman Books.

6. Goleman, D. (1998). *Working with Emotional Intelligence.* New York: Bantman Books.

7. Mohapatra, P. S. (2010). Relevance of Emotional Intelligence for Effective Job Performance : An Empirical Study. *VIKALPA, 35*, 59.

8. Singh, D. (2006). *Emotional Intelligence at Work.* New Delhi: Response Books.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 87-91

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

बौद्ध धर्म में संघीय जीवन एवं स्त्री प्रव्रज्या

*डॉ. नीता सिंह**

प्राचीन भारत में नारी जीवन की उन्नत स्थिति वैदिक काल में दिखाई देती है। उस समय स्त्रियों को शिक्षा एवं सामाजिक जीवन में पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे, किन्तु उत्तर–वैदिक काल में इनकी स्थिति में ह्रास दिखाई पड़ता है। उत्तर–वैदिक धर्म सामाजिक विधि निषेधों पर आश्रित था और उसमें सर्वसामान्य को धर्म साधना का समान अधिकार उपलब्ध न था। बुद्ध ने इस संकीर्ण सामाजिक सीमाओं को तोड़कर संघ को एक व्यापक सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। संघ की आदर्श परिकल्पना में विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तरों से आगत तत्त्वों का समागम उसी प्रकार से हुआ जिस प्रकार से नाना सरित्प्रवाहों का समुद्र में। इस उदार आदर्श ने सर्वसामान्य के लिए बौद्ध धर्म का द्वार खोल दिया जिससे वे बौद्ध साधना के अनुगमन के द्वारा परमार्थ सिद्धि का यथेष्ठ प्रयास कर सकते थे।

संघीय कार्यविधि में जनतांत्रिक प्रक्रिया का उपयोग संघ के गठन का दूसरा प्रमुख वैशिष्ट्य था। बुद्ध ने संघ में एकाधिकार अथवा महत्ताई का स्पष्ट खण्डन किया था। संघ नेतृत्व के संदर्भ में प्रश्न किये जाने पर बुद्ध ने किसी व्यक्ति विशेष के नेतृत्व को स्वीकार न कर सामूहिक नेतृत्व की सहमति दी थी।

स्त्रियों के लिए पुरुषवत् धर्म साधना के अधिकार की स्वीकृति संघीय जीवन की एक अन्य विशेषता था। प्रारम्भ में भगवान बुद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश के पक्ष में न थे। परन्तु इस प्रसंग में उनकी अनिच्छा धर्म साधना में स्त्रियों की पात्रता के प्रश्न से उद्गत न होकर संघ में अनुशासन एवं आचरण से सम्बन्धित प्रश्नों के कारण थी। अन्ततः इस सन्दर्भ में प्रव्रज्या हेतु उद्यत कतिपय स्त्रियों की आतुरता को देखकर सामाजिक विधि निषेधों को अस्वीकृति करने वाले बुद्ध को उनके प्रवेश की अनुमति देनी पड़ी। फलतः सद्धर्म में भिक्षु संघ के सदृश भिक्षुणी संघ का प्रवर्तन हुआ।

अंगुत्तर निकाय के अष्टक निपात में संघ में स्त्रियों के प्रवेश के विषय में बुद्ध द्वारा जो शर्तें प्रतिपादित की गई है उनसे एक ओर नारी की सहज क्षुद्रताओं और दूसरी ओर उनकी तुलना में पुरुष की श्रेष्ठना पर प्रकाश पड़ता है।[1] संभवतः नारी चरित्र की दुर्बलताओं तथा भिक्षु भिक्षुणी सानिध्यजन्य विकारों के प्रति आशंकित होने के कारण बुद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश की अनुमति देने के पक्ष में नही थे।

परन्तु महाप्रजापति गौतमी की धर्म के प्रति उत्कट अभिलाषा तथा आनन्द के विचारों से प्रभावित होकर बुद्ध ने अन्ततः कुछ शर्तों के साथ स्त्रियों को भी प्रव्रजित होने का अधिकार दे दिया। घर बार से प्रव्रजित होकर संघ में स्त्रियों का प्रवेश निश्चित ही एक क्रांतिकारी कदम था। परन्तु बुद्ध इस प्रवेश से प्रत्युत्पन्न होने वाले संकट से पूर्णतः अवगत थे। बौद्ध धर्म में स्त्रियों के लिए प्रव्रज्या का अधिकार स्वीकार कर लेने पर आनन्द से उन्होंने कहा था कि यदि आनन्द स्त्रियों को तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म के अनुसार घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की अनुमति न मिली होती तो यह श्रेष्ठ जीवन चिरस्थायी होता। एक हजार वर्ष तक यह सद्धर्म स्थिर रहता। लेकिन अब स्त्रियों के प्रव्रजित हो जाने पर यह सद्धर्म पाँच सौ वर्ष तक स्थिर रहेगा।[2] सांघिक जीवन की अस्थिरता तथा विघटन के विषय में बुद्ध की यह पूर्व दृष्टि निराधार न थी।

पुरुषों की तुलना में गृहस्थ जीवन का परित्याग कर प्रव्रजित होकर बौद्ध संघ में प्रविष्ट होना व्यवहारतः स्त्रियों के लिए एक कठिन कार्य रहा होगा। परन्तु इस अधिकार का महत्व इस बात में निहित है कि इससे नारी जीवन को धार्मिक साधना के अधिकार से वंचित करने वाली वैदिक युगीन मनोवृत्ति सिद्धान्ततः भग्न हो गयी।[3] अब स्त्रियाँ भी धर्म साधना में पुरुषों के समान अधिकारिणी थी। बुद्ध के जीवन काल में ही अनेक ऐसी भिक्षुणीयों के प्रमाण

* *सहायक आचार्य, सोनालाल झा शकुन्तला देवी महिला महाविद्यालय, गोरखपुर*

मिलते है, जिन्होंने अपनी साधना के बल पर प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इस प्रकार की नारियों में महाप्रजापति गौतमी, खेमा तथा उत्पलवर्णा के नाम उल्लेखनीय हैं।

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि संघ में स्त्रियों का प्रवेश संघीय जीवन में विकृति एवं प्रदूषण के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ। भिक्षु जीवन के समक्ष उत्पन्न होने वाली नवीन चुनौतियों एवं भिक्षुओं में चारित्रिक ह्रास की आशंका के कारण ही भगवान बुद्ध प्रारम्भ में स्त्रियों के पक्ष में नहीं थे। परन्तु अन्ततः उन्हें आनन्द के अनुरोध पर अपनी मानसिकता में परिवर्तन कर स्त्रियों के प्रवेश की अनुमति देनी पड़ी।

भिक्षु जीवन एकान्तवास एवं तपश्चर्या पर आधारित था। प्रव्रजिता भिक्षुणियों में अनेक ऐसी थी जो अभी किशोरावस्था में थी। एकान्तवास करने वाली ऐसी भिक्षुणियों की सुरक्षा की व्यवस्था कर पाना संघ के लिए दुष्कर कार्य था। विनय पिटक के अध्ययन से स्पष्ट है कि भिक्षुणियों के समक्ष सदैव असुरक्षा भाव एवं चोर डाकुओं तथा अन्य अराजकतत्वों का भय निरन्तर बना रहता था।[4] परन्तु इससें भी गुरुत्तर भय भिक्षु भिक्षुणी सानिध्य से तापस जीवन में प्रत्युत्पन्न चारित्रिक ह्रास एवं विकृतियों का था। बुद्ध स्त्री पुरूष के आकर्षण को बंधन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण मानते थे। भिक्षुओं में किसी भी दूसरे ऐसे रूप को नहीं देखता जो स्त्री के रूप में समान रंजक करने वाला होता हो, कमनीय हो, मदमस्त कर देने वाला हो, बांधने वाला, मुद्रित कर देने वाला हों तथा अनुपम योगक्षेम की प्राप्ति में बाधक हो। जो प्राणी स्त्री रूप के प्रति अनुरक्त हो जाते है उनसे ग्रसित हो जाते हैं, उनमें आसक्त हो जाते हैं उसमें फँस जाते हैं वे स्त्री रूप में वशीभूत हो जाने के कारण दीर्घ काल तक सोच में पड़े रहते है।... भिक्षुओं यदि कोई ठीक से यह कहना चाहे कि यह भार का सर्वतोमुखी बंधन है तो वह स्त्री के बारे में कहेगा कि यह भार का सर्वतोमुखी बंधन है।[5] अतः स्पष्ट है कि तापस जीवन के उच्चादर्शों से भिक्षुओं के पतन की संभावना से ही बुद्ध के मन में यह आशंका उठी थी कि संघ का अस्तित्व अब अधिक स्थाई न हो सकेगा।

निःसन्देह संघ में स्त्रियों के प्रवेश के कारण संघीय जीवन में पर्याप्त विकार आया। संघ में प्रविष्ट कतिपय भिक्षु भिक्षुणियों का चारित्रिक संगठन इतना संदृढ़ न था कि वे पारस्परिक आकर्षण का परित्याग कर ब्रह्मचर्यवास के लक्ष्य की ओर एकाग्रचित हो अग्रसर होते। चुल्लवग्ग में उस कोटि के भिक्षुओं का उल्लेख किया गया है जो भिक्षुणियों से हास परिहास करते, उन पर कीचड़ उछालते अथवा उनके समक्ष नग्न शरीर का प्रदर्शन करते। कतिपय भिक्षुणियों में तामस जीवन का यथेष्ट संयम न था। वे गृहस्थ जीवनयापी स्त्रियों की तरह कायबंधन (कमरवंद) आदि धारण करती, मुख में सुगन्धित लेप तथा नेत्रों में अंजन लगाती तथा नृत्य तमाशा आदि देखकर मनोरंजन करती थीं।[6] कतिपय भिक्षुणियों द्वारा अचिरावती में नग्न स्नान करने का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इसी प्रकार भिक्षुणियों द्वारा भिक्षुओं के समक्ष शरीर प्रदर्शित करने एवं उनके पास स्त्रियों को भजने का उल्लेख भी यत्र–तत्र मिलता है।[7] ऐसी अनेक भिक्षुणियों यथा सुन्दरी नन्दा, शूलनन्दा, चण्डकाली, आदि का नामतः उल्लेख भी किया गया है, जिनमें आचरण एवं अनुशासन की शिथिलता विद्यमान थीं। असंयत आचरण करने वाली, भिक्षुणियों में षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ उल्लेखनीय हैं। वे नाना प्रकार के अनाचार का आश्रय लेती थीं। संघ में गर्भिणी स्त्रियों के प्रवेश के प्रमाण भी प्राप्त हैं। ये संघ में रहकर सन्तानोत्पत्ति करतीं और संघ उनकी पालन पोषण की व्यवस्था करता था। महाकण्ड जातक (469) के अनुसार कई विहारों में भिक्षु भिक्षुणियों से संतानें उत्पन्न होने लगीं थीं। कभी–कभी भिक्षु भिक्षुणियों द्वारा गर्भपात कराने के सन्दर्भ भी मिलते हैं।[8]

बौद्ध धर्म में स्त्रियों के लिए पुरुषवत् धर्म साधना के अधिकार की स्वीकृति संघीय जीवन की एक विशेषता थीं। प्रारम्भ में भगवान बुद्ध स्त्रियों के प्रवेश के पक्ष में न थे। परन्तु इस प्रसंग में उनकी अनिच्छा धर्म साधना में स्त्रियों की पात्रता के प्रश्न से उद्गत न होकर संघ में अनुशासन एवं आचरण संबंधी प्रश्नों के कारण था। अन्ततः सद्धर्म में प्रव्रज्या हेतु उद्यत कतिपय स्त्रियों की आतुरता को देखकर सामाजिक विधि निषेधों को अस्वीकृत करने वाले बुद्ध को उनके प्रवेश की अनुमति देनी पड़ी। फलतः सद्धर्म में भिक्षु के सदश्ष भिक्षुणी संघ का प्रवर्तन हुआ।

बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि नाना सांस्कृतिक परिवेशों से आए हुए भिक्षुओं में बुद्ध एक ही संस्कृति का संचार करने में अधिकांशतः सफल हुए। अनेक प्रव्रजित भिक्षु अपनी पूर्णकालिक आस्थाओं एवं संस्कारों से ग्रस्त थे और उनमें भिक्षुचर्या के सर्वथा प्रतिकूल सामान्य जीवन की अनेक दुष्प्रवृतियाँ विद्यमान थीं। "चुल्लवग्ग" में यमेल ब्राह्मण द्वारा बुद्ध के समक्ष प्रस्तुत की गई इस आपत्ति का अंकन है कि किस प्रकार से नाना नाम–गोत्र, जाति एवं कुल से प्रव्रजित होने वाले भिक्षु अपनी अपनी भाषाओं में बुद्ध वचन को कहकर उसे दूषित

कर रहे है। यमेल ने बुद्ध वचनों को छन्दोबद्ध करने का भगवान से आग्रह किया था। अन्यत्र इस ग्रन्थ में कीटगिरि विहार में रहने वाले भिक्षुओं में फैले हुए अनाचार का वर्णन है। वहाँ रहने वाले भिक्षु धर्म साधना की अपेक्षा अनेक प्रकार की वासनाओं में लिप्त थे। वे कुल स्त्रियों, दुहिताओं, कुमारियों, बहुओं एवं दासियों को फूलों की मालायें बनाकर उपहार देते। उनके साथ एक ही आसन में शयन करते, नृत्य संगीत में भाग लेते तथा जुआ आदि खेलते थे। उनके द्वारा विहार में नृत्यांगनाओं को आमंत्रित करने का उल्लेख भी हुआ है।[9] "मोर जातक मे कतिपय श्रामणेरों के गृहस्थों की युवती कन्याओं के रूप गुण पर मुग्ध हो जाने के कारण भिक्षु जीवन का परित्याग कर गृहस्थ बन जाने का विवरण अंकित किया गया है।[10] "विनय पिटक" की सूचनानुसार कतिपय भिक्षु[11] एवं भिक्षुणियाँ[12] संघ का परित्याग कर बौद्धेत्तर सम्प्रदायों में चले जाते थें। महावग्ग के अनुसार न केवल नवागंतुक उपाध्याय एवं आचार्य भी भिक्षु संघ का परित्याग कर या तो अन्य मतावलम्बी हो जाते थे या गृहस्थ हो जाते थे।[13]

भिक्षुणियों के सानिध्य के कारण बौद्ध विहारों व्याप्त दुर्व्यस्था एवं अनाचार का पालि ग्रन्थों मे अनेकशः अंकन किया गया है। चुल्लवग्ग के अनुसार दब्बमल्लपुत्र के विरोधियों ने उन्हें बदनाम करने के उद्देश्य से मोत्तिया नामक भिक्षुणी को इस बात के लिए सहमत कर लिया कि वह बुद्ध के सन्निकट जाकर यह आरोप लगाए कि दब्ब ने उनके साथ व्यभिचार किया है। अनेक भिक्षु यह चाहते थे कि इस प्रकार दोषारोपण कर उन्हें संघ से निष्कासित कर दिया जाए।[14] "मज्झिम निकाय" में मोलिय फग्गुण नामक एक भिक्षु का उल्लेख है, जो भिक्षुणियों के साथ अधिक संसर्ग रखता था। यदि कोई मोलिय फग्गुण के सामने किसी भिक्षुणी की शिकायत करता था तो मोलिय फग्गुण कुपित एवं असंतुष्ट होकर उसका अधिकरण करते थे।[15] विनय पटक में छन्न भिक्षु का उल्लेख है जो भिक्षु भिक्षुणियों के बीच विवाह हो जाने पर भिक्षुणियों का समर्थन करता था।[16] महावग्ग में उपनन्द शाक्यपुत्र के श्रामणेर कंटक द्वारा कंटकी नामक भिक्षुणी के साथ व्यभिचार करने का उल्लेख है।[17] "चुल्लवग्ग" के अनुसार षड्वर्गीय भिक्षु अपने जांघों या गुप्तांगों को विकृत कर भिक्षुणियों को दिखाया करते, उन्हें अश्लील शब्दों से सम्बोधित करते तथा उनके साथ व्यभिचार करते थे।[18] "अंगुत्तर निकाय" में एक स्थल पर माता तथा पुत्र दोनों के क्रमशः भिक्षु तथा भिक्षुणी के रूप में वर्षावास करने का उल्लेख है। वे दोनों निरन्तर एक दूसरे को देखते रहते जिससे उनका पारस्परिक आकर्षण इतना बढ़ गया कि उन्होंने पतितचित्त होकर मैथुन धर्म का सेवन किया।[19] "पानीय जातक" (459) से स्पष्ट है कि प्रव्रजित होने पर भी कई सांसारिक वासनसओं के प्रति अपनी आसक्ति का निवारण करने में अक्षम होकर पापपूर्ण विचारों में लीन रहा करते थे। वस्तुतः इन दुष्प्रवृत्तियों को रोकने के उद्देश्य से ही यह नियम बनाया गया था कि कोई श्रामणेर किसी भिक्षुणी के संग सहवास करेगा तो उसे भिक्षु संघ से निष्कासित कर दिया जाएगा।[20]

इन उललेखों से स्पष्ट होता है कि संघ में स्त्री पुरुष सान्निध्य के कारण संघीय जीवन कुलषित हो रहा था और भिक्षु–भिक्षुणियों में नाना प्रकार के चारित्रिक दोष उत्पन्न हो रहे थे। भिक्षुओं द्वारा तापस जीवन का वरण मूलतः संसार एवं घर बार के परित्याग के लिए किया गया था। यह मन वाणी कर्म की विशुद्धि द्वारा परमार्थ प्राप्ति की ओर अग्रसर था। ब्रह्मचर्य पालन भिक्षुओं के लिए प्रतिपादित शील का एक अभिन्न अंग था। परन्तु संघ में स्त्रियों के प्रवेश के द्वारा वे समस्त आकर्षण पुनः एकत्र कर लिए गए, जिसके परित्याग का व्रत लेकर भिक्षुचर्या प्रारम्भ हुयी थी। इस प्रकार संघीय जीवन क्रमशः सांसारिक बनता गया और आगामी काल मे संघ के विघटन के लिए प्रत्यक्षतः उत्तरदायी सिद्ध हुआ।

यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि स्त्रियाँ प्रव्रजित होने के लिए इतनी उतावली क्यों होने लगीं वस्तुतः भगवान बुद्ध के समकालीन समाज में प्रव्रजित होना एक फैशन सा बन गया था, तो स्त्रियाँ ही इसमे पीछे क्यों रहती। प्रायः स्त्रियाँ धर्मभीरू भी होती है। धार्मिक जीवन व्यतीत करने की स्वभाविक प्रवृति के कारण धर्म शरणागत होने लगी। थेरीगाथा में उपलब्ध किसा, गौतमी, सुंदरी, चापा, इसिदासी, सोणा, शाक्य कुमारियाँ आदि की प्रव्रज्या क विवरणों से स्त्रियों के वैराग्य के अनेक कारणों का पता चलता है। अनेक स्त्रियों को अपने सगे–सम्बन्धियों के मृत होने पर संसार से वैराग्य हो गया तो उन्होने भिक्षुणी बन जाने का निश्चय कर लिया। अपने पुत्र, पति, माता–पिता तथा भ्राता को खोकर पटाचारा पागल हो गयी। उस मनःस्थिति में उसे भगवान बुद्ध की शरण में जाकर शान्ति मिली। यही बात किसा गौतमी तथा सुन्दरी के साथ हुई। इस युग के नवयुवकों में भिक्षु बनने का धुन सवार हो गया था। अनेकानेक नवयुवक अपनी पत्नियों को असहाय छोड़कर भिक्षु बन गये। पति के भिक्षुक बन जाने पर पत्नी के लिए यही सही विकल्प रह जाता था या तो वह आजीवन वियोग की अग्नि में जलती रहें, असहाय

अवस्था में कष्ट झेलती रहे अथवा भिक्षुणी बन कर मानसिक शांति लाभ करें और अपने पति को भिक्षु रूप में ही सही आँखे से देखकर ही संतोष कर लें। भिक्षुको की अनेक युवा पत्नियों ने दूसरा विकल्प चुना। जब पाँच सौ शाक्य कुमार भिक्षु बन गये तो उनकी पत्नियाँ वैशाली चली गयी और उन्होंने आनन्द के माध्यम से भगवान बुद्ध से निवेदन किया कि उन्हें भी प्रव्रज्या की दीक्षा मिल जाय। पति के भिक्षु होने पर चापा भी अपनी संतान को उसके पितामह के संरक्षण में छोड़कर पतिपथगामिनी हो गयी। जब किसी परिवार के अधिकांश सदस्य भिक्षु बन गये तो उस परिवार की कुछ स्त्रियाँ भी संसार से विरक्त हो प्रव्रजित हो गयीं। दाम्पत्य जीवन की विफलता तथा पारिवारिक कलह के फलस्वरूप भी अनेक स्त्रियों ने भिक्षुणी बनना अंगीकार किया। इसिदासी ने तीन बार विवाह किया, परन्तु सभी विवाह असफल रहे, तो वह भिक्षुणी बन गयी। अपने पुत्र एवं पुत्रवधुओं के अनादर से विक्षुब्ध होकर सोणा प्रव्रजित हो गयी। उसने उस दस्यु की प्राणरक्षा की, परन्तु अस कृतघ्न दस्यु ने एक दिन श्रेष्ठि पुत्री की हत्या कर उसके मूल्यवान आभूषणों को हस्तगत करने का विचार किया। इस षड्यन्त्र का आभास मिलने पर श्रेष्ठि कन्या ने उस दस्यु को मार डाला और स्वयं भिक्षुणी बन गयी। अनेक गृहिणियों ने अस अवस्था में प्रव्रज्या की दीक्षा ली जब वे गर्भवती हो चुकी थी, जिसका उन्हें कोई ज्ञान नहीं था। भिक्षुणी बन जाने के कुछ काल के अनन्तर जब उनमें गर्भ के लक्षण प्रकट हाने लगे, तो संघ के अधिकारियों के लिए यह एक विकट समस्या बन गयी। चुल्लवग[21] के अनुसार एक स्त्री को भिक्षुणी धर्म की दीक्षा दी गयी। उस स्त्री के गर्भ में बीजारोपण हो चुका था, पर वह उससे अनभिज्ञ थी। कुछ समय व्यतीत होने पर उस भिक्षुणी में गर्भ के लक्षण प्रकट होने लगे तो वह भावी संतान के पालन–पोषण के विषय में चिंता करने लगी। अन्त में संघ ने उसकी चिन्ता दूर कर दी। उस भिक्षुणी को अपनी संतान को शैशवकाल पर्यन्त साथ रखने की अनुमति दे दी गयी और भिक्षु के देखभाल में सहयोग प्रदान करने के लिए एक भिक्षुणी को भी साथ कर दिया गया। निग्रोध मिग जातक (12) में इस प्रकार के अन्य प्रसंग का विवरण दिया गया है–राजगृह के एक धनाढ्य श्रेष्ठि की कन्या के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया तो उसने अपने माता पिता से प्रव्रज्या लेने की इच्छा व्यक्त की परन्तु उस कुल की एक मात्र संतान होने के कारण उसके माता पिता ने वैराग्य मार्ग के पथिक होने की अनुमति नहीं प्रदान की। अतएव उसने अपने मन में विवाहोपरान्त पति से ही वैराग्य की अनुमति प्राप्त करने का निश्चय किया। यथासमय उसका विवाह सम्पन्न हो गया और वह अत्यंत पतिपरायणा भार्या बन गयी। कुछ काल पश्चात् वह गर्भवती हो गयी, जिसका उसे पता नहीं चला और इसी बीच उसने भिक्षुणी बनने के लिए अपने पति की अनुमति प्राप्त कर ली। प्रव्रजित हो जाने के कुछ समय पश्चात् जब उसके शरीर में गर्भ के लक्षण स्पष्ट होने लगे, तो अन्य भिक्षुणियों ने इसकी सूचना देवदत्त को दी। समाज में इस बात का प्रचार हो जाने से संघ की बड़ी निन्दा होगी। ऐसा सोचकर देवदत ने तत्काल उस भिक्षुणी को संघ से निष्कासित कर दिया, परन्तु उस भिक्षुणी की प्रार्थना पर संघ में दंवदत के निर्णय पर विचार विमर्श किया गया और एक भिक्षुणी पर पता लगाने का भार सौपा गया कि गर्भ उसके संघ प्रवेश के पूर्व का था अथवा पश्चात् का। जब यह निश्चित हो गया कि वह भिक्षुणी संघ प्रवेश के पूर्व की गर्भवती हो गयी थी, तो निष्कासनसदेश रद्द कर दिया गया। उसने यथा समय प्रसव किया। उस समय बिहार के पार्श्व से कोशल–नरेश प्रसेनजीत की सवारी जा रही थी। उन्होंने शिशु का क्रन्दन सुना, तो रूक गये। फिर यह विचार किया कि शिशु का पालन पोषण भिक्षुणी किस प्रकार करेगी, स्वयं इस भार को वहन कर लिया। इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि यदि संघ में किसी भिक्षुणी को गर्भ रह जाता है तो नियमानुसार उसे संघ से निष्कासित कर दिया जाता, परन्तु जब कोई स्त्री उस वैध गर्भ के साथ जिससे वह अनभिज्ञ हो, प्रव्रजित हो जाती, तो उसे संघ से निष्कासित नही किया जाता। संघ गर्भवती भिक्षुणी को प्रसव की सुविधाएँ प्रदान करता था और संतान के पालन पोषण का भार प्रायः सद्गृहस्थ उठा लेते थे, परन्तु कोई उपासक इस कार्य के लिए प्रस्तुत नहीं होता, तो शिशु अशैशवान्त संघ में ही पलता।

पन्द्रह वर्ष की आयु में ही व्यक्ति प्रव्रज्या की दीक्षा लेकर बौद्ध भिक्षु संघ में प्रवेश करने का अधिकारी हो जाता था। इस अल्पवय में सांसारिक जीवन से विमुखता के फलस्वरूप अनेक भिक्षु संघ के उच्चादर्शों के पालन में असफल हो जाया करते थे। कई भिक्षु स्त्री सानिध्य के कारण भ्रष्ट हो जाते थे। पालि जातको में भिक्षुओं द्वारा व्यभिचार किये जाने की अनेक कथाएँ मिलती हैं। यद्यपि इन कथाओं का प्रमुख उद्देश्य भिक्षुओं को सांसारिक प्रलोभनों से सचेत करना था, परन्तु कहानियाँ निराधार नही मानी जा सकती। भिक्षुओं के भ्रष्टाचार सम्बंधी कहानियों में इस तथ्य की प्रमुखता है कि नारी सौंदर्य के आकर्षण के कारण ही भिक्षु पथ भ्रष्ट हो जाया करते थे। किशोर–उम्र के श्रामणेरों के स्त्री संसर्ग से भ्रष्ट होने की घटनाओं से आश्चर्य भी नही किया जा सकता है।

विनय पटक में कुन्तक नामक श्रामणेर द्वारा एक भिक्षुणी के साथ व्यभिचार किये जाने का उल्लेख मिलता है।[22] कतिपय श्रामणेर अथवा नवयुवक भिक्षु गृहस्थों की नवयुवती कन्याओं के रूपगुण पर जर मुग्ध हो जाते, तो फिर भिक्षु जीवन में उनका मन नहीं लगता था जिससे वे संघ का परित्याग का गृहस्थ बन जाते थे।[23]

भिक्षु जीवन का परित्याग कर गृहस्थ बन जाने का कारण केवल नारी ही नही थी। अन्य कारणों से भी भिक्षु संघ को छोड़कर भाग जाते थे। कभी कभी तो वरिष्ठ भिक्षुओं के दुर्व्यवहार के कारण नवयुवक भिक्षु संघ से नाता तोड़ लेते थे। अहिगुण्डिक–जातक के अनुसार उक ग्रामीण युवक को प्रव्रज्या की दीक्षा दी गयी, पर एक बृद्ध भिक्षु द्वारा पीटे जाने पर उसने संघ का परित्याग कर दिया। कुछ नवयुवक भिक्षुओं को, अपने माता पिता के प्रयास से विवश हो भिक्षु जीवन से विरत होना पड़ा। मज्झिम–निकाय के अनुसार राजगृह के श्रेष्ठि कुमार रट्ठपाल को उनके माता पिता ने यत्नपूर्वक पुनः गृहस्थ बना लिया।[24] इसी प्रकार राजगृह के ही श्रेष्ठि कुमार तिष्य के प्रव्रजित हो जाने पर उनके माता–पिता ने एक दासी को उन्हें भिक्षु जीवन से विरक्त करने के लिए नियुक्त किया और अन्त में उसे सफलता मिली।[25] जब किसी भिक्षु के गृहस्थ जीवन की पत्नी अथवा पत्नियाँ कातर हो उससे पुनः गृहस्थ जीवन में लौट जाने के लिए अनुनय करने लगती तो उस अवस्था में कई भिक्षुओं की प्रतिज्ञा भंग हो जाती।[26] कभी–कभी भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ संघ छोड़कर बौद्धेतर सम्प्रदाय में चले जाते थे। यदि बौद्धेतर मत स्वीकार करने वाले भिक्षु की आस्था बौद्ध धर्म में पुनः दृढ़ हो जाती तो उसे बौद्ध धर्म में वापस आने की अनुमति मिल जाती, परन्तु भिक्षुणियों को यह सुविधा नही दी गयी।[27] परिवास की अवधि पूर्ण होने के पूर्व जो भिक्षु संघ छोड़कर भाग जाते थे, उनहे संघ प्रवेश करने पर पुनः परिवास का पालन करना पड़ता था।[28] महावग्ग के अनुसार न केवल नवागन्तुक, पर कतिपय उपज्णय तथा आचार्य भी, भिक्षु संघ का परित्याग कर या तो अन्य मतावलम्बी बन जाते थे अथवा गृहस्थ बन जाते।[29]

सन्दर्भ

1. अंगुत्तर निकाय (हिन्दी अनु0) भाग 3, पृ. 347,48
2. चुल्लवग्ग, पृ. 376,77
3. चुल्लवग्ग, पृ. 356
4. चुल्लवग्ग, पृ. 376,77
5. चुल्लवग्ग, पृ. 399
6. चुल्लवग्ग, पृ. 382
7. चुल्लवग्ग, पृ. 386, 87
8. महा0 जातक, पृ. 309
9. चुल्लवग्ग, पृ. 19, 20
10. मोर जातक, पृ. 159
11. महावग्ग, पृ. 73
12. चुल्लवग्ग, पृ. 401
13. से0वु0ई0, भाग–13, पृ. 178, 81, 82
14. चुल्लवग्ग, पृ. 156
15. मज्झिम निकाय, पृ. 164
16. चुल्लवग्ग, पृ. 170
17. महावग्ग, पृ. 89
18. चुल्लवग्ग, पृ. 382
19. अंगुत्तर निकाय, भाग 2, पृ. 3312 0 .

पानीय जातक, पृ. 459

21. चुल्लवग्ग, पृ. 10, 25, 1
22. राहुल सांकृत्यायन, विनय पटक, पृ. 125
23. मोर जातक (159)
24. मज्झिम निकाय, रट्ठपाल सुत्त
25. बातमिग जातक (14)
26. राहुल सांकृत्यायन, विनय पिटक, पृ. 384, 539
27. राहुल सांकृत्यायन, विनय पिटक, पृ. 384, 386, 388
28. 5 बी0 ई0, 13, पृ. 178, 181, 182
29. जातक, 4 पृ. 479

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Geography: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 92-95

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

A Report of Sir Creek : Water Pollutant and the Effects of Contaminants

*Dr. Ravi Kumar Mishra** *Dr. Sachin Bhatt***

Once a bustling refinery, now a desolate wasteland, the Refinery is an abandoned Superfund site in Bhuj, Gujrat. For years I have driven by the old tanks and tall stacks of the old refinery. I began to wonder if any petroleum products or hydrocarbons were seeping into Sir Creek behind the Refinery. Sir Creek runs downstream through the town, past the refinery, through the town. I've seen people fishing and walking in the sir creek. Cows drink from this water. The people drink from wells that share the same groundwater with the sir creek. I wanted to discover if the refinery had contaminated Sir Creek.

I started my field journal in Dec 2020. My dad and I got permission to walk on the land that bordered the refinery. I wanted to get close to where the refinery waste ran into the creek so that I could get a sample of the water.

Dec 18, 2020: *As I walk behind the old Refinery, I smell petroleum and feel the gooey soil on my shoes. I pick up the soil, and it seeps through my hands as black sludge. The soil has been devastated by years of contamination from petroleum products and caustic chemicals. As I climb down the banks of the creek, I notice that the water smells strongly of petroleum. I fill my containers with the creek water and head home.*

Using a colormetric test kit, I tested the water for: ammonia nitrogen, pH, chlorine, chromium, copper, cyanide, iron, nitrate nitrogen, phosphorus, silica, and sulfide. The water tested negative for everything except nitrate nitrogen, phosphorus, and silica. These results did not show whether Sir Creek was contaminated with petroleum. Since the water smelled strongly of petroleum, I needed to test it for hydrocarbons. While searching on the Internet for chemical testing kits, I found a lab in Maine where the chemists answered questions. A senior chemist, Mr. Chaterjee, wrote me back saying that he would test the water for hydrocarbons. He also answered many of my questions when I e-mailed him.

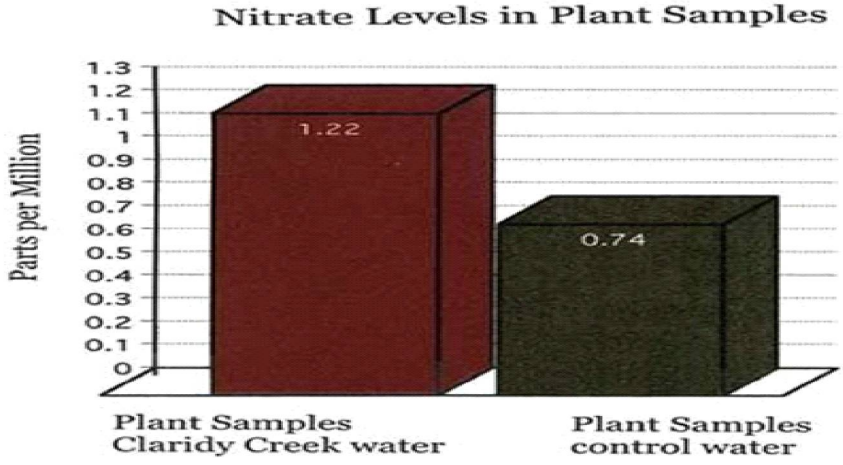

Jan 6, 2020: *Once again I'm walking along the creek behind the refinery. It's cool and windy today. I just took samples from three places: downstream from the refinery, behind the refinery, and upstream from the refinery. We have had a lot of rain lately and the water level in the creek is up. The water doesn't smell as bad as it did this summer.*

When I got the samples home, I put the water in six special glass vials that would be sent to Main. I could not use any plastic because plastic contains hydrocarbons that would contaminate the samples. I sent the vials in a special cooler so that the samples would not get too hot in Bhuj, or too cold in Maine. I also conducted my own tests on the water. My results showed that the water behind and upstream from the refinery was high in nitrates and phosphates.

When testing the water, Mr. Chaterjee extracted and analyzed the semi-volatile portion, the portion that would be diesel and motor oil, using gas chromatography coupled with mass spectometry. The results were not what I expected. The creek water I sent to Maine did not have detectable amounts of hydrocarbons in it. But why did the creek water smell like petroleum?

Next, I tested the oxygen levels behind the refinery, and upstream and downstream from it. The oxygen levels at each site were high. The smell was not from anaerobic decomposition. Going back to the sites, I tested the creek water with lead acetate paper strips, and the results were negative. The smell was not from hydrogen sulfide.

After compiling my data, I concluded that the smell in Sir Creek behind the refinery is coming from undetectable traces of hydrocarbons. Since the late 1999's steps have been taken to stop the leakage of hydrocarbons and hazardous substances into Sir Creek. While my tests were negative, I still believe I can smell the petroleum even though it cannot be detected by the tests I performed. I continued to investigate Sir Creek.

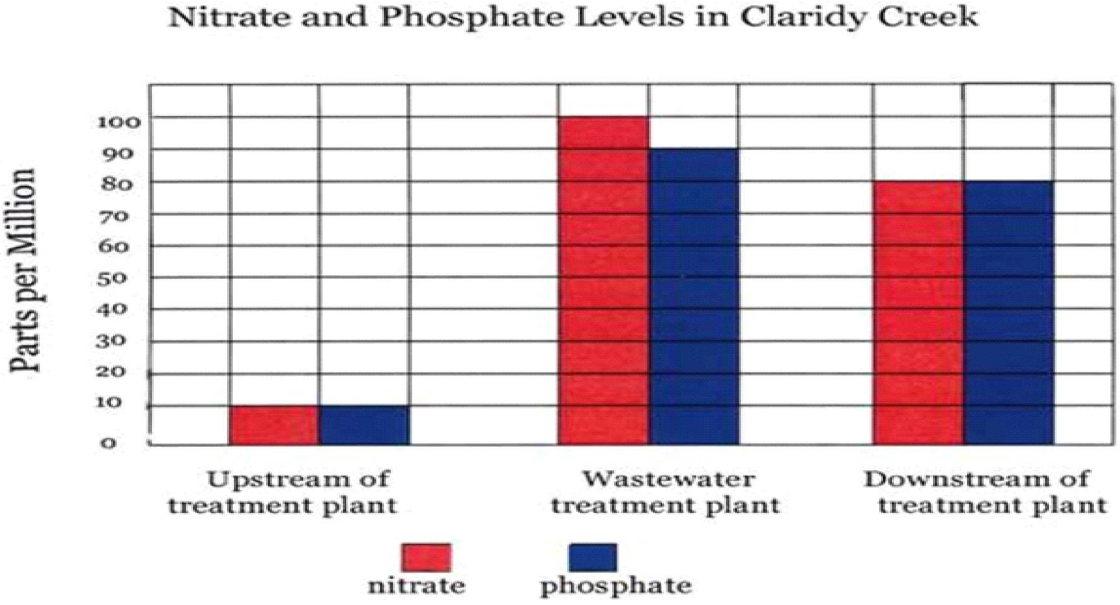

In previous tests, I had found high levels of phosphates and nitrates upstream from the refinery. I wondered how this could be. To my surprise, I discovered that the Wastewater Treatment Plant is upstream from the refinery. I continued testing Sir Creek further upstream from the refinery, above the treatment plant.

January 10, 2020: *Today I am testing upstream and downstream from the Wastewater Treatment Plant. It is hard to walk up and down the creek banks at this point, so I attach a bucket to a rope and drop it off the side of the bridge at MG Road, upstream from the treatment plant. This is the method I used to take my samples downstream from the treatment plant as well. I collect my samples and take them home to test.*

My tests were conclusive, showing no levels of nitrates and phosphates above the treatment plant, but high levels in the creek downstream from the plant. Nitrates and phosphates are by-products of treating wastewater. The treatment plant uses a denitrification process to take out nitrates before the water is discharged back into the creek. Even though the water has been treated, high levels of nitrates and phosphates remain in it, contaminating the creek. Was there a way to remedy this?

Jan 31: *As I look over the bridge down into Sir Creek, I see the treatment plant to my north and the old refinery to my south. There are plants and grasses growing around and in the creek. I wonder if any of them help absorb the contaminants from the creek.*

I started studying the refinery as a seventh grader. I began my second year of research as an eighth grader, trying to determine how I could naturally, efficiently, and inexpensively remediate the contaminated creek water. I turned my studies toward phytoremediation.

While searching the Internet for more information on plants used in phytoremediation, I found an article written by Dr S D Tripathi. He is a soil scientist for the United States Department of Agriculture, in the Agriculture Research Service, and he works at the University of Punjab. He answered my e-mails about possible plants to use, and advised me during my experiments.

My colleague and I built a greenhouse to store all of my plants and to conduct my experiments. I decided I would use cattails as my first phytoremediator. Cattails can survive the Bhuj heat and thrive just about anywhere.

Jan 9, 2020: *It is cool today, I found some cattails at my Grandma's pond and dragged them out of the water. I put them in five-gallon containers and took them home to my greenhouse.*

I think that I am the only person alive who has actually killed a cattail. My cattails did not survive life in the greenhouse. This was definitely a setback because it was getting cold and soon all of the aquatic plants would be going dormant. Luckily, a local water gardener gave me some umbrella plants, another species of plant that can live in water. Also, Dr.AN Singh, let me pick some water plants from his backyard water garden. I then transplanted the umbrella plants, cattails and mint plants in my greenhouse, hoping they would live.

In my first experiment, I created a contraption to pump water back and forth from a 55-gallon barrel to an 18-gallon container. I mixed together fertilizer and water to simulate the high nitrate and phosphate content of Sir Creek, and put the mix into the containers and into a control. At the beginning and end of the experiment, I tested the water for nitrates and phosphates using my chemical testing kit, and also sent samples to the OSU Lab for testing. I placed my umbrella plants in the 18-gallon container. I circulated the water every day by pumping water from the barrel to the plants, and kept records of the temperature in the greenhouse and the growth of the plants. I conducted my own water tests periodically during the experiment.

By the end of my first experiment, the umbrella plants had grown many new stalks, gotten much greener, and were thriving, but nitrate and phosphate levels increased in both the plant water and the control water. There was a high amount of algae in the water, which may have affected both nitrate and phosphate absorption. I think that possibly the fertilizer collected in the bottom of the 55-gallon barrel, and the pumping back and forth affected my results.

In my second experiment, I used mint plants and cattails, and mixed a greater concentration of fertilizer into the water. By the end of the experiment, both plants were turning brown, smelling very swampy, and generally not thriving. The level of nitrates in the mint plants' water decreased greatly, yet the level of phosphates remained high. The opposite occurred in the cattail water. While the phosphates remained the same, the nitrates increased. The nitrates showed a slight increase in the control water. My mint plants were a success! Now I wanted to test phytoremediation using actual creek water.

January 10, 2020: *It is cold today. Even though we are in a drought there have been quite a few freezes. I walk down the creek bank south of the treatment plant, get a bucketful of water, and head back to the truck. I have to get a few more bucketfuls so I can conduct my experiment. I want this experiment to be authentic, so I'm using actual water from the contaminated creek.*

In this experiment, I wanted to determine if my umbrella plants would absorb nitrates into their roots and stalks. To do this, I put plants into water that had not been treated, well water, and water from Sir Creek. I tested the water at the beginning and end of the experiment with my test kit, and Dr Sachin Bhatt at the Research Laboratory in Bhuj, tested both my water and my plant samples. The nitrates decreased in both water samples with plants in them, yet the total phosphates increased in each sample. The results showed that the plant stalks in the Sir Creek water had more nitrates in them than the plants in the well water did. I concluded that my umbrella plants actually absorbed nitrates out of the water into their stalks. I had success!

Coclusion : I started my research studying the Refinery, moved to the Wastewater Treatment Plant, and then to phytoremediation. I found that the treatment plant was contaminating Sir Creek with nitrate nitrogen and phosphorus, and that umbrella plants and mint plants will absorb nitrate nitrogen. Next year I would like to continue to study how the refinery is contaminating Sir Creek. I would also like to continue to use my plants to remediate other contaminates, such as lead and arsenic.

References

1. Elias, Paul. "At contaminated sites, plants do the dirty work." *The Providence Journal* 26 July 2005: F2.
2. Fowler, Veronica, and Jamie Beyer. *All About Garden Ponds*. Iowa: Meredith Books, 1999.
3. Gas Chromatography . Retrieved from the World Wide Web on 1 February 2005.
4. *Greenhouses*. Iowa: Meredith Books, 2002.
5. *On-Site Wastewater Treatment Systems Manual*. U.S. Environmental Protection Agency. February 2002.
6. *Phytoremediation*. Ecological Engineering Group. Retrieved from the World Wide Web on 8 August 2005.
7. Quinn, Vickie. "Forum focuses on refinery." The Duncan Banner 14 November 2004: A1.
8. Risk-Based Cleanup Levels Total Petroleum Hydrocarbons . Department of Environmental Quality
9. Fact Sheet. Retrieved from the World Wide Web on 14 December 2004.
10. Robertson, Stephen. "Refining plans." The Duncan Banner 14 November 2004: A1.
11. Russelle, Michael. E-mail correspondence/interview by Kyle Ressel. 22 October 2005 to 6 April 2006.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 96-99

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

ब्राह्मणवाद और दलित अस्मिता का प्रतिरोध

*रजनी कनौजिया**

शोध सारांश–आज दलित साहित्य या दलित साहित्यकारों के प्रति जो विरोध प्रकट किए जा रहे हैं उसका सीधा सा अर्थ यही है कि ब्राह्मणवादी आज भी समाज में समता नहीं लाना चाहते। दलित साहित्य, दलित अस्मिता की मुहिम चलाकर बराबरी, भाईचारे और आजादी की लड़ाई को आगे बढ़ाता है। यह दलित अस्मिता चाहे वह हिन्दू विरोधी ही क्यों न हो– है तो मानव अस्मिता का एक हिस्सा ही। दलित साहित्य उस दबी हुई अस्मिता को प्राणवान मानव अस्मिता का हिस्सा बनाने की लड़ाई ही तो लड़ रहा होता है, जब वह वर्णहीन, वर्गहीन और जातिविहीन समाज बनाकर एक मानवीय समाज बनाने की घोषणा करता है।

प्रस्तावना–भारत विरोधाभासों का देश है यहाँ पर ब्राह्मणवादी सोच का विरोध सवर्ण समाज सहज ही स्वीकार नहीं कर पा रहा है और निरन्तर उसका विरोध कर रहा है। वैसे तो कहा जाता है कि मानवता के पूरे इतिहास में मनुस्मृति विचारधारा के सबसे अनुकरणीय ग्रन्थों में से एक है किन्तु यदि उसका सही आकलन मानवता के आधार पर किया जाए तो किसी भी दृष्टिकोण से वह मानवता का नहीं अपितु ब्राह्मणवादी–वर्चस्ववादी सोच का पोषक मात्र है। दलित साहित्य मानवता का पोषक है जिसका विरोध वही करते हैं जो वर्चस्ववादी–मनुवादी विचारधारा के पोषक हैं।

शब्दकुन्ज–*मानवता, ब्राह्मणवाद, ईश्वर, दलित अस्मिता, आत्मसम्मान, समता वर्ण–व्यवस्था, जातिविहीन समाज, सामाजिक परिवर्तन, समाज का नवनिर्माण आदि।*

विषयवस्तु–दलित अस्मिता और दलित शिक्षा का गहरा रिश्ता है। अभिव्यक्ति की ताकत की वजह से मनुष्य और पशु में भेद स्पष्ट है अभिव्यक्ति की ताकत मनुष्य की ताकत है जिससे उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अभिव्यक्ति की ताकत का शिक्षा से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। शिक्षा से समझ का विकास होता है। स्वाभिमान और आत्मसम्मान अस्मिता के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। दुर्भाग्यवश भारत की सामाजिक व्यवस्था ने देश की जनता के एक बड़े हिस्से को शिक्षा से इसीलिए वंचित रखा ताकि वे अभिव्यक्ति की ताकत हासिल न कर सकें– अपनी पहचान न बना सकें और न ही आत्मसमान एवं स्वाभिमान से जी सकें। भारतीय संस्कृति, जो हिन्दू संस्कृति पर आधारित है को सर्वोत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने हेतु हिन्दू मनीषियों ने एड़ी–चोटी का जोर लगाया है। इस संस्कृति ने आज तक साम–दाम–दण्ड–भेद के सभी टोटके भी अपनाए जिससे उनका वर्चस्व बरकरार रहे और निरन्तर बढ़ता रहे। भारतीय संस्कृति ने एक ऐसा नायक गढ़ा जिसने शम्बूक जैसे मनीषी का सिर काट लिया और अपने से बलवान बाली को छिपकर छद्म से मार दिया। ऐसे कपटी, छली एवं सत्ता–सुख हेतु पत्नी–त्यागी 'राम' नामक नायक को गौरवान्वित तो किया ही है साथ ही उसे मर्यादा पुरुषोत्तम की पदवी भी दे दी।[1] इसी प्रकार के मर्यादा पुरुषोत्तमों का विरोध दलित चेतना करती है। द्विज मानसिकता भी दलित चेतना को पटकनी देने के लिए हर अस्त्र का प्रयोग करती रही है। उपेक्षा, निंदा, प्रताड़ना, तिरस्कार, विचारधारा को कुण्ठित कर स्वीकारना, उसे पूजा की वस्तु बना देना, हिन्दू कूटनीति के प्रमुख हथियार रहे हैं। दलित साहित्य मनोरंजन का साहित्य नहीं है। यह प्रतिबद्ध साहित्य है यह अपने समाज को जागरूक करने, चेतना का संचार कर उसे परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है। यह दलित और गैर दलित दोनों की मानसिकता को बदलने के उद्देश्य से लिखा जाता है। दलित साहित्य विद्रोह की क्षमता रखता है साथ ही ब्राह्मणवादियों के झूठे महिमामण्डन को उलटकर उनके मिथकों को नई परिभाषा देता है। दलित साहित्यकारों ने सवर्ण साहित्यकारों द्वारा निर्मित पुराने प्रतीकों, शब्दों का विरोध किया है। आधुनिक काल में दलित समुदाय में सामाजिक परिवर्तन हेतु बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर का आन्दोलन

* *शोध छात्रा, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ*

प्रमुख रूप से सामने आता है। बाबा साहेब ने भारतीय समाज की परम्परा और संरचना दोनों में ही बदलाव हेतु आन्दोलन चलाए। सामाजिक स्तर पर उन्होंने पहले हिन्दू धर्म, भाग्य, भगवान, पुजारी धार्मिक पुस्तकों आदि अनेक परम्पराओं का वस्तुनिष्ठ आकलन कर उन्हें भारतीय समाज के लिए पतनशील बताया। भारतीय सामाजिक व्यवस्था की पतनोन्मुख परम्पराओं के तले दबे दलितों के उत्थान हेतु ही उन्होंने 14 अक्टूबर[2] 1956 में नागपुर में बौद्ध धर्म में पुनः प्रवेश कर दलितों को नवीन धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक मूल्यों, रीति–रिवाजों की परम्परा प्रदान की।

भारतीय समाज एवं राष्ट्र की प्रमुख समस्या जाति है, जाति व्यवस्था स्वस्थ समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में बाधा बनी हुई है। जातिवादियों ने जाति को वंशानुगत पेशों में परिवर्तित किया और व्यवस्था बनाई कि कोई भी पेशागत समूह एक दूसरे से सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखेगा। रोटी–बेटी का सम्बन्ध नहीं रखेगा। इसके विपरीत एक दूसरे से द्वेष एवं वैमनस्य का भाव रखेंगे तथा दुश्मन की तरह व्यवहार करेंगे। समाज की एकता को तोड़ने के लिए यह कुत्सित प्रयास था। आगे चलकर यही जाति व्यवस्था को बनाये रखने का मूल आधार बनी। जाति व्यवस्था समाज का कोढ़[3] है जिसने समाज को खोखला कर दिया है, अपंग बना दिया है। जाति ने न सिर्फ समाज को विकास से वंचित किया है बल्कि समाज को पतन के गर्त में ढकेल दिया है। जाति ने समाज का नैतिक पतन भी किया है।

हिन्दू धर्म की कथित महानता के पुनरुत्थानवादी दावों के छद्म को भेदते हुए अम्बेडकर युगीन दलित चेतना ने इस बात को रेखांकित किया कि भारतीय समाज जाति के नाम पर अलग–अलग तथा परत–दर–परत कई सोपानमय समूहों में विभक्त है, जिनके बीच विशाल सामाजिक अवरोध खड़े किए गए हैं। इन सभी के पीछे ब्राह्मणवाद ही है। ब्राह्मणवाद शब्द का प्रयोग ब्राह्मणधर्म (हिन्दू धर्म) के लिए और खासतौर से उससे जुड़ी–वर्ण–व्यवस्था की विचारधारा के लिए किया जाता है। ब्राह्मणवाद या ब्राह्मणधर्म के मूल तत्त्व हैं– वेदों की प्रामाणिकता में विश्वास, वर्ण–व्यवस्था और कर्मवाद, अवतारवाद, मोक्ष आदि। सामाजिक दृष्टि से ब्राह्मणवाद का अर्थ है वर्ण–व्यवस्था की विचारधारा, जो जाति व्यवस्था को ईश्वरीय बतलाकर एक सैद्धान्तिक अधिकार प्रदान करती है। ब्राह्मणवादी व्यवस्था बुद्धि–विरोधी, अन्यायपूर्ण और अलोकतांत्रिक है। इसका तर्क संगत, वैज्ञानिक चिंतन तथा स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता के मानवीय मूल्यों से विरोध है। भारतीय सन्दर्भ में ब्राह्मणवाद एक वर्गविहीन, जातिविहीन और स्त्री–पुरुष समानता पर आधारित समाज की दिशा में बढ़ने के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है।[4] कोई आश्चर्य नहीं है कि आज के लोकतांत्रिक मानवतावादी और समतावादी युग में ब्राह्मणवाद का विरोध निरन्तर तेज होता जा रहा है। वर्चस्ववादियों की कुटिल बुद्धि दलितों को साक्षर होने से रोकती रही है। ये सिलसिला ऐतिहासिक है। आधुनिक काल में डॉ0 अम्बेडकर के आविर्भाव और आधुनिक शिक्षा ने दलितों में एक पढ़ा–लिखा वर्ग तैयार किया है जो नैतिकता की पुनर्व्याख्या कर रहा है। प्रत्येक मान्यता, जीवन मूल्य पर प्रश्न खड़े करके उसकी व्यावहारिकता, लोकतांत्रिक आधार पर उपयोगिता परखना चाहता है।

सामाजिक जीवन में वर्चस्ववादियों ने कुछ ऐसी स्थितियाँ निर्मित की हैं, जो यह स्थापित करती हैं कि वे महान हैं, उनकी संतानें महान हैं, उनकी संस्कृति श्रेष्ठ है और वे ही संस्कृति के सच्चे और सर्वश्रेष्ठ वाहक हैं। यह बात इतनी बार दोहराई जाती है कि इसे ही सच मान लिया जाता है और सम्पूर्ण समाज की मानसिकता पर यह सोच हावी हो जाती है। वर्चस्ववादी दूसरों के श्रम पर अपना अधिकार समझता है, इसी के लिए वह दर्शन गढ़ता है, आख्यानों का निर्माण करता है। ब्राह्मणवादी भारतीय मानसिकता लोगों में सामूहिक आर्थिक गतिविधियों के लिए कोई चेतना नही जगाती, इसीलिए उनकी तमाम गतिविधियों से दलित स्वयं को अलग कर लेता है।

डॉ0 अम्बेडकर ने अंधविश्वास, विकृत रूढ़ियों, परम्पराओं धर्म देवी–देवताओं, आडम्बरों, भाग्य, भगवान, पूर्व जन्म के फल इन सबको नकारा और अवैज्ञानिक सोच और ईश्वर में अंध–आस्था को, जो मनुष्य को बर्बरता की हद तक पहुँचा देती रही है इसका डॉ0 अम्बेडकर ने तार्किक एवं वैज्ञानिक ढंग से जोरदार खंडन किया। दलित की प्रतिष्ठा, सम्मान और अस्मिता, शिक्षा, संघर्ष और संगठन, तार्किक सोच आदि सब मुद्दे मनुष्यता की जरूरी शर्तें हैं जिन्हें दलित साहित्य उठाता है। दलित साहित्यकार जहाँ अपनी कृतियों में समानता भाईचारा और आजादी के लक्ष्य हासिल करने हेतु जाति, कबीला, नस्ल या रंग के आधार पर किसी भी विभेद को नकारता है, वहीं वह धर्म, धन, सत्ता, दर्शन अथवा जन्म के आधार पर किसी श्रेष्ठता अथवा निकृष्टता की अवधारणा को भी अस्वीकारता है। इस प्रकार वह केवल दलित के लिए ही नहीं वरन् पूरे समाज के लिए इन विभेदों को मिटाना चाहता है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि सदियों की वेदना को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

''कभी नहीं माँगी बालिश्त भर जगह
नहीं माँगा आधा राज भी
माँगा है सिर्फ न्याय
जीने का हक
थोड़ा सा पीने का पानी।''[5]

'दलित अस्मिता' की तलाश ही दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है। सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक चिन्तन व आत्मविश्लेषण के माध्यम से दलित अस्मिता की तलाश अनवरत जारी है। दलित साहित्य का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है। दलित अस्मिता की तलाश करते हुए कँवल भारती घोषणा करते हैं–

''बाबा तुम मरे नहीं हो
जीवित हो
हमारी चेतना में
हमारे संघर्ष में जो मुक्ति संग्राम लड़ा था तुमने
वह जारी रहेगा उस समय तक
जब तक कि हमारे मुरझाए पौधों के
हिस्से का सूरज उग नहीं आता।''[6]

दलित साहित्य डॉ0 अम्बेडकर, महात्मा फुले व तथागत गौतम बुद्ध की विचारधारा से ही खाद लेकर पुष्पित एवं पल्लवित हुआ है। वर्ण–व्यवस्था से उपजी अमानवीय त्रासदी से मुक्ति की छटपटाहट जाति विहीन, वर्णविहीन, सामाजिक संरचना के निर्माण का आवाहन, ईश्वर, भाग्य, आत्मा व पुनर्जन्म के प्रति नकार, वैज्ञानिकता, तार्किकता, सम्मान व स्वाभिमान की ललक, मानवीयता व सामाजिक सरोकारों के प्रति प्रतिबद्धता के निकष पर भी दलित साहित्य खरा उतरता है। ईश्वर के अस्तित्व को ही दलित साहित्य नकार देता है। कवि नामदेव ढसाल भारतीय आस्तिकतावादी संस्कृति और उसको सुदृढ़ करने वाली गीता, मनुस्मति को हेय बताते हुए समाज में व्यवस्था को नकारते हुए गालियों की भाँति आक्रोश व्यक्त करते हैं–

''मेरी नजर में तुम पूरे उतर चुके हो
तुम्हारे लिए मुझमें न आदर है
न गुणगान करने की इच्छा,
लगता है पान खाकर तुम पर ढेर सारा थूक दूँ,
डूबो दूँ बिठा के मटके में
मैं तुम्हें गालियाँ देता हूँ
तुम्हारे पाखण्डीपन को गालियाँ देता हूँ।''[7]

मानव और मानव की गरिमा का सर्वांगीर्ण शोषण करने वाले धर्म, संस्कृति एवं साहित्य के ढोंगी रूपों पर दलित कविता बिजली की भाँति टूट पड़ती है। दलित कविता पुरोहितवाद, धार्मिक कर्मकाण्ड, महन्त, देवालय, व्रत सब कुछ जो पाप–पुण्य की कल्पनाओं के सहारे शोषण के मार्ग को खोलते हैं उनके प्रति दलित साहित्यकार की गर्जना के स्वर में विद्रोही, विरोध और संघर्ष मुखरित हुआ है ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' में ब्राह्मणवाद और सामन्तवाद के खिलाफ कड़ा प्रतिरोध है यह कहानी दलित साहित्य के उस केन्द्रीय विषय को उठाती है जहाँ ज्ञान के बिना समाज का विकास संभव नहीं माना जाता है। यह कहानी यह भी दर्ज करती है कि ज्ञान के बिना सामंती व्यवस्था एक दलित का किस हद तक शोषण करती है और ज्ञान प्राप्ति के बाद किस सीमा तक शोषित अस्मिताएँ (दलित) उनका प्रतिवाद।[8] इस कहानी में यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि एक दलित का शोषण और दमन इसलिए होता है क्योंकि वह अनपढ़ है तथा इससे मुक्ति तभी संभव होती है जब वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित समाज की उस पीड़ा को भी गहराई के साथ व्यक्त किया है जिसमें ज्ञान से वंचित अबोध मेहनतकश समाज को छलकर 'बड़े' बने हुए व्यक्ति आज भी समाज में सम्मान पा रहे हैं

और व्यवस्था उन्हें सजा देने के बदले जीवन की मुख्यधारा में उनके लिए 'विशिष्ट' स्थान बनाए हुए है। यह कहानी परम्परा में महान, उत्कृष्ट और पवित्र समझे जाने वाले प्रतीकों (जैसे–गुरु ग्रंथ, शिक्षण संस्थान आदि) को संदेह के घेरे में खड़ा करती है, उन पर सवाल उठाती है।

निष्कर्ष–दलित साहित्य जन जागरण से जुड़ा, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के अंग के रूप में है। यह परिवर्तन कामी है। दलितों का अतीत और वर्तमान बर्बर शोषण, अथाह पीड़ा, अत्याचार का पर्याय रहा है। संकीर्णता तो भारतीय संस्कृति और धर्म की देन है, हिन्दुत्व की देन है जिसके विरुद्ध दलित साहित्य खड़ा है। दलित साहित्य वस्तुतः मानवीय अस्मिता का पर्याय है। दलित साहित्य केवल सवर्णों को नहीं, वह दलितों में मनुवादी सोच की, जात–पात की खिलाफत भी करता है। सदियों से मरुस्थल बनाकर रखे गए दलित के दिमाग में विचारों की बाढ़ आ चुकी है। उसने अपने इस साहित्य को अपना हथियार बनाकर, अपने जुल्मों की दास्तां कहकर, अपने समाज को गुस्सा, आक्रोशा दिलाकर आवेग से भरकर समाज को बदलने के लिए जोखिम उठा लिया है। अस्मिता की माँग अलगाववादी नहीं है बल्कि मानवतावाद का ही हिस्सा है और यह एक अपंग एवं भंग हिन्दू समाज को पूर्णतः देने का प्रयास है। शिक्षा, ज्ञान–विज्ञान, दर्शन, दक्षता, प्रत्येक स्तर पर दलित अस्मिता अपने हस्ताक्षर दर्ज कर रही है। दलित अस्मिता अपना इतिहास ही नहीं अपनी नई संस्कृति का निर्माण कर रही है जातिविहीन स्वस्थ समाज के नवनिर्माण के लिए दलित अस्मिता संकल्पबद्ध है।

सन्दर्भ

1. सं0 रमणिका गुप्ता, ज्ञान सिंह बल, दलित दर्शन, नेहा प्रकाशन, संस्करण–2012, पृ. 75
2. डॉ0 विवेक कुमार, प्रजातंत्र में जाति, आरक्षण एवं दलित, सम्यक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 131–132
3. सं0 सुधीर हिलसायन, सामाजिक न्याय संदेश, 4 अप्रैल 2013, पृ. 41
4. सं0 रमणिका गुप्ता, ज्ञान सिंह बल, दलित दर्शन, नेहा प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ. 90
5. रमणिका गुप्ता, सं0 ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित हस्तक्षेप, अक्षर शिल्पी प्रकाशन, संस्करण 2008, पृ. 22
6. माता प्रसाद, भारतीय, दलित साहित्य दशा और दिशा, दलित साहित्य अकादमी, पृ. 145
7. वही, पृ. 160
8. देवेन्द्र चौबे, आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, पृ. 735

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 100-103

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की विसंगतियाँ

*शेषनाथ यादव**

किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली उस देश के जीवन को गति देती है, समाज व राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करती है। शिक्षा ही जीवन प्रणाली का आधार होती है तथा मानव जीवन को उन्नति के शिखर तक पहुँचाती है। राष्ट्र के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राज्य की शासन व्यवस्था की तत्परता, क्रियाशीलता, सक्षमता तथा उत्तरदायित्व की भावना को जन्म देने के लिए शिक्षा ही आगे बढ़ती है। आज की व्यस्त राजनीति ने समाज के जीवन मूल्यों को बदल दिया है। जिससे मानव मूल्यों की परिभाषा बदल गई है और हमारे राष्ट्रीय मूल्यों को स्वार्थ के दानव ने अस्त–व्यस्त कर दिया है। वर्तमाान में आवश्यकता है नये सिरे से देश में जागरण की, मानव मात्र में शिक्षा का बीज बोकर नवीन सूझबूझ से प्रेरणा प्रदान करने की तथा जन–जन में शिक्षा अभियान द्वारा मानव जीवन को नई दिशा की ओर मोड़ने की। यही कारण है कि आरम्भ ही देश में शिक्षा के प्रचार–प्रसार एवं शिक्षा व्यवस्था के विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया जाता रहा है।

हिन्दी कथा साहित्य में शिक्षा व्यवस्था की समस्यायें एवं विसंगतियों पर अनेक उपन्यासों एवं कहानियों का सृजन हुआ है। जिसमें यशपाल का 'मेरी तेरी उसकी बात' दुष्यंत कुमार का 'छोटे छोटे सवाल' काशीनाथ सिंह का 'अपना मोर्चा' राम दरश मिश्र का 'अपने लोग' गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' ममता कालिया का 'नरक दर नरक' महीप सिंह का 'यह भी नहीं' देवेश ठाकुर का 'गुरुकुल' और सूर्यबाला का 'दीक्षांत' आदि में विश्वविद्यालयी परिसर जीवन की बीभत्स सच्चाई का चित्रण किया गया है। इन उपन्यासों में परिसर जीवन की विसंगतियों, व्यवसायीकरण, शिक्षकों के अवमूल्यन और बेचारगी की जिंदगी, अफसरशाही, भ्रष्टाचार आदि से नरक बने परिसर जीवन के बीच एक ईमानदार अध्यापक की हारती–टुटती जिंदगी की त्रासदी का संवेदनात्मक चित्रण गहराई से मिलता है लेकिन देष की बुनियादी प्राथमिक षिक्षा व्यवस्था से लेकर उच्च षिक्षा व्यवस्था में छात्रों का शोषण, अध्यापकों की नियुक्ति एवं वेतन, प्रवेश की प्रक्रिया विषय का चयन, विद्यालयी प्रबंधन, सरकार एवं राजनीति का शिक्षा में प्रभाव एवं हस्तक्षेप आदि का जितना सूक्ष्म एवं गहन परताल अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में दिखाई पड़ता है उतना अन्य हिन्दी कथा साहित्यकारों के साहित्य में नहीं मिलता। अब्दुल बिस्मिल्लाह का हिन्दी के प्रगतिशील चेतना के कथाकारों में प्रमुख स्थान है। इन्होंने हिन्दी कथा साहित्य का सृजन 8वें दशक से प्रारम्भ किया था तथा अपने जीवन का अधिकांश भाग अध्ययन एवं अध्यापन में व्यतीत किया है, इसलिए इनके साहित्य में शिक्षा जगत के विसंगतियों का गहन अध्ययन मिलता है। जो इनका वैयक्तिक एवं भोगा हुआ यथार्थ है।

बिस्मिल्लाह ने आजादी के बाद देश की शिक्षा व्यवस्था में हो रहे, परिवर्तन एवं सुधार को रेखांकित करने का भी प्रयास किया है। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा व्यवस्था में अनेक सुधार किये गये, विभिन्न समितियाँ एवं आयोगों का गठन हुआ जैसे, माध्यमिक शिक्षा आयोग, कोठारी आयोग, नई शिक्षा नीति आदि, लेकिन शिक्षा व्यवस्था की संरचना एवं सुधार में कोई मूलभूत परिवर्तन दिखाई नहीं देता। देश के सरकारी एवं व्यक्तिगत शैक्षिक संस्थानों में आज भी धर्म, जाति एवं राजनीतिक वर्चस्व का बोलबाला चल रहा है। बिस्मिल्लाह ने 'अपवित्र आख्यान' उपन्यास में इस बात को प्रमुखता से उठाया है। यह सम्पूर्ण उपन्यास माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के विसंगतियों को केन्द्र में रखकर ही लिखा गया है। शैक्षिक संस्थानों में राजनीतिक प्रवेश शिक्षा तंत्र को खोखला बना दिया है। इन संस्थानों में नेता एवं मंत्री के प्रभाव के कारण शिक्षकों की नियुक्ति में धाँधली होती है तथा आयोग्य लोग

* *शोध छात्र, हिन्दी विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, म.प्र.*

शिक्षक के पद पर नियुक्ति हो जाते है। इस उपन्यास में सरकार में मंत्री के पद पर आसीन नकवी साहब वी0सी0 से यासमीन नामक एक मुस्लिम लड़की का उपाचार्य के पद पर नियुक्ति के लिए सिफारिश करते हैं। यह जानते हुए भी की वह आयोग्य है। नकवी साहब वी0सी0 से कहते हैं–

''मैं आपसे एक मुसलमान लड़की की सिफ़ारिश करने जा रहा हूँ। लोग सुनेंगे तो मुझे कम्युनल ही तो कहेगें।

''किस पोस्ट के लिए?''

''सुना है आपके यहाँ शोबा–ए–हिन्दी में कोई एपांइटमेंट होने वाला है।''[1]

नकवी साहब के सिफारिश से यासमीन विश्वविद्यालय में उपाचार्य बन जाती है। लेखक ने शिक्षक चयन की प्रक्रिया पर सवाल खड़ा करता है कि विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति प्रतियोगिता एवं परीक्षा न होकर, मेरिट एवं साक्षात्कार के आधार पर किया जाता है, तथा विश्वविद्यालय समिति के अधीन होता है। यहाँ अधिकतम योग्यता का भी कोई महत्व नहीं होता। प्रबंधन समिति जिसको चाहे साक्षात्कार के द्वारा नियुक्ति कर सकती है, केवल वह पद की न्यूनतम योग्यता के मानक को पूरा करता हो, इसलिए इसका लाभ नेता, अधिकारी एवं समिति के सदस्य उठाते है। यहीं कारण की विश्वविद्यालयी शिक्षा राजनीतिक केन्द्र का अड्डा बनता जा रहा है।

लेखक विश्वविद्यालयों में विषय चयन को लेकर छात्रों के साथ धार्मिक भेदभाव को भी दर्शाया है। विश्वविद्यालयों एवं कालेजों में शिक्षक, भाषा से धर्म एवं समाज को जोड़कर देखते है। जमील एक मुसलमान लड़का है इसलिए उसे संस्कृत विषय से स्नातक में प्रवेश नहीं दिया जाता है। उपध्याय जी संस्कृत विषय के अध्यापक हैं वे जमील से कहते हैं–

''तुम कोई अन्य विषय ले लो,

क्यों सर? संस्कृत तुम नहीं पढ़ सकोगे''

क्यों सर?

आज तक इस कालेज में किसी मोहम्मडन ने संस्कृत नहीं पढ़ी।''[2]

उपध्याय जी एक शिक्षक होने के बाद भी वह जमील को संस्कृत भाषा पढ़ने से मना करते हैं। यह कितना गलत है कि जमील की योग्यता भी परख लिए बिना धार्मिक आधार पर उपाध्याय जी यह घोषणा कर देते है कि वह संस्कृत नहीं पढ़ सकता। उनकी यह मानसिकता पूर्व अवधारणाओं पर आधारित है। जबकि महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में ऐसा कोई नियम नहीं बना है।

लेखक सिर्फ महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में हो रहे भ्रष्टाचार एवं विसंगतियों को ही नहीं दर्शाया है बल्कि उनका ध्यान बुनियादी एवं प्राथमिक शिक्षा पर भी है। लेखक प्राथमिक शिक्षा में भ्रष्टाचार को 'जन्म दिन' कहानी के माध्यम से व्यक्त करता है। प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में प्रबन्धन समिति की तानाशाही के कारण गरीब वर्ग के छात्राओं को वह सुविधायें नहीं मिल पाती जो उनको मिलना चाहिए। इस कहानी में प्राथमिक विद्यालय में फीस की समस्या को अंकित किया गया है। एक गरीब छात्र राजू के माता–पिता राजू का जन्म दिन इसलिए मनाते है कि जन्म दिन में प्राप्त धनराशि एवं तोहफे से राजू के विद्यालय का शुल्क जमा कर सके। वहीं अमीर माता–पिता के बच्चों का शुल्क ''पुअर ब्यायज फण्ड'' के तहत माफ कर दिया जाता है। राजू कहता है–''उसकी कक्षा में ऐसे बहुत से लड़कों की फीस माफ की गई थी जो अमीर घरानों से सम्बन्धित थे। लेकिन वह लड़ता किससे? रामचन्द्र नाम का जो लड़का उसके सामने बैठता था, वह विद्यालय की मैनेजिंग कमेटी के सेक्रेटरी का लड़का था, बाप कपड़े के बहुत बड़े व्यापारी थे।''[3] राजू अपने कक्षा के छात्र वीरेन्द्र के विषय में कहता है–''वीरेन्द्र के पिता राजेन्द्र कुमार जी शहर के जाने–माने वकील हैं और उसके पड़ोस में ही रहते है। उन्हें बुरा नहीं लगता कि 'पुअर ब्यायज फण्ड' से सहायता मिलती है।''[4]

सरकारी हो या व्यक्तिगत विद्यालय सुविधा का लाभ तो अमीर वर्ग के बच्चे ही प्राप्त करते है और गरीब माता–पिता अपने बच्चों के शुल्क प्रबन्ध के लिए अथक परिश्रम करते है। शिक्षा व्यवस्था में इससे बड़ी विसंगति और क्या हो सकती है कि जो लाभ गरीब को मिलना चाहिए वह लाभ अमीर लोग प्राप्त करते हैं। भारत में शिक्षण संस्थानों का मूल ढाँचा ऐसा बनाया गया है कि जहाँ शोषण एवं भ्रष्टाचार के रास्ते खुले रहते है। सारी शक्तियाँ प्रबन्धन समिति के अन्तर्गत रहती है। प्रबन्धन समिति जिसको चाहे उसको 'पुवर ब्यायज फण्ड' का रुपया प्रदान

कर सकता है इसलिए राजू कहता है कि ''वह लड़ता किससे'', जबकि शिक्षा में छात्र, शिक्षक और विद्यालय प्रबन्धन तिनों की भूमिका होती है, लेकिन भारत में जो शिक्षा नीतियां बनायी जाती है। वह एक तरफा होती है। छात्र एवं शिक्षकों के लिए सुविधा की व्यवस्था तो की जाती है किन्तु छात्र एवं शिक्षकों के पास विरोध करने का अधिकार एवं शक्तियाँ नहीं होती है। उपर्युक्त बात की पुष्टि कथाकार ने 'अर्धम युद्ध' कहानी में भी किया है। इस कहानी में भी प्रबंधन सीमिति द्वारा शिक्षकों के शोषण का पर्दाफॉस किया गया है। प्रस्तुत कहानी में कथानायक को शिक्षक के पद पर नियुक्ति तो मिल गयी है किन्तु स्थायी नियुक्ति नहीं दी जाती है। 'वेतन के रूप में केवल राशन–कपड़ा मिलता है या शायद दो सौ रुपये''[5] जब वह ग्यारह महीने पढ़ाने के बाद नियुक्ति पत्र प्राप्त करने जाता है। तब उससे कहा जाता है कि–

''इस पर हस्ताक्षर कर दीजिए।

''यह क्या है? त्याग पत्र। अभी एपाइन्टमेंट हुआ नहीं त्याग पत्र कैसा?'' ''यहाँ का यही नियम है। त्यागपत्र पर हम पहले हस्ताक्षर करा लेते हैं। दरअसल कुछ लोग नियुक्त हो जाने के बाद पूरे वेतन की माँग करने लगते हैं।''[6]

यहाँ प्रबंधन समिति की मनमानी है जहाँ शिक्षकों को मूल वेतन तो दिया नहीं जाता, स्थायी नियुक्ति तो दूर की बात है। आज प्रबंधन समिति इतना शक्तिशाली है कि कोई शिक्षक उसका विरोध नहीं कर सकता। इसका प्रमुख कारण शिक्षकों की गलत नियुक्ति प्रक्रिया एवं सहमति पत्र पर हस्ताक्षर करवाना है।

भारतीय संविधान में जातिगत आरक्षण का प्रावधान है। निम्न वर्ग व गरीब वर्ग के निम्न जातियों को सरकार आरक्षित करके उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाना चाहती है। लेकिन समाज का अमीर वर्ग तथा उच्च जातियाँ हमेशा से सबल होने के कारण आरक्षण का दुरूपयोग करती आ रही है। ''तूफान से पहले'' कहानी में, कथाकार ने जातिगत आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति में आरक्षण की प्रक्रिया में नियमों के दुरूपयोग का पर्दाफाँस किया है। प्रस्तुत कहानी में सेवक राम अनुसूचित जाति के व्यक्ति हैं। उन्होंने अपने पुत्र शिव बालक के लिए गाँव के स्कूल में शिक्षक के पद के लिए आवेदन किया था। जब वे नौकरी का पता लगाने विद्यालय आते हैं तो विद्यालय का चपरासी लगड़ा सेवकराम से कहता है ''सेवक राम जी आपको जो सूचना मिली है। वह गलत है। अनुसूचित जाति में केवल आप ही का लड़का नहीं है, रामानंद तिवारी का भी लड़का है। आप शिड्यूल्ड कास्ट के सर्टिफिकेट को तो कैंसिल नहीं करा सकते, और यह जमाना सटिर्फिकेट का है, असलियत कोई नहीं पूछता''[7] रामानन्द तिवारी सामान्य श्रेणी में आते है किन्तु वे जाति प्रमाण–पत्र अनुसूचित जाति का बनवाकर आरक्षित सीट पर नौकरी प्राप्त कर लेते हैं। यह शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार और भारतीय संविधान का दुरुपयोग है। सवर्ण जातियाँ सदैव से जागरूक रही है। वे निम्न जातियों का हक किसी न किसी तरह हड़पने में सफल हो जाती है। इस कहानी में सेवकराम, रामानंत तिवारी का विरोध नहीं कर पाते और पुनः वापस घर चले जाते हैं। आज के समाज की यह सबसे बड़ी विडम्बना है कि निम्न जाति के लोग अपने अधिकार की लड़ाई नहीं लड़ पाते। इसका प्रथम कारण जागरूकता का अभाव हैं और दूसरा कारण हाशिये का समाज है इसलिए वे तूफान के एक झोके को सहने में असमर्थ होते हैं।

सरकार की नीतियाँ एवं सरकारी नौकरियों में योग्यता का निर्धारण प्रमाण–पत्रों के अंकों के आधार पर होने के कारण विद्यार्थियों के सोच पर नकारात्मक प्रभाव को जन्म दिया है। विद्यार्थी नौकरियों में खुली प्रतियोगिता का समर्थन करते हैं। 'दूसरे मोर्चे पर' कहानी में लेखक बदलती शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थियों की भूमिका को लेकर चिंतित है इसमें लेखक छात्रों के मन में असंतोष एवं उच्छृंखलता को अभिव्यक्ति करने का प्रयास करता है। पूरी कहानी में छात्रों के संवाद के माध्यम से कथा सूत्र को पिरोया गया है लेखक छात्रों से प्रश्न करने के बाद जो उत्तर प्राप्त करता है। उससे इस बात का एहसास होता है कि देश की भ्रष्ट शिक्षा व्यवस्था ने छात्रों में संवेदन हीनता को जन्म दिया है। छात्रों का शोषण अत्याचार और मानसिक उत्पीड़न उनमें विद्रोह की भावना को प्रबल बना देता है। वह देश की शिक्षा व्यवस्था को कोशता रहता है। भारत की सरकारी एवं प्राइवेट संस्थाओं में नौकरियों में योग्यता का निर्धारण ज्ञान, कौशल, अभिवृत्तियाँ और प्रतियोगिता पर न होकर डिग्री से प्राप्त अंकों के आधार पर होता है इसलिए छात्र डिग्री हासिल करने के लिए तत्पर रहते हैं। एक छात्र अजय कथानायक से कहता है– ''हमारे यहाँ योग्यता का निर्धारण डिग्री से होता है इसलिए लोग डिग्री चाहते हैं। नौकरी में अब योग्यता पर विचार न करके प्रमाण–पत्रों पर ही विचार किया जाता है। अगर आज यह नियम बना दिया जाये कि हर विभाग में नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर होंगी तो सब काम छोड़कर लोग पढ़ना शुरू कर देंगे।''[8] यही कारण है कि आज

छात्र पढ़ते कम हैं नकल के चक्कर में ज्यादा रहते हैं। वे किसी तरह परीक्षा पास करके डिग्री प्राप्त करना चाहते है। उनको पता है कि आज–कल योग्यता का कोई मतलब नहीं है। नौकरियों में चयन मेरिट एवं प्रमाण–पत्रों के आधार पर किया जाता है।

सारी भ्रष्टाचार का जड़ भारत की शिक्षा व्यवस्था है। जहाँ विश्वविद्यालयों में डिग्री का व्यापार चलता है छात्र शिक्षा का उद्देश्य डिग्री प्राप्त करना तथा नौकरी हासिल करने से, समझते हैं, इसलिए नौकरी प्राप्त करना ही उनका परम लक्ष्य होता है। वे ज्ञान, कौशल तथा चिन्तन–मनन को कम महत्व देते हैं। इस बात का साक्षात्कार विस्मिल्लाह ने ''मुखड़ा क्या देखे'' उपन्यास में भी कराया है। यह उपन्यास ग्रामीण जीवन में शैक्षिक प्रवेश एवं बदलती सामाजिक मानसिकता को अभिव्यक्ति करता है। सृष्टिनारायण पाण्डे आज के युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते है आज के युवाओं की सोच एवं समाज में शिक्षा के उद्देश्य को लेकर चिंतित है। वे गोस्वामी तुलसीदास के काव्य के इस पंक्ति से अपनी बातों को स्पष्ट करते हैं। उनका विचार है कि ''आज कल के लड़के तो वही पढ़ते हैं, जिससे उन्हें नौकरी मिलने में सहायता मिलती है। उनके माता–पिता भी उन्हें यहीं शिक्षा देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास की बात सत्य सिद्ध हो रही है। 'मानस' में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है :

मातु पिता निज सुतहि बोलावहिं।
उदर भरइ सोई धर्म सिखावहिं।।''[9]

आज ज्ञान का संबंध नौकरी से है स्वाध्याय, चिंतन मनन एवं नैतिक मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं रह गया है किन्तु आज इस बात की जरूरत है कि शिक्षा व्यवस्था का प्रतिरूप ऐसा तैयार किया जाय कि छात्रों को भविष्य में रोजगार मिल सके। समाज की मानसिकता बदल गयी है। लोग पढ़े–लिखे बेरोजगार युवक को मूर्ख समझते हैं। तुलसीदास ने सही बात कही थी कि समाज में नैतिक धर्म का पाठ तभी पढ़ाया जा सकता है, जब लोगों का पेट भरा हो इसलिए उपर्युक्त बातों का निष्कर्ष यही है कि शिक्षा का संबंध नौकरी से है, भूख से है ऐसी शिक्षा व्यवस्था से हम नैतिकता का पाठ नहीं पढ़ा सकते जो युवाओं को रोजगार न दे सकें।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की विसंगतियाँ का बड़ा बरीकी से वर्णन मिलता है। उन्होंने सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में छात्र, शिक्षक, प्रबंधकीय समिति, विद्यालय, पाठयक्रम विद्यालय में जातिगत एवं धार्मिक भेदभाव, क्षेत्रीयता, प्रांतीयता जैसे ज्वलंत मुद्दों को उठाया है, शिक्षा व्यवस्था सामाजिक संरचना का मुख्य आधार है किन्तु आज इसकी उपादेयता प्रमाण–पत्रों में सिमटकर रह गयी है। शिक्षकों एवं छात्रों का शोषण उनकी मानसिकता को बदल रहा है। लोग नैतिकता को भूल रहे है। आज इस बात की जरूरत है कि समाज में भाईचारा, सद्भाव एवं नैतिकता जैसे मूल्यों को स्थापित करने के लिए शिक्षा व्यवस्था को समाज के अनुकूल डिजाइन करना होगा। समाज के आवश्यकताओं के अनुरूप शैक्षिक संस्थाओं को बदलना होगा, तब जाकर स्वस्थ्य समाज के निर्माण का सपना साकार होगा।

शोध–संदर्भ

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह, अपवित्र आख्यान, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली पहला संस्करण 2012 पृ. 84
2. वही, पृ. 22
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह, ताकि सनद रहे, 'जन्मदिन' कहानी, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृ. 198
4. वही, पृ. 198
5. अब्दुल बिस्मिल्लाह, ताकि सनद रहे 'अधर्म युद्ध' कहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2014 पृ. 50
6. वही, पृ. 52
7. अब्दुल बिस्मिल्लाह ताकि सनद रहे, तूफान से पहले, कहानी, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2014 पृ. 341
8. अब्दुल बिस्मिल्लाह, ताकि सनद रहे, 'दूसरे मोर्चे पर' कहानी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण–2014, पृ. 22
9. अब्दुल बिस्मिल्लाह, मुखड़ा क्या देखे, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण–2003 पृ. 207

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 104-109

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता की उपयोगिता

*सन्तोष कुमार यादव**

वर्तमान समय में विद्यार्थियों की अच्छी शिक्षा के साथ–साथ विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता भी आवश्यक है। शोधकर्ता ने अपने शोध में विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता का गहन अध्ययन किया व इसकी उपयोगिता के लिए परिकल्पना वार निम्नवत् निष्कर्ष प्रस्तुत किया है–

परिकल्पना संख्या–1 : विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है, का परीक्षण करने पर दोनों सार्थक अन्तर नहीं पाया गया तथा शोधकर्ता की सम्बन्धित शून्य परिकल्पना स्वीकृत कर ली गयी।

निष्कर्ष रूप सें यह कहा जा सकता है कि बच्चों के सर्वांगीण विकास में विद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है चाहे वह विद्यालय वित्तपोषित हो या स्ववित्तपोषित। इसके अतिरिक्त विद्यालय का भौतिक वातावरण भी पठन–पाठन के अनुकूल होना चाहिए। वर्तमान समय में विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की साफ–सफाई व स्वच्छता शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में परिभाषित है। इस सम्बन्ध में विद्यालय की स्वच्छता के प्रति सभी शिक्षक जागरूक हैं और उनका मानना है कि बच्चों में वृद्धि एवं विकास के लिए विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता महत्वपूर्ण है। क्योंकि शिक्षकों व अभिभावकों का मानना है कि बगैर साफ–सफाई व परिसर की स्वच्छता के शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली नहीं बनाया जा सकता है। विद्यालय के समस्त शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं का विद्यालय स्वच्छता के प्रति अभिवृत्ति में समानता है शोधकर्ता की इस परिकल्पना की सत्यता से यह ज्ञात होता है कि शिक्षक जिस भी प्रकार के विद्यालयों में नियुक्त हों, सभी का मानना है कि विद्यार्थियों के शत–प्रतिशत अधिगम विकास के लिए विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता की भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता द्वारा निर्मित इस शून्य परिकल्पना की सत्यता प्रमाणित होती है।

परिकल्पना–2 : विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है–स्वीकृत की जाती है। इस परिकल्पना की सांख्यिकीय गणना के आधार पर क्रांतिक निष्पत्ति (t) का मान सार्थकता स्तरों क्रमशः 0.05 व 0.01 स्तरों के मानों से कम प्राप्त हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि परिकल्पना से संबंधित दोनों समूहों में सार्थक अन्तर नहीं है। इस प्रकार शोधकर्ता की शून्य परिकल्पना की सत्यता प्रमाणित होती है।

वर्तमान समय में शिक्षण संस्थाओं व उनके परिसरों की साफ–सफाई पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। स्वच्छता सम्बन्धी जागरूकता कार्यक्रमों में आज विद्यार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों के साथ–साथ शिक्षिकाओं की भी भूमिका सराहनीय है। वे शिक्षिकायें चाहे वित्तपोषित विद्यालय की हों अथवा स्ववित्तपोषित विद्यालय की हों उनकी स्वच्छता व साफ–सफाई के प्रति अभिवृत्ति में कोई असमानता नहीं हैं। शोधकर्ता ने भी इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए अपनी यह शोध परिकल्पना निर्मित की थी जो कि आँकड़ों के एकत्रीकरण, व्याख्या व विश्लेषण में सार्थक सिद्ध हुई। विद्यालय, मूत्रालय इत्यादि की व्यवस्था में शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति एक ही जैसी है। शिक्षिकाओं में विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता एवं साफ–सफाई में योगदान देने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और इसके लिए उन्हें पुरस्कृत भी किया जाना चाहिए।

विद्यालय की शिक्षिकाओं का यह भी दायित्व है कि वे विद्यार्थियों खासतौर से लड़कियों को स्वच्छता के विषय में बताये। उन्हें साफ–सफाई, शौचालयों इत्यादि के प्रयोग एवं कैसे स्वच्छ रखा जाय इत्यादि के सम्बन्ध में

* *शोध छात्र, महात्मा ज्योतिबा फूले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली उ.प्र.*

मार्गदर्शन करती रहें। क्योंकि विद्यालयी वातावरण के स्वच्छ व साफ रहने पर ही शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया प्रभावी होगी तथा विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास किया जा सकेगा।

परिकल्पना–3 : में विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं का परीक्षण किया गया जिसमें दोनों समूहों के मध्यमानों में अंतर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए क्रांतिक निष्पत्ति (t) का मान ज्ञात किया गया। t के मान के आधार पर सार्थकता स्तरों 0.05 तथा 0.01 पर गणना की गयी जिसमें पाया गया कि दोनों समूहों में सार्थक अंतर नहीं है अर्थात् विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है।

प्रायः देखा गया है कि ग्रामीण क्षेत्र में स्थित शिक्षण संस्थाओं में स्वच्छता सम्बन्धी समस्याएँ अधिक हैं। इसमें विद्यालय व इसके परिसरों में कुछ ग्रामीणों व अराजक तत्वों द्वारा गन्दगी फैला दी जाती है। क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी कुछ विद्यालयों में चहारदीवारी का का अभाव है जिसके कारण यह समस्या उत्पन्न हुई हैं ऐसे में इन विद्यालयों व परिसरों की स्वच्छता शिक्षकों के लिए चुनौतीपूर्ण सिद्ध हो रही है। फिर भी ग्रामीण क्षेत्र में स्थित विद्यालयों चाहे वे वित्तपोषित हो या स्ववित्तपोषित हों शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों का यह उत्तरदायित्व बनता है कि वे अपने विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता पर विशेष ध्यान दें व ग्रामीणों से बातचीत करें, उन्हें स्वच्छता के विषय में बतायें व शिक्षण संस्थाओं की स्वच्छता बनाने में उनका सहयोग लें। ग्रामीणों व अभिभावकों के साथ–साथ विद्यार्थियों को भी इसके लिए प्रोत्साहित करें जिससे विद्यालय में पठन–पाठन का वातावरण बनाया जा सके। फिलहाल शोधकर्ता की इस परिकल्पना में शिक्षकों की अभिवृत्ति एक जैसी है और वे विद्यालयी स्वच्छता के प्रति जागरूक है।

परिकल्पना–4 : में विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है का परीक्षण किया गया। दोनों समूहों के माध्यमानों में सार्थक अंतर के परीक्षण के लिए क्रांतिक निष्पत्ति (t) की गणना की गयी। सार्थकता स्तर के मानों क्रमशः 0.05 तथा 0.01 के सापेक्ष तुलना करने पर पाया गया कि दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अंतर नहीं है। इस प्रकार शोधकर्ता की यह शून्य परिकल्पना स्वीकृत की गयी।

ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में अन्तर न प्राप्त होने का मुख्य कारण उनकी विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण व सोच है। इन दोनों समूहों का मानना है कि विद्यार्थियों के चहुँमुखी विकास के लिए विद्यालय का वातावरण व विद्यालय परिसर की स्वच्छता आवश्यक है क्योंकि बिना इसके विद्यार्थियों का समुचित व सकारात्मक विकास किया जाना सम्भव नहीं होगा। इन दोनों समूहों की शिक्षिकाओं का मानना है कि विद्यालयी, विद्यालय परिसर, कक्षा–कक्ष, रसोईघर, शौचालय, मूत्रालयों इत्यादि की साफ–सफाई के लिए शिक्षिकाओं को विद्यालय के विद्यार्थियों को आगे आने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए व इसके लिए इनकी नैतिक जिम्मेदारी से भी अवगत कराया जाना चाहिए।

इस प्रकार शोधकर्ता की पूर्व अनुमानित परिकल्पना ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है सही सिद्ध होती है और यह आज के समय में आवश्यक भी है।

परिकल्पना–5 : में विद्यालय एवं विद्यालय परिसर के स्वच्छता के प्रति शहरी क्षेत्र के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति में सार्थकता का परीक्षण किया गया। सांख्यिकीय विधियों द्वारा दोनों समूह का मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक निष्पत्ति (t) की गणना की गयी जिसमें t का मान, सार्थकता स्तरों 0.05 व 0.01 के मानों से कम प्राप्त हुआ जिसका निष्कर्ष यह हुआ कि दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अंतर नहीं है। इस प्रकार शोधकर्ता की परिकल्पना की सत्यता सिद्ध हुई कि वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित शहरी क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के सम्बन्ध में अभिवृत्तियों में सार्थक अंतर नहीं है।

माना जाता है कि किसी भी शिक्षण संस्था की प्रगति व विकास वहाँ के संसाधनों व शिक्षकों पर निर्भर करती हैं इसी प्रकार माध्यमिक विद्यालयों की मूलभूत सुविधाओं व संसाधनों में विद्यालय तथा इसके आसपास के परिसर

की साफ–सफाई प्रगति व विकास में अहंमायने रखती है इसलिए प्रस्तुत शोध में वित्त व वित्त विहीन विद्यालयों के शिक्षकों जिसमें से उनकी आय में लगभग काफी असमानता होती है जहाँ एक ओर वित्तपोषित विद्यालयों के अच्छा वेतन प्राप्त होता है, वहीं दूसरी ओर स्ववित्तपोषित विद्यालयों में अध्यापनरत शिक्षकों को काफी कम वेतन मिलता है परंतु विद्यालय के चहुँमुखी विकास में इन दोनों का योगदान लगभग समान होता है। इन्हीं सब असफलताओं को दृष्टिगत रखते हुए शोधकर्ता ने अपनी इस परिकल्पना का निर्माण किया था। परन्तु देखा गया कि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास व विद्यालय की स्वच्छता इत्यादि सभी कार्यों में इनका योगदान लगभग समान है। विद्यार्थियों तथा विद्यालय परिसर व इसके भौतिक वातावरण के विकास में दोनों समूहों के अध्यापकों की भूमिका राराहनीय है। इनका मानना है कि स्वहित में विद्यार्थियों तथा विद्यालय के विकास का मार्ग अवरूद्ध नहीं होना चाहिए। इस प्रकार शोधकर्ता का पूर्वानुमान, सही सिद्ध होता है।

परिकल्पना–6 : में विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति शहरी क्षेत्र के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में अन्तर है अथवा नहीं का परीक्षण शोध की सांख्यिकीय विधि क्रांतिक निष्पत्ति के आधार पर किया गया। सार्थकता के परीक्षण में पाया गया कि दोनों समूहों की शिक्षिकाओं का विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के सम्बन्ध में अभिवृत्ति (attitude) में सार्थक अंतर नहीं है।

छात्रों के सर्वांगीण विकास में विद्यालय, विद्यालय का बाहरी व आन्तरिक वातावरण में शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिसके आधार पर शिक्षक अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाते हैं तथा विद्यार्थियों में व्यवहारगत परिवर्तन लाते हैं। विद्यालय एवं विद्यालय परिसर में स्थित भवन, कक्षा–कक्ष, खेल के मैदान, शौचालय इत्यादि की साफ–सफाई व देखभाल की जिम्मेदारी विद्यालय से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को होनी चाहिए। जिसमें शिक्षक स्टॉफ की भूमिका तो अति महत्वपूर्ण होनी चाहिए क्योंकि विद्यालय तथा विद्यार्थियों का मूल्यांकन इन्हीं सब मूलभूत बातों पर निर्भर होता है।

प्रायः देखा गया है कि घर हो या बाहर पुरुषों की अपेक्षा महिलायें साफ–सफाई पर अधिक ध्यान देती हैं इसी प्रकार विद्यालय व विद्यालय परिसर की स्वच्छता की जिम्मेदारी भी शिक्षिकाओं पर अधिक होती है। विद्यालय में स्थित महिला मूत्रालयों से अवगत कराना व बालिकाओं की नैपकिन इत्यादि से सम्बन्धित समस्याओं से अवगत कराना व आवश्यक व्यवस्था पर ध्यान देना शिक्षिकाओं की जिम्मेदारी होनी चाहिए।

प्रस्तुत शोध में इस बात की सत्यता ज्ञात होती है कि विद्यालय व विद्यालय परिसर की स्वच्छता में वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में अन्तर नहीं होता है।

परिकल्पना–7 : विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के द्वारा किये जाने वाले प्रयासों में सार्थकता का परीक्षण किया गया जिसमें यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों का परिसर की स्वच्छता के लिए किये गये कार्यों व प्रयासों में अन्तर नहीं है।

वर्तमान समय में वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों द्वारा परिसर के अंदर व बाहर साफ–सफाई व स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। सभी शिक्षण संस्थाओं द्वारा विद्यार्थियों के हाथ धोने की सुविधा, जल भण्डारण टैंक एवं पर्याप्त जलापूर्ति के साथ विद्यालयों में बालक, बालिकाओं एवं अन्य स्टाफ के पृथक–पृथक शौचालयों एवं मूत्रालयों की समुचित वयवस्था की जा रही है। शासन की भी योजना यही है कि विद्यालय चाहे वे ग्रामीण क्षेत्र में हों या शहरी क्षेत्र में, विद्यालय चाहे वित्तपोषित हो या स्ववित्तपोषित हो उनमें साफ–सफाई व स्वच्छता हो तथा स्वच्छता से संबंधित हर प्रकार की मूलभूत सुविधाएँ विद्यमान हों। इसी आवधारणा को दृष्टिगत रखते हुए ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों की साफ–सफाई व स्वच्छता पर ध्यान दिया जा रहा है।

अच्छी शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के सफल संचालन के लिए व बच्चों में अधिकतम शैक्षिक सम्प्राप्ति हेतु विद्यालय का वातावरण स्वच्छ व संसाधन सम्पन्न होना चाहिए। प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने विद्यालयों के इसी प्रयास के सन्दर्भ में अध्ययन करना चाहा है। शोध के उपरांत यह बात भी सत्य सिद्ध हो चुकी है कि सभी विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता में समान रूप से प्रयासरत हैं।

परिकल्पना–8 : में विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति शहरी क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के द्वारा किये जाने वाले प्रयासों में अंतर की सार्थकता का परीक्षण किया गया जिसमें निष्कर्ष रूप में पाया गया कि दोनों प्रकार के विद्यालयों के स्वच्छता सम्बन्धी प्रयासों में सार्थक अंतर नहीं है। दोनों ही प्रकार के विद्यालय अपने आन्तरिक एवं वाह्य वातावरण को स्वच्छ व सुन्दर बनाने के लिए समान रूप से प्रयासरत हैं।

प्रसिद्ध पाश्चात्य शिक्षाविद् अरस्तू का मत है कि ''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है।'' इसके लिए विद्यार्थयों को विद्यालय में ऐसे वातावरण की अपेक्षा रहती है जिससे वे पूरे मनोयोग से ज्ञानार्जन कर अपना सर्वांगीण विकास कर सके क्योंकि बगैर स्वस्थ व स्वच्छ वातावरण के शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया सुचारू रूप से नहीं चल सकती जिसका नकारात्मक प्रभाव विद्यार्थियों की अधिगम सम्प्राप्ति व शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है। इसलिए शहरी क्षेत्रों में स्थित सभी प्रकार के विद्यालय, विद्यालय व विद्यालय परिसर को स्वच्छ व आकर्षक तथा सुन्दर बनाने में समान रूप से प्रयासरत है। उनका मानना है कि विद्यालयों में साफ–सफाई व स्वच्छता तथा मूलभूत अवस्थापनाओं का निर्माण कर शिक्षा में गुणात्मक व मात्रात्मक प्रगति लायी जा सकती है। शोधकर्ता का भी विचार यह है कि विद्यालय में कुशल प्रधानाध्यापक व दक्ष अध्यापकों के साथ–साथ विद्यालय में छात्र–छात्राओं के लिए मूलभूत सुविधाओं का होना अति आवश्यक है क्योंकि मूलभूत सुविधाओं का मनोवैज्ञानिक प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ता है तथा उनका मन कुछ अच्छा सीखने में लगा रहता है इसलिए निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में शहरी क्षेत्र के प्रत्येक विद्यालय, विद्यालयी स्वच्छता, सफाई व मूलभूत सुविधाओं की अवस्थापना के लिए दृढ़ संकल्पित हैं।

आधुनिक जीवन में स्वस्थ व निरोगी रहने के लिए स्वच्छता का विशेष महत्व है। स्वच्छता अपनाने से व्यक्ति रोग मुक्त रहता है और एक स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण याोगदान देता है। स्वच्छता की शुरूआत विद्यार्थी के घर व परिवार से होती है, जहाँ वह सबसे अधिक समय तक रहता है इसके बाद वह अध्ययन के लिए विद्यालय में प्रवेश करता है जहाँ पर उसे बहुत सी समस्याओं व कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि विद्यालय का भौतिक वातावरण सुविधा सम्पन्न, स्वच्छ व आकर्षक है तो विद्यार्थियों की कठिनाइयाँ स्वतः ही दूर हो जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता एवं वातावरण को साफ व आकर्षक बनाने के लिए किसकी भागीदारी जरूरी है। विद्यालय प्रशासन, सामुदायिक सहभागिता, विद्यार्थियों के अतिरिक्त विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों की जावाबदेही सबसे अधिक है कि वे अपनी शिक्षण विधियों, शिक्षण तकनीकियों के साथ–साथ विद्यालय एवं विद्यालय परिसर का आंतरिक व वाह्य वातावरण इतना अच्छा, सरल, सहज व सुगम बनाये कि विद्यार्थियों का अधिकतम सर्वांगीण विकास किया जा सके।

विद्यालय स्वच्छता के लिए शिक्षक निम्नलिखित रूप में अपनी भागीदारी निभा सकते हैं–

1. विद्यालय में सुनिश्चित करें कि प्रत्येक कक्षा में व विद्यालय परिसर में कूड़ेदान रखे जाय व विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करें कि वे इसका प्रयोग करें।

2. विद्यालय में पीने के पानी की टंकी की सफाई नियमित रूप से होती रहे और टंकी में समय–समय पर कीटनाशकों का प्रयोग हो व विद्यालय में आने वाले पानी की नियमित जाँच भी हो।

3. विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करें कि वे अपनी व्यक्तिगत व शारीरिक स्वच्छता पर विशेष ध्यान दें व अपने यूनिफार्म की सफाई नियमित रूप से करें।

4. विद्यार्थियों को साफ–सफाई के लिए समय–समय पर जागरूक किया जाना चाहिए।

5. विद्यालय में स्थित महिला, पुरुष शौचालयों की नियमित सफाई का अनुश्रवण किया जाना चाहिए।

6. विद्यालय में विद्यार्थियों की व्यक्तिगत व शारीरिक स्वच्छता की नियमित रूप से शिक्षकों द्वारा जाँच की जानी चाहिए।

7. विद्यालय सम्बन्धित स्वच्छता कार्यक्रमों में छात्रों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए।

8. जल, सफाई एवं स्वच्छता को विद्यालयी पाठ्यचर्या में सम्मिलित करके इसी उपयोगिता से विद्यार्थियों को परिचित कराना, शिक्षकों का नैतिक दायित्व है।

9. शिक्षकों द्वारा स्वच्छता एवं सफाई से संबंधित पोस्टरों, चित्रों व चार्टों को तैयार कर दीवारों पर लगाना चाहिए जिससे कि विद्यार्थियों को विद्यालय स्वच्छता के विषय में जानकारी प्राप्त हो और वे इसे अपने जीवन में अपना सकें।

10. प्रस्तुत शोध का उद्देश्य भी यही है कि विद्यालय से जुड़े शिक्षक एवं शिक्षिकाओं का स्वच्छता सम्बन्धी अभिवृत्ति क्या है? उनकी विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता सम्बन्धी विचार क्या है? और क्या वे इस पुनीत कार्य में अपना योगदान दे पा रहे हैं।

विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के सम्बन्ध में शिक्षक एवं शिक्षिकाओं द्वारा किये गये कार्यों एवं उनके योगदानों का विद्यार्थी जीवन में महत्व है। शिक्षक अपने विद्यालय का भौतिक वातावरण स्वच्छ, साफ व आकर्षक बनाकर विद्यार्थियों के मन एवं मस्तिष्क को स्वस्थ रख रकते हैं जिनका उनके शैक्षिक जीवन में अत्यंत सकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है।

स्वच्छ विद्यालय बच्चों के उज्जवल भविष्य देने में सहायक है जिसमें विद्यार्थी शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहता है तथा रोगों से मुक्त रहता है। स्वच्छ व आकर्षक विद्यालय बनाने के लिए सभी को प्रयास करना चाहिए और शिक्षकों के साथ–साथ अभिभावकों को भी विद्यालय की स्वच्छता पर ध्यान देना चाहिए। स्वच्छ विद्यालय केवल विद्यालय की साफ–सफाई से नहीं बनता बल्कि स्वच्छ विद्यालय में विद्यार्थी, शिक्षक व कर्मचारी आदि भी स्वच्छ होने चाहिए। शिक्षकों का शिक्षण कार्य के अतिरिक्त यह भी उत्तरदायित्व है कि वे विद्यालय से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की स्वच्छता व विद्यालय की स्वच्छता के लिए प्रेरित करे।

विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता व साफ–सफाई बढ़ाने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्री स्मृति ईरानी ने 25 सितंबर 2014 को स्वच्छ भारत स्वच्छ विद्यालय आभियान का उद्घाटन किया था। इस अभियान के तहत सभी विद्यालयों में साफ–सफाई को अनिवार्य कर दिया गया है और इस पुनीत कार्य में शिक्षकों की जवाबदेही तय की गयी है। विद्यालय में साफ–सफाई बहुत आवश्यक है क्योंकि हमारे देश के विद्यार्थी अपना अमूल्य समय विद्यालय में ही बिताते हैं इसलिए यदि विद्यालय व विद्यालय परिसर की साफ–सफाई पर ध्यान नहीं दिया गया तो विद्यार्थियों में स्वास्थ्य संबंधी बिमारियाँ हो सकती हैं जिसका प्रभाव उनके अधिगम क्षमता पर पड़ता है तथा वे पठन–पाठन में रुचि नहीं ले पाते हैं। जिसका नकारात्मक प्रभाव उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है। अध्यापकों को चाहिए कि वे विद्यालय एवं विद्यालय परसिर की स्वच्छता से संबंधित प्रतियोगिताओं का आयोजन समय–समय पर विद्यालयों में करें जिससे विद्यार्थियों को स्वच्छता के विषय में जागरूक किया जा सके। प्रत्येक विद्यालय में विद्यार्थियों द्वारा स्वच्छता रैली निकलवाई जानी चाहिए जिसमें स्वच्छता के प्रति लोगों में जागरूकता फैलाई जा सके। विद्यालय में सफाई व स्वच्छता की स्थिति अध्यापकों, अन्य विद्यालयी स्टाफ आदि की क्षमता पर निर्भर करती है। विद्यालयों में जल, सफाई व स्वच्छता सुनिश्चित करने का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियों, उनके परिवारों और समुदायों में स्वास्थ्य और स्वच्छता व्यवहार में सुधार के जरिए बच्चों के स्वास्थ्य व स्वच्छता की स्थिति पर एक स्पष्ट प्रभाव डाला जाय। इसका उद्देश्य यह भी है कि स्वच्छता संबंधी व्यवहारों को प्रोत्साहन देकर और विद्यालय के भीतर उपलब्ध जल एवं स्वच्छता सुविधाओं के सामुदायिक स्वामित्व को बढ़ावा दिया जाये और पाठ्यचर्या व शिक्षण पद्धतियों में सुधार लाया जाय इससे विद्यार्थियों के स्वास्थ्य, प्रवेश की संख्या, उपस्थिति और रिटेंशन की दर में सुधार आता है और स्वस्थ विद्यार्थियों की नई पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त होता है।

विद्यालय में जल, सफाई, स्वच्छता सुविधाओं, स्वच्छ वातावरण, साफ खेल का मैदान व स्वच्छ विद्यालय परिसर एक स्वस्थ विद्यालयी वातावरण सुनिश्चित करने में सहायक हैं तथा स्वस्थ भौतिक वातावरण की दिशा में उठाया गया महत्वपूर्ण कदम है। स्वच्छ विद्यालयी वातावरण से जहाँ एक ओर विद्यार्थी स्वयं को पढ़ने लिए समायोजित करता है वहीं दूसरी ओर वह प्रत्येक विद्यालयी क्रियाकलापों में बढ़ चढ़कर भाग लेता है। बालिकाओं को खास तौर से विद्यालयों में बहुत–सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है परंतु विद्यालयों में शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की भागीदारी से उन्हें प्रत्येक प्रकार की सुविधा अब विद्यालयों में मिलने लगी है जिससे वे निश्चित होकर बालकों के समान शिक्षा प्राप्त करके अपना सर्वांगीण विकास कर रहीं हैं। वर्तमान में सभी विद्यालयों में बालिकाओं के लिए पथ्थक रूप से शौचालयों एवं मूत्रालयों का निर्माण कराया जा चुका है। उनकी स्वयं प्राइवेसी सम्बन्धी विषयों के लिए भी विद्यालयों में व्यवस्था की गयी है जिसका कारण यह है कि उनकी कक्षा में अच्छी उपस्थिति देखने को मिल रही है इसका सकारात्मक प्रभाव हमारी शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टिगोचर हो रहा है।

एक स्वच्छ व साफ विद्यालय में अध्ययन करने वाला विद्यार्थी अपने विद्यालय और समुदाय के प्रति गर्व का अनुभव करता है। इस तरह प्रत्येक विद्यार्थी अपने परिवार व समुदाय के भीतर जल, सफाई और स्वच्छता व्यवहारों में सुधार के लिए परिवर्तन का वाहक बन जाता है। विद्यालय, जल व स्वच्छता विद्यार्थियों को इस बात के लिए प्रेरित करते हैं कि वे शौचालयों और हाथ धोने की सुविधाओं को साफ–सुथरा रखें ओर आवश्यकता के अनुसार सुरक्षित जल की व्यवस्था करें। विद्यालयों में पीने के स्वच्छ पानी, शौचालयों व स्वच्छता सम्बन्धी सुविधाओं में पिछले कुछ वर्षों के दौरान लगातार सुधार आया है। इसके बावजूद गुणवत्ता और पर्याप्तता के मानकों को पूरा करने और समान पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। सबसे बढ़कर विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता व विद्यार्थियों की मूलभूत स्वच्छता जैसे–हाथ धोने की व्यवस्था, कूड़ेदान की व्यवस्था, नियमित स्थान व यूनिफार्म रखने की व्यवस्था पर जोर देना आवश्यक है इसके लिए विद्यालय एवं शिक्षकों को अनिवार्य पहले करनी होगी।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने माध्यमिक विद्यालयों के स्ववित्तपोषित व वित्तपोषित संस्थाओं में अध्यापनरत् शिक्षक व शिक्षिकाओं की विद्यालय स्वच्छता से सम्बन्धी अभिवृत्तियों एवं जिम्मेदारियों का गहन विश्लेषण कर उनके विचारों का अध्ययन किया और यह पाया कि वर्तमान समय में शिक्षण–अभिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के साथ–साथ विद्यालय के भौतिक वातावरण व विद्यालय स्वच्छता के प्रति ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे हम विद्यार्थियों का समुचित एवं सर्वांगीण विकास कर सकें तथा उनकी बौद्धिकता को समाज एवं राष्ट्र के बहुआयामी विकास में लगा सकें। शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोध के विभिन्न निष्कर्ष शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकेंगे तथा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के विकास में अमूल्य योगदान दे सकेंगे। इसी आशा व विश्वास के साथ शोधकर्ता इस शोध की उपयोगिता को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है।

सन्दर्भ–सूची

1. शर्मा, एच0एल0 (2003), पर्यावरण के समसामयिक आयाम, राज पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. शर्मा, आर0ए0 (2004), पर्यावरण शिक्षा, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।
3. शर्मा, सुनील (2006), हमारा पर्यावरण हमारी जागरूकता, प्रखर प्रकाशन, नई दिल्ली।
4- JhokLro] i fwkZek ¼2006½bUok; uesZV ,t dws"ku Qkj dUt oZs"ku ,.M I LVsu,soy Mby esV] i Vuk] IJPE पेज सं0 136–140
5. सिंह, बी0 (2010), पर्यावरण शिक्षा, लायल बुक डिपो, मेरठ।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 110-117

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

सत्तनामी-सम्प्रदाय की उदय-कालीन देशव्यापी विविध परिस्थितियाँ

*डॉ. (कु.) अनुश्री सिंह**

सारांश–मध्यकालीन भारतीय इतिहास के मुगल-काल में सम्राट् औरंगजेब के शासन-काल की एक विशेष घटना के रूप में '**सतनामियों का विद्रोह**' प्रसिद्ध है। ये सतनामी कोटवा धाम के स्वामी जगजीवन साहब द्वारा प्रवर्तित सत्तनामी सम्प्रदाय के अनुयायियों से भिन्न थे। इनका उदय स्वामी जगजीवन साहब के बीस-पचीस वर्ष पूर्व नारनौल (पंजाब) में हुआ था। इन्होंने सं0 1729 में विद्रोह किया था, जो सं0 1730 तक चला। सं0 1730 में औरंगजेब ने इन्हें समूल नष्ट कर दिया। हमारा सम्बन्ध जगजीवन साहब द्वारा प्रवर्तित सतनामी सम्प्रदाय से है, जिसका उदय विक्रम संवत की मध्य अठारहवीं शताब्दी में हुआ था। प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य तत्कालीन विविध देशव्यापी परिस्थितियों पर प्रकाश डालना है। **राजनैतिक परिस्थिति**–सत्तनामी सम्प्रदाय का उदय राजनैतिक परिस्थिति की उस पृष्ठभूमि में हुआ, जब मुगल शासक औरंगजेब की कट्टरतापूर्ण धार्मिक नीति के कारण हिन्दू समुदाय के दमन का चक्र चल रहा था। विविध प्रतिबन्धों तथा विवषता एवं अपमानपूर्ण जीवन ने उन्हें पर्याप्त उद्वेलित कर दिया था। फलस्वरूप मराठों, जाटों, सतनामियों, सिक्खों तथा राजपूतों में मुस्लिम शासन के प्रति विद्रोह की आग फूट पड़ी। उन्होंने सत्तापक्ष के छक्के छुड़ा दिये। **सामाजिक परिस्थिति**–भारतीय समाज में विदेश से आए हुए मुसलमानों की अपेक्षा उन मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक थी जो भारतीय मूल के थे और धर्म परिवर्तन के द्वारा मुसलमान बन गये थे अथवा जो विदेशी मुसलमानों की भारत में उत्पन्न सन्तानें थी। हिन्दू समाज व्यवस्था, जो मूलतः चार वर्णों[20] पर आधारित थी, कब की जातियों पर आधारित हो गयी थी और अब भी वैसी ही थी। दीर्घकालीन मुस्लिम शासन से हिन्दू शिक्षा-व्यवस्था एवं वर्ण–धर्म आहत हुए थे। ब्राह्मणों की माफी जागीरें (अग्रहार) अब नहीं रही। इस प्रकार परम्परागत वैदिक शिक्षा-व्यवस्था आहत हुई। ऐसे में कुछ ब्राह्मणों ने जिनकी संख्या बहुत ही कम थी, फारसी का अध्ययन करके उच्च पद प्राप्त किये। **आर्थिक परिस्थिति**–अपनी उपजाऊ भूमि, वनस्पति तथा खनिज सम्पदा के कारण भारतवर्ष सदा से ही एक समृद्ध देश के रूप में प्रसिद्ध रहा है। यहाँ आजीविका का मुख्य आधार कृषि होने के कारण यह **कृषि-प्रधान देश** के रूप में जाना जाता रहा है। विभिन्न शिल्प-कार्यों में भी पर्याप्त उन्नति हुई थी। शिल्प-सम्बन्धी उद्योगधन्धों में वस्त्रोद्योग ने अधिक प्रगति की थी। ढाका की मलमल विश्व-विख्यात थी। तथापि उच्च वर्ग के लोगों द्वारा विदेशी वस्तुओं को अपनाये जाने तथा विदेशियों की लूट-पाट के कारण देश की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी थी। **धार्मिक परिस्थिति**– प्रलोभन, भय तथा इस्लाम के वैश्विक भाईचारे और मानव-समता के सिद्धान्त के प्रभाव से देश की बहुसंख्य जनता मुसलमान हो गयी। मुस्लिम शासकों की विनाशकारी प्रवृत्ति के कारण अवशिष्ट हिन्दुओं में समाज-संस्कार को विकसित करने की आवश्यकता पड़ी। सन्तों ने यह कार्य बड़े प्रभावी ढंग से किया, जिनमें कबीरदास का नाम अग्रगण्य है।

सत्तनामी सम्प्रदाय–सत्तनामी सम्प्रदाय के विषय में हमें पहली जानकारी 1672 ई0 में नारनौल और मेवात में हुए सतनामियों के ऐतिहासिक विद्रोह से होती है। इतिहास में इसका उल्लेख एक प्रतिष्ठित और शक्तिशाली जाति के रूप में किया गया है।[1] प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 ईश्वरीप्रसाद लिखते हैं, ''सत्तनामी बादशाह की धार्मिक नीति से पहले से ही असन्तुष्ट थे। युद्ध–विस्फोट एक मामूली झगड़े से हो गया। एक शाही सिपाही किसी खेत पर पहरा दे रहा था। वहीं उससे एक सत्तनामी किसान से झगड़ा हो गया। सिपाही ने सत्तनामी का सिर तोड़ दिया जिससे सारी सत्तनामी जाति बिगड़ गयी। उन्होंने सिपाही को मृतप्राय करके छोड़ दिया। जब स्थानीय शिकदार ने दोशी को कैद करना चाहा, तो सत्तनामी इकट्ठा हुए और उन्होंने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। नारनौल का फौजदार अपनी सेना लेकर उनसे लड़ने चला, परंतु उसकी हार हुई और युद्ध के मैदान से भागकर

* *हरगाँव, अमेठी*

उसने अपनी रक्षा की। जब बादशाह को इस विद्रोह की सूचना मिली, उसने एक के बाद एक करके कई सेनाएँ इसे दबाने को भेजी। परन्तु इन सेनाओं की बराबर पराजय ही होती रही।''[2] एच0 ए0 रोज़ के अनुसार, ''विद्रोहियों की संख्या उस समय तक लगभग 5000 के हो चली थी। उन्होंने आगे बढ़कर नगर पर अपना अधिकार जमा लिया और भिन्न–भिन्न स्थानों पर अपने आदमियों को नियुक्त कर टैक्स वसूल करना भी प्रारम्भ कर दिया। सतनामियों ने इतना कर चुकने पर भी शान्त होना उचित न समझा और उत्साहित होकर कई नगरों तथा जिलों के गाँवों को लूटने लगे जिससे चारों ओर अराजकता फैल गयी।[3]

जैसा कि परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं ''जनता में उनदिनों सत्तनामियों के विषय में अनेक प्रकार की धारणाएँ प्रचलित होने लगी थी और लोग इनकी विजय को ईश्वरीय विधान मानने लगे थे। सफी खाँ के अनुसार मामूली तलवारें इन सतनामियों को काट नहीं सकती थी और न बाण या बंदूक की गोलियाँ ही इनका कुछ बिगाड़ पाती थी। इनका निशाना कभी न चूकता था और इनकी स्त्रियाँ तक काले घोड़ों पर चढ़कर संग्राम करती थी। बादशाह औरंगजेब ने जब देखा के इनके विरुद्ध उसके सिपाही व सिपहसालार तक लड़ने में भय का अनुभव करते हैं और कभी–कभी कह उठते हैं कि सत्तनामियों की जादूगरी के सामने किसी की एक भी नहीं चल सकती, तब उसने अपने अगले फौजी झंडों पर 'कुरानशरीफ' की आयतें लिखवा दीं ताकि उन्हें इनके जादू के दूर हो जाने का विश्वास हो जाय और यह भी प्रतीत होने लगे कि खुदा के विपक्ष में लड़ने वालों का पराजित होना निश्चित है। उपद्रव सं0 1729 में आरंभ हुआ था और सं0 1730 तक जाकर बादशाह की जीत हो सकी तथा सहस्रों सतनामियों के मार डाले जाने पर ही उस क्षेत्र की स्थिति पूर्ववत् हो पायी।[4]

इस सत्तनामी विद्रोह को किसान–विद्रोह का रूपान्तर माना गया है, किन्तु चतुर्वेदीजी के अनुसार, ''विद्रोहियों को कदाचित् साम्प्रदायिक वेषधारी होने तथा सत्तनामोच्चारण करने के कारण उसे धर्मनुरागी जनता का उपद्रव कहा गया और ऐसे लोगों को तब से एक नाम विशेष भी दे दिया गया।... सत्तनामी लोग उक्त विद्रोह के समय कदाचित् नारनौल से कुछ ही दूर तक इधर–उधर फैले हुए गाँवों में रहा करते थे और इनके सम्प्रदाय का क्षेत्र संभवतः उतना व्यापक न था जितना साधु–सम्प्रदाय की दिल्ली शाखा का आजकल माना है और इनकी बहुत–सी विशेषताएँ भी केवल स्थानीय तथा परम्परानुमोदित ही रहीं। फिर भी उनका प्रचार समान स्थिति वाले लोगों में क्रमशः दूर–दूर तक होने लगा और समय पाकर उक्त नारनौल क्षेत्र का प्रभाव उत्तर–प्रदेश एवं मध्य–प्रदेश के निवासियों तक भी फैल गया। बादशाह औरंगजेब ने सत्तनामियों को अपनी राजधानी के निकट समूल नष्ट कर देने के ही प्रयत्न किये थे तथा उसे बहुत अंशों में सफलता भी प्राप्त हुई थी और यही कारण है कि इस सम्प्रदाय का पौधा फिर कभी उक्त क्षेत्र में पूर्ववत् पनप न सका।''[5]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नारनौल तथा उसके आस–पास किसी सत्तनामी सम्प्रदाय का अस्तित्व था, जिसे औरंगजेब ने समूल नष्ट कर दिया। उस समय जो सत्तनामी बचे भी होंगे उन्होंने राजभय के कारण अपने को छिपाने के लिए स्वयं को साध–सम्प्रदाय का घोषित कर दिया होगा। सत्तनामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक के रूप में साध–सम्प्रदाय के वीरभान, ऊदादास अथवा जोगीदास का नाम लिये जाने के कारण चतुर्वेदी जी अनुमान करते हैं कि ''इस सम्प्रदाय का कोई न कोई संबंध 'साध–सम्प्रदाय' से भी अवश्य होना चाहिए।'' वे यह भी कहते हैं कि ''बहुत लोगों ने इस बात से प्रभावित होकर साध सम्प्रदाय एवं 'सत्तनामी सम्प्रदाय' को एक व अभिक्त तक मान लिया है...।''[6] हमारे विचार से इस प्रकार की भ्रान्ति सतनामियों के साध–सम्प्रदाय में प्रवेश करने के कारण ही हुई होगी। एलिसन साहब कुछ ग्रामीण सतनामियों के पीछे साध–सम्प्रदाय में ले लिये जाने की सम्भावना करते हैं,[7] जिन्होंने अपना पूर्वनाम भी कायम रखा होगा। राजभय समाप्त होने पर पुनः उन्होंने अपने को सत्तनामी कहना प्रारम्भ कर दिया होगा। यही कारण है कि ''अधिकतर साध–सम्प्रदाय के ग्रामीण अनुयायी ही अपने को साध सत्तनामी कहा भी करते हैं।''[8]

चतुर्वेदी जी ने नारनौल के सतनामियों को सतनामियों की पृथक् शाखा (नारनौल शाखा) का बताया है। पर हमारा सम्बन्ध जगजीवन साहेब द्वारा प्रवर्तित सत्तनामी सम्प्रदाय से है, जिसका उदय नारनौल के सत्तनामी सम्प्रदाय के बीस–पचीस वर्ष पश्चात् हुआ होगा।

उदयकालीन परिस्थितियाँ

राजनैतिक परिस्थिति–सत्तनामी सम्प्रदाय का उदय राजनैतिक परिस्थिति की उस पृष्ठभूमि में हुआ, जब मुगल शासक औरंगजेब की कट्टरतापूर्ण धार्मिक नीति के कारण हिन्दू समुदाय के दमन का चक्र चल रहा था।

उनके धर्मस्थलों को दूषित किया जा रहा था। पाठशालाओं तथा मन्दिरों का ध्वंस किया जा रहा था अथवा मन्दिरों को मस्जिदों में परिणत किया जा रहा था, उनके रीति–रिवाजों तथा त्योहारों पर प्रतिबन्ध लगाये जा रहे थे। हिन्दू विक्रय–कर देने के लिए बाध्य थे, जबकि मुसलमानों को जो उन्हें आधा–विक्रय कर प्रदेय था, उससे भी मुक्त कर दिया गया। हिन्दू जजिया देने के लिए भी बाध्य थे। उनके साथ द्वितीय स्तर के नागरिक जैसा व्यवहार किया जा रहा था। विविध प्रतिबन्धों तथा विवषता एवं अपमानपूर्ण जीवन ने उन्हें पर्याप्त उद्वेलित कर दिया था। उनमें मुस्लिम-शासन के प्रति विद्रोह की आग फूट पड़ी। मराठों, जाटों, सतनामियों,[9] सिक्खों तथा राजपूतों ने सत्तापक्ष के छक्के छुड़ा दिये। सत्ता पक्ष से इनका संघर्ष दीर्घकाल तक चलता रहा। इनके मन में सत्ता पक्ष के प्रति विद्वेष भरा हुआ था। ''जागीरों के हस्तान्तरण ने शोषण को तीव्र किया और इस प्रकार के शोषण ने जमींदारों (बड़े अधिकारों वाले) और किसानों के विद्रोहों को जन्म दिया''[10] और साक्ष्यों राज्यों के उत्थान ने एकीकृत मुगल साम्राज्य को ''छिन्न भिन्न करके नष्ट कर दिया।''[11] किन्तु फिर भी हिन्दुओं के पूर्ण–स्वतंत्र राज्य नहीं स्थापित हो सके। हाँ, कुछ राज्य, यथा–मराठा राज्य संघ, जाट, सिक्ख और अफगान ऐसे अवश्य थे जो मुगल साम्राज्य से स्वतंत्र थे, ''यद्यपि उनकी कभी उसके साथ संधि हुई हो सकती है, या वस्तुतः पहले दो राज्यों के विषय में कहा जा सकता है कि उन्होंने मुगल बादशाह की नाम भर की श्रेष्ठता भी न मानी।... पूरे अन्तर्विरोध का सार 1761 में आजाद बिलग्रामी द्वारा किये गये विरोध में आ जाता है कि अपनी विजयों के बावजूद मराठा सरदार शासकों की नहीं, बल्कि ज़मींदारों की भाँति व्यवहार कर रहे थे।''[12]

अफगान आबादकार ''औरंगजेब की मृत्यु के बाद निरंतर एक समस्या बने रहे और उन्होंने मुगल-साम्राज्य के बिखराव की प्रक्रिया को तेज किया...।'' ''...आंतरिक युद्धों ने सूबाई मुआमलों पर केन्द्र की पकड़ को ढ़ीला किया और इस क्षेत्र (गंगा के दोआबा) पर केन्द्र का कारगर नियन्त्रण जाता रहा। अमली तौर पर फ़ौजदार अब ज़मीदारों की समस्या का सामना करने में खुद को असहाय महसूस करने लगे। ये जमींदार अब पर्याप्त शक्ति ग्रहण कर चुके थे और अकसर मालगुजारी देने से इनकार कर देते थे।''[13]

जमीदारों द्वारा 'मालगुजारी' देने से इन्कार का प्रमुख कारण इजारदारी की प्रथा[14] थी, जिसे केन्द्र सरकार प्रोत्साहन दे रही थी। ''इसके फलस्वरूप जमींदारों और इजारदारों के बीच टकराव हुए (ये इजारदार खुद भी कभी–कभी जमींदार ही होते थे) या फिर आमिलों और जमींदारों के बीच टकराव हुए। इसके कारण किसानों को भारी मुसीबतों का सामना करना पड़ा और वे अपनी जमीनों से भाग खड़े हुए।[15]

अधिकांश राजपूत जमींदार, ''जो पुराने शासक घरानों के लोग थे'' और जिनमें से अधिकांश ''अपनी जमीन को जीतने और अपने पास रखने की परंपरागत महत्वाकांक्षा से ग्रस्त थे,...कानून–व्यवस्था की मौजूदा हालत का लाभ उठाते हुए वे अपने इलाके बढ़ाते रहे और अपने समकक्षों के गाँवों को लूटते रहे।''[16] यही स्थिति रूहेला अफगानों की भी थी। शिवदास के शब्दों में, ''रुहेला अफगान जो 20,000 घुड़सवारों और पियादों पर आधारित है, बरेली, संभल और मुरादाबाद के आस–पास के क्षेत्रों में अपने आप को संगठित कर चुके हैं और जनता पर हर तरह का जुल्म ढा रहे हैं। वे राजमार्गों पर यात्रियों और व्यापारियों को लूट लेते हैं। वे कुलीनों और साथ ही गरीबों की जमीदारियों को हड़प लेते हैं। वे परस्पर युद्धरत जमींदारों को अपनी सेवाएँ प्रदान करते हैं जो उनकी सेवाओं का उपयोग अपने विरोधियों के खिलाफ करते हैं। उनकी शैतानी हरकतों के चलते आमिलों और फ़ौजदारों का प्रशासन ठप हो चुका है और सरकार को मालगुजारी का भारी नुकसान हुआ है। राजमार्ग और दूसरे मार्ग बन्द कर दिये गये हैं।''[17]

इसी बीच (1739 ई0 में) नादिरशाह ने भी आक्रमण कर दिया जिससे मुगल प्रशासन ठप हो गया और उत्तर भारत में तबाही मच गयी। तत्कालीन साम्राज्य की स्थिति का निरूपण करते हुए डॉ0 ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, ''नादिरशाह के हमले से शासन–प्रबन्ध बिल्कुल बिगड़ गया। दिल्ली सरकार की शक्ति का अन्त हो गया। जाटों और सिक्खों ने सरहिन्द पर अधिकार कर लिया। मराठों का राज्य सम्पूर्ण दक्षिण और पश्चिमी सूबे में फैला था। वे बंगाल, विहार, और उड़ीसा पर भी हमले करने लगे थे। गंगा के दोआब में अली मुहम्मद खाँ रुहेला ने कुमायूँ की पहाड़ियों तक अपना अधिकार कर लिया था। अवध के सूबेदार सआदत अली खाँ, बंगाल के अलीवर्दी खाँ तथा दक्षिण के निजामुलमुल्क ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी।''[18]

इस प्रकार स्पष्ट है कि अठारहवीं शताब्दी में पूरे देश में घोर अराजकता व्याप्त थी। जन–जीवन, धन और सम्मान कुछ भी सुरक्षित नहीं था। जनता मुसलमानों के अत्याचारी शासन से ऊब चुकी थी। किन्तु उसकी भी शक्ति

अब कमजोर हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भी राजनीति में हस्तक्षेप का अवसर मिला और धीरे–धीरे उसने शासन–सत्ता हथिया ली। सामान्य भारतीय जनता राजनीति से निरपेक्ष थी। सम्भवतः उसने मुसलमानों के शासन की अपेक्षा अंग्रेजों के शासन को श्रेयस्कर समझा। रजवाड़ों और जमींदारों ने भी उनकी सत्ता को चाहे–अनचाहे स्वीकार कर लिया।

सामाजिक परिस्थिति–भारतीय समाज हिन्दू और मुसलमान इन दो मुख्य वर्गों में बँटा हुआ था जिनके रीति–रिवाज एक दूसरे के ठीक उलटे थे। हिन्दू यहाँ के मूल निवासी थे और मुसलमान हाल में ही आये हुए विदेशी। किन्तु पाँच सौ वर्षों के मुसलमानी शासन से मुसलमानों की जड़ें काफी गहरी हो गयी थी। भारतीय समाज में विदेश से आए हुए मुसलमानों की अपेक्षा उन मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक थी जो भारतीय मूल के थे और धर्म परिवर्तन के द्वारा मुसलमान बन गये थे अथवा जो विदेशी मुसलमानों की भारत में उत्पन्न सन्तानें थी। ध्यातव्य है कि प्रारम्भिक मुसलमानों को हिन्दू 'म्लेच्छ' कहकर सम्बोधिक करते थे और उनका स्तर शूद्रों से भी निम्न मानते थे।

जैसा कि एस.सी. राय चौधरी कहते हैं, ''निम्न जाति के हिन्दुओं ने एक बड़ी संख्या में इस्लाम स्वीकार कर लिया, क्योंकि इसने उन्हें अपेक्षतया अधिक सद्व्यवहार तथा आर्थिक सुविधाओं का आश्वासन दिया। उच्च जाति के हिन्दुओं ने भी बदली हुई परिस्थिति से समझौता करके मुसलमानों और मुसलमान अप्रवासियों की सन्तानों, जो भारतीय समझे जाने लगे थे, के साथ मेल–मिलाप करना प्रारम्भ कर दिया। मुसलमानों ने भी इस नये देश के साथ गहरा लगाव अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया।[19]

हिन्दू समाज व्यवस्था, जो मूलतः चार वर्णों [20] पर आधारित थी, कब की जातियों पर आधारित हो गयी थी और अब भी वैसी ही थी, पर उन्हें चार ही वर्गों में बाँटे जाने की प्रथा सदैव विद्यमान रही रही है। हिन्दुओं की चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का प्रभाव मुस्लिम समुदाय पर भी पड़ा और उसे भी सैयद, झोख, मुगल और पठान, इन चार वर्गों में विभक्त किया जाने लगा।[21] सैयद स्वयं को पैगम्बर की पुत्री फातिमा की वंश–परम्परा से सम्बद्ध करते थे, शेख विशुद्ध अरब–वंशज थे, मुगल मंगोल प्रजाति के थे और बाद में पारसी और चगाई विभागों में बँट गये थे तथा पठान पश्तो भाषा बोलने वाले पखतून थे जो पेशावर के पास अब भी बोली जाती है।

दीर्घकालीन मुस्लिम शासन से हिन्दू शिक्षा–व्यवस्था एवं वर्ण–धर्म आहत हुए थे। ब्राह्मणों की काफी–जागीरें (अग्रहार) अब नहीं रही। फलस्वरूप एक ओर तो वे वैदिक शिक्षा से विमुख हुए तथा दूसरी ओर उन्होंने कृषि कर्म को अपना लिया। प्रो0 ए0एल0 श्रीवास्तव सल्तनत काल (1206–1526) में वैदिक अध्ययन तथा ब्राह्मणों के वर्चस्व में आयी इस संकटापन्न स्थिति को स्वीकार करते हैं।[22] तथापि कुछ ब्राह्मणों ने जिनकी संख्या बहुत ही कम थी, फारसी का अध्ययन करके उच्च पद प्राप्त किये।

यद्यपि ब्राह्मण अपना ब्राह्मण–धर्म छोड़ने के लिए विवश हुए थे, तथापि राजपूत क्षात्र–धर्म के पालन में पूर्णतः तत्पर थे। ये युद्ध से कभी विमुख न होते थे। भले ही उन्हें अपने प्राणों की बलि ही क्यों न देनी पड़े। ऐसी परिस्थिति में उनकी स्त्रियाँ प्रसन्नतापूर्वक जौहर–व्रत अपना लेती थी। वैश्य भी अपने लिए विहित धर्म के पालन में लगे हुए थे। शूद्र सेवा कार्य के लिए विवश थे। उनका एक वर्ग अस्पृश्य माना जाता था। समाज में जाति के आधार पर ऊँच–नीच की मान्यता व्याप्त थी।

मुस्लिम समुदाय की स्त्रियों में प्रचलित पर्दा प्रथा के अनुकरण तथा सुरक्षात्मक दृष्टि के फलस्वरूप हिन्दू समुदाय के उच्च कुल की स्त्रियों में भी यह प्रथा प्रचलित हुई। किन्तु निम्न वर्ग की महिलाएँ इससे वंचित रहीं।

बाल विवाह का प्रचलन दोनों ही समुदायों में था। हिन्दुओं में विधवाओं की स्थिति दयनीय थी। उनका पुनर्विवाह असम्भव था और प्रायः उन्हें सती होने के लिए बाध्य किया जाता था, जिस पर अकबर ने रोक लगायी थी। फिर भी सती–प्रथा राजाराम मोहन राय के प्रयासों के फलस्वरूप बहुत बाद में समाप्त हुई। राजपूत स्त्रियों में उनके पतियों के समर–भूमि में मारे जाने अथवा पराजय अवश्यम्भावी होने की स्थिति में जौहर की प्रथा प्रचलित थी।

बाल–विवाह एवं बहु विवाह हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों ही समुदायों में प्रचलित थे। इस्लाम किसी भी मुसलमान को चार बीवियाँ रखने की इज़ाजत देता है। हिन्दुओं में बहु–विवाह प्रथा कम हो रही थी। उनमें एक विवाह–प्रथा विकसित हो रही थी।

हिन्दुओं और मुसलमानों के अपने अलग–अलग रीति–रिवाज और तीज–त्योहार थे। हिन्दु त्योहारों में रक्षाबन्धन, दशहरा, दीवाली, शिवरात्रि तथा होली प्रमुख थे और मुस्लिम त्योहारों में मोहर्रम, ईद–ई–मिलाद, ईद–उल–फितर, ईद–उल–जुहा, नौ–रोज़ और सब–ई–बारात।

आर्थिक परिस्थिति–सदा से ही भारतवर्ष की प्रसिद्धि एक समृद्ध देश के रूप में रही है। इसकी समृद्धि की कहानियाँ सुनकर ही मुसलमानों ने इस देश पर आक्रमण किये और इसे लूटकर मूल्यवान हीरे–जवाहरात तथा सिक्कों की अपार धन–सम्पदा यहाँ से ले गये।

प्रकृति ने स्वयं इस देश का निर्माण एक समृद्ध देश के रूप में किया है। मनुष्य को अपने जीवन–यापन के लिए जो भी वस्तुएँ चाहिए, वे यहाँ उपलब्ध हैं। सिन्धु तथा ब्रह्मपुत्र के बीच का उपजाऊ मैदान प्राकृतिक रूप से कृषि के सर्वथा अनुकूल है। इस भूखण्ड में रहने वाले अधिकांश लोग कृषि–कार्य में लगे हुए हैं और इसी कारण यह सम्पूर्ण देश कृषि–प्रधान देश कहलाता है। देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ तथा रत्नों, धातुओं और कोयले आदि की खानें पायी जाती हैं।

काष्ठ कला, कताई–बुनाई, मिट्टी का काम और चर्मशिल्प इस काल के प्रमुख शिल्प थे और इनसे सम्बन्धित उद्योग–धन्धे प्रचलित थे। भारतवर्ष में वस्त्रोद्योग ने अत्यधिक प्रगति की थी। इस सम्बन्ध में डॉ. ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, ''सूती माल का उत्पादन अधिक होता था। इसकी खपत देश में और बाहर भी थी। बनारस, आगरा, मालवा, दक्षिण गुजरात इसके केन्द्र थे। ढाका की मलमल विश्व विख्यात थी। चादरें, कम्बल, रस्सी, निवाड़ हर जगह बनते थे। प्रत्येक भारतीय अपने देश का बना हुआ कपड़ा पहनता था। यह सच है कि कपड़ा थोड़ा पहना जाता था, परन्तु काम सबका चल जाता था। अफ्रीका, अरब, मिस्र, बर्मा, कल्लका और एशिया के बाजारों में भारतीय कपड़े की बहुत माँग थी।''[23]

लाहौर, आगरा, फतेहपुर सीकरी तथा गुजरात में रेशम का व्यवसाय प्रगति पर था, परन्तु अब चीन, ईरान तथा मध्य एशिया से रेशम का आयात भी होने लगा था। जाजम, कालीन, शतरंगी, बलूची तथा रेशम की चटाइयों का निर्माण कारखानों में किया जाता था। लाहौर में शॉल और चादरें बहुतायत से बनायी जाती थी।

करों का भार अधिक होने के कारण तथा उच्च वर्ग के लोगों द्वारा विदेशी वस्तुओं को अपनाये जाने के कारण कारीगरों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी थी। अधिकांश कारीगर गाँवों को छोड़कर नगरों में बस गये थे।

भारतवर्ष के विदेशें के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे। उनके साथ आयात–निर्यात किया जाता था। यूरोप को मद्रास से कपड़े का, बिहार से षोरा का बंगाल से रेशम और चीनी का निर्यात किया जाता था। इनके अतिरिक्त मिर्च, नील तथा अफीम का भी विदेशों को निर्यात किया जाता था और इनके बदले विदेशों से सोना चाँदी तथा अन्य धातुएँ, घोड़े, हाथीदाँत, मुश्क कीमती पत्थर, सुगन्ध यूरोपीय मदिरा, मलमल, रेशम और कच्चा रेशम आदि वस्तुएँ मँगायी जाती थीं।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल–साम्राज्य का अन्त तथा प्रान्तीय राज्यों का उदय होने पर भारत की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। डॉ0 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के शब्दों में, ''केन्द्रीय सरकार की कमजोरी, मराठा–संघर्ष, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के विदेशी आक्रमणों पुर्तगालियों की लूट और यूरोपीय व्यापारियों तथा उनके दलालों द्वारा वाणिज्यीय सुविधाओं के दुरुपयोग के कारण भारत की बड़ी जनसंख्या के सामने आर्थिक संकट उपस्थित हो गया। इस प्रकार उस समय जबकि देश अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रतिकूल प्रभाव से गुजर रहा था, उसने आधी जनता से अधिक को दयनीय जीवन में ले जाने वाली निम्न आर्थिक स्थिति को ला दिया।''[24]

धार्मिक परिस्थिति–हिन्दू–धर्म मुसलमान शासकों के आघात–प्रत्याघातों से आहत था। हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ा गया, उनकी धार्मिक गतिविधियों को ठप किया गया तथा उनमें से बहुतों को कुछ सुविधाएँ देकर इस्लाम स्वीकार करवाने का भारी प्रयत्न किया गया। इस्लाम के वैश्विक भाईचारे और मानव–समता के सिद्धान्तों ने निम्नवर्गीय हिन्दुओं को प्रभावित भी किया। हिन्दू–समुदाय के उपेक्षित निम्नवर्गीय लोग सहर्ष इस्लाम को स्वीकार करने लगे। उच्चवर्गीय लोग भी पद–प्रतिष्ठा के लोभ में मुसलमान बने। रेजीडेण्ट स्लीमन ने अपनी डायरी (16 दिसम्बर, 1949) में लिखा है, ''लखनऊ में कोई शिया सुन्नी के मारने के अपराध में मृत्युदण्ड नहीं पाता है फिर हिंदू के मारने से क्या होता है। यदि हिंदू हिंदू को मार डाले और मुसलमान हो जाये तो भी दंड से बच जाता है। यदि दंड की आज्ञा दी जाने के बाद मुसलमान हो जाय तो उसका अनुपालन नहीं होता। यह लखनऊ का कानून और नित्यप्रति का व्यवहार है।''[25] स्पष्टतः दण्ड से बचने के लिए भी बहुत से हिन्दू मुसलमान बन गये होंगे।

हिन्दू शासक एवं चिन्तक वर्ग अपने धर्म को संकट की स्थिति में देखकर अत्यधिक चिन्तित हुए। उन्होंने हिन्दू–समाज की बुराइयों को दूर करने का निश्चय किया। जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं, ''जिस समय मुसलमान भारत में आये उस समय सच्चे धर्मभाव का बहुत कुछ ह्रास हो गया था। प्रतिवर्तन के लिए बहुत कड़े धक्कों की आवश्यकता थी।'' उस समय ''पंडितों के शास्त्रार्थ भी होते थे, दार्शनिक खंडन–मंडन के ग्रंथ भी लिखे जाते थे। विशेषा चर्चा वेदान्त की थी। ब्रह्मसूत्रों पर, उपनिषदों पर, गीता पर भाष्यों की परम्परा विद्वन्मंडली के भीतर चल रही थी जिससे परम्परागत भक्तिमार्ग के सिद्धान्त पक्ष का कई रूपों में नूतन विकास हुआ।'' आचार्य शुक्ल जी आगे लिखते हैं ''कालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को सँभालने और लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति को जगाने लगे। क्रमशः भक्ति का प्रवाह ऐसा विकसित और प्रबल होता गया कि उसकी लपेट में केवल हिंदू जनता ही नहीं, देश में बसने वाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आ गये। प्रेमस्वरूप ईश्वर को सामने लाकर भक्त कवियों ने हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया और भेदभाव के दृश्यों को हटाकर पीछे कर दिया।''[26]

इतिहासकार स्मिथ के अनुसार, ''चौदहवीं शताब्दी में कुछ प्रलोभन तथा भय के कारण उत्तरी भारत की अधिकांश जनता मुसलमान हो गयी थी। मुस्लिम शासक की विनाशकारी प्रवृत्ति के कारण हिन्दुओं में समाज–संस्कार को अधिक विकसित करने की आवश्यकता बढ़ी।''[27] यह कार्य बड़े प्रभावी ढंग से सन्तों ने किया, जिनमें कबीरदास का नाम अग्रगण्य है। डॉ0 रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि, ''जनता की धर्मान्धता तथा शासकों की नीति के कारण कबीर क जन्मकाल के समय में हिन्दू-मुसलमान का पारस्परिक विरोध बहुत बढ़ गया था। धर्म के सच्चे सच्चे रहस्य को भूलकर कृत्रिम विभेदों द्वारा उत्तेजित होकर दोनों जातियाँ धर्म के नाम पर अधर्म कर रही थी।''[28]

कबीर ने साहस के साथ इस परिस्थिति का सामना किया। उन्होंने इन दोनों वर्गों की संकीर्णता पर प्रहार करते हुए जोरदार शब्दों में हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रतिपादन किया। उन्होंने दोनों को चुनौती देते हुए कहा–

हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुह मैं कदे न जाइ।।[29]

'अरे इन दोउन राह न पाई' कहते हुए उन्होंने हिन्दू–मुसलमान दोनों के बाह्याचारों पर चोट की और दोनों को तर्क पर चाँपते हुए कहा :

जे तूँ बांझन बभनीं जाया, तौ आन बाट ह्वै काहे न आया।
जे तूँ तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतना क्यूँ न कराया।
कहै कबीर मधि नहिं कोई, सो मधिम जा मुखि राम न होई।।[30]

नामदेव जी ने भी कहा था :

हिंदू अंधा, तुरकउ काना, दुवै ते ज्ञानी सयाना।

और :

हिन्दू पूजै देहरा मुसलमान मसीद।
नामा सोई सेविया जहँ देहरा न मसीद।।[31]

इसी प्रकार कबीरदास कहते हैं :

अरे भाई दोइ कहाँ सो मोहि बतावौ।
विचिही भरम का भेद लगावौ।
जोनि उपाइ रची द्वै धरनी, दीन एक बीच भई करनीं।
राम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसवी लई।।
कहै कबीर चेतहु रे भौंदू, बोलनिहारा तुरक न हिन्दू।[32]

उन्होंने अधोद्धृत शब्दों में राम–रहीम की एकता प्रतिपादित की :

हमरे राम–रहीम करीमा कैसो, अलह राम सति सोई।

बिसिमिल मेटि बिसम्भर एकै, और न दूजा कोई।।[33]

पुनः वे एक सोने से ही अनेक प्रकार के गहनों के बनाये जाने का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि यद्यपि नमाज और पूजा के मार्ग भिन्न हैं, किन्तु उनका मूल तत्व एक ही है :

गहरा एक कनक तें गहना, इन महँ भाव न दूजा।

कहन–सुनन को दुइ करि थापिनि, इक नमाज इक पूजा।।[34]

कबीरदास ने हिन्दू समाज में प्रचलित जातिगत आधार पर व्यक्ति की श्रेष्ठता और निम्नता की मान्यता को भी साहस के साथ ललकारा था। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में, ''काशी में हिन्दू–धर्म के प्रधान केन्द्र में–कबीर के सिवा और कौन साहस कर पूछ सकता था–''जौ तू बाम्हन बाह्मनि जाये, और राम तुम काहे न आये?'' यदि काली और सफेद गाय के दूध में कोई अन्तर नहीं होता तो फिर उस विश्ववंद्य की सृष्टि ने जाति–कृत भेद कैसा? ''कोई हिन्दू कोई तुरक कहावै एक जमीं पर रहिए।''

सत्य तो यह है कि सभी परमेश्वर की सन्तान हैं–''को ब्रह्मण को सूदा।''[35]

कबीरदास के कड़े प्रतिरोध के बावजूद भी हिन्दू–समाज की उपर्युल्लिखित बुराइयाँ समाज से दूर नहीं हो सकी थीं, यद्यपि बहुतों ने सिद्धान्त–रूप में उनका औचित्य स्वीकार किया था। सत्तनामी सम्प्रदाय के उदय–काल में भी वे बुराइयाँ विद्यमान थीं और इस सम्प्रदाय ने भी डट कर उनसे लोहा लिया।

सत्तनामी पन्थ ने सन्त मत को पूरी तरह से आत्मसात् कर लिया था। इसमें जाति–भेद के लिए कोई स्थान न था। सभी जाति और समुदाय के लोगों को इसमें दीक्षित किया जाता था। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक जगजीवन साहेब ने स्वयं दो मुसलमानों को भी इस पंथ का महंत बनाया था। इस पंथ में ईश्वर के निराकार निर्गुण रूप तथा उसकी सर्वव्यापकता की पूर्ण मान्यता रही है।

संदर्भ

1. प्रसाद, ईश्वरी, भारत का इतिहास, II, पृ. 121
2. तत्रैव।
3. रोज़, एच0ए0, 'अ ग्लोसरी ऑफ दि ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ दि पंजाब एण्ड फ्राण्टियर प्रॉविंसेज, वा0 III, पृ. 388–89; उ0, चतुर्वेदी, परशुराम, सं0 2008, पृ. 541
4. चतुर्वेदी, पू0, पृ. 541
5. वही, पृ. 541–542
6. चतुर्वेदी, पू0, पृ. 539
7. एलिसन, डब्ल्यू0एल0, 1935 ('दि साध्स दि रेलिजिअस लाइफ ऑफ इण्डिया सेरीज, कलकत्ता), पृ. 14:5, उ0 चतुर्वेदी, पू0, पृ. 539
8. चतुर्वेदी, पू0, पृ. 539
9. 1672 ई0 में नारनौल तथा मेवात में होने वाले इतिहास–प्रसिद्ध सतनामियों के विद्रोह से सत्तनामी सम्प्रदाय का कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः इस समय तो स्वामी जगजीवनदास द्वारा प्रवर्तित सत्तनामी सम्प्रदाय का जन्म ही नहीं हुआ था। इन विद्रोही सतनामियों का एक पृथक् वर्ग था।
10. हबीब, इरफान, एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, 1956–1707 (बंबई, 1963), पृ. 317–51; उ0, अली, एम0 अतहर, मुगल साम्राज्य का अंत : म0भा0, 1, 2006, पृ. 117, 125, पा0टि0 4
11. अली, पू0, पृ. 117
12. वही, पृ. 122
13. हुसैन, इकबाल, गंगा के दोआबे में अठारहवीं सदी के पूर्वार्ध में रूहेला अफ़गानों के उदय की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि; म0भा0, 5, पृ. 117
14. ''ज़मीनों के किराये पर और बेहद अधिक किराए पर उठाने की प्रथा है। वही, पृ. 118

15. तत्रैव।

16. वही, पृ. 119

17. लखनवी, शिवदास, षाहनामा मुनव्वर कलाम, फ़ोलियो 79–80 बी; उ0 हुसैन पू0, पृ. 121; 128 पा0टि0 58

18. प्रसाद, ईश्वरी, भारत का इतिहास, II, पृ. 172

19. राय चौधरी, एस0सी0, 1989, पृ. 56–57

20. वर्ण जातियों से भिन्न हैं। इनकी संख्या सदैव चार ही रही है। ये विभिन्न गुणों तथा कर्मों पर आधारित तथा ईश्वर–निर्मित माने जाते थे। श्रीकृष्ण भगवान गीता में कहते हैं : चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कम विभागशः।

–गीता

21. टाइटस तथा प्रो0 मोहम्मद इकबाल मुस्लिम समुदाय में जाति–व्यवस्था का जन्म हिन्दू प्रभाव के फलस्वरूप मानते हैं (देखिए राय चौधरी, पू., पृ. 57)

22. तत्रै0, द्र0।

23. प्रसाद ईश्वरी, भारत का इतिहास, ।।, पृ. 210

24. श्रीवास्तव, ए0एल0, मेडवल इन्डियन कल्चर, पृ. 31, उ0–राय चौधरी, एस0सी0, 1989, पृ. 84

25. सिंह, जगदेव, 2001, पृ. 145

26. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, 2007, पृ. 252

27. उ0 वर्मा, रामकुमार, 2007, पृ. 252

28. वही, पृ. 253

29. क0ग्र0, मधि कौ अंग, 17 (पृ. 121)

30. क0ग्र0, पदावली, 41 (पृ. 212)

31. उ0, शुक्ल, रामचन्द्र, 2007, पृ. 67

32. क0ग्र0, पदावली, 56 (पृ. 220)

33. वही, पदावली, 58, (पृ. 221)

34. उ0, शुक्ल, पू0, पृ. 72

35. वर्मा, पू0, पृ. 253–254

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Geography: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 118-127

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Geographical Information System : Applicability in Environmental Monitoring and Process Modelling & Tourism Management

*Babita Shukla** *Dr. Sanjay Kumar Singh***

Abstract : Geographical Information System is the emerging science that puts together geography, computer science, mathematics, statistics, management, surveying and mapping science into one. On the basis of geographical data, supported by computer hardware and software it collects inputs, manages, edits, queries, models and displays spatial data. Its main factors are: data collection and editing; data storage and management; data processing and transformation etc. GIS is a tool used for any computer-based capability for manipulating geographical data. The paper describes the types of GIS data formats (vector, raster), database objects definitions, relationships, geometric features, data orgnization structure and its applications in Environmental monitoring, process modelling and tourism management. GIS data can be used in its applications with the respect to data formats, including surface elevation and slope from digital elevation model data (DEM), with the applicability in water industry. In tourism management the most travel information and data have geographical attributes, which provide a basis for the establishment of Travel Geographic Information System (TGIS).

Key Words : *Geographical Information System (GIS), data vector, data raster, GIS, Manipulating Geographical data, Digital Elevation Model (DEM), GIS Data Management, Travel Geographic Information System (TGIS).*

Introduction : The Geographical Information System (GIS) is a tool used generically for any computer based capability for manipulating geographical data. The Hardware and Software functions of Geographical Information System include data input, data storage, data management (data manipulation, updating, changing, exchange) data reporting (retrieval, presentation, analysis, combination etc.) It means that GIS is a computer based tool for collecting, storing, transforming, retrieving and displaying spatial data from the real GIS world. GIS Provides facilities for data capture, data management, data manipulation, analysis and the presentation of geographical data. All of these actions and operations are applied to GIS as a tool that forms its database. In this paper it describes the types of the GIS data formats (vector, raster), database object definitions, relationships, geometric features, and the data organisation structure. Some GIS applications and examples are given for better understanding of how GIS data can be used in GIS applications, with the respect to data formats, including surface elevation and slope from Digital Elevation Model data (DEM), with the applicability in water industry.

GIS is not simply a system for making maps (at different scales, in different projects, it can create maps), a GIS is an analysis tool as well.

* *SRF (Geography Department) R.P.G. College, Jamuhai, Jaunpur*
** *Assistant Professor (Geography Department) R.H.S.P.G. College Singramau, Jaunpur*

History of GIS : Its begins since 1960 when GIS used in computer. At first its development from North American's institutions as U.S. Bureau of the Census, U.S. Geological System, Harvard Laboratory for Computer Graphics, Environmental System Research Institute; Canadian's Geographic Information Systems (CGIS); Britainian Natural Experimental Research Centre (NREC) and Department of Environmental (DOE) that are linked in the development of GIS.

Definitions of GIS : "A Geographical Information System (GIS) can be defined as a system for entering, storing, manipulation, analysing and displaying geographical or spatial data"

According to Marble and et. al : "GIS is a spatial data handling system"

According to Clarke : "A Computer assisted system for the capture, storage, retrieval analysis and display of spatial data, within a particular organization.

In the words of Burrough : "A powerful set of tools for collecting, storing, retrieving at will transforming and displaying spatial data from the real world"

DOE : "A system for capturing, storing, checking, manipulation, analysis and displaying data which are spatially referenced of the earth."

Parker : "An information technology which stores, analysis and display both spatial non spatial data.

According to Berry : "An internally referenced, automated spatial information system"

Anonoff defines about GIS in 1989 : "GIS is a computer based system that presents 4 types capacity for operating spatial datas

(1) Input
(2) Data Management
(3) Manipulation and Analysis
(4) Output

While other technical words-

(i) Geo Information System (GIS)
(ii) Spatial Information System (SIS)
(iii) Land Information System (LIS)
(iv) Multi Purpose Cadastre

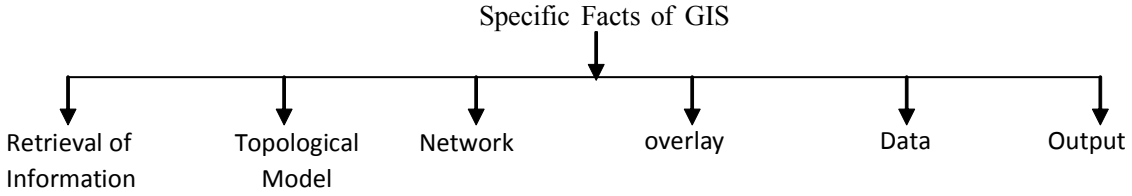

Works of GIS :

(i) Data capture
(ii) Data Integration
(iii) Projection and Registration
(iv) Data Structure
(v) Data Analysis- Its Four types of Data Analysis
(a) Simple Quarry
(b) Special Quarry
(c) Single Layer Operation
(d) Zoning

In it quarry means how can we find out informations Quarry's types these are-

(i) Multi Layer Operation (ii) Spatial Modelling

(iii) Surfacial Analysis (iv) Network Analysis

(v) Point Pattern Analysis (vi) Grid Analysis

Elements of GIS : Its elements are Hardware, Software, Data and Lifeware.

Table No.1

Sl.No.	Element	Details	
1.	Hardware	(a)	Type of Computer Platforms
			• Modest Personal Computers
			• High Performance workstation
			• Mini Computers
		(b)	Input
			• Scanner
			• Digitizer
			• Tape driver
			• CD
			• Keyboard
			• Graphic Monitor
		(c)	Output Devices
			• Plotter
			• Printer
2.	Software	•	Input modules
		•	Editing
		•	MRP manipulation/Analysis module
		•	Modelling capability
3.	Data	•	Spatial data
		•	Attribute data
		•	Remote sensing data
		•	Global database
4.	Liveware	•	People responsible for digitising implementing using GIS
		•	Trained workers

The geographical (or spatial) data represent phenomena from the real world in terms of their position with respect to a known coordinate system, their attributes that are unrelated to position (such as colour, pH, incidence of disease etc.) and their spatial interrelations with each other. The spatial relations describe how they are linked together (that is known as topology and describes space and spatial properties such as connectivity, which are unaffected by continuous distortions.

Almost GIS occurs in every industry and it is used for education, land management, natural resource management, tourism management, environmental and aeronautical applications (data on rocks, water, soil, atmosphere, biological activity, natural hazards and disasters collected for wide range of spatial levels of resolution.

Although it is easy to purchase the parts of GIS (hardware and software), the system functions only when the requisite expertise is available, the data are compiled, the necessary routine are organized and the programs are properly modified to suit the application, and/or organization's needs. GIS system suitability chain is shown in fig.1

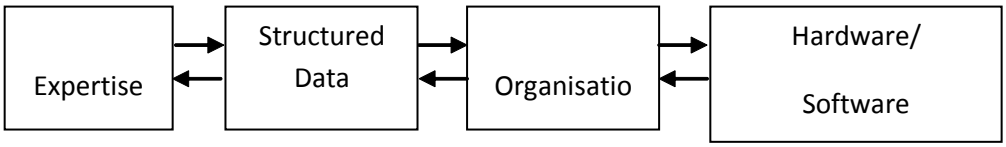

Fig. 1 GIS system suitability chain

Geographical information attaches a variety of qualities and characteristics to geographical locations. There qualities are physical parameters such as ground elevation, soil moisture, atmospheric temperature, as well as classifications according type of vegetation, ownership of land, zoning, floods, environmental accidents, water resource and sources, waste water, storm water, air quality etc.

GIS are powerful and cost effective tools for designing intelligent maps for water, waste water, and storm water systems. Below, we will describe a storm water system management, tourism management and give some examples of system application as well.

The practice of storm water management reduces the quantity and/or quality of water being discharged into a land or water area.

Effective storm water management requires the linking of specialized computer models to the GIS. Also, integration of engineering, environmental and socio economic objectives into storm water management could be included.

In local storm water management, different areas of a watershed implement different storm water management plans locally to solve the problems as flooding, sedimentation erosion, etc.

Most of the physical, socio and economic problems associated with storm water are attributable to unwise land use insufficient attention to land drainage in urban planning and ineffective updating of existing storm water control systems. An effective solution to storm water management is the watershed wide approach. This approach implements a comprehensive storm water plan throughout the watershed to prevent the adverse effects of storm water, both at a particular site and anywhere down stare where the potential for harm can be reasonably identified.

Typical applications of GIS for storm water systems include: (1) watershed storm water management; (2) Flood plain mapping and flood hazard management; (3) Hydrologic and hydraulic modelling of combined and storm sewer systems, including estimating surface elevation and slope from digital elevation model data (DEM) Fig.2; (4) documenting field work; (5) planning assessment

of the feasibility and impact of system expansion; (6) Estimating storm water runoff from the physical characteristics of the watershed, examples are- land use, soil, surface imperiousness and slop.

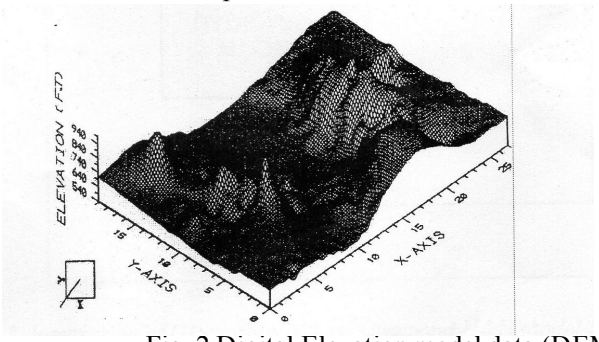

Fig. 2 Digital Elevation model data (DEM)

Topography influences many processes associated with the geography of the Earth, such as temperature and precipitation. GIS application professional must be able to represent the earth surface accurately because any inaccuracies can lead to poor decisions that may adversely affects the Earth Environment.

A Digital Elevation Model (DEM) (fig.2) is a numerical representation of terrain elevation. It stores terrain data in a grid format for coordinates and corresponding elevation values. DEM data files contain information for the digital representation of elevation values in a raster form. Cell bases raster data sets (or grids), are very suitable for representing geographical phenomena that vary continuously over space such as elevation, slope, precipitation etc. Grids are also ideal for spatial modelling and analysis of data trends that can be represented by continuous surfaces, such as rainfall and storm water runoff.

'Any digital representation of the continuous variation of relief over space is known as a digital elevation model (DEM).'

According to Moore : "A digital elevation model is an ordered array of numbers that represent spatial distribution of elevation above some arbitrary datum's in the lands cape."

Various structure of DEM : These are following-

Linear Model, Triangulated Irregular Network, Grid Network.

Regardless of the data structure, DEM models can be defined in terms of (x,y,z) data values, where x and y represent the locational coordination and z represents the elevation values. Grid DEM model consists of a sampled array of elevations for a number of ground positions at regularly spaced intervals. This data structure creates a square grid matrix with the elevation of each grid square, called a pixel, stored in a matrix format.

Fig. 2 shows a 3D plot of the grid-type of digital terrain models (DTM) data. Usually some interpolation is required to determine the elevation value from a DEM for a given point. The DEM based point elevations are most accurate in relatively flat areas with smooth slopes DEM models produce low-accuracy point elevation values in areas with large and abrupt changes in elevation, such as cliffs and road cuts.

Major DEM application include delineating watershed boundaries and streams, developing parameters for hydrologic models, modelling terrain gravity data for use in locating energy resources, determining the volume of proposed reservoirs, calculating the amount of material removed during strips mining, determine landslide probability. DEM can be used for automatic delineation of watershed and sewershed boundaries. DEM data can be processed to calculate various watershed and sewershed characteristics that are used for hydrologic and hydraulic model (H&H) modelling Fig.3 of watershed and sewersheds.

DEM can create relief maps that can be used as base maps in a GIS for overlaying vector layers such as water and sewer lines. DEM files may be used in the generation of graphics such as isometric projections displaying slope, direction of slope (aspect), and terrain profiles between designated points. The aspect identifies the steepest down-slop direction from each cell to its neighbours.

Raster GIS software packages can convert the DEM into image for visual display as layers in a GIS. DEM data may be combined with other data types such as stream locations and weather data to assist in forest fire control, or they may be combined with remote sensing data to aid in the classification of vegetation.

Possibility to use GIS to modify the configuration of the water distribution network, compile model input files reflecting those changes, run the hydraulic model from within the GIS, use the GIS to map the model results, and graphically display the results of the simulation on a geo-referenced base map. The integration method of interrelationships among the user, the Hydrologic and Hydraulic model (H&H), and the GIS software is shown in fig.3 A detailed description of (H&H) model can be found in. GIS intended to be a means of improving everyday life Geographical information attaches a variety of qualities and characteristics to geographical locations. These qualify for physical parameters are such as ground elevation, soil moisture, atmospheric temperature, as well as classifications according to type of vegetation, floods, environmental accidents, water sources (wastewater, storm water) ownership of land etc.

We described common geographical data model structures- a grid based structure (raster), and a coordinate point structure (vector). Also, we gave a view at a database management system (DBMS) as a programme (or collection of programs formalized description of real world phenomena, database structures and methods of database organization) that enables the user to save, modify, classify select, and extract information for a central database.

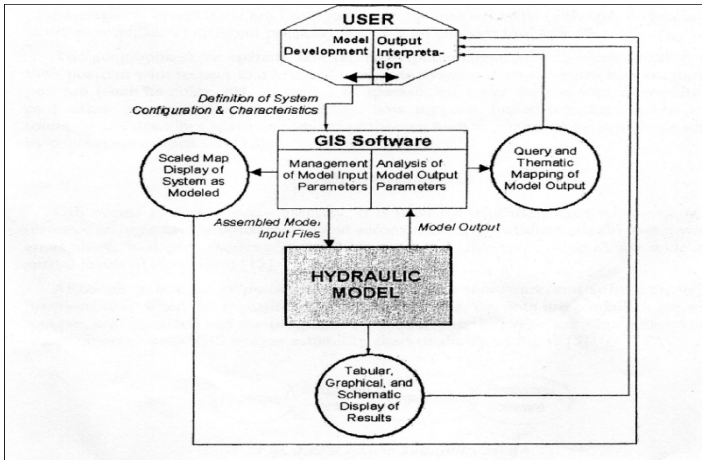

Fig.3 Integration of GIS software, End User and H&H model

Configuration means the way in which the parts of sth or a group of things, are arranged or the equipment and programs that forms a computer system and the particular way that these are arranged.

We showed the GIS system as the powerful and effective tool for creating intelligent maps for example water, waste water, and storm water systems. Although its very easy to purchase the constituent parts of GIS (Hardware and Software), the system function's only when the requisite expertise is available, the data are compiled, the necessary routines are organized and the programs are modified to suit the application and/or the organization's needs.

GIS integrates all kinds of information and applications with a geographic component into one manageable system. Therefore, a benefit of GIS applications is their ability to integrate and analyse all spatial data to support a decision-making process. A GIS system has to be builtup within an organization. The integration capability of GIS technology empowers organizations to make better and informed decision based on all relevant factors.

We must be aware of the fact that the digital representation involves some degree of approximation. It is therefore important that the information that results from data processing be applied to guide the real world in the right direction.

Application of GIS in Tourism Management : The 21st century is the era of information economy. It is not the capital but the information knowledge plays a decisive role in the information society. With economic development and social progress, people's material and cultural standard of living continues to improve and leisure time continues to increase, tourism has become increasingly popular as a kind of leisure way. The number of tourists steadily increases. On the one hand, it promotes the vigorous development of tourism; on the other hand it also brings new challenges to the traditional tourism management. There is the urgent need to improve management efficiency and modernization of industry standards. In this case the geographic information system applied to tourism management is the preferred platform of tourism information. It can provide considerable travel management technology to ensure the effective and scientific tourism management. And it can enable more tourists to use the internet to find travel information they need. Compared to the traditional access to travel information, the way that gets the travel information by the network is not only fast, informative, new content, but also low-cost and loved by the majority of young tourists, which greatly facilities the travel of people and promotes the further development of the tourism industry.

On the basis of geographic information database for tourism, Travel Geographic Information System (TGIS) uses the theory and method of systems engineering and information science to collect update, manage, display, quarry, analyze cartographic output travel data. It is the travel service system that put input, management and applications into one system. The research objects of TGIS are those information and data that are related to tourism geographic information and data, such as transportation, accommodation, entertainment, shopping, cultural characteristics and features. The ultimate goal of TGIS is to provide timely, accurate and convenient services to meet the different needs of various users.

The development and design of TGIS should be guided by the regulations of tourism industry and be consistent with the exploring thought of tourism planners that comprehensively considers the tourism economics, marketing, aesthetics, sustainable development, psychology and other aspects so that meet the requirements of a wide variety of consumers.

The Role of GIS in Tourism Management : Tourism has a strong geographical attributes and GIS itself is information systems offering services to geographic research and decision-making, which can play roles in tourism management. In particular, possessing the functions, such as data collection, storage, processing, spatial analysis and so on, GIS directly provides services for tourism management. The role of GIS in tourism management are mainly in the following areas :

Conducting Tourism Information Management : The GIS has both the information gathering and storage capabilities and the information analysis and processing functions, so that it can provide services to tourism management from two fields, firstly, from the tourist point of view, GIS has powerful information storage features and can provide travel information inquiry services for tourists, secondly, from the travel management service sector point of view, it can make tourism management more easily.

Ability to Produce a Comprehensive Thematic Map : When travelling, if tourists have a comprehensive tourist map, they will be click to visit and get better travel services. The traditional tourist map are paper based, because of space limitations, it is difficult to provide detailed scenic status. A very important advantage of GIS is that it has very powerful text and image editing functions and data maintenance is also very convenient.

Compared to traditional paper tourist map, the advantages of GIS drawing tourism plans are obvious. Meanwhile, because of its tiered storage capabilities, tourists can not only output a map including all tourism elements, such as terrain, road transport, services, facilities, tourist attractions and so on, but also superpose one or a few elements and then output the map in the use of GIS. This brings the convenience to tourists.

Providing References for the Tourism Development : GIS has powerful spatial analysis function, which has been commonly used in urban planning. Similarly, GIS can also be applied to the tourism development. Using GIS spatial analysis capabilities may do space analysis of the human and natural landscape, transportation, climate, topography, soil, vegetation, animals and plants in a particular region, which can help relevant departments draw the priority development areas. appropriately arrange the layout of the tourist routes, clearly define scenic protection zone and development potential, determine the extent of tourist attractions and provide references for tourism planning and decision-making. Tourism planning departments can make further development and expansion planning and forecasting to tourist attractions based on the information.

Prospects of GIS Applied to Tourism Management : GIS applied in Tourism Management has played a significant role. At the same time, it should be noted that information technology changes continuously. GIS applied in tourism management also need to improve according to the development of information technology to adapt to the information technology development. Looking the prospects of GIS applied in tourism management, the fallowing areas need to be improved.

(i) RS (Remote Sensing), GPS (Global Positioning System), as Supplementary means Applied to GIS Data collection and update to enhance information collection ability of the system, RS has stronger functions in the field of destination space information collection and image processing of tourist attractions; GPS plays the larger roles in orientation in space and data collection of natural tourism resource, it can be used to quickly obtain the parameters of ground control points and it can also be used for measurement to obtain spatial information data. The RS, GPS and GIS applied to tourism management simultaneously enable the system to automatically acquire, process and update, tourist information data, dynamically update information in the database at any time so that tourists will be able to more timely and accurately get tourism information. This is convenient for tourists, and further improves the level of tourism management.

(ii) Combining the Multimedia and Virtual Technology with GIS to enhance the attractiveness of the system for tourists; multimedia combining audio, video, image and text into together enriches the function of the system and enhance the visibility of the system. While a variety of showing forms is very beneficial to tourists to get all the required tourist information. On the other hand, by using virtual reality technology, imitating the scene area and displaying the area by three- dimensional (3D) forms make travellers more intuitively understand tourism information and enhance the interest of tourists, then better play the GIS's role in tourism management.

(iii) Combining the expert system technology with GIS to enhance the capacity to solve travel problems', expert system is a computer system that is set up on knowledge-based programming

method. It comprehensively integrates the expert's knowledge and experience in a particular field and can use the knowledge like an expert to solve complex problems that only the experts can solve by the process of reasoning initiating experts system evaluation system to establish tourism resources evaluation system, landscape assessment and recovery system and ecological environmental protection and inspection system so that rationally develop and utilize tourism resources and scenic resources.

The development of tourism not only needs its own information management and exchange, but also adapts to the economic development and information needs of the whole society. The GIS applied to the development of modern information technology constantly presents new challenges to tourism management. In this case, it is a very important problem that how to make full use of the GIS in the tourism management to make tourism management to make tourism management better adapt to the needs of information development. It requires ongoing in-depth discussion and study.

Errors in GIS :

(i) Errors Associated with Environment : There are following errors in GIS Age of Data, Map Scale, Density of observation, Relevance of Data, Data inaccuracy, inaccuracy of contents.

(ii) Errors Associated with Processing : Map Digitisation Error, Rasterisation Errors, Spatial Integration Errors, Generalization Errors, Attribute Mismatch Errors, Misuse of Logic.

Other Application of GIS :

(i) In the field of Agricultural Development
(ii) Land Evaluation Analysis
(iii) Change Detection of Vegetation Areas
(iv) Analysis of Deforestation and Associated Environmental Hazards
(v) Monitoring Vegetation Health
(vi) Mapping percentage Vegetation Cover for the Management of Land Degradation
(vii) Wasteland Mapping
(viii) Soil Resource Mapping
(ix) Ground Water Potential Mapping
(x) Geological and Mineral Exploration
(xi) Snow-melt runoff forecasting
(xii) Forest fire Monitoring
(xiii) Monitoring of Ocean Productivity
(xiv) Human Activities Related application

Conclusion : GIS it integrateder all kinds of information and application with a geographic component into one manageable system. Therefore, a benefit of GIS applications is their ability to integrate and analyze all spatial data to support a decision making process. A GIS system has to be built up within an organization. The integration capability of GIS technology empowers organisation to make better and informed decision based on all relevant factors.

References

1. Shamsi, M. GIS applications for water, wastewater, and stormwater systems, 2005
2. Berhnardsen, T. Geographic Information Systems: An Introduction, Publisher: John Wiley, 1999
3. Gorokhovich, Y., Khanbilvardi, R., Janus, L. Goldsmith, V., Stern, D. Spatially Distributed Modelling of Stream Flow During Storm Events. In Journal of the American Water Resources Association, 2000, Vol. 36, No.3, pp. 523-539.

4. Shamsi, U.M. GIS tools for water, wastewater, and stormwater systems. ASCE Press, 2002,

5. Longley, Paul, GIS- Principles and Technical Issues. Volume 1. Publisher: John Wiley, 1999.

6. Longley, Paul. GIS- Management Issues and Applications. Volume 2. Publisher: John Wiley, 1999.

7. Self Teaching Student's manual for GIS. http://infosys- law.canberra.edu.au/gismodules/inde.html

8. Brian Klinkenburg, Holly Dickinson. The Vector GIS Capabilities, The Vector or Object GIS. 1996 http://www.geoplan. ufl.edu/giseducation/vector.htmlhttp://www. geog.ubc.ca/courses/klink/gis.notes/ncgia/u13.html

9. Foote Kenneth E., Huebner Donald J. The Geographer's Craft Project. Department of Geography. University of Texas at Austin, 1996. http://www.colorado.edu/geography/gcraft/notes/datacon/datacon_f.html

10. Poertner, H.G. Stormwater Management in the United States. Stormwater Consultants. Bolingbrook, IL. 1988.

11. Ladislav Vizi, Gejza M. Timcak, Peter Blistan. GIS for geological survey data and geostatistical model of the Kisovce-Svabovce Mn deposit. In GIS Ostrava 2003: GI/GIT teorie a praxe ruku v ruce: 10. rocnik konference, 26.-29. ledna 2003. Ostrava: VSB-TU, 2003.-1 elektronicky opticky disk (CD-ROM). 13 p. ISSN 1213-239X

12. GIS standards and interoperability. In Arc News. The Environmental Systems Research Institute (ESRI), 2003, Vol. 25, No.1

13. Jozef Halasz, Roman Chovanec. Informacne systemy pre zivotne prostredie. 1. vyd. Zilina: STRIX, 2008. 130

14. Burrough, P.A., McDonnell, R.A. Principles of Geographical Information Systems. Oxford, University Press, 2000.

15. De-hui Liu, "The application of GIS in tourism: discussion on torusm GIS and its research development and prospect," Geomatics & Spatial Information Technology, vol. 31, no.1, pp-90-95, February 2008.

16. Hua-long Zhao, "GIS and its Application in Tourism Management," Journal of Science of Teachers' College and University, vol.27, no.3, pp.21, May 2007.

17. Ying-ying Li, De-liang Sun, and Jian-fang Yi, "Application and Development of GIS in Tourism Management," Image Technology, no.4, pp. 3-7, 2006.

18. Juan Wang, Liang-song Zha, "Application of Multimedia and GIS Integration to Tourism Development," Geospatial Information, vol.3, no. 6, pp. 11-13, December 2005.

19. Chauniyal, Devidutta, 2014. Remote Sensing and Geographical Information System. pub.- Sharda Pustak Bhawan, Allahabad, pp. 153-166.

20. Rusko Miroslav, Chovanec Roman, Roskova Dana, 2010, An overview of Geographic Information System and its role and applicability in environmental monitoring and process modelling, PP. 91-96.

21. Wei Wei/Procedia Environmental Sciences 12 (2012), pp. 1104-1109.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 128-132

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

नाथ संप्रदाय के सांस्कृतिक एवं सामाजिक अवदानों का संक्षिप्त विश्लेषण

*प्रमिला द्विवेदी (मिश्रा)** *डॉ. अजय कुमार मिश्र***

सारांश : प्रचलित मान्यताओं के अनुसार नाथ शब्द का शाब्दिक अर्थ स्वामी होता है। ऐसा माना जाता है कि नाग शब्द ही परिवर्तित होकर कालांतर में नाथ हुआ होगा। भारत व कुछ अन्य देशों में नाथ योगियों की परंपरा बहुत ही प्राचीन रही है। नाथ संप्रदाय हिंदू धर्म का एक अभिन्न अंग है। नाथ परंपरा में भूत–भावन भगवान शंकर को प्रारंभिक नाथ (आदिनाथ) तथा भगवान दत्तात्रेय को आदि गुरु माना जाता है। हिंदू धर्म के अलावा इसकी शाखाओं का संबंध बौद्ध व जैन धर्म में भी देखा जा सकता है। एक मत के अनुसार संभवतः इस्लाम में सूफी मत का प्रचलन इसी पंथ के प्रादुर्भाव का परिणाम था।

गुरु गोरखनाथ जो गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य माने जाते हैं ने इस संप्रदाय में योग विद्या के बिखरे हुए स्वरूप का एकत्रीकरण किया। गोरखपंथियों के अनुसार महायोगी गुरु गोरखनाथ पृथ्वी के अस्तित्व से पहले पाताल में निवास किया करते थे जिन्होंने संसार की रचना करने में देवों की सहायता की थी अतएव गुरु गोरक्षनाथ को नाथ संप्रदाय के संस्थापक गुरु के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। गुरु गोरक्षनाथ का प्रभाव काबुल, गांधार, सिंध, बलूचिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश तथा मक्का–मदीना तक भी फैला हुआ था। उनके प्रयास से भारतीय संस्कृति व योग विद्या को विश्वपटल पर विस्तारित किया गया।

समाज में फैले हुए कुरीतियों पर कुठाराघात करते हुए पंथ के सिद्धों, योगियों व सन्यासियों ने समाज को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य किया तथा शिक्षा के प्रसार, स्पृश्यता उन्मूलन, चिकित्सा, गौसंवर्धन, इत्यादि के क्षेत्र में उल्लेखनीय सामाजिक कार्य भी किए।

प्रस्तुत शोध–पत्र का मंतव्य नाथ पंथ द्वारा किए गए सांस्कृतिक एवं सामाजिक सरोकारों पर प्रकाश डालना है।

मुख्य शब्द : *नाथ पंथ, योग विद्या, सरोकार*।

1. सांस्कृतिक सरोकार : नाथ वह तत्त्व है, जो मोक्ष प्रदान करता है और ज्ञान को स्थापित करता है।[5] नाथ पंथियों के जीवन शैली का यदि अवलोकन किया जाए तो भगवा रंग के बिना सिले वस्त्र, कान में कुंडल धारण किए हुए नाथ संत सात्विक भाव से भगवान शंकर व अपने गुरु की भक्ति में लीन देखे जाते रहे हैं। दोनों कानों को छेदकर dqMy èkkj.k djusd sdkj.k bUgs *दरसानी* अथवा *कनफटा* के नाम से भी संबोधित किया जाता था।[4] इस संप्रदाय को सिद्ध–मत, अवधूत–मत, सिद्ध–मार्ग, योग–मत, अवधूत–संप्रदाय, आदि नामों से भी अलंकृत किया जाता है।[1]

प्रारंभ में भिक्षाटन व अपने आराध्य के भजन के साथ परिव्राजक के रूप में जीवन यापन करने वाले पंथी जीवन के अंतिम पड़ाव में किसी एक स्थान पर रहकर धूनी रमाते थे।[9] इनमें से कुछ साधक हिमालय की गुफाओं में जाकर साधना में लीन होते भी देखे गए। पंथ के प्रचार–प्रसार में रत साधक विश्व के विभिन्न देशों में, जैसे जावा, सुमात्रा, नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान व अन्य देशों में पंथ प्रचारक के रूप में स्थापित हुए। साधना पद्धति में मूल रूप से आदि देव महादेव, नवनाथों तथा चौरासी सिद्धों की भक्ति व उपासना इस संप्रदाय की थाती रही है। शिव को अलख नाम से संबोधित करते हुए अभिवादन के लिए अलख या आदेश शब्द का प्रयोग करते इन्हें देखा जाता रहा है। नवनाथों में गुरु मत्स्येन्द्रनाथ तथा महागुरु गोरक्षनाथ (जिन्हें शिव का ही अंश माना जाता है) सर्वाधिक

* *शोध छात्रा, बी.आर.डी.बी.डी. पी.जी. कॉलेज आश्रम बरहज देवरिया (सम्बद्ध दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विवविद्यालय, गोरखपुर*

** *बी.आर.डी.बी.डी. पी.जी. कॉलेज आश्रम बरहज देवरिया (सम्बद्ध दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विवविद्यालय, गोरखपुर*

प्रसिद्ध हुए। इन्हें साधना पद्धति के योग करण व योगिनी कौल मत का प्रवर्तक भी माना जाता है। शैव दर्शन में अर्धनारीश्वर स्वरूप के उद्‌भव का सिद्धांत संभवतः यही से प्रेरित हुआ होगा।[7] गुरु गोरखनाथ, जो गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य माने जाते हैं, ने इस संप्रदाय में योग विद्या के बिखरे हुए स्वरूप का एकत्रीकरण किया।[9] नाथ पंथ ने "गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय" को चरितार्थ करते हुए जहाँ एक ओर गुरु को सर्वोच्च स्थान दिया, वही शिष्य की महत्ता को भी स्थापित किया जैसा कि, गुरु मच्छेन्द्रनाथ और गुरु गोरक्षनाथ के संबंधों से परिलक्षित होता है। सम्प्रदाय में मुख्यतः अधोवर्णित पाँच गुरु माने जाते हैं।[5]

चोटी गुरु–चोटी गुरु उसे माना जाता है जो प्रथमतः शिष्य की चोटी काटता है। शिष्य का पंथ भी चोटी गुरु के नाम से जाना जाता है और वही अपने गुरु का उत्तराधिकारी भी होता है।

चीरा गुरु–यह उस गुरु को कहते हैं जिसने औघड़ के कान में चीरा दिया हो। इसे कान गुरु भी कहते हैं।[4]

विभूति गुरु वह है जो औघड़ शरीर पर कुण्डल पहनने से पहले प्रथम विभूति लगाता है।

उपदेशो गुरु–इसका तात्पर्य उस गुरु से है जो शिष्य को कान छेदने के समय उपदेश देता है।

शिक्षा गुरु–यह गुरु योगाभ्यास तथा अन्य प्रकार की शिक्षा देता है।

गोरखपंथियों (गुरु गोरखनाथ के अनुयायियों) के अनुसार, गुरु गोरखनाथ पृथ्वी के अस्तित्व से पहले पाताल में निवास किया करते थे जिन्होंने संसार की रचना करने में अपनी अलख धूनी की एक मुट्ठी राख देकर देवों की सहायता की थी इसलिए बह्मा, विष्णु व महेश गुरु गोरक्षनाथ के प्रथम शिष्य के रूप में स्थापित हुए।[4] सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुग में विभिन्न रूपों में गुरु गोरक्षनाथ का प्रादुर्भाव रहा।[4] मान्यता तो यह भी है कि कलियुग में वे शेषनाग के रूप मे अवतरित हुए थे। नेपाल के नाथ अनुयायियों के अनुसार, महागुरु कलियुग के आरंभ में पंजाब के रास्ते से होकर नेपाल के काठमाण्डू आए थे और बागमती नदी के किनारे पशुपतिनाथ के मंदिर के पास उन्होंने निवास किया था।[4] इस प्रकार गुरु गोरक्षनाथ, पंथ के सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक सिद्ध गुरु थे। संभवतः उनके सुविख्यात होने का यही कारण रहा। गुरु गोरक्षनाथ को नाथ संप्रदाय के संस्थापक गुरु के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। उन्हें योगेश्वर तथा महायोगी की संज्ञा भी दी जाती है।

धर्म एवं साधना : कालांतर में नाथ मठों में नवनाथों तथा सिद्धों की उपासना का क्रम भी प्रारंभ हुआ। जिसके अनुपालन में देश–विदेश में मठों की स्थापना हुई जो पंथ के ध्वजावाहक के रूप में स्थापित हैं। इन मठों में मूलतः नाथ संन्यासियों का निवास, साधना तथा सामाजिक सेवा–सुश्रुषा के कार्यक्रमों का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। गोरखपुर, जो उत्तर प्रदेश का एक प्रमुख नगर है, महायोगी गुरु गोरखनाथ के नाम पर ही गोरखपुर के नाम से जाना जाता है। गोरखपुर मे स्थित गोखनाथ मंदिर अपने स्थापत्य कला, योग, धर्म, चिकित्सा व शिक्षा के लिए जाना जाता है। ज्ञातव्य है कि प्राचीन काल में गुरु गोरक्षनाथ ने ज्वालादेवी से आकार यहीं अचिरावती (राप्ती) नदी के किनारे अपनी धूनी रमायी जहाँ आज सुप्रसिद्ध मंदिर स्थित है।[7] यहाँ प्राचीन भारतीय संस्कृति की धरोहर योग, धर्म तथा वेदों–उपनिषदों के स्वाध्यायी साधना में लीन रहते हैं। यह नाथ पंथ की महत्ता व उसके सरोकार को पूर्ण रूप से संदर्भित करता है। गोरखपुर ही नहीं भारत के अन्य शहरों में भी इस प्रकार के मठ स्थापित हैं जो समाज सेवा के अग्रदूत के रूप में विद्यमान हैं। गुजरात के काठियावाड़ में गोरखमंडी नामक स्थान भी इसका एक उदाहरण है।

धार्मिक आडंबरों से सचेत करते हुए गुरु गोरक्षनाथ ने निर्वाण की खोज स्वयं के भीतर ही करने तथा वाह्य तीर्थों के निषेध के लिए पंथ के संन्यासियों व गृहस्थों को प्रेरित किया। महायोगी ने मानव शरीर को ही तीर्थ स्थान मानकर साधना करने की सलाह दी।[9]

सांस्कृतिक प्रसार : नाथ पंथ के वैश्विक सांस्कृतिक प्रसार हेतु नेपाल के काठमांडू, बांग्लादेश के ढाका, अफगानिस्तान के काबुल तथा पाकिस्तान के पेशावर, इत्यादि में नाथ योगियों ने अपनी साधना व तत्वज्ञान से सामाजिक सुधारों को अनुप्राणित किया।

भारत में देवलगढ़, हरिद्वार, ऋषिकेश, जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, कांगड़ा मंदिर, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान व अन्य स्थानों पर पंथ के तीर्थ स्थल भी विद्यमान है। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त, अन्य धर्मों के अनुयायियों (जैसे, बौद्ध, जैन, आदि) को भी अवधूत संन्यासियों के रूप में देखा गया है।[2]

योग साधना : प्राचीन काल से ही योग विद्या को संन्यासी एवं गृहस्थ के बीच की कड़ी के रूप में देखा गया है। योग विद्या वर्तमान समय में कोविड–19 नामक महामारी से जूझते हुए मानव सभ्यता के अस्तित्व को बचाने में किस प्रकार सहायक है यह किसी से छिपा नहीं है। इसकी महत्ता को समझते हुए योग के वैश्विक प्रचार–प्रसार में नाथ पंथ का अभूतपूर्व योगदान रहा है। हठ योग एवं तंत्र साधना नाथ पंथ की मूल पद्धति रही है।[6] हठयोग परम सत्ता के अधीन होने की वह विधा है जिसमें कठिन मुद्राओं और आसनों के प्रयोग से शरीर के समस्त चक्रों की साधना (कुंडलिनी जागृत) की जाती है। इसके साधना द्वारा शरीर में ऊर्जा एवं कांति का संचार होता है। आठवीं–नौवीं शताब्दी में अवतरित हुए गुरु मत्स्येंद्रनाथ को सर्वप्रथम हठयोग व तंत्र विद्या की शिक्षा आदि देव महादेव से प्राप्त होना दृष्टव्य है।[2] प्राचीन काल से चली आ रही योग विद्या को अनुभव के आधार पर सिद्ध कर इसके लोक कल्याणकारी स्वरूप को जन सामान्य तक पहुंचाने का कार्य भी इन्हीं के द्वारा हुआ। इसके आधार पर जीवन मरण की गुत्थी को सुलझाने का भी प्रयत्न किया गया।[7] इन्हीं के शिष्य के रूप में महायोगी गुरु गोरक्षनाथ योग व तंत्र साधना में दीक्षित हुए। महागुरु गोरक्षनाथ को योग विद्या के एकीकरण के लिए जाना जाता है। उन्होंने *लय योग* नामक पुस्तक का लेखन किया था। जिसमें योगिक क्रियाओं का अभूतपूर्व समन्वय दिखाई पड़ता है। योग को पंथ साधकों के भुक्ति और मुक्ति के मार्ग के रूप में स्वीकार किया गया। इन क्रियाओं के माध्यम से शारीरिक व मानसिक थकान को दूर करने पर विश्वास जताया गया तथा शाश्वत प्रेम को मुक्ति का मार्ग बताया गया।[4]

2. सामाजिक सरोकार : जैसा कि चित्रित किया गया है, नाथ पंथ का समाज के ढांचे को सुदृढ़ करने में विशेष योगदान रहा है। विभिन्न धर्मों में फैले हुए कुरीतियों व मान्यताओं को खंडित कर समाज को सही राह दिखाने में नाथ पंथ का बहुमूल्य योगदान देश–विदेश में देखा जाता रहा है। इसके अलावा नाथ संप्रदाय द्वारा विभिन्न सामाजिक सरोकारों के लिए प्रयत्न किया जाता रहा है जिनमें निम्नलिखित दृष्टव्य हैं :

गौ संवर्धन : गाय की महत्ता को स्थापित करते हुए पंथियों ने गौ संवर्धन व पालन को बहुत महत्व दिया। प्राचीन काल से ही हिन्दू धर्म में गाय को माँ के रूप में स्थापित किया गया है। इसका वैज्ञानिक कारण भी है। क्योंकि, गाय के दूध, घी, मूत्र व गोबर सभी उपयोग में लाए जाते हैं। जहाँ दूध व घी एक परिपूर्ण आहार के रूप में प्रयोग मे लाया जाता है वहीं मूत्र व घी चिकित्सा पद्धति में प्रयोग में लाया जाता है साथ ही साथ गोबर का प्रयोग प्राचीन काल में घर को शुद्ध करने अर्थात सैनिटाइज करने व खाद के रूप में प्रयोग किया जाता था, जो आज भी प्रासंगिक है। गाय की इस महत्ता को समझते हुए नाथ पंथ के मठों में गौशालाओं की स्थापना हुयी। दृष्टव्य; गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर तथा अन्य मठों में गौशाला आज भी स्थित है, जहाँ गौ संरक्षण व संवर्धन होता है।

चिकित्सालय एवं चिकित्सा शिक्षा : प्राचीन काल में, योग विद्या और जड़ी–बूटियों से नाथ पंथी संन्यासी रोगों का निदान किया करते थे। परंतु, इसके मूल्य के रूप में सिर्फ अनाज या वस्त्र ही प्राप्त करते थे। किसी प्रकार के आभूषण, मुद्रा अथवा अन्य से उन्हें कोई सरोकार नहीं होता था।[1] समाज को रोग मुक्त बनाने हेतु नाथ सिद्धों ने मठों के साथ–साथ चिकित्सालयों की स्थापना की जहाँ चिकित्सा शिक्षा देने के साथ–साथ रोगियों का निःशुल्क या न्यूनतम व्यय पर चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। पंथ के विभिन्न मठों में आज भी इस प्रकार की व्यवस्थाएं उपलब्ध हैं।

राजनीतिक प्रतिनिधित्व : राजनीति में फैली विसंगतियों को दूर करने के लिए संन्यासियों ने राजनीति के कड़वे घूँट पीकर समाज को दिशा देने का भी कार्य किया। गोरक्षपीठ के ब्रह्मलीन महंत अवैद्यनाथ इसकी बानगी रहे हैं। वर्तमान में हमारे उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में गोरक्ष पीठाधीश्वर के विद्यमान होने को इसी कड़ी के रूप में देखा जा सकता है।

शिक्षा प्रसार : प्राचीन काल में संप्रदाय के योगियों को साहित्य व शिक्षण के संबंध में बहुत अल्प ज्ञान था।[4] बहुत सारे योगी और महंत अधिक शिक्षित नहीं थे।[4] शिक्षा, योग व दर्शन का ज्ञान साधकों को मौखिक ही दिया जाता था। महायोगी गुरु गोरक्षनाथ के समय से गोरखनाथियों ने हठ योग, दर्शन व अध्यात्म चिंतन हेतु उनके द्वारा लिपिबद्ध किए गए साहित्यों का अनुशीलन करना प्रारम्भ किया। महायोगी ने साधकों के साथ गृहस्थों को भी योग व आचार–व्यवहार के ज्ञान से जोड़ने पर बल दिया।

वर्तमान परिवेश में शिक्षा को समाज के हर वर्ग तक पहुँचाने हेतु स्कूलों, कालेजों और महाविद्यालयों की स्थापना नाथ पंथ द्वारा की गयी। इन संस्थानों में समाज के सभी वर्गों तथा सभी समुदायों को समान रूप से शिक्षा उपलब्ध करायी जाती है।

संगोष्ठी एवं कार्यशाला आयोजन : राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गोष्ठियों, संगोष्ठियों का आयोजन कर नाथ पंथ एवं हिंदू धर्म–संस्कृति को उच्चतम शिखर पर स्थापित करने का कार्य पंथ के द्वारा किया जाता है। भारत को विश्व गुरु के रूप में स्थापित करने के लिए यह मील का पत्थर साबित होगा।

साहित्य संवर्धन एवं प्रकाशन : साहित्य समाज का दर्पण होता है। किसी समाज की आधारभूत व्यवस्था उसकी प्राचीन संस्कृति व साहित्य की थाती होती है। इस तथ्य को आत्मसात करते हुए पंथ ने महत्वपूर्ण पुस्तकों का संरक्षण करने के लिए अपने मठों में पुस्तकालयों एवं वाचनालयों की स्थापना की। यद्यपि, ऐसा कहा जाता है कि, प्रारम्भ में संप्रदाय की साहित्यिक विरासत समृद्ध नहीं थी। कालांतर में संस्कृत, हिन्दी व अन्य भाषाओं में विभिन्न योग, धर्म और दर्शन पर आधारित ग्रंथों को पंथियों ने लिपिबद्ध किया। एक संदर्भ में महायोगी गुरु गोरखनाथ को योग की प्रथम पुस्तक लय योग लिखने का गौरव प्राप्त है। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए अनेक योगियों ने विभिन्न पुस्तकों, जिनमें भारतीय धर्म व विज्ञान का समन्वय है, का लेखन एवं प्रकाशन किया। इनमें l s,d i bqrd *फिलॉसफी ऑफ गोरखनाथ* की सराहना महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज एवं पंडित हजारी प्रसाद सरीखे विद्वानों ने की है।[2] इस बहु प्रसिद्ध पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी *गोरखदर्शन* के नाम से प्रकाशित हो चुका है। ट्रस्ट तथा मंदिर नें उनके सानिध्य में अनेक प्रकाशन कराया। संप्रदाय की योग, दर्शन व अध्यात्म पर अवलंबित निम्नलिखित पुस्तकें दृष्टव्य हैं– हठयोग प्रदीपिका, गोरक्षशतक, चतुरशीत्यासन, गोरक्षकल्प, योगचिन्तामणि, योग महिमा, योगमार्तण्ड, योगसिद्धान्त पद्धति, हठयोग, दत्तगोरखसंवाद, ज्ञान सिद्धान्त योग, ज्ञान विक्रम, योगेश्वरी साखी, नरवैबोध, बिरह–पुराण गोरखसार, गोरक्षज्ञानामृत, गोरक्षसहस्रनाम, योगबीज, महाथमंजरी, तथा ज्ञान तिलक।

स्थापत्य कला : विभिन्न मंदिरों, मठों की स्थापना केवल भारत ही नहीं अपितु विश्व के कई देशों में पंथ की एक विशेषता रही है। जिसमें स्थापत्य कला का अद्भुत समन्वय है। ईस्वी सन् के सातवें दशक में निर्मित गोरखपुर का गोरखनाथ मंदिर हिन्दू मंदिर वास्तुकला–नागर शैली का अप्रतिम उदाहरण है।[8] नेपाल में स्थित मत्स्येन्द्रनाथ मंदिर,[7] उत्तर प्रदेश में गोरखनाथ मंदिर, देवीपाटन मंदिर, पेशावर, पाकिस्तान का मठ, अफगानिस्तान के जलालाबाद का मठ, महाराष्ट्र का त्रयम्बकेश्वर मंदिर व अन्य ढेरों मंदिर, स्तूप तथा मठ इस कड़ी में शामिल हैं।

भंडारा : पंथ द्वारा जरूरतमंदों जो समाज के वंचित व अल्प आय वर्ग से आते हैं, के लिए भंडारों का आयोजन किया जाता है जिनमें भूखों को भोजन कराने की प्रतिदिन की व्यवस्था की जाती है। संप्रति, श्री गोरक्षनाथ पीठ के भंडारे में हर समुदाय व वर्ण के भूखे व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के प्रसाद (भोजन) ग्रहण कराया जाता है।

स्पृश्यता उन्मूलन : अपने दीक्षा समारोह के दौरान ही नाथ योगी के संस्कार में गुरु द्वारा उसकी चुटिया काट कर उसे जाति के बंधनों से मुक्त किया जाता है और यह बताया जाता है कि पंथ में जातिवाद का कोई स्थान नहीं है। समाज के सबसे निचले तबके के लोगों को भी पंथ ने अपने मठों में योगियों के रूप में दीक्षित किया है।[4] स्पृश्यता जिसने हमारे समाज को कमजोर कर विखंडित करने का कार्य किया उसे पंथ ने पहचाना और इसके उन्मूलन हेतु प्रभावी कार्य किया। महायोगी गुरु गोरखनाथ ने समाज के अंदर तक धँसें वर्णवादी अथवा जातिवादी व्यवस्था पर कठोर प्रहार किया और इसके आधार पर श्रेष्ठता को चुनौती दी। समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था के कारण उत्पन्न संकट के निवारण में नाथ पंथ ने बौद्ध वाङमय जैसा संघर्ष किया और जनसाधारण में समानता को स्थापित किया।[3]

3. निष्कर्ष : अस्तु, नाथ पंथ समाज के उत्थान व भारतीय संस्कृति के समुचित प्रवाह के लिए उदात्त रूप से अपने प्रारंभ से ही प्रयत्नशील रहा है तथा इसके अविरल प्रवाह हेतु वैश्विक स्तर पर स्थापित है।

4. अभिस्वीकृति : उल्लिखित विषय–वस्तु के अन्वेषण में विभिन्न अनुसंधानकर्ताओं एवं इतिहासकारों के खोजपरक विवरण को समाविष्ट करने हेतु लेखकद्वय आभार ज्ञापन करते हैं। साथ ही विद्वान अन्वेषकों, जिन्हें संदर्भित किया गया है, उनके हम विशेष आभारी हैं। सम्मानित समीक्षकों, जिन्होंने आलेख के विषय–वस्तु के वांछनीय एवं सकारात्मक उन्नयन हेतु सलाह दिया, उन्हें साधुवाद।

संदर्भ

1. के. सी. श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, यूनाइटेड बुक डिपो, 1991, इलाहाबाद, पृ. 104–112
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ सिद्धों की रचनाएं, किताबघर, नई दिल्ली, 2007
3. नंदलाल दशोरा, जगतगुरु आदि शंकराचार्य प्रणीत–तत्व बोध एवं आत्मबोध (संस्कृत–हिंदी अनुवाद), रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, 2015
4- जॉर्ज वेस्टन ब्रिग्स, गोरखनाथ एंड द कनफटा योगीज, मोतीलाल बनारसीदास, 2016, नई दिल्ली, पृ. 1, 30, 31, 32, 228, 229, 251, 349
5. चन्द्रमौलि मणि त्रिपाठी, नाथ परम्परा में दीक्षा, रा. सं. नाथपंथ और भक्ति आन्दोलन, म. प्र. महा. गो. एवं भारतीय इतिहास संकलन समिति गोरक्षप्रांत, 2010, पृ. 70, 77
6. द्वारकानाथ, योग : समग्र स्वास्थ्य का विज्ञान, श्री गोरक्षपीठ : योग और शिक्षा, महाराणा प्रताप पी.जी. कॉलेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर, 2017, पृ. 82
7. प्रदीप कुमार राव, नाथ पंथ, महायोगी गुरु गोरक्षनाथ शोध पीठ, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, 2019, पृ. 7, 8
8. साधना पंथ–स्मारिका, महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद, गोरखपुर, दिसंबर 2019, पृ. 1, 10
9. प्रमिला द्विवेदी (मिश्रा), आशुतोष मिश्र, नाथ पंथ एवं बौद्ध दर्शन के आधारभूत समानताओं का संक्षिप्त अवलोकन, श्रीप्रभु प्रतिभा, 2020, 48 एवं 49, पृ. 21–27

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 133-135

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

बिहारी की मानव-जीवन सम्बन्धी गहन अनुभूति

*डॉ. सायरा बानो**

शोध सार : *हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल 'स्वर्ण काल' कहलाता है, क्योंकि भक्तिकाल में हिन्दी–काव्य का बहुमुखी विकास हुआ था और भक्तिकाल के भक्त एवं सन्त कवियों ने अपनी रचनाओं में मानव हृदय को स्पर्श करने वाली एवं मानव मात्र से सहानुभूति रखने वाली ऐसी उदार भावनाएँ अंकित की थीं, जिनसे सामाजिक संकीर्णता दूर हुई, जनता मानवता की ओर उन्मुख हुई और शक्ति, शील एवं सौन्दर्य से सम्पन्न उस अलौकिक सत्ता की ओर सहज आकर्षण उत्पन्न हुआ। इसके ठीक विपरीत रीतिकाल में आकर कवि–दृष्टि पूर्णतया बदल गई। इस समय कविजन मानवता की ओर उन्मुख न होकर किसी राजा अथवा व्यक्ति–विशेष की ओर उन्मुख होने लगे। बिहारी ने अपने काव्य में मानव–जीवन सम्बन्धी गहन अनुभूति को बहुत ही सूक्ष्मता से उकेरा है। उन्होंने मानव–जीवन की गहराई में प्रवेश करके अपने काव्य में उन अनुभूतियों का चित्रण किया है, जिनका उन्होंने स्वयं भी अनुभव किया है।*

प्रमुख शब्द–*कुरंग, सुरभि, ग्रह, अभीष्ट, तंत्री–नाद, तरौना, बेसरि, कह्यौ, परिहरि, अजौ, पारो, सराहि।*

बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि के रूप में विख्यात हैं। कविवर बिहारी का जन्म संवत् 1652 वि0 के लगभग ग्वालियर के समीप बसुआ गोविन्दपुर नामक गाँव में माना जाता है। बिहारी ने संस्कृत, प्राकृत ग्रन्थों का गंभीरता से अध्ययन किया था। बिहारी की ख्याति का आधार उनकी एक मात्र उपलब्ध रचना 'बिहारी सतसई' है। बिहारी का देहावसान संवत् 1720 वि0 में माना जाता हैं।

बिहारी केवल राजदरबार के ही कवि न थे, अपितु उन्होंने समाज में रहकर मानव–जीवन का भी अत्यन्त निकट से अध्ययन किया था। बिहारी ने यह भली प्रकार देखा था कि समाज में मानव संसार के मायाजाल में फंसकर किस प्रकार का जीवन व्यतीत करता है, उसे किन–किन कठिनाईयों का सामाना करना पड़ता है, वह किस तरह विषमताओं का शिकार होता है, उसे परिवार में कैसी–कैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, वह संसार के पचड़े में पड़कर किस तरह कष्ट झेलता है और उससे छूटने के जैसे–जैसे उपाय करता है वैसे ही वैसे और संसार में फँसता चला जाता है, उसका स्वभाव जैसा बन जाता है फिर उसे कोई बदल नहीं सकता और समाज में अच्छे मानवों का उतना सम्मान नहीं होता जितना कि बुरे लोगों को महत्व दिया जाता है। साथ ही वह धन के लोभ में पड़कर किस तरह पागल सा बना रहता है ऐसी–ऐसी अनेक बातों का निरूपण करके बिहारी ने अपने दोहों में मानव–जीवन सम्बन्धी गहन अनुभूतियों का चित्रण किया है।

प्रायः यह देखा जाता है कि मानव–जीवन अनेक जटितलाओं से भरा हुआ है। कभी उसे परिवार के संकट का सामना करना पड़ता है। कभी समाज का संकट उसे पीड़ा पहुँचाता है, कभी वह व्यक्तिगत कठिनाइयों से बेचैन रहता है और कभी वह दूसरों के द्वारा सताये जाने पर संतप्त रहता है। अतः जीवन में कठिनाइयों अथवा संकटों से संतृप्त होकर वह संसार को छोड़कर भागना चाहता है, परन्तु जितना–जितना संसार से भागने अथवा संकटों से छुटने की चेष्टायें करता है, वह उतना ही उतना और संकटों में फँसता चला जाता है। बिहारी ने इसी तथ्य को जाल में फँसे हुए हिरन का उदाहरण देकर उद्धृत किया है–

को छूटयों यह जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों–ज्यों सुरभि भग्यौ चहत, त्यों–त्यों उरझत जात।।

समाज में जो लोग नीच प्रकृति के होते हैं दूसरों को सदैव सताया करते हैं, उन्हें पीड़ा पहुँचाया करते हैं, उन्हें भयभीत करके उनसे धन ऐंठा करते हैं अथवा बल प्रयोग करके दूसरों से चौथ वसूल किया करते हैं तथा लोगों

* *एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, लखनऊ*

को डराया–धमकाया करते हैं, उनसे डरकर समाज के लोग उनका सम्मान किया करते हैं, उनकी हर बात स्वीकार कर लेते हैं और उनको सदैव प्रसन्न रखने के लिए वे जो कुछ माँगते हैं उन्हें दे देते हैं। इसके विपरीत समाज में जो भले आदमी रहते हैं, किसी से कुछ नहीं कहते, किसी को कभी नहीं सताते तथा भलाई ही करते रहते हैं, ऐसे मनुष्यों को समाज में अधिक सम्मान नहीं मिलता, उनकी प्रायः उपेक्षा ही की जाती है, उनकी लोग चिंता नहीं करते और समाज में उनको अधिक महत्व नहीं दिया जाता क्योंकि समाज को उनसे कोई भय नहीं होता और वे भी समाज में कुछ अलग–थलग से पड़ जाते हैं, जबकि दुर्जन एवं दुष्ट लोग समाज में पर्याप्त महत्व प्राप्त कर लेते हैं। बिहारी ने सामाजिक जीवन के इसी तथ्य को दोहे में इस प्रकार व्यक्त किया है–

बसै बुराई जासु तनु, ताई कौ सनमानु।
भलौं भलौं कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जपु दानु।।

समाज में कुछ मानव ऐसी नीच प्रकृति के होते हैं कि उन्हें सुधारने अथवा उनके स्वभाव को ठीक करने के लिए कितने ही उपाय क्यों न किये जायें परन्तु वे नहीं सुधरते, उनके स्वभाव में कुछ भी अंतर नहीं आता, वे अपनी दुष्टता का परित्याग नहीं करते, उनकी नीच प्रकृति जैसी की तैसी बनी रहती है और उनको कितनी ही सजा दी जाय, कितना ही ऊपर उठाने का प्रयास किया जाय, सब व्यर्थ सिद्ध होता है। इसके लिए बिहारी ने नल के पानी का उदाहरण दिया है कि नल के पानी को कितनी ही ऊँचाई तक बलपूर्वक पहुँचाया जाय, परन्तु वह फिर नीचे की ओर ही गिरता है।

कोटि जतनु कोऊ करौं, परै न प्रकृतिहि बीचु।
नल बल जल ऊँचौ चढ़ै, तऊ नीच कौ नीचु।।

बहुधा संसार में यह देखा जाता है कि जिसके पास अधिक धन हो जाता है, वह धन के नशे में चूर होकर किसी को कुछ नहीं समझता, वह पागल–सा हो जाता है और धन के घमण्ड में मतवाला होकर अन्य लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करने लगता है जैसा कि कोई नशीली वस्तु सेवन करने वाला नशेबाज उल्टा–सीधा व्यवहार किया करता है। बिहारी ने मानव–जीवन के इसी तथ्य को उजागर करते हुए धतूरे (कनक) से स्वर्ण या धन (कनक) की समता करते हुए कहा है–

कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वा खाये बौराय जग, बा पाये बौराय।।

संसार के सभी कला प्रेमियों का यह अनुभव है कि यदि कोई व्यक्ति वीणा, सितार आदि तंत्र वाद्यों की ध्वनि (तंत्री–नाद) में तल्लीन होकर उस ध्वनि की गहराई में डुबकी लगाता है तो उसे असीम आनन्द की प्राप्ति होती है, इसके विपरीत यदि इन वाद्य यंत्रों की ध्वनि अनमना होकर सुनता है तो उसे कोई आनन्द नहीं आता। बिहारी ने मानवों की इसी गहन अनुभूति को अपने दोहे में इस प्रकार व्यक्त किया है कि तंत्री–नाद, कवित्त–रस, सरसराग और रति–रंग में जो डूब जाता है वह तो तर जाता अर्थात् अभीष्ट आनन्द प्राप्त कर लेता है और जो इनमें नहीं डूबता, वह डूब जाता है अर्थात् उसे अभीष्ट आनन्द की प्राप्ति नहीं होती–

तंत्री–नाद, कवित्त–रस, सरस राग, रति–रंग।
अनबूड़े, बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग।।

संसार में यह देखा जाता है कि अनेक वेद–शास्त्रों का अध्ययन करने पर भी मानव–भवसागर से पार नहीं हो पाता जबकि संसार में मुक्त पुरुषों का सत्संग करने पर वह भव सागर से पार होकर स्वर्ग प्राप्त कर लेता है। बिहारी ने इसी आशय को स्पष्ट करते हुए तरौना (कान का आभूषण) और बेसरि (नाक का आभूषण) दोनों के उदाहरण देकर कहा है–

अजौं तरौना ही रह्यो, श्रुति सेवत एक अंग।
नाक–बास बेसरि लह्यौ, बसि मुक्तन के संग।।

बहुधा यह देखा जाता है कि संत पुरुष अथवा सज्जन व्यक्ति किसी संसार में लिप्त मनुष्य को अधिक दुखी देखकर यह कहा करते हैं कि तुम्हारे दुख दूर हो जायेंगे, तुम कुछ समय निकालकर भगवान का भजन किया करो और विषय वासना से दूर रहने की चेष्टा करो। बिहारी ने मानवों की इसी प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस भगवान का भजन करने के लिए कहा था उसे तो उस व्यक्ति ने एक बार नहीं भजा अपितु जिन विषय–वासनाओं से दूर भागने के लिए कहा था उनमें वह निरन्तर लिप्त रहा आता है–

भजन कह्यौ, ताते भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूर भजन जासों कह्यौ, सो तें भज्यौ, गँवार।।

इसी प्रकार विषय–वासना में रात–दिन लिप्त रहने वाले मनुष्यों को समझाते हुए कोई संत या महापुरुष प्रायः कहा करते हैं कि देखो तुम यमराज (मृत्यु) के जबड़े के नीचे पड़े हुए हो और रात–दिन विषय–वासना में लीन रहने के कारण कभी भी मृत्यु का ग्रास बन जाओगे। अतः भौतिक विषयों में लीन रहने की पिपासा को अब छोड़ दो और अपना जीवन सुधारने के लिए भगवान सिंह का गुणगान करते हुए उनका भजन किया करो, वे ही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं। बिहारी ने इसी तथ्य को इस प्रकार व्यक्त किया कि मानव यमराज रूपी हाथी के जबड़ों में पड़ा हुआ है। अतः अब तुम धैर्य धारण करके विषयों की लालसा को छोड़ दो और नृसिंह रूपी सिंह का गुणगान करो, क्योंकि सिंह ही हाथी को मारकर तुम्हारी रक्षा कर सकता है–

जम करि मुँह नरहरि परयौ, इहि धरहरि चित लाउ।
विशय–तृष्णा परिहरि अजौ नरहरि के गुन गाउ।।

समाज में विद्यमान एक ऐसे वैद्य और उसकी पत्नी की अनुभूति का चित्रण करते हुए बिहारी ने संकेत किया है कि बैद्य जी स्वयं तो नपुंसक और निस्संतान हैं, परन्तु अपने पास आए हुए एक व्यक्ति को बहुत सा धन लेकर अहसान करके अपनी पारा निर्मित औषधि की सराहना करते हैं कि इससे तुम्हें अवश्य संतान की प्राप्ति होगी और तुम्हारी नपुंसकता भी दूर हो जायेगी। वैद्यजी की यह बातें सुनकर उनकी पत्नी अपने पति के इस रहस्य को जानकर वैद्यजी के मुँह की ओर देखती हुई हँसने लगती है कि वे अपना तो इस औषधि से इलाज कर नहीं पाये हैं, जबकि दूसरे व्यक्ति को व्यर्थ में ठग रहे हैं–

बहुधन लै अहसानु कै, पारो देत सराहि।
वैद–वधु हँसि भेद सों, रही नाह मुह चाहि।।

संसार के निरन्तर परिवर्तनशील रूप को देखकर प्रायः आध्यात्मिक दृष्टि वाले मनुष्यों को यह अनुभव हो जाता है कि यह संसार असार है, असत है और कच्चे कोंच के समान नष्ट होने वाला है। यदि यहां कोई सत या शाश्वत है तो वही एक परमात्मा है जिसका प्रतिबिम्ब संसार के सभी रूपों अथवा पदार्थों में दिखाई देता है। बिहारी ने इसी अनुभूति का चित्रण करते हुए एक सोरठे में लिखा है कि मैंने निश्चयपूर्वक यह समझ लिया है कि यह संसार कच्चे काँच के समान क्षणभंगुर है। संसार में जितने भी रूप अथवा पदार्थ दिखाई देते हैं वे सभी उस एक परमात्मा के रूप की परछाई हैं–

मैं समुझ्यौ निरधार, यह जग काँचों काँच सो।
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ।।

इस प्रकार बिहारी ने मानव–जीवन की गहराई में प्रवेश करके अपने काव्य में उन अनुभूतियों का चित्रण किया है, जिनका उन्होंने स्वयं भी अनुभव किया है, अन्य व्यक्तियों से भी सुना है और समाज में चरितार्थ होते हुए भी देखा है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि बिहारी के सतसई काव्य में मानव जीवन की तरल अनुभूतियों के अनेक चित्र अंकित हुए हैं, जिनमें आकर्षण है, सच्चाई है, गंभीरता है और बिम्बात्मक सम्प्रेषणीयता भी है।

संदर्भ–सूची

1. बिहारी–रत्नाकर (बिहारी सतसई पर रत्नाकर की टीका), प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण–2019
2. बिहारी सतसई–सम्पादिका शबाना करीम, न्यू साधना पॉकेट बुक्स रोशनआरा रोड, दिल्ली, संस्करण–2017
3. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि–डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना, प्रकाशक श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, संस्करण–2018
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास', डॉ० नगेन्द्र, सह–संपादक डॉ० हरदयाल, 'प्रकाशक–मयूर पेपरबैक्स, नोयेडा, संस्करण–2009
5. 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2013
6. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2002

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Psychology: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 136-142

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

India Towards Rejuvenation : Positive Journalism & Covid-19

*Vishakha**

ABSTRACT : With India going under rapid transformation every next hour, its people, its government and even its media is constantly taking new shapes. The advent of journalism has brought the public closer to their government and the transparency between them has increased lately. Our journalism is educating us on trivial matters related to the nation and the betterment of its people, enlightening us about our rights, opportunities one has as a citizen, and also the duties one withholds towards the country. The journalism plays a major role in shaping the opinions, perspectives and attitudes of the people towards critical matters, the very recent, knocking at the door, global pandemic or initially an infodemic, the novel corona virus COVID-19.

COVID-19 was declared an international public health emergency by The World Health Organization (WHO), on January 30, 2020. Various obligations and precautions then followed have brought people into dilemma of choosing between the true and the false amongst the flooding information. This flow is rather bidirectional and rapid than imagined. It has become difficult for the people to decide what to believe, and this is when the non-biased journalism has to step in the front foot. This is the time when the media can teach the public to rationally discriminate among the information provided, stop the panic pertaining, and help each and every one stay safe and sound, physically as well as psychologically.

The research is an effort to investigate the role of journalism during and post pandemic situations, to understand the reasons behind accelerated flow of false information and the challenges in front of the media to curtail them, to examine and elaborate the measures the media is taking to spread awareness fighting against stigma and discrimination that draggles with the virus.

KEYWORDS : Infodemic, Positive Journalism, Media Roles, Psychological well being

INTRODUCTION : India has undergone rapid and unprecedented changes in recent years in political, sociological, and economic aspects. These changes have also transformed the Indian journalism to a great extent. Media plays a major role in informing and educating the public and thereby shaping their perceptions and through this, tries to bring about changes in national agenda. They are also responsible for enhancing literary levels of the society. Apart from the three pillars of democracy; the legislative, the judiciary, and the executive; every democratic setup in the social texture has an inseparable part, its media. Since the advent, the knowledge and information which were monopolized slowly became available to ordinary people. Journalism today has created an impact of its own by playing a role of an agent for change, a reflector, and to reinforce policies, laws protecting the dignity of the human kind .

The Corona Virus Disease 2019 (COVID-19) that has ignited debates and has undoubtedly shaken up the core foundations of all the governments, management systems, economy, and the health-care system worldwide (Pakpour and Griffiths, 2020; Usman et al., 2020), has now become a high rocketed concern for all. Here we are not just fighting an epidemic but, an infodemic, this was said by the WHO

* *Research Scholar, Department of Psychology, Banasthali Vidyapith, Rajasthan, India*

Director–General 'Tedros Adhanom Ghebreyesus' at the Munich Security Conference on 15 February 2020. An infodemic is an excessive amount of information concerning a problem or an issue, which is at times incorrect and negatively effects while finding proper solutions to that problem. WHO Information Network for Epidemics (EPI-WIN), a platform for authentic information was launched to help the world find out the correct and customized information to be shared.

The massive transmission rates that have been observed are never ending. Studies are being conducted all over the globe and the results obtained have found that lockdown, isolation and quarantine elevate psychological symptoms such as depression, anxiety, phobia, trauma, etc. (Brooks et al., 2020; Hawryluck et al., 2004; Sakib et al., 2020; Shammi et al., 2020). And for India being the second largest population in the world, the risk and challenges in front of the government and the journalism that has to portray the scenario to the public, increasing every hour; every day.

The outbreak of information is uncontrollable, and the misinformation takes a moment to amplify, spreading faster and farther in no time, like sand slipping out of fist. These misinformation are none different than the virus itself, travelling with the people. The challenge that we are facing here is the timing. We need to get faster to fill up the void. And this can be achieved through the media. The adoption of public service journalism that mitigates the misleading concepts regarding the issue can be helpful.

The media can be effectively used for providing scientific, rational, and motivating suggestions and measures rather than elevating the worries and fears among the people, also, it can be used for advocating the appropriate laws and rules for the betterment of the people and building public opinion in the favour of the laws designed for them and the nation's growth.

The journalism needs to act upon not to please its consumers who might be cocooned in their own perspective of news bubbles, but to act according to the crisis and lead the one who are blinded by the wrongly fed information or the ones who are afraid of some invisible monster because they did not apprehend the undistorted set of information. Along with the challenge of accurate timing, the journalism needs to tackle the issues related to the propagation of fake news. During an outbreak it becomes necessary to make sure that the people are doing the right things and taking pertinent steps to control the disease or to mitigate its impact. Now, this becomes the responsibility of the journalism to teach people the correct and relevant ways to overcome the matter at hand, portraying the positive effects of those measures implied by others so that the rest of the public is inspired to take steps in the positive direction, rather than killing time over some false bunch of disguised fears.

LITERATURE REVIEW : Anand (2014). "Development Journalism: A Catalyst for Positive Change". The research intends to examine the three big programmes which are expected to be game changers in transforming rural India. Also, the stories that inspire confidence about the creative potential at the grassroots was another important aspect to be taken into consideration by the researcher. The researcher adopted historical-analytical methodology and has perused both primary and secondary sources to collect information related to the topic. The findings suggest the importance of development and how journalists can become partners of development. Dsouza, Quadros, Hyderabadwala and Mamun (2020). "Aggregated COVID-19 suicide incidences in India: Fear of COVID-19 infection is the prominent causative factor". The study presents 69 COVID-19 suicide cases (aged 19 to 65 years; 63 cases were males) that have been flooding the media platforms. The suicide causalities that have been included are – fear of COVID-19 infection (n=21), financial crisis (n=19), loneliness, social boycott and pressure generated at the thought of being quarantined, COVID-19 positive, COVID-19 work-related stress, unable to come back home due to lockdown, unavailability of alcohol and many more. The study utilizes the press media reports on suicide cases, and purposive sampling to select seven popular English Indian online newspapers from March to May 24, 2020. The study suggests a need for

countrywide extensive tele-mental health care services in consideration to the adamant changes in the environment as well as the thought pattern and behaviour of the human beings. Singh, and Adhikari (2020). "Age-structured impact of social distancing on the COVID-19 epidemic in India". This research uses an age-structured SIR model with social contact matrices obtained from surveys and Bayesian imputation to study the progress of the COVID-19 epidemic in India. The basic reproductive ratio R0 and its time-dependent generalization were computed based on case data, age distribution and social contact structure. The impact of social duration investigated found that a three-week lockdown proved to be insufficient to prevent a resurgence and, instead, the study suggests protocols of sustained lockdown with periodic relaxations. This particular study underlines the importance of age and social contact structures in assessing the country specific impact of mitigatory social distancing. Greenberg, Docherty, Gnanapragasam, and Wessely (2020). "Managing mental health challenges faced by healthcare workers during covid-19 pandemic". The research paper focuses on the measures that healthcare managers need to put in place to protect the mental health of healthcare staff having to make morally challenging decisions. The researchers suggest that once the crisis is over, supervisors should ensure that time is made to reflect on and learn from the extraordinarily difficult experiences to create a meaningful rather than traumatic narrative. According to the researchers even "The National Institute for Health and Care Excellence" recommends "active monitoring" of staff. Pennycook, McPhetres, Zhang, and Rand (2020). "Fighting COVID-19 misinformation on social media: Experimental evidence for a scalable accuracy nudge intervention". The research tends to investigate the reason behind people's belief on fake (and true) news and their further propagation to next recipient, regarding COVID-19, and hence forth test an intervention intended to increase the truthfulness of the content people share on various media. Two studies were conducted with about 1,600 participants (quota-matched to the American public on age, gender, ethnicity and geographic region). The results obtained were that the people share false claims about COVID-19 because they simply fail to think sufficiently about whether or not the content, they are referring to is accurate or not. Participants were far worse at discerning between true and false content when deciding what they would share on social media relative to when they were asked directly about accuracy. Also, the participants were more discerning in their belief and sharing, the ones engaged in more analytic thinking and had greater science knowledge. Zhang, and Ma (2020). "Impact of the COVID-19 Pandemic on Mental Health and Quality of Life among Local Residents in Liaoning Province, China: A Cross-Sectional Study". The study aimed to investigate the immediate impact of the COVID-19 pandemic on mental health and quality of life among local Chinese residents aged 18 and above in Liaoning Province, mainland China. The researchers distributed an online survey known as The Impact of Event Scale (IES), indicators of negative mental health impacts, social and family support, and mental health-related lifestyle changes. A total of 263 participants were part of the study among which 106 participants were males and 157 participants were females. The results obtained were suggestive that the COVID-19 pandemic has its associations with mild stress among the people. Varshney, Parel, Raizada, and Sarin (2020). "Initial psychological impact of COVID-19 and its correlates in Indian Community: An online (FEEL-COVID) survey". The researches through this research have tried to evaluate the psychological impact of COVID-19 in India. An online survey (FEEL-COVID) was conducted using the method of snowball sampling, and by providing invitation link to various participants, along with measuring psychological impact with the help of Impact of Event-revised (IES-R) scale. The total number of responses received were 1106. Results obtained showed higher psychological impact with female gender, persons of younger age, and the ones with comorbid physical illness. Also, the study states that during the initial stage of COVID-19, one-third respondents had a significant psychological impact.

RESEARCH GAP : All this while, during these turbulent times the government of India is taking

measures that is in the benefit of the entire nation, but how the practice of all this is fruitful for the common mass needs to be deduced. There is an urgency to understand the role of the media and how there is a need of positive journalism in such dire situations. The rhathymia of the people is leading to more psychological distress than generating outputs to our advantage. The research investigates what is the Indian Journalism's share to spare, while the pandemic is on its run and after the conditions are under control or post pandemic times, in the country. The increasing challenge to fight the stigma that follows.

IMPORTANCE : The study sees through the frame of reference of the common mass, the government, and the media; which will aid in reducing the psychological distress from all the three sides, serve as a mutual platform for the three to place their fears and in promoting adaptive coping strategies to deal with the situation. It also ensures the government to put their faith in the unbiased journalism to convey their minds to the countrymen, in a positive manner.

METHODOLOGY : The research is based on theoretical and historical explanation and content analysis using primary as well as secondary data.

OBJECTIVES

1. To reflect light on the terms like; an Epidemic, an Infodemic, and a Pandemic.
2. To investigate the role of journalism during and post pandemic situations.
3. To analyse the reasons behind accelerated flow of false information and the challenges in front of the Indian media to curtail them.
4. To examine and elaborate the measures the media is taking to spread awareness fighting against stigma and discrimination that draggles with the virus, in the country.
5. To explore the dire need of media for psychological wellbeing of the public.

AN EPIDEMIC, AN INFODEMIC, AND A PANDEMIC : An Epidemic is defined as a rapid and a widespread occurrence of an infectious disease throughout a community at a particular time period. With several factors responsible for the cause, epidemics stay restricted to a country's location.

An Infodemic is an amalgamation of epidemic and its accurate as well as inaccurate information. The excessive information which has negative effects and makes it difficult to help find solutions to the problem.

A Pandemic is when epidemic spreads across a large region, more than one country or to another continents. The term is more Global than Local, effecting enormous number of people.

ACCELERATED FLOW OF INFORMATION : Fake preventive measures and untested treatments such as drinking warm water, eating garlic, inhaling steam were becoming popular among the people and were spreading like flash all over the world. The internet was full of uncountable videos or texts explaining how one could be saved using such methodologies, obsessing over these fake facts and risking lives, if not of corona virus, something else. WHO already suggests that an Infodemic or misinformation related to COVID-19 is equally dangerous and destructive in nature as the virus. Researches show that bystander inaction encourages proliferation of false news to a great extent. Anyone having access to the internet can contribute to this war of misinformation leading to confusion. Social media platforms provide direct access to an unprecedented amount of content and may amplify rumours and questionable information. Taking into account users' preferences and attitudes, algorithms mediate and facilitate content promotion and thus information spreading (Cinelli et.al., 2020). A large section usually forwards the content over groups simply out of ignorance or excitement to become the news breaker. This follows to an innumerable participant joining the chain one after another. Some studies pointed out that fake news and inaccurate information may spread faster and wider than fact-based news (Cinelli et.al., 2020).

CHALLENGES UP FRONT : Misinformation running over the internet or any other platform

(vocal) have only amplified the menace. Creating frustration and panic, the studies reveal social boycott of persons suspected of being infected, due to faulty reports, making it even more troublesome to monitor the right health hygiene of the people.

People's obsession with temperature is threat to one's basic intelligence and the public nervousness has proved to be a fertile ground for growth of suspicion and stress. Such overflow of content makes it difficult for the people to sift real news from the fakes (Bhattacharjee, 2020). While the government and the media, hand-in-hand, are struggling with other challenges, next elephant in the room is, the data. This giant requires to be updated, tracked, monitored analysed and presented in the form of real-time data in front of the common mass. Not presenting a data to the people is not the right call of the government and the display of the data up surging every day is also a threat to the psychological conditions of the people.

Since the flow of information is like the currents of the sea, the moving of immigrant labours has increased the risk further. The loss of job and income broke lot of souls leading them to commit suicide, even the risk of getting infected has taken so many lives. Reference of the people as "COVID-19 cases", "victims", "COVID-19 families" or "the diseased" is rearing a stigma in the society. This is highly affecting the mental health of the people suffering from the infection and also the ones who are not. After the sudden outbreak of the pandemic the abundance of true and false information is destroying the peace of mind. Without rationally verifying the information and accepting everything served directly multiplies the worries leading to develop anxiety, stress, panic, trauma, obsession-compulsion to stay and keep things clean, depression resulting into suicidal attempts. Henceforth, rather than minimizing the fears, this kind of behaviour heightens the psychological risks. Moreover, for the people who are away from their family or are already living alone.

Students all over the globe are facing the most turmoil. All they had planned, invested efforts and money into the already pursuing courses or to study abroad, all the dreams seems to shatter before their ambitious eyes. The competitive exams, for the ones, this year was the last shot, the wait feels like never ending. In these hard times the students are likely to lose the track of time and believe their world collapsed. They might feel helpless and try to indulge in inconsequential activities. They are more likely to develop psychological health problems and often feel frustrated over nothing or everything.

Due to the conditions rapidly reshaping, the government prohibited international flights, in and out, impacting the export and import of the goods to and fro the country. Every essential item is to be generated within the country itself. The pandemic has forced the nation to follow the concept "home-made". Be it any field; agriculture, minerals, medicines, fabric, technology, arms and armaments; it is the time for the country to stand on its own feet and cultivate self so that it needs little assistance from the rest of the world and is able to provide for its own people and the other countries under threat. And, this is when P.M. Modi coined the ideology to make India self-reliant.

DURING AND POST PANDEMIC: JOURNALISM : The entire globe is on a standstill, people are relying and entrusting their lives on the information provided by the journalists and the news wholly solely. Everyone is counting on the media outlets to show the bitter truth that life as we know it has changed overnight; the fact that millions of workers have lost their jobs and are still losing; the uncountable number still increasing of infected men; and how hundreds and thousands of them are dying silently. Now the ball is in the court of the Indian Media and Journalism, seeing it as an opportunity or as a challenge.

Everyday there is growth in the media consumers turning to news for timely and trusted bunch of information. Mushroom growth of several platforms for the public to seek through are becoming a tough call for the journalists to keep track of and monitor them that often. The monetization of content is quite unpredictable due to the ever-changing circumstances. Every minute there is a new way to reach to the common mass.

With misinformation easily proliferating, this has become the duty of the journalists to keep us all

informed. Gone should be the days when journalism was criticized for polarization of perspectives and politicization of vital information. This outbreak has impacted the lives, families and the livelihoods of the people, and therefore creating havoc among the citizens is only going to add fuel to fire. Credible news of utility delivered in a sustained, calm and reliable manner serves people in a meaningful and helpful way. A democratic public deserves dependable information devoid of conspiracy theories and quick-fix redemptive cures (Babbili, 2020).

The Indian media is providing up-to-the-minute facts and figures. Also, the day-to-day change in the policies and the precaution guidelines provided by the government, the health ministry, and by WHO is made sure to reach every single person, timely, in its true form. It is because of the journalism that government is able to reach out the people stuck in the most remote areas and provide them with the optimum resources needed. The media is a working vice-versa, letting the troubled citizens to reach out to their government and ask openly and freely for any kind of help. Due to the advent of technology, several applications appeared in no time to get each and every person aware. The dramatic shift of population to relay on the journalists is real life example of putting faith in the fourth pillar of the system, this exhibits the oneness of the citizens against an invisible threat.

The amendments in the policies regarding education and national examinations, in the economy, over the workplace and the job possibilities, for the small and large scale industries, the workers-labours, the people who have become penniless and are starving; every citizen is being taken care of in some or the other way, help is reaching to the needy through the platforms of journalism. This has even reduced the anxiety and stress among the students and other citizens in every nook and corner of the country, who could not accept the conditions of national lockdown in the first place.

Broadcast of healthcare professionals, motivational speakers have increased, helping citizens to cope up in turbulent times. Even the Prime Minister, Mr. Narendra Modi Ji is using journalism to connect with his citizens, provide them with a ray of hope that the system is standing like a shield to protect them, no matter what. His initiatives of generating new ideas and innovations to provide for the nation by the nation is leading to a self-reliant and self-made India.

CONCLUSION : The media is, thus, a part and parcel of the development process. In essence, development and journalism are inextricably intertwined and go hand in hand. Journalism has come a long way, increasing awareness, finding alternatives, providing resources, help the voices to reach the authorities. Increasingly, the media has created shared cultural moments and reflect who we are as people.

LIMITATIONS : This study is based on limited number of secondary sources.

REFERENCES

1. Anand, V. E. (2014). Development journalism: A catalyst for positive change. *Procedia – Social and Behavioral Science,* 157, 210-225.

2. Cinelli, M., Quattrociocchi, W., Galeazzi, A., Valensise, C. M., Brugnoli, E., Schmidt, A. L., Zola, P., Zollo, F., & Scala, A. (2020).

3. The COVID-19 social media infodemic. Social Science Journal, 01-18.

4. Dingwall, R., Hoffman, L. M., & Staniland, K. (2019). Introduction: Why a sociology of pandemics? *Sociology of Health & Illness,* 35(2), 167-173. doi: 10.1111/1467-9566.12019.

5. Dsouza, D. D., Quadros, S., Hyderabadwala, Z. J., & Mamun, M. A. (2020). Aggregated COVID-19 suicide incidences in India: Fear of COVID-19 infection is the prominent causative factor. *Psychiatry Research*, 290, e 113145.

6. Dubey, S., Biswas, P., Ghosh, R., Chatterjee, S., Dubey, M. J., Chatterjee, S., Lahiri, D., & Lavie, C. J. (2020). Psychological impact of COVID-19. *Diabetes & Metabolic Syndrome: Clinical Research*

& Review, 14, 779-788. https://doi.org/10.1016/j.dsx.2020.05.035.

7. Ebrahim, S. H., Ahmed, Q. A., Gozzer, E., Schlagenhauf, P., *&* Memish, Z. A. (2020). COVID-19 and community mitigation strategies in a pandemic. *Editorials,* 01-02. doi: 10.1136/bmj.m1066.

8. Greenberg, N., Docherty, D., Gnanapragasam, S., & Wessely, S. (2020). Managing Mental Health Challenges Faced by Healthcare Workers During Covid-19 Pandemic. *Analysis,* 01-04. doi: 10.1136/bmj.m1211.

9. Gupta, N., Agrawal, S., Ish, P., Mishra, S., Gaind, R., Usha, G., Singh, B., & Sen, M. K. (2020). Clinical and epidemiologic profile of the initial COVID-19 patients at a tertiary care centre in India. *Monaldi Archives for Chest Disease,* 193-196.

10. Hua, H., & Shaw, R. (2020). Corona virus (COVID-19) "infodemic" and emerging issues through a data lens: The case of China. *International Journal of Environmental Research and Public Health,* 17, 01-12. doi:10.3390/ijerph17072309.

11. Jha, V., Dinesh, T.A., & Nair, P. (2020). Are we ready for controlling community transmission of COVID-19 in India? *Epidemiology International,* 5(1), 10-13.

12. Pennycook, G., McPhetres, J. Zhang, Y., & Rand, D. G. (2020). Fighting COVID-19 misinformation on social media: Experimental evidence for a scalable accuracy nudge intervention. *International Journal of Environmental Research and Public Health,* 01-24.

13. Singh, R., & Adhikari1, R. (2020). *Age-structured impact of social distancing on the COVID-19 epidemic in India*. An unpublished doctoral thesis, CIT campus, Chennai.

14. Varshney, M., Parel, J. T., Raizada, N., & Sarin, S. K. (2020). Initial psychological impact of COVID-19 and its correlates in Indian Community: An online (FEEL-COVID) survey. *PLoS ONE,* 15(5), 01-10. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0233874.

15. Zhang, Y., & Ma, Z. F. (2020). Impact of the COVID-19 pandemic on mental health and quality of life among local residents in Liaoning Province, China: A cross-sectional study. *International Journal of Environmental Research and Public Health,* 17, 01-12. doi:10.3390/ijerph17072381.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

English Lit.: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 143-146

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

The Contextual Exploration of Toni Morrison's "Recitatif" : A Socio-Historical Approach

*N.R. Gopal**

Abstract : The post-World War II American society and the then prevailing socio-historical conditions significantly contributed to the development of American Post Modern Literature.Despite its economic progress and a political tradition of democracy, the American society of the 1950's was highly conservative and politically reactionary. It led to the intensification of racism and ethnic tension in the society. Similarly, the 1960s was not only a period of the civil rights movement, radical resistance, but also a period of contradictions and chaos.The themes of identity, racism, and a yearning for virtuousness in mankindbecame dominant during this time period."Recitatif" is Toni Morrison's work of short fiction which centres around the theme of race and racism.This paper aims to study this story in the light of its socio-historic context highlighting significant events and social transformations during the time.It examines how the story's historical context enriches our understanding of Twyla and Roberta's relationship

Key words : Toni Morrison , Recitatif , Civil Rights Movement , Race and Racism.

I. Introduction : "Recitatif" is the maiden short story penned by African-American novelist ToniMorrison.

It appeared in an anthology published in 1983 on the writings by African-American women entitled *Confirmation*, edited by Amiri and Amina Baraka.Indeed, Post-Modernism and the Afro-American literary representationshave been closely braidedin the writings of Toni Morrison. "Recitatif" elaborates on the story of the friendship between two girls, belonging to different races, from the time they meet and gel at age eight while staying at an orphanage and later during their encounters as mothers on different sides of economic, political, and racial divides in New York.

Toni Morrison usually writes about her community emphasising its perceptions.Here her outlook is however different. The story examines how the interconnection between the two main characters in the story is shaped by their racial difference. She illustrates how the divide between the races in the American culture depends on how people define themselves in opposition to one another.

The issue of race remains a vital theme of the story. Throughout the story Twyla and Roberta's rapport is clogged by this sense of an non-navigable racial rift, played out against the back- ground of country-wide racial tensions such as the busing crisis. Racial conflicts provide the important milestones in the story's plot. Twyla's immediate response to sharing a room with Roberta at St. Bonny's was thus : "It was one thing to be taken out of your own bed early in the morning—it was something else to be stuck in a strange place with a girl from a whole other race."

Morrison does not disclose the racial identity of the girls. She extends socially and historically distinctive portrayals in order to enliven the characters of Twyla and Roberta, and leading the readers

* *Associate Professor Head of Department, English, C.U.H.P., Dharamshala, Himachal Pradesh*

to come to conclusions about their races based on their connects. For instance, Roberta at one point is described as having "hair so big and wildI could hardly see her face." This may suggest that Roberta is black because she had a hair style popular among blacks in the 1960s as opposed to her true racial identity.

II. Socio-Historic Context : "Recitatif" is about three different time periods, all of which saw notable racial tensions and shifts in culture within the US. Racial conflicts provide the crucial turning points in this story.The story covers a period of more than 20 years, between the late 1950s and early 1980s.

The initial events of the story, when Roberta and Twyla are eight years old, take place during the 1950s. During this period, Jim Crow segregation was in force and the Civil Rights Movement began. In 1954, the Supreme Court issued Brown vs. Board of Education, which outlawed school segregation. In 1957, the famous "Little Rock Nine"—nine African American students who took admission in a previously white high school in Little Rock, Arkansas—were met with severe protests by white segregationists and it ultimately required the intervention of President Eisenhower to be allowed to enter in their school.

In the 1950s communities throughout the country, especially in the South, had segregated

public facilities, including schools, public transportation, and restaurants. Social and cultural segregation became prevalent throughout the country. There had been several landmark events in the struggle for racial equality during this decade and it is considered the beginning of the Civil Rights Movement. In 1956 Madam Rosa Parks, a middle-aged seamstress, refused to give her seat on a Birmingham, Alabama, bus for a white commuter, igniting a year-long bus boycott. Martin Luther then became the leaderof the thus sparked Civil Rights Movement.

Mahatma Gandhi stirred leaders around the world.The civil rights leader, Martin Luther King was also one of them.The US Supreme Court declared that Montgomery's bus segregation was unconstitutional. Martin Luther King then said to a crowd in Brooklyn: "Christ showed us the way, and Gandhi in India showed it could work."Martin Luther King was influenced by the Gandhian principle of non-violence. He followed it in his own civil rights activism.He wrote that "while the Montgomery boycott was going on, India's Gandhi was the guiding light of our technique of nonviolent social change."

In May 1929, Gandhi had written a "Message to the American Negro" addressed to WEB. DuBois to be published in The Crisis , the official publication of the National Association for the Advancement of Coloured People.

Gandhi's Message Stated, ***Let not the 12 million Negroes be ashamed of the fact that they are the grandchildren of slaves. There is no dishonour in being slaves. There is dishonour in being slave-owners. But let us not think of honour or dishonour in connection with the past. Let us realise that the future is with those who would be truthful, pure and loving.***

The next part of the story is during the 1960s, when Roberta and Twyla are young adults. The Civil Rights Act was passed in 1964, and then the Black Power movement gained momentum during this time, particularly following the assassination of Kingin 1968. There was dramatic cultural change in the 1960s with the rise of a rebellious youthful counter-culture which broadly believed in rejection of old social norms, progressive politics, and over indulgence. An important cult figure of this culture was the rock guitarist Jimi Hendrix, whom Roberta is on her way to visit when she stops at Howard Johnson's.

Blacks began protests at white lunch counters and restaurants across the South.More middle-class whites became aware of black culture and more blacks became aware of their own roots. Organized demonstrations were planned, with both black and white student activists participating in "freedom rides" to the South in protest of segregated inter- state public transportation policies. A number of activistswere killed and King himself was assassinated in 1968. King's death led to intense disillusionment among his followers and the rise of Black Power Separatism

The 1970s saw limited improvements in race relations, but the black communities still faced high rates of poverty which worsened notably under the presidency of Ronald Reagan, who was elected in 1981. Although "Recitatif" was written at the beginning of the Reagan era, it addresses to some of the social issues during his presidency, such as an increase in disparity in the quality of life of the rich and the impoverished.

The racial conflict of the 1960s took place in the Southern part of US. The Northern cities became important centres in the Civil Rights strife of the 1970s. Scarcity of finances and police high-handedness contributed to race riots in a number of cities.One of the noteworthyreasons for the racial tension in the North was the institution of busing to ensure thedesegregation of schools. 1971 marked the beginningof court-ordered school busing. Busing sparked protests and outbreaks of violence in many localities. During the same time period, many blacks began to benefit from more equitable laws, entering politics and other positions of power in unprecedented numbers.

Thus, the 20th-century struggle for civil rights produced an enduring transformation of the legal status of African Americans and other victims of discrimination. It increased the responsibility of the law-enforcers to implement civil rights laws and the provisions of the Civil War-era constitutional amendments.

The ascent of Barack Obama to the U.S. Presidency in the early 21st century reflected a transformation of American society, although, during Obama's presidency the issue of police brutality against Black Americans was increasingly in the headlines

III. Conclusion : The Post-modernist period in American Literature depicts how people reacted to the events of the modern era. During the modern era, the two World Wars and The Great Depression left many Americans seeking optimism around them in the society. The themes of identity, racism and the anticipation of virtues in humanity became dominant in the Post Modern period."Recitatif" published in a 1983 anthology of writings by African-American women, was meant to confirm the existence of several generations of black female writers whose work was often ignored or remained unnoticed.The catastrophic destruction and the atomic bombs left Americans search for positivity and optimism in humanity. The writers tried to paint the society and the humanity in a way that showed the promise of goal fulfilment.

A socio-historical approach of analysis in literature seeks to understand the text based on the cultural and historical events taking place at the time it was written."Recitatif" , if interpreted through the lens of social and historical context of the time, enables us to better analyse it. This story reflects the interests, ideas and concerns of the time in which it is written by Toni Morrison. It endorses the transformation in the status of the African American people and celebrates their urge to attain civil rights and be a part of the American dream.

In the words of Matterson : ***Put simply, the American dream is the ideal of opportunity for all, of advancement in a career or society without regard to one's origin. The ideal was embodied in Jefferson's 'Declaration of Independence' as 'Life, Liberty, and the Pursuit of Happiness'. Jefferson***

was specifically reacting against the 'closed' European societies, where power and wealth were seen to be in the hands of an aristocratic governing elite.

The definition of the American Dream by James Truslow Adams in 1931 states that :

The American Dream, that has lured tens of millions of all nations to our shores in the past century has not been a dream of material plenty, though that has doubtlessly counted heavily. It has been a dream of being able to grow to fullest development as a man and woman, unhampered by the barriers which had slowly been erected in the older civilizations, unrepressed by social orders which had developed for the benefit of classes rather than for the simple human being of any and every class.

References

1. Baraka, Amiri. Introduction to *Confirmation: An Anthology of African American Women,* New York: Quill, 1983.

2. Furman, Jan. *Toni Morrison's Fiction,* Columbia: University of South Carolina Press, 1996.

3.Gates, Henry Louis, Jr. Introduction to *Toni Morrison: Critical Perspectives Past and Present,* New York: Amistad, 1993.

4. James Truslow Adams, *The Epic of America* (2nd Edition, Greenwood Press, p. 405).

5. Matterson S. (1990) The Socio-historical Approach. In: The Great Gatsby. The Critics Debate. Palgrave, London.https://doi.org/10.1007/978-1-349-20768-8_4.

6. Schappell, Elissa. Interview with Toni Morrison *The Paris Review*, Vol. 35, No. 128, Fall, 1993, pp. 82- 125.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 147-151

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

अग्निपुराण में निरूपित प्राणी चिकित्सा-औषध एवं मंत्रों के द्वारा

*कृष्ण कुमार यादव**

अग्निपुराण अष्टादश महापुराणों में परिगणित है। अग्निपुराण आठवें महापुराण के रूप में प्रसिद्ध है। यह महापुराण (383) तीन सौ तिरासी अध्यायों में विभक्त है। इसमें मानव के जीवन में आने वाली अनेक प्रकार के व्याधियों एवं उनके निदान का वर्णन प्राप्त होता है। अग्निपुराण विद्वज्जनों के मध्य ''विश्वकोष'' के नाम से समादृत किया गया है।[1]

आयुर्वेद की चिकित्सा प्रणाली वह प्रणाली है जो मृत शरीर में प्राण फूंक सकती है।

''आयुर्वेदं प्रवक्ष्यामि सुश्रुताय यमब्रवीत्।
देवो धन्वन्तरिः सारं मृतसंजीवनीकरम्।।''[2] (अग्निपुराण 275/1)

मानव के अनेक बिमारियों का इलाज इस महापुराण में वर्णित है–

ज्वर के लिए–

''रक्षन् बलं हि ज्वरितं लंड़िघ्तं भोजयेद्भिशक।
सविश्वं लाजमण्डनतु तृड्ज्वरान्तं श्रृतं जलम्।।
मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः।
शडहे च व्यतिक्रान्ते तिक्तकं पाययेद् ध्रुवम्।।''[3] (अग्निपुराण 279/3–4)

धन्वतरि जी कहते हैं ज्वराक्रान्त व्यक्ति के बल के अनुसार एक सप्ताह का उपवास कराना चाहिये, साथ में सोठ से युक्त धान के लावे का मांड, नागर मोथा, पित्त पापड़ा खस, लाल चन्दन, सुगन्ध बाला और सोंठ के साथ श्रुत जल प्यास एवं ज्वर की शान्ति के लिये देना चाहिये। सप्ताह के अन्त में चिरायता जैसे द्रव्यों का काढ़ा अवश्य देना चाहिये।

ज्वर शान्त होने पर खाने के लिये साठी, तिन्नी, लाल अगहनी और प्रमोदक (धान्य विशेष) के तथा ऐसे ही अन्य धान्यों के भी पुराने चावल ज्वर में हितकारी हैं। मूँग, मसूर, चना, कुलथी, मोंठ, अरहर, खेखशा, कायफर, उत्तम फल सहित परवल, नीम की छाल, पित्त पापड़ा एवं अनार भी खाना चाहिए जो ज्वर में लाभदायक है।

रक्तपित्त–

''अधोगे वमनं शस्तमूर्ध्वगे च विरेचनम्।
रक्तपित्ते तथापानं षडङग् शुण्ठिवर्जितम्।।
शक्तुगोधूमलाजाश्च यवशालिमसूरकाः।
सकुष्ठचणका मुदग्ा भक्ष्या गोधूमका हिताः।।''[4] (अग्निपुराण 279/8–9)

धन्वतरि जी कहते हैं रक्तपित्त नामक रोग में यदि नीचे की गतिवाला हो तो वमन कराना चाहिए यदि ऊपर की ओर वाला हो तो विरेचन कराना लाभप्रद होता है। इस बिमारी में बिना सोंठ के षडङ्ग (नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस चन्दन एवं सुगन्ध बाला) का क्वाथ देना हितकारी है। खाने के लिए जौ का सत्तू, धान का लावा, जौ के बने अन्य पदार्थ, अगहनी धान का चावल, मसूर चना एवं मूँग को देना चाहिए। घी एवं दूध में तैयार किया गया दलिया हलुवा आदि भी फायदेमन्द होता है। छोटी मधुमक्खियों का शहद भी हितकर होता है।

उदररोग– **''बाट्यं क्षीरेण चाश्नीयाद् वास्तूकं घृतसाधितम्।**
गोधूमशालयस्तिक्ता हिता जठरिणामथ।।''[5] (अग्निपुराण 279/12)

* *शोध छात्र, संस्कृत विभाग, वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर*

उदर (पेट) के रोगों में दूध के साथ बाटी को लेना चाहिए, तथा घी से निर्मित बथुआ, गेहूँ, अगहनी चावल एवं तिक्त औषधियाँ उदर रोगों में लाभदायक हैं।

प्रमेहरोग–

''अपूपकुष्ठ कुल्माष यवाद्या मोहिनां हिताः।
यवान्नविकृतिर्मुदग्ा कुलत्था जीर्णशालयः।।
तिक्त रुक्षाणि शाकानि तिक्तानि हरितानि च।
तैलानि तिलशिशुग्रु विभीतकेङगुदानि च।।''[6] (अग्निपुराण 279/17–18)

प्रमेह रोग से पीड़ित व्यक्ति को पूआ, कूट, कुल्माष (घुघरी) और जौ का सेवन करना चाहिए तथा जौ के बने भोज्य पदार्थ, मूँग, कुलथी, पुराना अगहनी चावल तथा तिक्त हरे शाक का सेवन करना चाहिए।

श्वास–कास (दमा एवं खाँसी)–

''कौलत्थमौद्गको रास्नाशुष्क मूलकजाङग्लै।
पूपैर्वा विस्किरैः सिद्धिर्दधिदाड़िमसाधितैः।।
मातुलुङग्रसक्षोद्रद्राक्षाव्योशादिसंस्कृतैः।
यवगोधूमशाल्यन्नैर्भोजयेच्छ्वासकासिनम्।।''[7] (अग्निपुराण 297/20–21)

श्वास के मरीज को कुलथी, मूँग, रास्ना, सूखी मूली, मूँग का पुआ, दही और अनार के रस से सिद्ध किये गये विष्कर, जांगल रस, बिजौर का रस, मधु दाख और व्योस (सोंठ, मिर्च, पिप्पल) से संस्कृत जौ गेहूँ और चावल को भोजन में देना चाहिए।

वात के रोगियों के लिये–

''पुराणयवगोधूमषालयो जांङग्लो रस।ः
मुद्रामलकरवर्जूरमृद्वीकावदराणि च।।
मधु सर्पिः पयः शक्रं निम्बपर्पटकौ वृषम्।
तक्रारिष्टाश्च् शस्यन्ते सततं वातरोगिणाम्।।''[8] (अग्निपुराण 279/25–26)

लगातार वातरोग से पीड़ित व्यक्ति के लिये पुराना जौ, गेहूँ, चावल, जांगल–रस, मूँग, आँवला, खजूर, मुनक्का, छोटी बेर, मधु घी, दूध, शक्र, नीम, पित्तपापड़ा, वृश (बलवर्द्धक पदार्थ) तथा तक्रारिष्ट ये सभी वातरोगियों को लाभ पहुँचाने वाले पदार्थ हैं।

अर्ष (बवासीर)–

''यवान्न विकृतिर्मांसं शाकं सौवर्चलं शटी।
पथ्या तथैवाशसां यन् मण्डलं तक्रञ्च वारिणा।।''[9] (अग्निपुराण 279/30)

बवासीर की बिमारी में सवान्न–विकृति, नीम, मांस (जटामांसी), शाक, संचर, नमक, कचूर, हर्रे, मांड तथा जल मिश्रित मट्ठा लाभप्रद होता है।

विसर्पी (फोड़े–फुंसी)–

''मुदग्ाढ़कमसूराणां सतिलैर्जाङग्लैरसैः।
सैन्धवघृतद्राक्षा सुण्ठ्यामलककोलजैः।।
यूषैः पुराणगोधूमय वमुदग्ादिकं लघु।
काकमारी च वेत्राग्रं वास्तुकञ्च सुवर्चला।।''[10] (अग्निपुराण 279/36–37)

सारे शरीर में निकलने वाले फोड़े फुंसी आदि के रूप में फैलने वाले रोग में मूँग, अरहर, मसूर के यूष, तिलयुक्त जांगल–रस, सेंधा नमक सहित घी, दाख, सौंठ, आँवला, और उन्नाव के यूष के साथ पुराने गेहूँ , जौ और अगहनी धान के चावल आदि अन्न का सेवन करना चाहिये एवं चीनी के साथ मधु, मुनक्का एवं अनार से बने जल को पीना चाहिये।

दन्त रोगों के लिये–''शीततोयान्नपानञ्च तिलानां विप्र! भक्षणाम्।
द्विजदार्ढ्यकरं प्रोक्तं तथा तुष्टिकरं परम्।।''[11] (अग्निपुराण 279/41)

ठंडे जल के साथ ग्रहण किया गया अन्न एवं तिलों का भक्षण दाँतों को मजबूत बनाने वाला होता है। तिल के तेल से कुल्ला करने से दाँत अत्यन्त मजबूत होते हैं।

कर्ण शूल एवं शिर शूल–

''तैलं च वस्तूमूत्रञ्च कर्णपूरणमुत्तमम्।

कर्णशूलविनाशाय शिरः शूलाय व द्विज!।।''[12] (अग्नि पुराण 279/44)

धन्वन्तरी जी कहते हैं कान में दर्द होने पर बकरे का मूत्र तथा तेल से कानों को भर देना चाहिये यह कर्णशूल को नाश करता है एवं सभी प्रकार के सिर के रोगों में लाभ पहुंचाता है।

दीर्घायु होने के लिए–

''रात्रौ तु मधुसर्पिभ्यांदीर्घमायुर्जिजीविषुः।

शतावरीसे सिद्धौ वृष्यौ क्षीर घृतौ स्मृतौ।।''[13] (अग्नि पुराण 279/49)

दीर्घ जीवी होने के लिये रात्रि में घी तथा शहद के साथ त्रिफला खाना चाहिये एवं महुवा के फूल के रस के साथ त्रिफला ली जाये तो वह बुढापा के समय झुरी, बालों का झड़ना एवं पकना आदि नष्ट हो जाते हैं।

''मध्वाज्य शुण्ठीं संसेव्य पलं प्रातः स मृत्युजित्।

बलीपलितजिज्जीवेन्माण्डकी चूर्णदग्धपाः।।''[14] (अग्नि पुराण 285/5)

आत्रेय जी कहते हैं प्रतिदिन सुबह शहद, घी और सोंठ का चार तोले मात्रा में सेवन करने वाला मनुष्य मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर सकता है। ब्राह्मी के चूर्ण के साथ दुग्ध का सेवन करने वाले मनुष्य के चेहरे पर झुर्रियां नहीं पड़ती हैं और उसके बाल नहीं पकते अर्थात् वह दीर्घ जीवी होता है।

घाव होने पर–

''निम्बमूलकपत्राणां कषायाः शोधने हिताः।

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद् व्रणकश्मीन।।''[15] (अग्नि पुराण 285/34)

आत्रेय जी कहते हैं करञ्ज, नीम तथा मेउड़ का रस, घाव के कृमियों को नष्ट करता है, धव का फूल, सफेद चन्दन, खरेटी, मञ्जीठ, मुलहठी, कमल, देवदारु तथा मेदा का घृत के साथ लेपन करने पर घाव भर जाता है।

भगन्दर–

''गुग्गुलुत्रिफलाव्योशसमांशैर्घृत योगतः।

नाड़ी दुष्टव्रणं शूलं भगन्दरमुखं हरेत्।।''[16] (अग्नि पुराण 285/36)

आत्रेय जी कहते हैं गुग्गल, त्रिफला, व्योष, (सोंठ, मिर्च, पीपल) इनको समान मात्रा में लेकर इन सभी के बराबर घी लेकर इनका सेवन करना चाहये। इसके सेवन से नाड़ी, व्रण, दुष्टव्रण, शूल तथा भगन्दर आदि रोग दूर हो जाते हैं।

गण्डमाला–

''गण्डमालापहं तैलम्भ्यड.ग्त् गलगण्डनुत्।

शटीकुनागबलयक्वाथः क्षीररसे युतम्।।''[17] (अग्नि पुराण 285/53)

ग्लगण्ड (गले का रोग) के लिए आत्रेय जी कहते हैं प्रियङगु के फूल, कमल, संभालू, वायविडङग्, चित्रक, सेंधानमक, रास्ना, दुग्ध, देवदारु और वच से सिद्ध चौगुना कटुद्रव्य युक्त तेल का मर्दन करने से गलगण्ड तथा गण्डमाला रोगों का नाश होता है।

क्षयरोग–

''पयस्यापिप्पलीवासा कल्कं सिद्धं क्षये हितम्।

वचाविडभया शुण्ठीहिङग्कुष्ठाग्निदीप्यकान्।।''[18] (अग्नि पुराण 285/54)

आत्रेय जी के अनुसार कचूर, नागकेसर, कुमुद का पक्या हुआ क्वाथ तथा क्षीर विदार, पीपल और अडॅसा का कल्क दूध के साथ पकाकर पीने से क्षय रोग में फायदेमंद हैं।

कृमिरोग–

''वासानिम्बपटोलानि त्रिफला वातपित्तनुत।

लिह्यात् क्षौद्रेण विड़ङग् चूर्णं कृमिविनाशनम्।।''[19] (अग्नि पुराण 285/57)

आत्रेय जी के अनुसार अडूसा, नीम, परवल की पत्ती के चूर्ण को त्रिफला के साथ सेवन करने पर वात पित्त रोग का नाष होता है। मधु के साथ वायविडंग चूर्ण को चाटने से कृमि रोग का विनाष होता है। वायविडंग सेन्धा नमक, यवक्षार एवं गोमूत्र के साथ ली गयी हर्रे भी कृमि नाशक होती है।

नपुंसकता दूर करने के लिए–

''चूर्णमामलकं तेन सुरसेन तु भावितम्।

मध्वाज्यशर्करायुक्तं लिढवा स्त्रीशः पयः पिबेत्।।

माषपिप्पलिशालीनां यवगोधूमयोस्तथा।

चूर्णभागैः समांशैश्च पचेत् पिप्पालिकां शुभाम्।।

तां भक्षयित्वा च पिबेत् शर्करामधुरं पयः।

नवश्चटकवज्जम्भेद् दशवारीन् स्त्रियं ध्रुवम्।।''[20] (अग्नि पुराण 285/64–66)

आत्रेय जी कहते हैं आँवले के स्वरस से भावित आँवलें के चूर्ण को, शहद, घी तथा शर्करा के साथ चाटकर दूध पीने से मनुष्य स्त्रियों का प्रिय प्रभु बन सकता है। माष (उड़द), पिपल, अगहनी का चावल, जौ और गेहूँ– इन सबों का चूर्ण बराबर मात्रा में लेकर उसकी घृत में पूड़ी बना लें। उसका भोजन करके ऊपर से शर्करायुक्त दुग्ध पी लें। ऐसा करने वाला मनुष्य नवीन गौरैया पक्षी के समान स्त्रियों से अनेक बार सम्भोग कर सकता है।

गर्भपात से बचने के लिये–

''वींज कौरण्टकञ्चापि मधुकं श्वेत चन्दनम्।

पद्मोत्पलस्य मूलानि मधुकं शर्करातिलान्।।''[21] (अग्नि पुराण 285/68)

आत्रेय जी कहते हैं पीली कटसरैया, मुलहटी और श्वेत चन्दन–ये सभी प्रदररोग नाशक हैं। श्वेत कमल और नीलकमल की जड़ तथा मुलहठी शर्करा और तिल इनका चूर्ण गर्भ को स्थिर करके गर्भपात होने से बचाता है।

नेत्ररोग–

''चाक्षुष्यं भेदनं हृद्यं दीपनं कफरोगनुत्।

नीलोत्पलस्य किञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम्।।''[22] (अग्नि पुराण 285/73)

आत्रेय जी के अनुसार नेत्र रोगों के लिये गाय के गोबर के रस के साथ नीलकमल के पराग को मिलाकर गोली बना लें। यह रतौंधी एवं दिनौंधी दोनों रोग में लाभदायक हैं।

मन्त्रों के द्वारा रोगों का निदान–

प्रसव के लिए–

''प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्ण गर्भा निरहन्नजिश्व

अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।।''[23] (अग्निपुराण 285/73)

अग्निपुराण के (259/20) अनुसार इस ऋचा का जप करने वाली स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती हैं।

''विजिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव।

श्रुतं में अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम्।''[24] (ऋग्वेद 5/78/5)

अग्निपुराण के (259/52) अनुसार इसके पर से गर्भवेदना से मूर्च्छित स्त्री को गर्भ के संकट से भली भाँति छुटकारा मिल जाता है। प्रसव आसानी से हो जाता है।

निरोगी होने के लिये–

''शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे

सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्रण आयुजीर्वसे सोमतारीः।।

इमे मा पीता यशस उरुष्सो रथं न गावः समनाह पर्वन्हु।

ते मा रक्षन्तु विस्त्रसश्चरित्रा दुत मा स्त्रमाद्यवयन्त्विन्दवः।।''[25] (अग्नि पुराण 285/73)

अग्निपुराण (259/69) अनुसार इन दो मन्त्रों का जपपूर्वक भोजन करके हृदय का हाथ से स्पर्श करने पर मनुष्य कभी व्याधिग्रस्त नही होता।

दीर्घायु होने के लिये–

''युञ्जते मन उत युञ्जते धियो

विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।

वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्महीं

देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा।''[26] (यजुर्वेद 5/14)

अग्निपुराण (260/19) के अनुसार इस मन्त्र का जप करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

महामारी को शान्त करने के लिये–

''काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।

एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्त्रेण शतेन च।।''[27] (यजुर्वेद 13/20)

अग्निपुराण (260/47–48) के अनुसार इस मन्त्र से दूर्वा का दस हजार होम करके मनुष्य ग्राम या जनपद में फैली हुयी महामारी को शान्त करना चाहिये। रोग पीड़ित मनुष्य रोग से और दुःख ग्रस्त मानव दुःख से छुटकारा पाता है।''[28]

उपर्युक्त औषधि एवं मन्त्रों का नियम पूर्वक पालन करके मनुष्य लम्बे समय तक स्वस्थ रह सकता है। क्योंकि आजकल मनुष्य का खान पान एवं रहन सहन व्यवस्तता के चलते बिगड़ चुका है, जिसके कारण अनेक बीमारियाँ जन्म ले रहीं हैं। वर्तमान समय की चिकित्सा पद्धति से जब तक दवा लेते रहते हैं तभी तक वे दवाईयाँ बिमारियों में असरदार रहती हैं और जब दवाईयाँ बन्द हो जाती हैं फिर वही स्थिति हो जाती है लेकिन कुछ स्थितियों का निदान आयुर्वेद एवं मंत्रों के द्वारा सही एवं सटीक रूप में प्राप्त होती है।

संदर्भ–सूची

1. संस्कृत वाङमय का वृहद इतिहास त्रयोदश–खण्ड पुराण, पण्डा प्रो0 गंगाधर, प्रथम संस्करण, 2006 ई0, उ0 प्र0 संस्कृत संस्थान लखनऊ पृ. सं0 255

2. अग्निपुराण, द्विवेदी शिवप्रसाद, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पुनमुर्दित संस्कृत, 2014 ई0, पृ. 597, 597, 597, 598, 598, 598, 598, 599, 599, 599, 599, 600, 617, 614, 614, 615, 616, 616, 616, 617

3. ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, प्रथम मण्डल, पृ. सं0 250

4. ऋग्वेद संहिता भाग 2 शर्मा श्रीराम, ब्रह्म वर्चस्व, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार, पृ. 93

5. ऋग्वेद का सुबोध–भाष्य तीसरा भाग, सातवलेकर श्रीपाद दामोदर, वसन्त श्री पाद् सातवेकर स्वाध्याय मण्डल, भारत मुद्रणालय तीसरा भाग पृ. 197

6. यजुर्वेद खण्ड 1– सिंह कुँवर चन्द्रप्रकाश, भुवन वाणी ट्रस्ट लखनऊ, प्रथम संस्करण 1992, पृ. 184, 655

7. अग्निपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्र0 529

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 152-155

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

माध्यमिक स्तर पर अध्यापकों की शिक्षण अभिक्षमता

*डॉ. समर बहादुर सिंह**

संक्षिप्त सारांश : प्रस्तुत शोधपत्र का अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अनुसंधान है जो सर्वेक्षणात्मक विधि द्वारा जौनपुर जनपद की समष्टि पर किया गया था। कुल 400 अध्यापकों को यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा चयनित किया गया था। मानकीकृत उपकरण से ऑकड़े से संकलन करते हुये प्रसरण विश्लेषण की सहायता से परिणाम मिला कि शिक्षक लिंग, क्षेत्र व विषय के स्तर पर समान शिक्षण अभिक्षमता वाले होते हैं।

मुख्य शब्दः—*विवरणात्मक, सर्वेक्षणात्मक, प्रसरण अनुपात, शिक्षण अभिक्षमता।*

प्रस्तावना—सामान्य प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परम्परा के आलोक में यह राष्ट्रीय नीति 2020 तैयार की गयी है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परम्परा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञानार्जन नहीं बल्कि पूर्ण आत्मज्ञान और मुक्ति के रुप में माना गया था। तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला और बल्लभी जैसे प्राचीन विश्वस्तरीय संस्थानों ने अध्ययन के विविध क्षेत्रों में शिक्षण और शोध के उच्च प्रतिमान स्थापित किये थे। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का भी विजन है कि आने वाले दिनों के अध्यापकों की जबाबदेही कैसे सिद्ध हो सकेगीं, उसके दायित्व बोध तथा अपने पेशे के प्रति प्रतिबद्धता क्या होगी का अध्ययन किये जाने को शोधकर्त्ता तत्पर है।

अध्यापक शिक्षा सुयोग्य और निपुण शिक्षकों को तैयार करने में असफल रही है। अध्यापक शिक्षा के प्रचलित कार्यक्रम और अध्यापक व्यवसाय की सामयिक एवं भावी आवश्यकताओं के मध्य कोई तालमेल नहीं है। अध्यापक शिक्षा देश की बदली परिस्थितियों परिवर्तनों और आवश्यकताओं के अनुरूप अपने को ढाल नहीं सकी। प्रशिक्षण संस्थाओं के स्तर में कोई सुधार नहीं हो रहा है। शिक्षक अपने उत्तरदायित्व का ईमानदारी से पालन नहीं करते, दुसरी ओर प्रशिक्षार्णिथी नियमित रूप से कक्षाओं में नहीं आते हैं। कहा जाता है कि 'दीप से दीप जलाते चलो' परन्तु एक दीपक दूसरे दीपक को कभी प्रज्जवलित नहीं कर सकता जब तक कि उसकी अपनी ज्योति न जलती रहे।

शिक्षण एक जटिल व्यवसाय है। अधिकतर शिक्षण स्मृति उन्मुख होता है। अध्यापक उसमें अपने दायित्व के प्रति सवेंदनशील नही रहता है। अतः अध्यापक के दायित्व बोध का प्रश्न अतार्किक नहीं है। दायित्व बोध का प्रश्न अन्य व्यवसायों की तरह शिक्षण व्यवसाय में भी विचारणीय है। वास्तव में दायित्व बोध सम्पूर्ण समाज तथा वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिससे सामाजिक मूल्य को अलग करके नहीं देखा जा सकता क्योंकि सामाजिक मूल्य के आधार पर भी किसी भी शिक्षा व्यवस्था के ढाचें का निर्माण होता है। शोधकर्त्ता प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में यह जानने का प्रयास किया है कि अध्यापकों के दायित्व बोध व सामाजिक मूल्यों की वास्तविक स्थिति क्या है?

अध्ययन औचित्य—प्राचीन काल से ही समाज में अपने भावी नागरिकों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक शिक्षा तथा अन्य सभी प्रकार के विकास करने का कार्य अध्यापकों को सौंपने की परम्परा रही है। अध्यापक का कार्य ज्ञान व संस्कृति के सरक्षण तथा हस्तान्तरण तक ही सीमित नहीं है बल्कि परिस्थितियों के अनुरुप आवश्यक सामाजिक परिवर्तन लाना भी है।

राष्ट्रीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विभिन्न क्षेत्रों के लिए सृजनशील नेतृत्व को विकसित करना तथा समानता स्वायत्तता व न्याय पर आधारित नवीन सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने का लक्ष्य प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना भी अध्यापक समुदाय का उत्तरदायित्व है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शाब्दों में ''समाज में अध्यापक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराओं व तकनीकी कौशलों के हस्तान्तरण के उपक्रम के रूप में तथा सभ्यता की ज्योति को प्रज्ज्वलित रखने में सहायता प्रदान करता है।''

* *एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, टी.डी. कॉलेज, जौनपुर, उ.प्र.*

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) भी अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि ''हम यह भलींभाँति समझ गये हैं कि विचार युक्त शैक्षिक पुनर्निर्माण में सर्वाधिक महत्व शिक्षक का है और उसके व्यक्तिगत गुण, उसकी शैक्षणिक योग्याताएं, व्यवसायिक प्रशिक्षण एवं समाज में स्वयं उसके द्वारा प्राप्त स्थान सभी महत्वपूर्ण है।'' कोठारी आयोग (1964–66) ने अपने प्रतिवेदन ''शिक्षा तथा राष्ट्रीय विकास'' में स्पष्ट किया है कि ''शिक्षा के स्तर तथा राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के योगदान को जितनी भी बातें प्रभावित करती हैं उनमें अध्यापक के गुण, क्षमता व चरित्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।'' पूर्व शिक्षा मंत्री श्री एम0सी0 छगला ने भी कहा था कि ''प्रशिक्षित व योग्य अध्यापकों की सहायता के बिना कोई भी शिक्षा व्यवस्था उन्नित नहीं कर सकती है। योग्य अध्यापकों वाला राष्ट्र ही एक उज्ज्वल भविष्य वाला राष्ट्र होता है। पं0 जवाहर लाल नेहरू ने अध्यापकों की भूमिका के सम्बन्ध में कहा था कि ''अध्यापकों को अपने व्यक्तिगत मूल्यों व संस्कृति जो उसके साधन है के द्वारा अपने छात्रों को उच्च मूल्यों व संस्कृति जो उसके साधन है के द्वारा अपने छात्रों को उच्च मूल्यों के हस्तान्तरण में सहायता करनी चाहिए। अध्यापकों को अंकुर पूर्ण रूप से खिलने में सहायता करनी चाहिए न कि अपनी सनक की पूर्ति के लिए कृत्रिम पुष्प तैयार करने चाहिए। नैतिक दृष्टि से स्वायत्त व्यक्तित्व का विकास करना ही अध्यापकों के परिश्रम का लक्ष्य व परिणाम होना चाहिए।''

आधार–प्रस्तुत अध्ययन में आधार के रूप में कुछ साहित्य का गहन छानबीन की गयी जिनके संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

सतिंदर कौर (2018) ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष पाया कि शिक्षण अभिक्षमता का सम्बंध विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि से होता है। **सिंधू (2015)** ने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि शिक्षकों की शिक्षण योग्यता उनके बुद्धि को प्रभावित करती है। **गौंडी साधना (2015)** के अध्ययन से परिणाम पाया कि शिक्षण योग्यता उनके कार्यसंतुष्टि तथा समायोजिन से जुड़ी होती है। **सिंह यू. पी. (2001)** ने स्ववित्तपोषी महाविद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षण योग्यता का अध्ययन करते हुये पाया कि सरकारी शिक्षक उच्च थे। **शर्मा (2016)** ने माध्यमिक स्तर पर कार्य करते हुये पाया कि पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता उच्च होती है। **शाहिल अहमद खान (2016)** ने अध्ययन से पाया कि शिक्षण अभिक्षमता तथा समायोजन में सम्बन्ध पाया जाता है। **शर्मा प्रवीण (2017)** ने बताया कि शिक्षण अभिक्षमता ही शिक्षा का मूल आधार है। **राय (2018)** कि अध्यापक की शिक्षण अभिक्षमता का सम्बंध शिक्षण प्रभावशीलता से घनिष्ठ सम्बन्धित है। नाथन बेरोंज (2019) कि उच्च शैक्षणिक अभिक्षमता से सफलता जल्दी मिलती है। **शारदा प्रसाद सिंह (2021)** का अध्ययन है कि माध्यमिक स्तर पर पुरुष शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता महिला शिक्षकों की तुलना में अधिक है।

अध्ययन का उद्देश्य–प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य था कि ''माध्यमिक स्तर पर अध्यापकों की लिंग, क्षेत्र व विषय के आधार पर शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।''

परिकल्पनायें–प्रस्तुत अध्ययन में शून्य परिकल्पना परीक्षण हेतु बनायी थी कि ''माध्यमिक स्तर पर अध्यापकों की लिंग, क्षेत्र व विषय के आधार पर शिक्षण अभिक्षमता में सार्थक अन्तर नहीं है।''

विधि परक विज्ञान–प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का है। इसे सर्वेक्षण विधि द्वारा जौनपुर जनपद के समस्त माध्यमिक स्तर के अध्यापकों की समष्टि पर 400 अध्यापकों के यादृच्छिक रूप से चयनित न्यादर्श पर किया गया था जिसमे 200 शिक्षक व 200 शिक्षिका शामिल थी। शोध उपकरण शिक्षण अभिक्षमता मापनी जो शारदा प्रसाद सिंह द्वारा निर्मित तथा मानकीकृत है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु प्रसरण अनुपात ज्ञात किया गया था।

विश्लेषण तथा व्याख्या–प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषण का आधार उद्देश्य बनाया गया था जिसके लिये निर्मित शून्य परिकल्पना के परीक्षण हेतु निम्नलिखित विश्लेषण तालिका बनायी गयी थी।

तालिका–1

पुरुष शिक्षक तथा महिला शिक्षिकाओं की शिक्षण अभिक्षमता सम्बन्धी प्रसरण विश्लेषण तालिका–

विचरण के स्रोत	df	s.s.	ms.s.	F ratio	P
समूह के मध्य	1	294.13	294.13	2.38	असार्थक
समूह के अन्दर	398	36742.41	123..29		
योग	399				

df (1,298) .05 = 3.86

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि पुरुष शिक्षक तथा महिला शिक्षिकाओं के शिक्षण अभिक्षमता पर प्रसरण अनुपात 2.38 है। df (1,398) के .05 सार्थकता स्तर पर 3.86 से कम है जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष व महिला शिक्षक परस्पर शिक्षण अभिक्षमता के लिये समान होते हैं।

तालिका–2

ग्रामीण व शहरी शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता सम्बन्धी प्रसरण विश्लेषण तालिका–

क्विरण के स्रोत	df	s.s.	ms.s.	F ratio	P
समूह के मध्य	1	342.46	342.46	3.70	असार्थक
समूह के अन्दर	398	36912.14	92.74		
योग	399				

df (1,398) .01 = 3.86

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि ग्रामीण तथा शहरी शिक्षकों के शिक्षण अभिक्षमता पर प्रसरण अनुपात 3.70 है। df (1,398) के .05 सार्थकता स्तर पर 3.86 से कम है जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण व शहरी शिक्षक की शिक्षण अभिक्षमता समान होती है।

तालिका–3

कला तथा विज्ञान विषय के शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता सम्बन्धी प्रसरण विश्लेषण तालिका–

क्विरण के स्रोत	df	s.s.	ms.s.	F ratio	P
समूह के मध्य	1	282.46	282.46	3.08	असार्थक
समूह के अन्दर	398	34242.23	86.03		
योग	399				

df (1,398) .05 = 3.86

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि कला तथा विज्ञान विषय के शिक्षकों के शिक्षण अभिक्षमता पर प्रसरण अनुपात 3.28 है। df (1,398) के .05 सार्थकता स्तर पर 3.86 से कम है जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि कला व विज्ञान विषय के शिक्षक की शिक्षण अभिक्षमता समान होती है।

शोध निष्कर्ष–प्रस्तुत अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं–

1. पुरुष शिक्षक तथा महिला शिक्षिकाओं में शिक्षण अभिक्षमता समान होती है।
2. ग्रामीण व शहरी शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता समान होती है।
3. कला तथा विज्ञान वर्ग के शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता समान होती है।

शैक्षिक निहितार्थ–प्रस्तुत अध्ययन उपरोक्त वर्णित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होगा क्योंकि माध्यमिक शिक्षा में शिक्षणरत् शिक्षक जब अपने शिक्षण व्यवसाय के प्रति पूर्ण प्रतिबद्ध होंगे तो हमारी नयी शिक्षा नीति 2020 जरूर सार्थक होगी। इसके लिये हमें दृढ़ निश्चय लेना कि हमारी बौद्ध परम्परायें, वैदिक संकल्पना तथा धर्मिक शिक्षा हमे एक सरस व्यक्ति बनाती थी न कि साक्षर दुर्भाग्य स पश्चिमीकरण का आधुनिकता को गलत ढ़ंग से परिभाषित किया गया जिससे व्यक्ति मात्र यंत्रवत् बनकर रह गया है। हमारी समितियां आयोग व शिक्षा नीतियां समय–समय पर भारतीय मूल्यों को पोषित करने वाले विन्दुओं पर चर्चा किया है परन्तु 100 प्रतिशत जमीन पर नही आयी उसके पीछे पश्चिमीकरण की आँधी तथा बेरोजगारी भागदौड़ ने वर्तमान में आतंकवाद, नक्सलवाद, भ्रष्टाचार, चोरी, छिनैती तथा बलात्कार जैसी घटनाओं में बढ़ सी आई उसी से बचने व रोकने के लिये हमारे मानवीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी ने एक चिन्ता व्यक्ति की और एक दृढ़ संकल्प लेते हुये डॉ0 कस्तुरी रंजन की अध्यक्षता में नयी शिक्षा नीति, 2020 को पास किया और लक्ष्य रखा कि बचपन मातृभाषा व मातृमूल्यों के आधार पर संस्कारित किया जाय अपने बौद्धिक तथा बौद्ध परम्पराओं को पोषित करे जिसके साथ अपने पुराने कौशल बढ़ईगिरी, लोहारगिरी इत्यादि को आगे बढ़ाये साथ ही आधुनिकता की तरफ कम्प्यूटर तथा तकनीकि

आई0सी0टी0 का ज्ञान दिया जाय। वैश्विकता को ध्यान में रखते हुये भारत में बच्चों को विश्व के शीर्ष तक पहुँचना ही हमारी दृढ़ शक्ति वाली शिक्षा नीति, 2020 का लक्ष्य है। प्रस्तुत अध्ययन शिक्षाविदों, विद्यार्थियों तथा व्यवसायियों के लिये मील पत्थर साबित होगा और हमारे युवा शिक्षकों के लिये प्रेरणा स्रोत तथा पथप्रदर्शित करता रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोंडी, साधना (2015); ''शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि व व्यवसायिक प्रतिबद्धता'' शोधगंगा।
2. नायन, बेरोज (2019); ''शिक्षक प्रभावशीलता और छात्र परिणामों पर साहित्य की समीक्षा'' IEAR स्प्रिंगर
3. राय, राधा (2018); ''शिक्षक प्रभावशीलता'' IJAR वाल–5 इसू–3
4. सतिंदर कौर (2018); ''कार्यसंतुष्टि तथा शिक्षण अभिक्षमता'' शोधगंगा.
5. सिंह, यू.पी. (2001); ''स्वावित्तपोषी अध्यापकों की व्यवसायिक प्रतिबद्धता'' ICFAL.
6. सिंधु, पूनम (2015); ''बी. एड. छात्रों की शिक्षण योग्यता का अध्ययन'' शोधगंगा.
7. शर्मा, आभा (2016); ''शिक्षण व्यवसाय तथा अभिक्षमता'' रिसर्चगेट.
8. शर्मा, प्रवीण (2017); ''शिक्षण अभिक्षमता तथा समायोजन'' IJCR वाल–15 अंक. 1 जन.–2017.
9. शाहिल, अहमद खान (2016); ''शिक्षण अभिक्षमता तथा व्यवसायिक प्रतिबद्धता'' आर्मटी इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ टीचर एज्यूकेशन अप्रैल 2016.
10. सिंह, शारदा (2021); ''शिक्षण अभिक्षमता व व्यवसायिक प्रतिबद्धता'' शोध प्रबन्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Economics: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 156-161

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

कांकेर जिले में जनजातीय महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

*सुरेश कुमार** *डॉ. एल.आर. सिन्हा***

शोध सारांश : किसी समाज की सम्पनता तथा भविष्य को संवारने के लिए महिलायें उपयुक्त मार्गदर्शक होती है। साथ ही विकास एवं सम्पनता को मापने के लिए उस समाज की महिलाओं के सामाजिक–आर्थिक–व्यवसायिक स्तर को एक बेहतर सूचकांक माना जाता हैं। छत्तीसगढ़ राज्य जनजाति बहुत प्रदेश हैं यहाँ लगभग 42 प्रकार की जनजातियां एवं उपसमूह निवास करती है। 2011 की जनगणनानुसार राज्य की कुल जनसंख्या 2,55,45,198 है। जहाँ कुछ अनुसूचित जनजातियों 78,22,902 जो राज्य की जनसंख्या का 30.6 प्रतिशत है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिवार की अर्थव्यवस्था में पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियों की सक्रिय सहभागिता हैं। कृषि क्षेत्र में इनका प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी है। समाज की संरचना में जनजातीय स्त्रियों की भागीदारी न केवल परिवार के विकास में उत्तरदायी है। बल्कि वह व्यैक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी अधिक है। इस प्रकार कह सकते हैं कि जनजातीय महिलायें जननी के रूप में सकरात्मक भूमिका निभाने की सहभागिता के साथ सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में परिवार व समाज को एक सुदृढ़ दिशा प्रदान करने में सकरात्मक परिणाम दे रही है।

कुंजी शब्द–जनजातीय महिलाएं, जनजाति महिला शिक्षा, जनजातीय महिला सहभागिता, जनजातीय महिला सशक्तिकरण, जनजाति महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति।

प्रस्तावना–छत्तीसगढ़ राज्य जनजाति बहुत प्रदेश है। 2011 की जनगणनानुसार राज्य की कुल जनसंख्या 2.55,45,198 है। जहॉ कुल अनुसूचित जनजाति जनसंख्या 78,22,902, राज्य की जनसंख्या का 30.6 प्रतिशत है। वहीं कांकेर जिले में कुल अनुसूचित जनजाति जनसंख्या 4,14,770 जहाँ पुरुष जनसंख्या 2,03,934 वहीं महिला जनसंख्या 2,10,836 जो कुल जनसंख्या का 55.38 प्रतिशत है। इस क्षेत्र में महिला जनसंख्या भी आर्थिक व्यवसायिक सहभागिता को प्रभावित करती है। किसी भी समाज की उन्नती व विकास में स्त्री–पुरुषों का समान भागीदार व सहयोग अतिआवश्यक है। स्त्री सहभागिता केवल किन्ही विशेष कार्यों को संपन्न करने के लिए नहीं अपितु परिवार, समाज एवं देश के संपूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो तकनीकियां व कार्यो के माध्यम से करना ही (आर्थिक) धन संबंधी कहलाता है। किसी भी परिवार में आर्थिक क्रियाकलापों में आर्थिक सहभागिता स्त्रियों की परिवार के साथ–साथ संपूर्ण समाज व देश के विकास के द्योतक है। भारतीय सभ्यता के उद्‌भव के समय से ही जनजातियां अस्तित्व में रही है और वन उसके आश्रम एवं जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन था। और आर्थिक जीवन परोक्षतः आश्रित है। जनजातियों और वनों के इस संबंध को सहजीवी संबंध भी कह सकते हैं।

अध्ययन का मुख्य उद्‌देश्य–छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले के तहसील में निवास कर रहीं जनजातीय महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक एवं व्यवसायिक स्थिति का अध्ययन करना।

जनजातीय महिलाओं में शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना–जनजातीय महिलाओं में शिक्षा ही एक ऐसा आधार है जिसे प्राप्त कर विभिन्न कौशल अपनाकर उच्च जीवन–स्तर की कल्पना की जा सकती है।

* *शोध छात्र, अर्थशास्त्र अध्ययन शाला, शहीद महेन्द्रकर्मा विश्वविद्यालय, जगदलपुर, छ.ग.*

** *सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र अध्ययन शाला, शहीद महेन्द्रकर्मा विश्वविद्यालय, जगदलपुर, छ.ग.*

2. आय ही एक मात्र क्षमता सृजनकारी कारक नहीं है, बल्कि महिला श्रम की सामाजिक भूमिका उसकी क्षमता आर्थिक रूप से भविष्य के निधारिकों को प्रभावित करता है, साथ ही कुछ क्षेत्र जैसे–कृषि, धरेलु कार्य में महिला श्रम की आय कम होने के कारण उनकी कार्यक्षमता को आय प्राप्त न होना है।

प्राथमिक व द्वितीयक समंकों के प्रयोग प्रत्यक्ष अवलोकन वार्तालाप एवं सरल सांख्यिकी विधियों आदि के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये हैं।

अध्ययन का क्षेत्र–प्रस्तुत अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ राज्य के कांकेर जिले को लिया गया है। कांकेर जिले के अन्तर्गत सात विकासखण्ड आते हैं, इन सात विकासखण्ड–कांकेर, भानुप्रतापुर, चारामा, दुर्ग कोंदल, नरहरपुर, अंतागढ़, कोयलीबेढ़ा में जनजातीय महिलाओं पर शिक्षा का प्रभाव एवं सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया गया है।

शोध विधि–प्रस्तुत शोध गुणात्मक एवं संख्यात्मक शोध अनुसंधान पर आधारित है। प्रस्तुत शोध में दैव–निदर्शन विधि का उपयोग किया गया है। साक्षात्कार एवं अनुसूची के माध्यम से आँकड़े एकत्रित किए गए है। सांख्यिकीय उपकरण के अंतर्गत औसत, सहसंबंध गुणांक, माध्य आदि का उपयोग किया गया है।

शोध आकार–गांवों के कुल 425 परिवारों में से 314 व्यक्ति को निर्देशित किये गये जो कि इन 9 गांवों की संपूर्ण जनसंख्या का 10–04 प्रतिशत है।

जनजातियों की व्यावसायिक संरचना–प्रस्तुत वर्गीकरण में जनजातियों की आर्थिक व्यवस्था स्पष्ट होती है, वर्गीकरण इस प्रकार हैं।

1. **वन आखेट**–मत्स्यमारण एवं खाद्य तथा पेय पदार्थ के रूप में वनोपज की प्राप्ति।
2. **पहाड़ी कृषि**–स्थानांतरित खेती, झूम खेती के नाम से जाना जाता हैं।
3. **मैदानी कृषि**–सालभर में मौसम अनुसार फसल उगाये जाते हैं।
4. **साल कारीगार**–हस्त शिल्प व्यवसाय से संबंधित हैं।
5. **पशु चालक**–पालतु जानवरों के समुह को चाराकर अपना जीवन–निर्वाह करते हैं।
6. **कृषि** कार्य एवं अन्य श्रामिक का कार्य करते हैं।

जनजातीय महिलाओं की सहभागिता–वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिवार की अर्थव्यवस्था में पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियों की सक्रिय सहभागिता है। बड़ा प्रतिशत कृषि में महिला श्रम का है। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी हैं। इस सहभागिता को स्त्रियां अपने पूरी जिम्मेदारीयों के साथ पूर्ण कर रही हैं। समाज के संरचना में स्त्रियों की भागीदारी न केवल परिवार के विकास में उत्तरदायी है। बल्कि वह व्यैक्तिक ,सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में जनजातीय महिलाओं में शिक्षा के स्तर में काफी सुधार हुआ है एवं समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

जनजातीय समाज–प्रायः सभी जनजातियों में वन व कृषि से जीविकोपार्जन करने का प्रमुख साधन हैं। गांव का पटेल समाज का मुखिया होता हैं। महिलायें वन से संबंधित कंदमुल फल एकत्र करती है। हल्बा जनजाति में गौत्र व्यवस्था होती है एक ही गौत्र में विवाह नहीं होता है। विवाह निश्चित होने पर यदि घर पर किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो विवाह महुआ के वृक्ष के साथ कर दिया जाता है जिससे पवित्रता बनी रहती है। जनजातियों की अब भी ऐसी मान्यता है जिसके अन्तर्गत समाज में वधु मुल्य प्रचलन में है, अंर्तजातीय विवाह करने पर आजीवन जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है। मृतक का दाह संस्कार करते हैं। बाल मुंड़वाते हैं। स्त्रियां गुदना गोदवाती हैं। दशहरा, दीपावली, होली, त्योहार मानते हैं। जिदरी एवं नवाखानी भी पूजते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले में रहने वाली जनजाति का चयन वर्ष 2011 की जनगणना को आधार मानकर किया गया है तथा अध्ययन हेतु आवश्यक उपयोगी तथ्यों को अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

सारणी क्रमांक–01 : तहसीलवार अनुसूचित जनजाति जनसंख्या

क्र.	तहसील का नाम	जनसंख्या	पुरूष	महिला	प्रतिशत
1.	चारामा	50,754	24,646	26,108	65.293
2	भानुप्रतापपुर	59,896	29,210	30,680	92.21
3.	दुर्गकोंदल	61,951	30,205	31,746	50.10
4.	कांकेर	61,951	30,205	31,746	86.071
5.	नरहरपुर	72,919	35,638	37,281	114.05
6.	अंतागढ़	60,248	29,936	30,312	118.99
7.	कोयलीबेड़ा (पखांजूर)	59,752	30,000	29,752	48.186
योग		**4,14,770**	**2,03,934**	**2,10,836**	

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

सारणी क्रमांक–02 : कांकेर जिले में शिक्षा–व्यवस्था

Sr.No.	Name of CD Block	Total number of inhabited villages	Type of educational institutions available			
			No school	At least one primary school and no middle school	At least one primary school and one middle school	At least one middle school and one secondary school
1	2	3	4	5	6	7
1	0115-CHARAMA	97	1	23	73	21
2	0116-DURGKONDAL	150	8	79	63	12
3	0117-BHANUPRATAPPUR	110	1	44	65	14
4	0118-KANKER	100	3	33	64	17
5	0119-SARANA(NARHARPUR)	118	2	35	81	19
6	0120-ANTAGARH	189	12	106	71	10
7	0121-KOYALIBEDA	299	18	164	117	24
	Total	**1063**	**45**	**484**	**534**	**117**

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

सारणी क्रमांक–03 : कांकेर जिले में कार्यशील जनसंख्या

Name of Sub-district	Persons/ Males/ Females	Total population	Main workers		Marginal workers		Total workers (main and marginal morkers)		Non workers	
			Number	Percentage	Number	Percentage	Number	Percentage	Number	Percentage
2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
03348-Charama	Persons	106462	43634	40.99	16296	15.31	59930	56.29	46532	43.71
	Males	52163	25626	49.13	6031	11.56	31657	60.69	20506	39.31
	Females	54299	18008	33.16	10265	18.90	28273	52.07	26026	47.93
03349-Bhanuprata ppur	Persons	94937	40198	42.34	7075	7.45	47273	49.79	47664	50.21
	Males	46855	24375	52.02	2389	5.10	26764	57.12	20091	42.88
	Females	48082	15823	32.91	4686	9.75	20509	42.65	27573	57.35
03350-Durgkondal	Persons	64293	25175	39.16	11973	18.62	37148	57.78	27145	42.22
	Males	32211	15363	47.69	3994	12.40	19357	60.09	12854	39.91
	Females	32082	9812	30.58	7979	24.87	17791	55.45	14291	44.55
03351-Kanker	Persons	123650	45470	36.77	17898	14.47	63368	51.25	60282	48.75
	Males	61180	29021	47.44	6790	11.10	35811	58.53	25369	41.47
	Females	62470	16449	26.33	11108	17.78	27557	44.11	34913	55.89
03352-Narharpur	Persons	110424	40759	36.91	22609	20.47	63368	57.39	47056	42.61
	Males	53931	24875	46.12	7586	14.07	32461	60.19	21470	39.81
	Females	56493	15884	28.12	15023	26.59	30907	54.71	25586	45.29
03353-Antagarh	Persons	78175	26147	33.45	15603	19.96	41750	53.41	36425	46.59
	Males	39040	16174	41.43	5904	15.12	22078	56.55	16962	43.45
	Females	39135	9973	25.48	9699	24.78	19672	50.27	19463	49.73
03354-Pakhanjur	Persons	171000	64153	37.52	12369	7.23	76522	44.75	94478	55.25
	Males	87958	44468	50.56	4917	5.59	49385	56.15	38573	43.85
	Females	83042	19685	23.70	7452	8.97	27137	32.68	55905	67.32
District: Uttar Bastar Kanker (413)	Persons	748941	285536	38.13	103823	13.86	389359	51.99	359582	48.01
	Males	373338	179902	48.19	37611	10.07	217513	58.26	155825	41.74
	Females	375603	105634	28.12	66212	17.63	171846	45.75	203757	54.25

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

सारणी क्रमांक–05 : कांकेर जिले में साक्षर–जनसंख्या

Sr.No.	Name of Sub-district	Total/ Rural/ Urban	Number of literates and illiterates				Literacy rate		Gap in male-female literacy rate			
			Number of literates			Number of illiterates						
			Persons	Males	Females	Persons	Males	Females	Persons	Males	Females	
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
1	03348-Charama	Total	73403	40456	32947	33059	11707	21352	77.44	87.55	67.82	19.73
		Rural	66394	36753	29641	30361	10678	19683	76.95	87.34	67.06	20.28
		Urban	7009	3703	3306	2698	1029	1669	82.39	89.68	75.51	14.17
2	03349-Bhanupratappur	Total	58779	32943	25836	36158	13912	22246	71.4	81.42	61.72	19.7
		Rural	52249	29522	22727	34563	13295	21268	69.59	80.06	59.49	20.57
		Urban	6530	3421	3109	1595	617	978	90.17	95.48	84.97	10.51
3	03350-Durgkondal	Total	34174	20018	14156	30119	12193	17926	62.62	73.37	51.87	21.5
		Rural	34174	20018	14156	30119	12193	17926	62.62	73.37	51.87	21.5
		Urban	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
4	03351-Kanker	Total	84782	46596	38186	38868	14584	24284	77.36	86.11	68.83	17.28
		Rural	55265	31342	23923	30943	11417	19526	72.5	82.97	62.21	20.76
		Urban	29517	15254	14263	7925	3167	4758	88.48	93.36	83.79	9.57
5	03352-Narharpur	Total	67747	37927	29820	42677	16004	26673	69.24	79.84	59.24	20.6
		Rural	64400	36181	28219	41515	15530	25985	68.62	79.41	58.44	20.97
		Urban	3347	1746	1601	1162	474	688	83.84	89.77	78.21	11.56
6	03353-Antagarh	Total	38566	22891	15675	39609	16149	23460	59.29	70.39	48.2	22.19
		Rural	33598	20120	13478	37800	15512	22288	56.91	68.27	45.59	22.68
		Urban	4968	2771	2197	1809	637	1172	82.7	90.85	74.3	16.55
7	03354-Pakhanjur	Total	98591	57467	41124	72409	30491	41918	68.14	76.98	58.72	18.26
		Rural	90779	53127	37652	70020	29461	40559	66.9	75.99	57.24	18.75
		Urban	7812	4340	3472	2389	1030	1359	86.86	91.64	81.54	10.1
	District: Uttar Bastar Kanker(413)	Total	456042	258298	197744	292899	115040	177859	70.29	80.03	60.64	19.39
		Rural	396859	227063	169796	275321	108086	167235	68.34	78.58	58.19	20.39
		Urban	59183	31235	27948	17578	6954	10624	86.9	92.46	81.43	11.03

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

किसी जनसंख्या की साक्षरता संपूर्ण जानकारी का दपर्ण होता है। जहॉ साक्षरता का उच्च–स्तर जनसंख्या के जीवन के उच्च स्तर को बताता है। इसलिए जनांकिकी के अध्ययन के लिए शिक्षा एवं साक्षरता एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कारक है। शिक्षा का सीधा संबंध उसके जनन व्यवहार से होता है। उच्च शिक्षित परिवार का छोटा आकार और अशिक्षित परिवार का बड़ा आकार उनके जनन व्यवहार के कारण होता है। आर्थिक–सामाजिक मूल्यों को शिक्षा प्रभावित करती है। कांकेर जिले में विभिन्न आयु वर्गों में 55.4 प्रतिशत जनजाति साक्षरता है वहीं अध्ययन से स्पष्ट होता है ग्रामीण क्षेत्र में महिलायें 58.19 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 81.43 प्रतिशत है। इस प्रकार कुल जनजातीय जनसंख्या में महिला साक्षरता 60.64 प्रतिशत है। परिणामस्वरूप महिलायें कार्यशील जनसंख्या में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। प्रायः जनजाति कांकेर जिल–तहसील के गांवों में निवासरत है। इसमें जनसंख्या के आधार पर गांवों का चयन कर 425 परिवारों को न्यादर्श निवास कर रहें जनजातियों को आधार मानकर अध्ययन किया गया है। कुल जनसंख्या 1800 उसमें 884 पुरुष और 916 महिलायें रहती है। 0–6 आयु वर्ग के बच्चे 212 कुल जनसंख्या 11.78 प्रतिशत है। लिगानुपात 1036 व साक्षरत दर 72.80 प्रतिशत है।

वितरण–छत्तीसगढ़ में लगभग 42 जनजातियां एवं उपसमुह विभिन्न भागों में निवास करती है। सामान्य रूप से जनजाति पूरे भारतवर्ष में पाई जाती है।.

आर्थिक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी–जनजातिय महिलायें सूर्योदय से ही खेतों में काम करती है तो घरेलु कामकाज, मजदूरी तथा स्थानीय बाजार में वनोपज बेचने का काम करती है। इन परिवारों के पास भूमि स्वामित्व कम है, भूमि उपजाऊ नहीं है। महिलायें खेत में मजदूरी करती है। इसके अलावा बांस के लठठों से ठोकरी, मिट्टी के घड़े बनाती हैं। परिवार की अर्थव्यवस्था का अधिकांश भाग इन महिलाओं की अर्जित आय पर निर्भर करता है। किसी भी समाज के सामाजिक, आर्थिक स्थिति को उसकी आय तथा जीविकोपार्जन प्रभावित करती है। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जनजातियां वनों पर निर्भर रहती है। बांस जैसे वृक्ष से आदिकाल से अब तक घर बनाते आ रहे है। बांस के ऊपर मिट्टी छाब देते हैं। जिससे इसमें मजबूती आती है। महुआ वृक्ष बहुत ही पसंदीदा वृक्ष है। जिससे वे पेय पदार्थ निकालते है और उसे बेचकर आम प्राप्त करते हैं। और विशेष अवसर पर ''पेय मंद'' तैयार करते है। ''कोसा'' का भी संग्रहण करके स्थानीय घर बाजार में आयें व्यापारियों को बेचते हैं। साल तेंदूपत्ता संग्रहण कर बेचा जाता है। चिरोंजी, शहद, सरई के पत्तों, पलास, लाख, गोंद आदि का उपयोग अपनी रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा कर विक्रय भी करते हैं। जनजातियां आज भी मिट्टी के बर्तन तथा खाने के लिए पेड़ों से प्राप्त पत्तों को दोने पत्तें का आकार देकर इस्तेमाल करती है। जनजाति में अनेक वन्य वृक्षों का प्रयोग विभिन्न प्रकार बीमारियों के औषधियों के रूप में भी करते हैं। जैसे काली मुसली, सफेद मुसली, चिरायता आदि इनका निजी उपयोग के साथ–साथ विक्रय भी करते हैं। वनवृक्षों को छालों से ये रस्सी का निर्माण करते है। इसके अतिरिक्त इमली, आंवला, बेहड़ा बीज, कुसुम आदि संग्रहणकर विक्रय करके आय के हिस्सों के स्रोत बनाते हैं। इन सब कार्यों में महिलाओं की सहभागिता अधिक रहती है।

निष्कर्ष–विश्लेषण के आधार पर जनजातियों में इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि जनजातीय परिवारों में 10–15 प्रतिशत एकांकी परिवार है क्योंकि ये परिवार प्रायः शिक्षित होती जा रही हैं और आधुनिकता से जुड़ रही है ऐसे परिवारों में स्त्रियों की स्थिती बहुत अच्छी होती है व अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के साथ जिम्मेदारी पूर्ण आर्थिक कार्यों का निष्पादन सलंग्न रहकर करती है। मौसमी उतार–चढ़ाव के कारण फसल अच्छा न होने पर ये महिलायें देशांतरण कम करती है। और घर पर रहकर ही वनों से प्राप्त चीजों का विक्रयकर आर्थिकोपार्जन कर घर चलाती है। जैसे – झाड़ू, निर्माण, मिटटी के बर्तन, बांस के बने शिल्प बनाती है। घरेलू कार्यों में कार्यशील तथा अकार्यशील आयु वर्ग की स्त्रियां संलग्न होकर करती रहती है जिनसे इनके परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता बनी रहती है। आर्थिक संरचना मुख्यतः कृषि व जंगली उपज पर निर्भर है इस कारण यें वनों पर अधिक आश्रित है इससे संबंधित क्रियाकलापों का निष्पादन समयानुसार करते रहते हैं। अध्ययन से स्पष्ट है कि जिला–कांकेर में जनजातिं स्त्रियों की स्थिति अच्छी होती जा रही है। वर्तमान में कई नवयुवतियां शिक्षण प्राप्त कर नौकरी में आ रहे है और उनसे उनके परिवार की आर्थिक स्थिति में निरंतर सुधार हो रहा है।

संदर्भ एवं ग्रंथ सूची

1. एल्विन वेरियर (1991) : द अगारिमा वन्य प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 58–59
2. त्रिपाठी के. एच. चन्द्राकर 2001 : छत्तीसगढ़ का भूगोल शारदा प्रकाशन बिलासपुर भाग 1 पृ. 79–80
3. मिश्र, जे.पी. (2003) : जनांकिकी, साहित्य भवन, पब्लिकेशन आगरा पृ. 77
4. तिवारी, बी. के. (2001) : छत्तीसगढ़ की जनजातियां ''हिमालया पब्लिसिंग हाउस पृ. 44–45
5. Census to India (2011) : Chhatishgarh at the Galance.
6. Ministrey of Tribal Development M.P. Govt. Sub Plan : 2005 p-1
7. जैन, श्रीचन्द्र (1980) : ''आदिवासियों के बीच'' कमल प्रेस, दिल्ली पृ. 37–39

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 162-164

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के रुचियों एवं व्यावसायिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन

जनार्दन यादव डॉ. नीता तिवारी***

किसी भी व्यक्ति के जीवन में सफलता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। व्यक्ति अपनी शिक्षा किसी न किसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही प्राप्त करता है। प्रायः बालक अपने जीवन का जो भी लक्ष्य तय करता है उसमें उसके माता–पिता, परिवार के सदस्य, उसके गुरुजन, उसकी रुचियां, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, अभिवृत्ति, व्यक्तिगत मूल्यों का प्रभाव होता है। कोई भी व्यक्ति अपने मिलने वाली सफलता को किस दृष्टि में स्वीकार करता है इसके अतिरिक्त अन्य परिस्थितियों तथा बालक के घर पास पड़ोस या उसके व्यक्तित्व पर भी निर्धारित होता है। मानव जीवन सभी रूपों में सर्वश्रेष्ठ हैं। अनेक प्रकार के मूल्यों से आत्मसात मानव जीवन में व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव रहता है। यह व्यक्तित्व मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करते हैं तथा उनके आधार पर वह अपने जीवन के लिए लक्ष्य तय करते हैं और अपनी व्यवसायिक आकांक्षाओं का भी निर्माण करते हैं। अतः शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया का केंद्र बिंदु होता है और उसके अंदर रुचियां एवं व्यवसायिक आकांक्षा का क्या स्तर है इसको पहचानने की आवश्यकता है, जिसके आधार पर वह अपनी शिक्षण को प्रभावशाली बनाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के रुचियों एवं व्यवसायिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

रुचि व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व की एक अत्यंत महत्वपूर्ण बीमा है। रंग–रूप, शारीरिक गठन, मानसिक योग्यता, स्वभाव, आचार–विचार, अभिवृत्ति, बुद्धि इत्यादि की तरह रुचियों में भी व्यक्तिगत विभिन्नता में पाई जाती है। इसके साथ विभिन्न विषयों, प्रकरणों, व्यक्तियों, वस्तुओं, क्रियाओं, व्यवसाय आदि के प्रति व्यक्त की रुचियां भिन्न–भिन्न होती हैं। कोई व्यक्ति प्रशासनिक अधिकारी बनना चाहता है तो कोई डॉक्टर, कोई इंजीनियर तो कोई वकील, कोई व्यवसायिक उद्यमी बनने का इच्छुक होता है। किसी व्यक्ति को गणित अच्छा लगता है तो किसी को इतिहास,किसी को दूरदर्शन देखने की। इस प्रकार व्यक्ति की रुचियां अलग–अलग होती हैं। यही कारण है कि शैक्षिक एवं व्यवसायिक परामर्श और निर्देशन प्रदान करते समय इन सब चीजों को ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। पढ़ाते समय रुचियों का ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए एक अच्छा शिक्षक वही है जो छात्रों की रुचियों को ध्यान में रखकर कार्य करता है। इस प्रकार शोध के माध्यम से शिक्षकों की रुचियां को जानने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान समय में व्यवसाय चयन एक महत्वपूर्ण विषय है। आर्थिक दृश्टि से हो या समाज कल्याण या राष्ट्र के हित में हो, किसी भी व्यक्ति के काम करने की मात्रा एवं उस कार्य को सोचने की मात्रा उसके आकांक्षा स्तर पर आधारित होता है। किसी व्यक्ति के व्यवसाय के प्रति जो आकांक्षा है उसे ही हम व्यवसायिक आकांक्षा कहते हैं। व्यक्ति का जीवन निर्माण आकांक्षा स्तर द्वारा प्रभावित होता है। एक व्यक्ति क्या करना चाहता है वह इस दिशा में कितना प्रयास और सफलता प्राप्त करना चाहता है यह उस व्यक्ति के आकांक्षा स्तर पर निर्भर करता है। यही कारण है कि व्यवसायिक आकांक्षा स्तर व्यक्ति के लक्ष्य को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। आज के वर्तमान युग में व्यवसायिक आकांक्षा पूरी तरह से विद्यालयों पर आधारित हो गई है और विद्यालय में जिस व्यक्ति के ऊपर आधारित है वह शिक्षक है। शोध के माध्यम से यह भी जानने की प्रयास किया गया है कि व्यवसायिक आकांक्षा शिक्षक अपने छात्रों के अंदर किस प्रकार से विकसित करता है। इस प्रकार शोधकर्ता ने पाया कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की रुचियों एवं व्यवसायिक आकांक्षा का अध्ययन न के बराबर हुआ है। इसी क्रम में शोधकर्ता ने समस्या के चयन हेतु और उपरोक्त शोध को समस्या की चुनौती के रूप में स्वीकार किया।

* *शोध छात्र, शिक्षक शिक्षा विभाग, कुटीर पी.जी. कॉलेज, चक्के, जौनपुर*

** *असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, कुटीर पी.जी. कॉलेज, चक्के, जौनपुर*

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण–खान (2007) उन्होंने दिल्ली के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं की व्यवसायिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन किया। इस शोध का उद्देश्य शासकीय स्कूलों तथा अर्ध शासकीय स्कूलों के छात्रों एवं छात्राओं की व्यवसायिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन करना तथा भविष्य की कैरियर संबंधी योजनाओं का अध्ययन करना था। इससे यह निष्कर्ष निकला कि–

1. किशोरावस्था के दौरान छात्र व्यवसायिक आकांक्षा को लेकर बहुत तरीके से सोचता है तथा व्यवसाय को लेकर वह भविष्य की योजना बनाना शुरू कर देता है।

2. माता–पिता तथा शिक्षक उसके व्यवसायिक आकांक्षा के स्तर को उठाने तथा उसके कैरियर संबंधी योजना को भी पूरा करने में विषय भूमिका निभा सकते हैं।

गुप्ता एवं शर्मा (2015) ने अपने शोध पत्र में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान एवं वाणिज्य समूह के छात्रों की व्यवसायिक आकांक्षाओं का अध्ययन किया शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य छात्रों की व्यवसायिक आकांक्षाओं का अध्ययन करना है क्योंकि उचित व्यवसाय के चयन हेतु व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता होती है। इस अध्ययन हेतु ग्वालियर शहर के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के केवल 11वीं कक्षा के विज्ञान समूह व वाणिज्य समूह के छात्रों का चयन किया गया है। अध्ययन में पाया गया कि विज्ञान समूह के छात्रों और वाणिज्य समूह के छात्रों की व्यवसायिक आकांक्षा स्तर में अंतर पाया जाता है।

ए.के. सिंह (2016) ने स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की वाणिज्यिक व्यवसायिक आकांक्षा पर दूरदर्शन द्वारा प्रसारित सामाजिक पृष्ठभूमि के कार्यक्रमों के प्रभाव का अध्ययन किया। जिसके लिए 100 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चुनाव किया। अपने अध्ययन में आप ने पाया कि यदि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों को अभिभावकों के उचित निर्देशन में टीवी कार्यक्रमों को दिखाया जाता है तो विद्यार्थियों की वाणिज्यिक व्यवसायिक आकांक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

कमला ए. (1981) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्रों के आत्म संप्रत्यय, समायोजन, अभिरुचि व अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन किया। जिसके निष्कर्ष निम्नलिखित प्राप्त हुए–

1. सामाजिक आर्थिक स्तर के शहरी विद्यार्थी निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के उज्ज्वल संप्रत्यय रखते हैं।

2. शहरी क्षेत्रों से संबंधित अनुसूचित जाति के निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों का समायोजन स्तर औसत से नीचे पाया गया।

3. ग्रामीण व शहरी दोनों क्षेत्रों से संबंधित अनुसूचित जाति के छात्रों को समायोजन की कोई समस्या नहीं थी।

4. विद्यार्थियों द्वारा विज्ञान, चिकित्सा एवं तकनीकी के क्षेत्र में विशेष रुचि दिखाई दी तथा इनकी रुचियां उनके सामाजिक स्तर से संबंधित थी।

भारद्वाज, एस. बी. एल. (1982) ने उत्तर प्रदेश के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के भावी अध्यापकों की व्यवसायिक रुचि का अध्ययन किया और पाया कि भावी पुरुष और महिला अध्यापकों ने उच्च स्तर पर पीढ़ीगत, सामाजिक, वैज्ञानिक एवं सौंदर्य संबंधी विषयों में रुचि दिखाई तथा न्यूनतम स्तर पर यांत्रिकी एवं व्यापारिक विषयों में रुचि प्रकट की तथा माध्यम स्तर पर बाह्य विषयों में रुचि प्रकट की। भावी अध्यापकों का नमूना व्यवसायिक विषयों की रुचियों में विशेष रूप से भिन्न तथा इसका निर्धारण लंबे पैमाने तथा मध्यम एवं पशु चिकित्सा नमूनों के व्यवसाय का भाषण से होता है। उदीयमान पुरुष एवं महिलाओं के नमूने अध्यापक जो वाणिज्य, विज्ञान, स्वतंत्र कला एवं सामाजिक विज्ञान आदि शैक्षिक भूमिका वाले थे उनमें आपस में आश्चर्यजनक रूप से भिन्नता पाई गई तथा यह प्रतीत होता है कि कुछ सामाजिक अभिरुचियों तथा निम्न लिपिकीय एवं वाणिज्यीक रुचियां अध्यापकों को जो विभिन्न शैक्षिक भूमिका वाले थे उन्हें आपस में जोड़ती है। भावी अध्यापकों के नमूनों में उनकी अभिरुचि मे भिन्नता थी। शैक्षिक एवं व्यवसायिक अभिरुचि में आपसी टकराव थी। सेवा अभिरुचियों के उदीयमान पुरुष शिक्षकों एवं महिला शिक्षिकाओं सामान्य रूप से एक ही विचारधारा को प्रस्तुत करते हैं। व्यवसाय का स्तर पर बहुत अधिक व्यक्तिगत विभिन्नता दिखाई पड़ी तथा भिन्नता भावी अध्यापकों के नमूनों में महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में ज्यादा दिखाई पड़ी। पुरुषों में बाह्य अभिरुचि तथा महिलाओं के सौंदर्य के प्रति अभिरुचि तथा महिलाओं के सौंदर्य के प्रति रुचि पुरुषत्व एवं नारीत्व को प्रधान रूप से प्रकट करती हैं।

समस्या कथन–माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के रुचियों एवं व्यवसायिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन।

शोध अध्ययन के उद्देश्य–शोधकर्ता ने अपने अध्ययन के उद्देश्य के रूप में निर्धारित किया है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के रुचियां एवं व्यवसायिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना–माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की रुचियों एवं व्यवसायिक आकांक्षा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध का सीमांकन–प्रस्तुत शोध कार्य उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद के लालगंज तहसील के माध्यमिक स्तर के अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों पर किया गया है। निवास क्षेत्र के आधार पर 100 शिक्षकों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है।

जनसंख्या–आजमगढ़ जनपद के लालगंज तहसील के माध्यमिक स्तर के समस्त अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालय के शिक्षक अध्ययन की जनसंख्या के रूप में हैं।

न्यादर्श एवं या दर्शन तकनीकी–आजमगढ़ जनपद के लालगंज तहसील के माध्यमिक स्तर के 100 शिक्षक शोध के न्यादर्श के रूप में चयनित किए गए हैं।

शोध के उपकरण–प्रस्तुत अध्ययन में रुचियों एवं व्यवसायिक आकांक्षा का मापन करने के लिए शोधकर्ता ने स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची एवं प्रश्नावली अनुसूची का प्रयोग किया है।

प्रयुक्त सांख्यिकी तकनीकी–प्रस्तुत अध्ययन में मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, व सी. आर. वैल्यू की गणना की गई है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की रुचियां व व्यवसायिक आकांक्षा सारणी

समूह	शिक्षकों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	सी० आर० वैल्यू
शहरी शिक्षक	50	44.40	10.87	4.84	2.96
ग्रामीण शिक्षक	50	58.72	20.48	4.84	2.96

विश्लेषण सारिणी को देखने से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के 50 शहरी शिक्षकों की रुचियां एवं व्यवसायिक आकांक्षा का मध्यमान 44.40 मानक विचलन 10.87 मानक त्रुटि 4.84 तथा सी. आर. वैल्यू 2.96 है व 50 ग्रामीण शिक्षकों की रुचियां व व्यवसायिक आकांक्षा का मध्यमान 58.72 मानक विचलन 20.48 तथा मानक त्रुटि 4.84 और सी. आर. वैल्यू 2.96 प्राप्त हुई जो डी0एफ0 48 के .05 स्तर पर प्राप्त मान 2.01 से बहुत अधिक है। जिसके आधार पर पूर्व निर्मित शून्य परिकल्पना माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के रुचियां एवं व्यवसायिक आकांक्षा में कोई सार्थक अंतर नहीं है निरस्त हो जाती है। जिसका संभवतः कारण यह है कि माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण शिक्षकों की अपेक्षा शहरी शिक्षकों की रुचियां एवं व्यवसायिक आकांक्षा अधिक पाई जाती है। जिससे उनकी रुचियाँ एवं व्यवसायिक आकांक्षा अधिक प्रभावशाली होती हैं।

शोध निष्कर्ष–प्रस्तुत अध्ययन द्वारा निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि माध्यमिक स्तर पर शहरी शिक्षकों के रुचियां एवं व्यवसायिक आकांक्षा ग्रामीण शिक्षकों की अपेक्षा अधिक है।

शैक्षिक निहितार्थ–माध्यमिक शिक्षा शैक्षिक संरचना की बीच की कड़ी है अतः देश के भावी कर्णधार माध्यमिक विद्यालयों में ही बनते और बिगड़ते हैं। माध्यमिक स्तर के शिक्षकों का यह पूरा दायित्व है कि वह अपने छात्रों में रुचियां जागृत करें जिससे बच्चें अधिक से अधिक सीख सकें तथा उनके व्यवसायिक आकांक्षा को उच्चतम स्तर तक पहुंचाने का कार्य करें। यह समस्त कार्य पूरी तरह से शिक्षण व्यवसाय पर ही निर्भर है और शिक्षण व्यवसाय को संचालित करने वाला जो व्यक्ति है वह शिक्षक है यदि शिक्षक उनकी रुचि और व्यवसायिक आकांक्षाओं को उच्चतम स्तर पर पहुंचा कर अपना कार्य करेगा तो निश्चित रूप से देश के भावी नौनिहालों में अधिकतम विकास हो सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कपिल, एच.के. (2008), सांख्यिकी के मूल तत्व, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
2. गुप्ता, एस.पी. (2004), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।
3. गुप्ता, एस.पी. (2008), सांख्यिकी विधियां, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।
4. गैरेट, हेनरी (1956), शिक्षा मनोविज्ञान में सांख्यिकी, कल्याणी पब्लिशर्स नई दिल्ली।
5. सिंह अरुण कुमार (2016), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स पटना।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 165-168

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

महिला समाख्या संगठन द्वारा महिला शिक्षा की दिशा में किए गए योगदान का अध्ययन

*विकास सिंह** *डॉ. श्रद्धा सिंह***

सारांश : वर्तमान समाज उन्हीं व्यक्तियों को शिक्षित मानता है, जिन्होंने मुख्यधारा में रहकर पढ़ाई की हो अर्थात जिसके पास प्रमाण पत्र उपलब्ध हो लेकिन महिला समाख्या कार्यक्रम ने शिक्षा को नए आयाम से परिभाषित करते हुए शिक्षा के व्यवहारिक रूप को देखा और कहा कि शिक्षित व्यक्ति वह है जो सशक्त हो, तर्कशील हो, जिसके पास सोचने समझने की शक्ति हो और जो निर्णय लेने में सक्षम हो। इनका मानना है कि महिलाओं के पास भले ही किताबी शिक्षा कम हो लेकिन व्यवहारिक शिक्षा अवश्य हो। जो इन में आत्मसम्मान का संचार करें, तभी वो सशक्त हो पाएंगी। एक महिला सुबह से लेकर शाम तक अनेक ऐसे कार्य करती है जिनके लिए उनके पास कोई प्रमाण पत्र है और ना ही उन्हें कोई प्रशिक्षण दिया गया है। फिर भी वह उन समस्त कार्यों को पूरी निपुणता से करती हैं, इसके बावजूद उन्हें कम अक्ल, तर्क हीन, बुद्धिहीन माना जाता है स्वयं महिलाएं भी अपने बारे में ऐसा ही सोचती हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में महिला समाख्या संगठन द्वारा महिला शिक्षा की दिशा में किए गए योगदान का अध्ययन किया गया है।

आधुनिक वैश्विक समाज में पुरुष तथा महिला को एक ही गाड़ी के दायें व बाएं दो पहियों के समान माना जाता है स इनमे से किसी भी एक पहिये के ठीक न होने पर इस सांसारिक गाड़ी का सर्वोत्तम ढंग से आगे बढ़ना कदापि सम्भव नहीं हो सकता है। आज सम्पूर्ण विश्व की महिलाओं ने अपने अधिकारों के प्रति अलख जगा दिया है। वे अपने बौद्धिक योग्यता तकनीकी सामर्थय एवं तार्किक विवेक से पुरुषों को चमत्कृत कर रही है। पुत्री, पत्नी तथा माता के रूप में अपने दायित्व के सम्यक निर्वहन के साथ–साथ वे मानव कल्याण की दिशा में अपना योगदान करने के लिए कृत संकल्पित प्रतीत होती है। निःसंदेह किसी भी मानव समाज में महिलाओं की भूमिका अत्यंत सार्थक होती है एवं किसी राष्ट्र की भावी पीढ़ी को संस्कारयुक्त बनाने का महत्वपूर्ण कार्य घर से ही प्रारंम्भ होता है। प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में तो महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार तथा उत्तरदायित्व प्राप्त है। महिलाओं के सामर्थ्यवान न होने पर समाज का विकास कार्य विकृत हो सकता है जबकि महिलाओं के सामर्थ्यवान होने पर कोई भी समाज द्विगुण गति से प्रगति के पथ पर आगे बढ़ सकता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 में जहाँ लिंगभेद के आधार पर पुरुषों व महिलाओं में विभेद करने का प्रतिबंध किया गया है, वही महिलाओं की परिस्थिति में सुधार लाने के लिए प्रयास करने की बात कही गई है। इस परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण की दिशा में समुचित ढंग से प्रयास करने की आवश्यकता का औचित्य स्पष्ट है।

स्त्री और पुरुष एक ही प्रजाति के प्राणी है और उनमे जैविक व प्राकृतिक विभिन्नता केवल प्रजनन हेतु है अन्यथा प्रत्येक दृष्टि व प्रत्येक कोण से समान है स शुरू से ही कुछ इस तरह के जैविक लक्षण और इच्छाएं उत्पन्न हुई, जिससे दोनों वर्गों का सम्पर्क एक–दुसरे की जरुरत बन गये। स्त्री व पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक है अतरू वे एक दूसरे पर परस्पर निर्भरता को बनाये हुए है परन्तु व्यक्ति के रूप में जैसे पुरुष आत्मनिर्भर है वैसे स्त्री भी स महिलाओं के सामाजिक शक्तिकरण के रूप में महिलाओं को समाज में व्याप्त पुरुषवादी मानसिकता से छुटकारा दिलाकर उन्हें सम्मान जनक व समतायुक्त स्थान दिलाना होगा। समाजिक प्रौद्योगिकी के माध्यम से महिलाओं के प्रति परम्परागत अन्धविश्वास, शोषण, यौन भेदभाव, आर्थिक निर्भरता, रोजगार, नकारात्मक तथा अशिक्षा प्रवृति आदि का निराकरण करना होगा। महिलाओं के प्रति स्वस्थ्य समाजिक दृष्टिकोण को विकसित करना होगा।

* *शोध छात्र, तिलकधारी महाविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.*

** *एसोसिएट प्रोफेसर, तिलकधारी महाविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.*

राजनैतिक सशक्तिकरण का निहितार्थ न केवल राजनीति में महिलाओं के प्रतिभाग को पुरुषों के समकक्ष लाना है वरन राजनैतिक शासन व्यवस्था के स्तर पर बनाये गए नीतियों व सरकारी अधिनियमों, परिनियमों व अध्यादेशों व निर्णयों आदि के माध्यम से महिलाओं की परिस्थिति में सुधार लाना है। महिलाओं से आर्थिक सशक्तिकरण के द्वारा इनकी वैयक्तिक आर्थिक स्थिति का उन्नयन करने, उन्हें धनार्जन के पर्याप्त अवसर प्रदान करने और आर्थिक मुद्दों पर अपनी राय देने व निर्णय लेने का अधिकार प्रदान किया जाना अपेक्षित है। शैक्षिक सशक्तिकरण को निःसंदेह महिला सशक्तिकरण के सभी आयामों का आधार कहा जा सकता है जिसके द्वारा महिलाओं को शिक्षित करके विभिन्न क्षेत्रों में उन्हें क्रियाशील, विवेकशील तथा प्रभावशील बनाना सम्भव हो सकता है।

महिला समाख्या संगठन एवं उसके द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किए गए कार्यों का अध्ययन न के बराबर है। महिला सामाख्या संगठन को देखने के पश्चात शोधकर्ता ने विचार किया कि यह शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार से अपना योगदान कर रही है। अपने शोध के माध्यम से इसकी जानकारी प्राप्त किया जाय। इसको अपनी शोध समस्या के चुनौती के रूप में स्वीकार किया।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण

1. अवधेश कुमार सिंह (2012) ने अपनी पुस्तक ''Violence Against Women" में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को सर्वव्यापी माना है जो कि भारतीय समाज में भी व्याप्त है तथा भारतीय समाज में इसने प्राचीन काल से अपनी जड़ें जमा रखी है। भारतीय पैनल कोड के अनुसार बलात्कार, अपहरण, आत्महत्या व दहेज के लिए प्रताड़ित करना, छेड़छाड़, लड़कियों को खरीदने व बेचने को अपराध माना गया है। भारत में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को रोकने के लिए कानून बनाये गए है। इस पुस्तक में महिलाओं की इन सभी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

2. श्रीमती प्रीति सतपथी (2014) प्राध्यापिका सौ कुसुमलाई दाब के विधि महाविद्यालय रायपुर (छतीसगढ़) के द्वारा किया गया अध्ययन "महिलाओं के संवैधानिक एवं विधिक अधिकार का विश्लेषणात्मक अध्ययन के द्वारा रायपुर जिले में महिलाओं के सभी कानूनी राय देने तथा कानूनी दृष्टि से महिलाओं के प्रति अपराध को रोकने के प्रति बनाये गए अधिनियमों तथा अधिकारों की विवेचना प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है।

3. व्यास, आशुतोष (2014) ने सामाजिक व प्रशासनिक संरचना के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की गुणवत्ता सहभागिता का अध्ययन" पर बताया की भारतीय संविधान में महिलाओं को स्वतंत्रता व समानता का अधिकार प्राप्त है। समाज में प्रचलित मूल्य व प्रतिमान महिलाओं के सशक्तिकरण में अवरोध बने हुए है। अतः महिला सशक्तिकरण अत्यंत आवश्यक है। जनजातीयों में नारी समता के प्रश्न, राजनितिक भागीदारी, नारी चैतन्यता, महिलाओं के प्रति हिंसा का सवाल, युवा पीढ़ी का नारीवादी आन्दोलन के पक्ष सम्मिलित है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप नारीवादी चिंतन और नारीवादी आन्दोलन वैश्विक आन्दोलन के नारी के बदलते प्रतिमान स्थानीय भी है और वैश्विक भी। कानून, योजना और आन्दोलन इन तीनों ने ही वैश्विक स्तर पर नारीवादी परिस्थितियों में सुधार किया है।

4. गोबिंद शर्मा (2015) के अध्ययन "बिहार राज्य में सम्पूर्ण स्वच्छता" अभियान में महिलाओं के योगदान का अध्ययन" में बिहार राज्य में सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान को सफल बनाने में सरकारी विभागों तथा गैर सरकारी संस्थाओं की भागीदारी है। बिहार शिक्षा परियोजना द्वारा गठित महिला समाख्या समूह के स्वच्छता अभियान के कार्यों का अध्ययन किया गया है।

समस्या का शीर्षक–महिला समाख्या संगठन द्वारा महिला शिक्षा की दिशा में किए गए योगदान का अध्ययन।

अध्ययन के उद्देश्य–शोधकर्ता ने अपने अध्ययन के उद्देश्य के रूप में निर्धारित किया है कि महिला सामाख्या संगठन द्वारा महिला शिक्षा की दिशा में किए गए योगदान का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिसीमा–महिला सामाख्या उत्तर प्रदेश को एक इकाई के रूप में अध्ययन किया गया है तथा महिला समाख्या द्वारा महिला शिक्षा की दिशा में किए गए कार्यों को गहराई से अध्ययन करने के लिए उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद का निरिक्षण किया गया है।

जनसंख्या–शोधकर्ता द्वारा अपने अध्ययन की समस्या के अनुरूप प्रस्तुत शोध के लिए जनसंख्या के अंतर्गत उत्तर प्रदेश में कार्यरत महिला सामाख्या संगठन इकाईयां आती हैं।

न्यादर्श एवं न्यादर्शन तकनीकी–शोधकर्ता ने अपने अध्ययन में न्यादर्श के रूप में महिला सामाख्या कार्यक्रम उत्तर प्रदेश के वाराणसी जनपद का यादृच्छिक न्यादर्शन विधि से चयन किया है।

शोध उपकरण–शोधकर्ता द्वारा अपने शोध अध्ययन में महिला समाख्या के द्वारा महिला शिक्षा की दिशा में किए गए योगदान का अध्ययन करने के लिए स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची एवं अवलोकन अनुसूची का प्रयोग किया है।

आंकड़ों के विश्लेषण की विधि–इस शोध में आंकड़ों के विश्लेषण के लिए गुणात्मक शोध विश्लेषण तकनीकी का प्रयोग किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–आंकड़ों से प्राप्त शोध निष्कर्ष जो महिला सामाख्या संगठन द्वारा महिला शिक्षा की दिशा में अध्ययन के निष्कर्ष प्राप्त हुए वे इस प्रकार हैं–

विद्यालय नामांकन अभियान–सभी जिलों ने नामांकन अभियान रैली चलाए गए जिससे सफल परिणाम भी मिले। प्रयास किया गया कि नामांकन अपने सही अर्थों में हो। अर्थात् विद्यालयों में बच्चे मात्र सुविधाओं का उपयोग करने जाने वालों के रूप में देखे व समझे वरन् उन्हें अपनी शिक्षा के स्तर को भी बढ़ाने के समस्त मौके मिले। विद्यालयों में अध्यापक व ग्राम प्रधानों से बैठक कर नामांकन अभियान माह जून, जुलाई व अगस्त में चलाए गए एवं प्रयास किया गया कि स्कूल जाने की उम्र के सभी बच्चे विद्यालय जाने वह पढ़ने के लिए आगे बढ़े। संघ सदस्यों द्वारा अभिभावकों की नामांकन की आवश्यकता पर समझ बनाई गई वह विद्यालयों में बच्चों को भेजने में अपनी व अपने आस–पास की जिम्मेदारी ली।

पुस्तकालय–पुस्तकालयों की स्थापना का उद्देश्य ज्ञान व जानकारी को सार्वजनिक करना है। शुरुआत में पुस्तकालयों का विचार किशोरी केंद्रों के संदर्भ में किया गया था क्योंकि यह सोचा गया कि किशोरी केंद्र का सत्र समाप्त होने के पश्चात किशोरियों को सतत् अभ्यास कराने व शिक्षा से जुड़े रहने के लिए रविवार को अनुदेशकों के माध्यम से गांव में पुस्तकें पहुंचाई जाए इसी नियम को धरातल पर उतारने में कई अन्य पहलू मिले जैसे पुस्तकालयों में किशोरियों के अतिरिक्त पुरुष व महिलाएं भी रुचि लेने लगे। अतः महिला सामाख्या द्वारा सभी वर्गों को ध्यान में रखकर पुस्तकालय का संचालन किया जाता जा रहा है।

साक्षरता शिविर–गांव स्तर पर दस–दस दिन के साक्षरता शिविरों का तीन चरणों में आयोजन किया जाता है। इसमें अक्षर ज्ञान से लेकर सभी विषयों की जानकारी दी जाती है। महिलाओं व किशोरियों की साक्षरता जानकारी के स्तर को बढ़ाने के लिए शिविरों के उद्देश्य एवं गतिविधि निम्नलिखित रहती हैं–

1. पांचवी व आठवीं कक्षाओं की बालिकाओं की परीक्षा की तैयारी करवाई जाती है।
2. आवासीय महिला शिक्षण केंद्र के लिए अभ्यर्थियों को तैयार किया जाता है।
3. अक्षर ज्ञान, गिनती एवं हस्ताक्षर करना सिखाया जाता है।

साक्षरता केंद्र–महिलाओं के सशक्तिकरण के दौर में साक्षरता के प्रति उनके रुझान को देखते हुए गांव स्तर पर साक्षरता केंद्रों की स्थापना की गई है। केंद्रों का समय उनकी सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए उनके सहयोग से निश्चित किया गया है। इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि पढ़ाने का कार्य एक ऐसे वातावरण में हो जहां महिलाएं असहजता महसूस न करें इसलिए इसको चलाने वाली संचालिका को सहेली कहा जाता है। महिला साक्षरता केंद्र 18 महीनों के लिए चलाए जाते हैं जिसमें प्रतिभागियों की पढ़ने लिखने की क्षमता विकसित की जाती है। किशोरी केंद्र व महिला साक्षरता केंद्र 2–4 घंटे के लिए चलाए जाते हैं।

बाल केंद्र–यह वह स्थान है जहां बच्चे जाना पसंद करते हैं, वह जगह जहां अनुदेशिकाये सेवा भाव से ओत–प्रोत होकर शिक्षा देती हैं, और अपनी जिम्मेदारियों को कष्टप्रद नहीं समझती, एक ऐसा स्थान जो लोगों की सहभागिता और गतिशीलता का जीवन स्वरूप है। इस भावना के तहत गांव स्तर पर छोटे–छोटे बच्चों की पढ़ाई को ध्यान में रखकर ही बाल केंद्र खोले गए हैं।

किशोरी केंद्र–किशोरियों द्वारा मांग किए जाने पर गांव स्तर पर किशोरी केंद्रों की स्थापना की गई है। इन केंद्रों में उन लड़कियों को भी पढ़ने लिखने का मौका मिला है जो आवासी विद्यालयों में नहीं जा सकी हैं, लेकिन जिन्हें पढ़ने लिखने में रुचि है। यहां पर किशोरियों को साक्षर तो बनाया जाता है साथ ही विभिन्न विषयों जैसे स्वास्थ्य, जेंडर, पंचायत व सामान्य रीति–रिवाजों की भी उन्हें जानकारी दी जाती है। जिससे उनमें जागरूकता आए इनका मानना है कि यदि हम अपनी बुनियादी सोच को एक निरंतरता का स्वरूप देना चाहते हैं तो इन किशोरियों में परिवर्तन आवश्यक है क्योंकि यही कल का भविष्य हैं।

महिला शिक्षण केंद्र (आवासीय शिक्षण केंद्र)–महिला शिक्षण 6 से 8 माह तक के लिए चलाए जाते हैं, जिसमें महिला व किशोरियाँ पढ़ने आती है। यह वह स्थान है जहां पूरे समय ये किशोरियां व महिलाएं घर जैसा

महसूस करती हैं और उनको सुरक्षा व शिक्षा का वातावरण मिलता है। यह समय उनके लिए अधूरे सपने के पूरे होने जैसा होता है, जहाँ उनके घर के कामों व जिम्मेदारियों को बिल्कुल भी नहीं निभाना पड़ता है और जहां पढ़ने का वातावरण भी उनकी सीखने की क्षमता और रुचि के अनुसार उत्साह पूर्वक होता है।

शोध निष्कर्ष–शोध अध्ययन का निष्कर्ष इस प्रकार से प्राप्त हुआ जोकि महिला सामाख्या संगठन द्वारा महिला शिक्षा की दिशा में किए गए योगदान इस प्रकार है महिला सामाख्या ने शिक्षा को ही सशक्तिकरण का मुख्य माध्यम या साधन बताया। शिक्षा के ही द्वारा महिलाओं में सोचने, समझने व तर्क करने की क्षमता विकसित हो सकती हैं तथा वे अपना निर्णय लेने में स्वयं सक्षम हो सकती हैं। इनका मानना है कि महिलाओं के पास भले ही किताबी शिक्षा कम हो लेकिन व्यवहारिक शिक्षा अवश्य हो। जिससे वे अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए सशक्त बने। महिलाओं के प्रति लिंगभेद जैसी कुरीति को दूर कर सकें। इसके लिए उन्होंने शिक्षा को ही पूर्णरूपेण माध्यम माना है और शिक्षा सशक्त करने हेतु महिला समाख्या नहीं अनेक कार्यक्रम चलाएं जैसे–विद्यालय नामांकन अभियान, पुस्तकालय का निर्माण, साक्षरता शिविर, साक्षरता केंद्र, बाल केंद्र, किशोरी केंद्र, महिला शिक्षण केंद्र (आवासीय), किशोरी संघ, अकेली व संतान हीनता की स्थिति में बदलाव, रीति–रिवाजों एवं परंपराओं में बदलाव, लड़का लड़की के भेदभाव में हस्तक्षेप, कृषि, पर्यावरण, मैती आंदोलन, स्वास्थ्य तथा आर्थिक सशक्तिकरण, न्याय के क्षेत्र में नारी आंदोलन तथा राजनीति में पंचायतों में भी भागीदारी लेना महिला सशक्तिकरण का मुख्य उद्देश्य था। जो कि शिक्षा के द्वारा ही संभव हो सकती है। अतः शिक्षा को इन्होंने पूर्णतः सकारात्मक रूप में लिया है।

शैक्षिक निहितार्थ–महिला सामाख्या ने विद्यालय नामांकन योजना चलाकर सफल परिणाम प्राप्त किए। इस योजना के प्रयास के फलस्वरूप नामांकन सही अर्थों में हुआ तथा बच्चे अपनी मात्र सुविधाओं का उपयोग ही नहीं किए बल्कि शिक्षा के समझ को भी विकसित किए तथा अभिभावकों को नामांकन की आवश्यकता पर समझ बनाकर बच्चों को स्कूल भेजने में महिला समाख्या ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उतर प्रदेश महिला नीति (2001), महिला सामाख्या उतर प्रदेश
2. कपिल, एच० के० (1999) अनुसंधान विधियाँ, आगरा, एच० पी० भार्गव बुक हाउस
3. गुप्ता, एस०पी० एवं गुप्ता अलका (2007), व्यवहार परक विज्ञानों में सांख्यिकीय विधियाँ इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन
4. पाण्डेय, आर० एस० (1995), शिक्षा के दार्शनिक आधार, आगरा, बिनोद पुस्तक मंदिर।
5. वार्षिक रिपोर्ट (1988–1989) महिला समाख्या, उतर प्रदेश।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Psychology: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 169-177

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Relation Between Spirituality and Well Being Among Adolescents

*Smriti Srivastava** *Dr. janhvi Srivastava***

Abstract : This paper is a study of adolescents, well being and spirituality. 100 participant , included in this study which comprised of 47 males and 53 females. The questionnaires included, The Daily Spiritual Experience Scale (DSES) is a 16-item self-report (Underwood,L.G.2006) measure designed to asses ordinary experiences of connection with the transcendent in the daily life. The Personal Well Being Index (PWI) was developed by the International Well Being group (2006). In spirituality, the mean of female are greater than male but S.D. of male is greater than female . In well being, the mean and S.D. of female is greater than male . Result of the study revealed that there is positive correlation between spirituality and well being among adolescents.

INTRODUCTION

Spirituality : Spirituality is the broad concept of a belief in something beyond the self. It may involve religious traditions centering on the belief in a higher power, but it can also involve a holistic belief in an individual connection to others and to the world as a whole.

Spirituality offers a worldview that suggests there is more to life than just what people experience on a sensory and physical level. Instead, it suggests that there is something greater that connects all beings to each other and to the universe itself. It also proposes that there is ongoing existence after death and strives to answer questions about the meaning of life, how people are connected to each other, truths about the universe, and other mysteries of human existence.

Spirituality means different things to different people. For some, it's primarily about a belief in God and active participation in organized religion. For others, it's about non-religious experiences that help them get in touch with their spiritual selves through quiet reflection, time in nature, private prayer, yoga, or meditation.

Many people identify as spiritual but not religious : With a few exceptions, the percentage of adults who identify as religious in many industrialized countries is declining, while remaining generally high in less developed nations. Even as religious affiliation decreases, though, a sense of spiritual identification could remain steady or even increase.

Spiritual and well-being plays an important role in mental, emotional and physical health. Spiritual and well being is associated with a specific religion but does not have to be. Spirituality provide an opportunity to detach from circumstances and observe life with clarity and integrity. Spirituality can either be positive or negative. Spiritual and well-being is a state in which the positive aspects of spirituality differs from one person to the other. Through proper spiritual and well-being, people are empowered and realize their issues, stressors, and challenges, and these are not defined by these circumstances. This realization paves a pathway to greater peace, freedom of self-expression, increased manageability over the healing process and higher self-esteem.

* *MSC, Dept of Applied Psychology, VBSPU*

* * *Asst. Professor, Dept of Applied Psychology, VBSPU*

The term spirituality is derived from the Latin spiritus , meaning breath. It is also related to the Greek pneuma, or breath, which refers to the vital spirit or soul.

Spirituality and well-being is not a practice of isolation but rather of affecting and involving the people in their own community of life. Spiritual and well-being groups and sessions provide an open and safe environment to explore, learn, practice, support and heal.

Spiritual and well-being programs include group exploration and experiential practices on the topics of meditation, prayer, forgiveness, personal values, purpose in life, the role of self-esteem in spiritual connection, healthy relationships, and developing an authentic relationships with a Higher Power, God, or Spiritual Dimension.

Adolescence is a key developmental period characterized by significant changes in brain development, endocrinology, emotions, cognition , behaviour, and interpersonal relationships. Well-being in adolescence is a growing field of study .The definition of well-being is : 'healthy and successful individual functioning (involving physiological, psychological, and behavioural levels of organization), positive social relationships (with family members, peers, adult caregivers, and community and societal institutions, for instance, school and faith and civic organizations) , and a social ecology that provides safety'.

Well-being : Well-being is a positive outcome that is meaningful for people and for many sectors of society, because it tells us that people perceive that their lives are going well. Good living conditions (e.g., housing, employment) are fundamental to well-being. Tracking these conditions is important for public policy. However, many indicators that measure living conditions fail to measure what people think and feel about their lives, such as the quality of their relationships, their positive emotions and resilience, the realization of their potential, or their overall satisfaction with life—i.e., their "well-being."

Feelings of wellbeing are fundamental to the overall health of an individual, enabling them to successfully overcome difficulties and achieve what they want out of life. Past experiences, attitudes and outlook can all impact wellbeing as can physical or emotional trauma following specific incidents. Children with learning and developmental disorders may experience considerably more stress than typically developing children and this can impact both their health and wellbeing. The same can be said for the parents and cares of such children, who have to try and help them overcome their daily issues as well as enable them to prepare for what is coming in the future. A child's wellbeing will be affected by the wellbeing of their parents so it is essential that parents take time for themselves in this respect.

Well-being is the experience of health, happiness, and prosperity. It includes having good mental health, high life satisfaction, a sense of meaning or purpose, and ability to manage stress. More generally, well-being is just feeling well.

Well-being is the state of **being** healthy, safe, comfortable and happy. When parents want to make sure their children are safe, comfortable and happy, this is an **example** of a time when parents care about their children's **well-being**.

Benefits of Spiritual Well-Being :

- Feeling content with the life's situation.
- Making time to spend alone and explore inner peace.
- Taking time to reflect and resolve problems.
- Finding satisfaction in life and work.
- Taking part in an active lifestyle Maintaining balance and control of life.
- Building rapport.
- Sensing purpose and meaning in life.
- Accepting and growing from the challenges of life.

REVIEW OF LITERATURE : Another concern with respect to the relationship between R/S and depression has to do with the considerable variation in findings between regions , countries and continents (Dein ,2006).

R/S should be understood as a multidimensional concept (Bergin, 1983) involving beliefs (that may vary widely) , public practices, private practices, cognitive processes (intrinsic religious motivation or importance), and various other psychological aspects such as religious coping and attachment styles . In addition, some aspects of R/S reflect a troubled relationship with the deity or religious community, called 'religious struggle', which is often operationalized as "negative religious coping" (Pargament et al., 1998).Spirituality and Religiosity are often considered together, particularly when incorporating measures relating to meaning of life (Krause, 2003).Prayer can impact stress andcoping, and it has been shown to be related to happiness andfeelings of general well-being (Boehnlein, 2008;Poloma & Pen-dleton, 1989,1991)According to Kim et al. (2012), factors such as the age of the sick child,level of education of the family caregiver, and previous stress level ofcaring are among factors which impact on the psychological health of family caregivers. On the other hand, the age, gender, employmentstatus and stress levels from caring are associated with the spiritualhealth of family caregivers (Kim et al., 2012).

Religious and spiritual communitiescan give people the opportunity to develop social relationships and enlarge their own social network.

In turn, social support can have positive effects on health, such as reducing the impact of stress (House et al. 1998).

Some authors (Musick et al. 2004) believe that it is the presence of a religiousconfidante to mediate this relation (e.g., personal relation with God, fellow parishioners, or clergy), while others think it is the effect of altruistic behaviors linked to religious worldviews, which help toextend one's social network (Oman et al. 1999).

A second way in which spirituality is recognized to be related to wellbeing is lifestyle. Religion may be the reason for someone to adopt a healthy lifestyle and to avoid unhealthy behaviors, given precepts about alcohol and drug consumption, sexual habits, and alimentation that are present in many worldreligions (Troyer 1988).

Religion teaches us to take care of one's body, believing our body and health to be a gift from God, and a temple that must be preserved and respected (George et al. 2009).Another important aspect that can be considered as a psychological mechanism that contributesto the link between spirituality and wellbeing is meaning in life or purposefulness (Hawks 1994;Wong and Fry 1998). A sense of meaning in life can give people higher levels of psychological andwellbeing (Reker 1994) and can be particularly important to preventing suicidal behavior(Colucci 2008, 2009a; Colucci and Martin 2008; Colucci and Lester 2013; Moreira-Almeida et al. 2006; Rasic et al. 2009).Spirituality and Religion contribute to increased levels ofself-control, self-monitoring, self-regulation (McCullough andWilloughby 2009), self-reflection (Brownand Ryan 2003), and self-development. These self-constructs have shown the potential to increase wellbeing. Participants frequently mentioned that spirituality increased self-reflection and monitoringin everyday life, which helped to understand oneself.Another important component of spirituality is the development of the spiritual identity of an individual and the incorporation of spirituality into a personal sense of self, which has also been viewed as linked with wellbeing (MacDonald 2009).

OBJECTIVES OF THE STUDY : The main objective of the study is to find out the relationship between spirituality and well being among adolescents.

RESEARCH METHODOLOGY : The questionnaire based study was carried out at department of Applied Psychology, Veer Bahadur Singh Purvanchal University (VBSPU), Jaunpur , Uttar Pradesh in 2020. 100 participant were included in this study which comprised of 47males and 53 females. The

questionnaires were included The Daily Spiritual Experience Scale (DSES)is a 16-item self report (Underwood , L.G. 2006)measure designed to asses ordinary experiences of connection with the transcendent in the daily life. The Personal Well Being Index (PWI) was developed by the International Well Being group (2006). All the participants were intermediate, 9undergraduate, and postgraduate university student. All the participants were requested to fill the questionnaire form separately and this was filled within 30 to 40 minutes. Complete explanation was given about the study by the investigator to the students to get the informed consent to participate in the study. Then the students voluntarily filled the questionnaires. The consent form was taken from all the students.

HYPOTHESIS :

(1) Female respondents would show more spirituality than male respondents.

(2) Married respondents would show more spirituality than unmarried respondents.

(3) Upper caste group respondents would show more spirituality than OBC and SC/ST respondents.

(4) Female respondents would show more well being than male respondents.

(5) Married respondents would show more well being than unmarried respondents.

(6) Upper caste group respondents would show more well being than OBC and SC/ST respondents.

VARIABLES :

Independent variables (Gender, Caste , Marital status) and **Dependent variables** (Spirituality and Well being).

METHODS AND MATERIAL : As per the requirement of the study , the following tools were administered.

1. The Daily Spiritual Experience Scale (DSES) :

The Daily Spiritual Experience Scale (DSES)is a 16-item self report (Underwood , L.G. 2006)measure designed to asses ordinary experiences of connection with the transcendent in the daily life.

2. The Personal Wellbeing Index (PWI) :

The Personal Well Being Index (PWI) was developed by the International Well Being group (2006).

STATISTICAL ANALYSIS : The data analysis was conducted using Statistical Package for the Social Sciences (SPSS) Statistics Version 20. The data was checked for the distribution of the population for analysis. The assumption was made to find out the prediction of independent variables (Gender ,Caste, Marital status) on dependent variables (Spirituality and Well being). After the correspondence of the assumptions of data to be analysed using 2 tailed t-test and Pearson Correlations methods to explain the relationship between **independent variables** (Gender, Caste , Marital status) and **dependent variables** (Spirituality and Well being) because it was revealed the effect of all variables on independent variable.

RESULTS : The study aimed to find out the relationship between spirituality and well being among adolescents. The 100 subjects were participated in the study which consisted of 47 males and 53 females.

Table-1 : T-Test (Marital Status)

	Marital Status	N	Mean	Std. Deviation	t	Sig.
Spirituality	Unmarried	22	63.7727	13.56442	**.83**	**.422**
	Married	78	61.0769	14.33166		
Well Being	Unmarried	22	58.8182	10.67546	**1.15**	**.181**
	Married	78	62.6282	14.44300		

In Spirituality , the Mean and S.D. of Unmarried is 23.7727 and 13.56442 respectively and the Mean and S.D. of married is 61.0769 and 14.33166. The value of t is .83 and the level of significant is .422

In well being, the Mean and S.D. of unmarried is 58.8182 and 10.67546 and the mean and S.D. of married is 62.6282 and 14.44300. The value of t is 1.15 and the level of significant is .181

The above table show that the level of spirituality and well being are found more in married in comparison of unmarried.

Table-2 : T-Test(Gender)

	Gender	N	Mean	Std. Deviation	T	Sign.
Spirituality	Male	47	60.4468	16.12695	.80	.426
	Female	53	62.7547	12.17486		
Well Being	Male	47	60.8511	13.49231	.643	.522
	Female	53	62.6226	14.04146		

In spirituality, the mean and S.D. of male is 60.4468 and 16.12695 respectively and the mean and S.D. of female is 62.7547 and 12.17486. The value of t is .80 and level of significant is .426.

In well being, the mean and S.D. of male is 60.8511 and 13.49231 and the mean and S.D. of female is 62.6226 and 14.04146. The value of t is .643 and level of significant is .522. Which show that the level of spirituality and well being are more found in female than male.

Table-3 : Correlations

Correlations

		Age	Spirituality	Well Being
Age	Pearson Correlation	1	.084	-.005
	Sig. (2-tailed)		.404	.963
	N	100	100	100
Spirituality	Pearson Correlation	.084	1	.341**
	Sig. (2-tailed)	.404		.001
	N	100	100	100
Well Being	Pearson Correlation	-.005	.341**	1
	Sig. (2-tailed)	.963	.001	
	N	100	100	100

The above table show that the correlation of among age, spirituality and well being.

Table-4

ANOVA					
Spirituality					
	Sum of Squares	Df	Mean Square	F	Sig.
Between Groups	1352.704	2	676.352	**3.556**	**.032**
Within Groups	18451.406	97	190.221		
Total	19804.110	99			

The level of spirituality while studying had a significant impact on adolescents, F(2,97)=3.556,p= .032(Can state p<.05 instead of p= .032, although reporting the exact p-value is more informative and therefore is recommended.)

Multiple Comparisons(Tukey,s HSD)

Dependent Variable : Spirituality

(I) caste	(J) caste	Mean Difference (I-J)	Std. Error	Sig.	95% Confidence Interval	
					Lower Bound	Upper Bound
General	Obc	9.44498	3.97189	.050	-.0090	18.8989
	Sc/St	9.32566*	3.73825	.038	.4278	18.2235
Obc	General	-9.44498	3.97189	.050	-18.8989	.0090
	Sc/St	-.11932	3.11884	.999	-7.5429	7.3042
Sc/St	General	-9.32566*	3.73825	.038	-18.2235	-.4278
	Obc	.11932	3.11884	.999	-7.3042	7.5429

*. The mean difference is significant at the 0.05 level.

ANOVA					
Well Being					
	Sum of Squares	Df	Mean Square	F	Sig.
Between Groups	1141.045	2	570.522	3.151	.047
Within Groups	17563.545	97	181.067		
Total	18704.590	99			

The level of well being while studying had a significant impact on adolescents, F(2,97)=3.151,p= .047

(Can state p<.05 instead of p= .047, although reporting the exact p-value is more informative and therefore is recommended.)

Multiple Comparisons

Dependent Variable : Well Being Tukey HSD

(I) caste	(J) caste	Mean Difference (I-J)	Std. Error	Sig.	95% Confidence Interval	
					Lower Bound	Upper Bound
General	Obc	5.60606	3.87515	.321	-3.6176	14.8298
	Sc/St	9.08333*	3.64721	.038	.4022	17.7645
Obc	General	-5.60606	3.87515	.321	-14.8298	3.6176
	Sc/St	3.47727	3.04288	.490	-3.7655	10.7200
Sc/St	General	-9.08333*	3.64721	.038	-17.7645	-.4022
	Obc	-3.47727	3.04288	.490	-10.7200	3.7655

*. The mean difference is significant at the 0.05 level.

ANOVA					
Spirituality					
	Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
Between Groups	819.518	2	409.759	2.094	.129
Within Groups	18984.592	97	195.717		
Total	19804.110	99			

The level of spirituality, while studying had a significant impact on adolescents, F(2,97)=2.094,p= .129

(Can state p<.05 instead of p= .129, although reporting the exact p-value is more informative and therefore is recommended.)

DISCUSSION : The study investigated the relationship of spirituality and well being among male and female adolescents.

Spirituality : Our results showed positive correlation between spirituality and gender which indicate that the female are more involve in spirituality than the male. In spirituality, the mean and S.D. of male is 60.4468 and 16.12695 respectively and the mean and S.D. of female is 62.7547 and 12.17486. The value of t is .80 and level of significant is .426 which was significant different.

As the age increases , the level of spirituality also increases into the adolescents. On the basis of Caste, the above result show that the high spirituality level are found into the general category then OBC and then SC/ST. The above result show that as the level of education increases the spirituality also increases .

Well Being : Our results showed positive correlation between well being and gender which indicate that the high level of well being than the male. In well being, the mean and S.D. of male is 60.8511 and 13.49231 and the mean and S.D. of female is 62.6226 and 14.04146. The value of t is .643 and level of significant is .522. Which was significant different.

As the age increases , the level of well being also increases into the adolescents. On the basis of Caste, the above result show that the high well being level are found into the general category then OBC and then SC/ST. The above result show that as the level of education increases the well being also increases .

CONCLUSION : This Study "Relationship between spirituality and wellbeing among adolescents " aimed to investigate the spirituality and well being of adolescents on the basis gender , caste, education and their marital status. All the participants were evaluated via questionnaires which included The Daily Spiritual Experience Scale (DSES) and Satisfaction with Life as a Whole and The Personal Well being Index Scale (PWI Scale).

From the findings of different investigations, it is possible to conclude that there are suggestive of association the relationship between spirituality and well being among males and females adolescents. The spirituality and well being of female are more than the spirituality and well being of male.

REFERENCES

1. Dein,S.,2006. Religion, spirituality and depression : implications for research and treatment. Prim. Care Community Psychiatry 11, 67-72.https ://doi.org/10.1185/135525706X121110.

2. Pargament ,K.I., Smith ,B.W., Koenig ,H.G., Perez, L., 1998.Pattern of positive and negative religious coping with major life stressors. J. Scl .Study Relig. 37, 710-724.

3. Krause ,N.(2003).Religious meaning and subjective well being in late life. The Journals of Gerontology Series B : Psychological Sciences and Social Sciences , 58, S160-S170.

4. Poloma , M.M., and Pendleton, B.F.(1989). Exploring types of prayer and quality of life : A research note. Review of Religious Research,31,46-53.

Poloma , M.M., and Pendleton, B.F. (1991). The effects of prayer and prayer experience on measures of general well being. Journal of Psychology and Theology,19,71-83.

5. Kim, Y., Spillers, R.I., and Hall, D.I. (2012). Quality of life of family caregivers 5 years after a relative's cancer diagnosis : Follow –up of the national quality of life survey for caregivers. Psycho – Oncology , 21 (3), 273-281.

6. House James S., Karl R. Landis , and Debra Umberson.1998. Social Relationship and Health. Science 241 : 540 -45.[Cross Ref].

7. Oman, Doug, Carl E. Thoresen , and Kay McMahon.1999. Volunteerism and mortality among the community-dwelling elderly. Journal of Health Psychology 4: 301-16 [Cross Ref] [Pub Med].

8. Troyer, Henry.1988. Review of cancer among 4 religious sets: Evidence that life - style are distinctive sets of risk factors. Social Science and Medicine 26 : 1007-17 [Cross Ref].

9. George, Linda k., Christopher G. Ellison, and David B. Larson.2009. Explaining the Relationship between Religious Involvement and Health. Psychological Inquiry 13 : 190 -200 [Cross Ref].

10. Hawks, S.1994. Spiritual Health : Definition and theory. Wellness Perspective 10 : 3-13.

Wong, Paul T.P., and Prem S. Fry. 1998. The Human Quest for Meaning . A Handbook of Psychological Research and Clinical Applications. Mahwah : Erlbaum.

11. Reker, Gary T.1994. Logotheory and Logotherapy : Challenges, Opportunities, and some empirical findings. International Forum for Logotherapy 17: 47-55

12. Colucci, Erminia.2008. Recognizing spirituality in the assessment and prevention of suicidal behaviour. World Cultural Psychiatry Research Review 3:77-95.

13. Colucci, Erminia. 2009a. Cultural issues in suicide risk assessment . In Suicidal Behaviour : Assessment of People –at-Risk . Edited by Updesh Kumar and Manas k. Mandal. New Delhi : SAGE, pp.107-35.

14. Colucci, Erminia , and Graham Martin.2008. Spirituality and religion along the suicidal path. Suicide and Life-Threatening Behaviour 38: 229-44.[Cross Ref.] [PubMed].

15. Colucci, Erminia, and David Lester.2013. Suicide and Culture : Understanding the context. Cambridge : Hogrefe Publishing .

16. Moreira-Almeida, Alexander, Francisco Lotufo Neto, and Harold G. Koenig.2006. Relgiousness and mental health : A review. Revista Brasileira de Psiquiatrie 28 : 242-50 [Cross Ref] [Pub Med].

17. Rasic , Daniel T., Shay-Lee Belik, Brende Elias, Laurence Y. Katz, Murray Enns, Jitender Sareen, and Swampy Cree Suicide Prevention Team.2009. Spirituality, religion and suicidal behaviour in a nationally representative sample . Journal of Affective Disorders 114 : 32-40.[Cross Ref].

18. McCullough, Michael E., and Brain L .Willoughby.2009. Religion, self-regulation, self-control : Associations, explanations, and implications. Psychological Bulletin 135:69. [Cross Ref] [Pub Med].

19. Brown, Krik Warren, and Richard M. Ryan. 2003. The benefits of being present : Mindfulness and its role in psychological well being . Journal of Personality and Social Psychology 84 : 822-48.[Cross Ref] [Pub Med].

20. MacDonald, Douglas A. 2009. Identity and Spirituality : Conventional and transpersonal perspectives. International Journal of Transpersonal Studies 28 : 86-106. [Cross Ref].

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 178-181

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

पूर्व मध्यकालीन भारत में महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था : ऐतिहासिक अध्ययन

*डॉ. प्रवीन कुमार मिश्र**

किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति को समझने के अतिरिक्त देश की उपलब्धि तथा श्रेष्ठता का मूल्यांकन करने के लिए भी समाज का अवलोकन करना अतिआवश्यक होता है। समाज में जितना महत्व पुरुषों को दिया जाता है, उतना ही महत्व स्त्रियों को भी दिया जाना चाहिए। प्राचीन काल से ही नारी की स्थिति में उतार–चढ़ाव देखने को मिलता है। अतः वर्तमान में नारी दशा पर समय–समय पर शोध कार्य किए जा रहे हैं। जहां एक और ऋग्वैदिक काल में नारियों की स्थिति श्रेष्ठ थी और उनकी शिक्षा–दीक्षा पर बल दिया जाता था वहीं उत्तर वैदिक काल में इनकी स्थिति में गिरावट देखने को मिलती है। इसका प्रमुख कारण नारियों को प्राप्त होने वाले शिक्षा के अधिकार से वंचित करना था। मानव जीवन के सर्वांगीण विकास में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था वहां की सांस्कृतिक परंपरा एवं जन जीवन की जागरूकता पर निर्भर करती है पूर्व मध्यकाल तक स्त्रियों को शूद्रों की भांति वेदों के अध्ययन और यज्ञ में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था[1] अवलोकित काम में पर्दा प्रथा के प्रभाव के कारण हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों ने स्त्रियों की शिक्षा व्यवस्था के प्रति ध्यान देना बंद कर दिया।[2]

पूर्व मध्यकाल तक बाल विवाह का प्रचलन बढ़ गया था कम उम्र में ही विवाह होने के कारण भी स्त्रियों की शिक्षा दीक्षा पर कुप्रभाव अवश्य पढ़ा होगा। इसके विपरीत कुलीन एवं धनी परिवार की स्त्रियां अपने माता–पिता द्वारा नियुक्त व्यक्तिगत गुरुओं द्वारा शिक्षा प्राप्त करती थीं।[3] गाथासप्तसती जैसे ग्रंथों में अनेक विदुषी एवं कवयित्री स्त्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है। **जैसे–**रेखा, रोहा, माधुरी, अनुलक्ष्मी, पाही और राशिप्रभा इत्यादि।[4] छठी–सातवीं शताब्दी में भाषा की दृष्टि से लोकभाषा विलुप्त हो चुकी थी और संस्कृत भाषा का प्रयोग तीव्र गति से बढ़ रहा था। ऐसी स्थिति में निम्न स्तर पर शिक्षा का ह्रास होना स्वाभाविक था। इस काल में स्त्रियों को शिक्षा के रूप में साहित्य, काव्य–लेखन, कला, अंकगणित, दर्शन, चिकित्सा शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, गृह विज्ञान, ललित कला, शिल्प कला, तथा प्रशासनिक, सैनिक, तंत्र मंत्र की शिक्षाएं जैसे दी जाती थी। दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी में राजशेखर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी उत्कृष्ट कवयित्री एवं टीकाकार थीं, साथ ही बाणभट्ट ने राजकुमार चन्द्रीपीड के मनोरंजन में उपस्थित स्त्रियों के काव्य एवं लेखन की निपुणता को भी दर्शाया है।[5] ऐसे अन्य बहुत से उदाहरण प्राप्त होते हैं जिसके अनुसार की उच्च वर्ग की महिलाओं द्वारा शिक्षा ग्रहण करने के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

पूर्व मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन से नारी शिक्षा के विषय में पूर्ण जानकारी मिलती है लेकिन उस काल के अभिलेख नारी शिक्षा पर प्रकाश डालने में असमर्थ हैं। अल्बरूनी के लेख से 11वीं शताब्दी की स्त्रियों की स्थिति का ज्ञान होता है। मूर्ति कला के माध्यम से पूर्व मध्यकालीन समाज में नारी की शिक्षा दीक्षा का विवरण प्राप्त होता है। उत्तर भारत में नागरशैली के उत्कृष्ट उदाहरण खजुराहो से नारी शिक्षा सम्बन्धी अंकन बहुतायत में प्राप्त हुए हैं जो स्त्रियों की शिक्षा को प्रस्तुत करते हैं। खजुराहो की कला में एक स्त्री कागज का टुकड़ा लिए हुए एक पुरुष के पास बैठकर कुछ समझ रही है।[6] खजुराहो के अंकन से ऐसा प्रतीत होता है कि शिल्पकारों ने पढ़ती–लिखती हुई स्त्रियों के मनोंभावों को बड़ी सजीवता से प्रदर्शित किया है। चंदेल कालीन कंदरिया महादेव मंदिर के दाहिने बाहरी भाग में एक स्त्री पत्र लिए हुए मुस्कुरा रही है। विवेच्य युग में स्त्रियां अध्यापन का कार्य भी करती थीं। स्त्रियों द्वारा किए जाने वाले अध्यापन कार्य का एक उदाहरण कुंज को एक संस्कृत शिलालेख में मिलता है। इस अभिलेख में राजा जयवर्मन सातवें की शिक्षित पत्नी इंद्रावती एक प्राचार्य का कार्य करती थी जो प्रतिदिन राज महल के बौद्ध तथा जैन मंदिरों में स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करती थीं जो प्रतिदिन राजमहल के बौद्ध एवं जैन मंदिरों में स्त्रियों को शिक्षा देती थीं।[7] आठवीं शताब्दी में भवभूतिकृत उत्तररामचरित में सह–शिक्षा का वर्णन भी किया गया है।

* *प्राध्यापक, इतिहास विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर*

विवेच्य युग में स्त्रियों को ललित कला की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। इस कला के अंतर्गत स्त्रियों को नृत्य, संगीत, वाद्य एवं चित्रकला का विशेष ज्ञान दिया जाता था। राज परिवारों राजकन्याओं को नृत्य, कला, संगीत, वाद्य आदि शिक्षाओं के लिए अपने से अलग भी रखना पढ़ता था।[8] वात्सायन द्वारा नृत्य, संगीत एवं चित्र कलाओं को नारी के लिए वांछनीय बताया गया है। पूर्व मध्यकाल में मंदिरों का विशेष महत्व था जिसमें नृत्य का प्रदर्शन नर्तकियों द्वारा किया जाता था। विदेशी यात्रियों में इब्नअसीर तथा अलबरूनी जैसे प्रसिद्ध लेखकों ने भी ललित कला के विषय में जानकारी प्रस्तुत की है। दक्षिण भारत के राजघरानों की स्त्रियों को नृत्य, संगीत एवं कला की शिक्षा प्रदान की जाती थी। यह कलाएं उनके जीवन के अभिन्न अंग होते होंगे क्योंकि दक्षिण भारतीय अभिलेख रानियों की कलाओं की निपुणता की प्रशंसा से भरे पड़े हैं। चित्रकला की शिक्षा भी स्त्रियों को दी जाती थी, इसमें स्त्रियों की अभिरुचि भी थी। खजुराहो के विश्वनाथ मंदिर के बांए बाहरी भाग में एक स्त्री को चित्र, तख्ती तथा ब्रस पकड़े हुए दिखाया गया है। कल्हण के अनुसार खुली नाट्यशाला में लोगों को अभिनय की शिक्षा भी दी जाती थी। स्त्रियां पुरुषों के चरित्र का अभिनय भली–भांति करती थीं। दसकुमाचरित में जादूगर का उल्लेख है जिसमें स्त्री पुरुष एक साथ गायन तथा वादन करते थे।[9]

पूर्व मध्यकालीन समाज में नारी को व्यावहारिक शिक्षा का ज्ञान भी दिया जाता था। जिससे वह विवाह के पश्चात गृहस्थ जीवन का संचालन उचित रूप से कर सके। इस काल में स्त्रियों के लिए धर्म से संबंधित शिक्षा के ज्ञान को आवश्यक समझा जाता था। स्त्रियां अध्यात्म के प्रति रुचि रखती थीं। कन्याएँ अच्छे फल की प्राप्ति के लिए कठिन धार्मिक क्रियाओं का पालन करती एवं व्रत रखती थीं।[10] घर में रहकर ही वेद अध्ययन का कार्य किया जाता था। ऐसे भी उदाहरण प्राप्त हुए हैं जो स्त्रियों की आध्यात्मिक शिक्षा के साक्षी हैं। **जैस**–धर्मव्रता नामक कन्या ने अपने पिता के आदेशानुसार योग्य वर प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या की थी।[11] अपर्णा, एकपर्णा तथा एकपाटला इन तीन ब्रह्मवादिनी तथा ब्रह्मचारिणी कन्याओं के संबंध में वायु एवं ब्रह्मांड पुराण में निरूपित है कि जब तक पृथ्वी रहेगी उनकी तपस्या का प्रसंग भी प्रतिष्ठित रहेगा। बाल्यकाल के अंतवर्ती अवधि में ब्रह्मचर्य व्रत अर्थात ब्रह्मविद्या के विकास का अनुपालन करके वे अपने जीवन के पूर्व पीठिका को सुयोग्य बनाती थीं।[12] चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा भी स्त्रियां ग्रहण करती थीं। रूसा नामक एक स्त्री चिकित्सक ने प्रसव विज्ञान पर प्रमाणिक एवं पांडित्य पूर्ण ग्रंथ लिखा था। प्रसूति विज्ञान में पारंगत स्त्रियां बड़े वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करती थीं। इसकी पुष्टि भुवनेश्वर के द्वार पर उकेरी एक स्त्री है जिसे प्रसूति कुर्सी पर बैठे हुए दर्शाया गया है। गणित जैसे शुष्क एवं गूढ़ विषय के ज्ञान में भी स्त्रियां पीछे नहीं थीं। गणित की प्रसिद्ध पुस्तक 'लीलावती' की रचना 12वीं सदी के प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कर द्वितीय अपनी कन्या लीलावती को गणित पढ़ाने के लिए किए थे।

इस काल में शास्त्र के साथ शस्त्र की शिक्षा भी नारियों को प्रदान की जाती थी। पूर्व मध्यकालीन अभिलेख तथा मूर्तिकला भी स्त्रियों की युद्ध कला की शिक्षा के संबंध में जानकारी प्रदान करते हैं। कल्याणी के चालुक्य वंश की रानी अक्का देवी युद्ध में भाग लेती थीं तथा साथ ही युद्ध का संचालन भी करती थीं। मिहिर भोज के ग्वालियर प्रशस्ति में स्त्रियों के सैन्य समुदाय का वर्णन है जो सैनिक व्यवसाय में प्रसिद्ध था।[13] खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर के दाहिने भाग में युद्ध तथा शिकार में पुरुषों का साथ देने वाली स्त्रियों का आलेखन बड़ी सजीवता के साथ किया गया है। डॉ. अल्तेकर के अनुसार ''शिक्षा का उद्देश्य स्त्रियों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर करना था। इस काल की विदुषी महिलाओं का संबंध उच्च एवं धनी परिवारों से था क्योंकि वे उनकी शिक्षा की व्यवस्था विवाह के पश्चात भी कर सकते थे। दक्षिण भारत की प्रसिद्ध विदुषियों एवं कवयित्रियों में चालुक्य शासक विक्रमादित्य प्रथम के बड़े भाई चंद्रादित्य की रानी विजयभट्टारिका उच्च कोटि की कवयित्री थीं जिसकी प्रशंसा आलोचक भी करते थे। राज्य शासन में परामर्श एवं सहयोग के लिए नीतिशास्त्र का अनुशीलन आवश्यक होता था। इसलिए राजनीतिक शिक्षा राजकुमारियों एवं सामंतकुमारियों की शिक्षा के प्रमुख अंग थे।[14] कश्मीर के साथ क्षेमगुप्त की पत्नी दिद्दा ने अपने पति के शासन चलाने में मदद की थी। प्रोफेसर ने अप्रकाशित नोट में लिखा था कि सोमला देवी ने पति की मृत्यु के पश्चात अभिभावक के रूप में शासन किया था एवं सिक्के भी ढलवाए थे।[15]

10वीं–11वीं शताब्दी में राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी उत्कृष्ट कवयित्री एवं टीकाकार थीं।[16] विचसणा द्वारा स्वरचित कविता का राजा के सम्मुख पाठन हुआ और उसकी बौद्धिक प्रतिभा से प्रभावित होकर राजा द्वारा उसे कविरत्न की उपाधि से विभूषित किया गया था। 10वीं शताब्दी में राजशेखर ने यह विचार व्यक्त किया था कि महिलाएं पुरुषों की भांति कविता में निपुण हो सकती हैं। बाणभट्ट के अनुसार राजकुमार चंद्रापीड के लिए जो स्त्रियां भेजी जाती थीं वह केवल कविता और लेखन में ही निपुण होती थीं। इससे नारियों की शिक्षण व्यवस्था

में विषय विशेषज्ञता का भी अनुमान लगाया जर सकता है। परमार शासक भोज (1010 ईस्वी से 1050 ई.) शिक्षित व्यक्तियों का प्रोत्साहक और प्रेमी था। प्रबंध चिंतामणि से ज्ञात होता है कि कवि नेपाल की पुत्री बाल पंडित बुद्धिमान और तीव्र स्मरण शक्ति की थी। नैषधचरित के अनुसार दमयंती उत्कृष्ट शब्दों में चंद्रमा की सुंदरता का वर्णन एक पत्र में करती हैं। एक वक्तव्य के अनुसार जब राजा भोज ने पुस्तक तिलकमंजरी को गुस्से में जला दिया था जिसे कवि दुखी और हतप्रभ हो गया था लेकिन उसकी पुत्री ने उसे सांत्वना दी क्योंकि उसे पुस्तक का प्रथम भाग याद था। उसने उसे तद्नुरूप पुनः लिखा और द्वितीय भाग को पूरा किया। 11वीं शताब्दी में राजा बल्लाल प्रथम के दरबार में कन्नड़ कवयित्री कांति और प्रसिद्ध कवि नागचन्द्र के बीच वाद–विवाद होता है जिसमें कवयित्री के विवेक से प्रभावित होकर कांति को 'अभिनव वाग्देवी' की उपाधि देते हैं।[17] इस प्रकार विवेच्य काल में संपूर्ण भारत से स्त्रियों के प्रकांड पंडित, गणितज्ञ, चिकित्सक एवं लेखिका होने के उदाहरण प्राप्त होते हैं जिससे तत्कालीन समाज में स्त्रियों के प्रति सम्मान एवं आदर भाव का स्पष्ट संकेत मिलता है। साथ ही विदुषी स्त्रियों को विद्वान पुरुषों की भाँति शैक्षिक उपाधियाँ भी प्राप्त होती थीं।

प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से नारियों को विभिन्न विषयों की सामान्य एवं उच्च शिक्षा समय–समय पर पारिवारिक वातावरण, गुरुकुलीय परंपरा, महिला शिक्षणशालाओं, बौद्ध मठों, विहारों एवं विश्वविद्यालयों के माध्यम से दी जाती थी। यद्यपि समय–समय पर स्त्री शिक्षा का प्रतिमान बदलता रहा उनके शैक्षिक पाठ्यक्रमों में भी परिवर्तन होता रहा लेकिन उनकी शिक्षा की परंपरा बदलते परिवेश में भी सदैव बनी रही। कन्याएं भविष्य में योग्य माता बन सके इसके लिए भी शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती होगी। लक्ष्मण मंदिर में एक दृश्य अंकित है जिसमें एक माता अपने बच्चों को दीवाल पर कुछ लिखकर समझा रही है इससे एक तो स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता सिद्ध होती है, दूसरा यह कि बालकों के लिए ग्रह ही पाठशाला है यह युक्ति चरितार्थ होती है। स्त्रियों में उपाध्याय एवं आचार्य भी होती थीं। जिन्हें सात्र रहस्य वेदों के अध्यापन एवं बालकों को उपनयन देने का अधिकार था। पाणिनि और पतंजलि के समय स्त्रियां वैदिक चरणों में अध्ययन ही नहीं अध्यापन भी करती थीं।[18] हर्ष के पश्चात सातवीं–आठवीं सदी में भी स्त्रियों के अध्यापन कार्य की जानकारी मिलती है। शंकराचार्य के मंडन मिश्र का शास्त्रार्थ होने तथा परिणाम स्वरूप संन्यास ले लेने पर उनकी पत्नी उभयभारती श्रृंगगिरी में अध्यापन का कार्य करने लगी थीं। निम्न परिवारों की कन्याओं को भी ललित कलाओं की शिक्षा प्रधान रूप से दी जाती थी। गीत, वाद्य से राजपरिवारों का मनोरंजन करने, सुलाने–जगाने के लिए नियुक्त दासियों एवं गड़िकाओं के लिए उन कलाओं की शिक्षा अनिवार्य थी। उच्च वर्ग की महिलाओं के अतिरिक्त गणिकाएं भी संगीत, नृत्य का अभ्यास कर नगरों का जीवन सरस बनाती थीं। कर्पूरमंजरी और में भी नृत्यांगनाओं का वर्णन किया गया है जो नृत्य कला में प्रवीण होती थीं।

पूर्व मध्यकालीन व्यावहारिक शिक्षा में गृहस्थ जीवन को अधिक सुचारू रूप से संचालित के लिए वात्सायन ने कन्याओं की 64 अंग विद्याओं की शिक्षा का ब्यौरा देते हुए कुशल ग्रहणी की विशेषताएं बताई हैं। पत्नी को वार्षिक आर्थिक ब्यौरा (चिट्ठा) की शिक्षा लेनी आवश्यक होती थी।[19] गृह विज्ञान की शिक्षा के अंतर्गत सिलाई कढ़ाई की भी शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त पाकशास्त्र की शिक्षाएं नारियां ग्रहण करती थी। पाक कार्य में लड्डू बनाती हुई स्त्री की आकर्षक मूर्ति खजुराहो के पार्श्वनाथ मंदिर के गर्भ गृह के भीतरी दाहिनी दीवाल पर उत्कीर्ण हैं। गृह स्वच्छता की ओर भी स्त्रियों का पर्याप्त ध्यान रहता था क्योंकि दीवाल साफ करती हुई एक स्त्री की मूर्ति लक्ष्मण मंदिर के बांए दीवाल पर बनी है तथा बड़ी आकर्षक प्रतीत होती है। इन शिक्षाओं के अतिरिक्त नारियां राजनीतिक शिक्षाएं भी ग्रहण करती थी जिसके उदाहरण पूर्व में दिए जा चुके हैं। साथ ही आनंद लेखा, श्रीलेखा, सूर्य मती, जया मती आदि रानियों के भी नाम प्राप्त होते थे जिन्होंने शासन कार्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। दक्षिण भारत का सुंडि अभिलेख लगभग 1048 ईस्वी का है जिसमें कल्याणी के चालुक्य शासक विक्रमादित्य षष्ठ की पत्नी लक्ष्मी देवी का विवरण मिलता है जिसने एक सम्राट के समान ही कल्याणी में शासन किया।[20] गुजरात की नायक देवी ने 1178 ईस्वी में मोहम्मद गौरी को पराजित किया था। इस युग की कन्याओं को राज्य संचालन के साथ अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा प्रदान की जाती थी। ऐतिहासिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय राज परिवारों में भी कन्याओं को सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता था। राजाओं की महिलाएं अंग रक्षिका धनुर्विद्या और तलवार चलाने में प्रवीण होती थीं। राजस्थान में राज्य कन्याओं को तलवार और भाला चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। खजुराहो की मूर्ति कला में उत्कीर्ण एक स्त्री को धनुष भाला, फरसा तथा धनुष बाण लिए दर्शाया गया है।[21] कोणार्क मंदिर में हाथी पर सवार एक स्त्री पुरुष से युद्ध करते हुए दर्शाई गई है। उड़ीसा के भुवनेश्वर मंदिर में शार्दूल नामक जानवर पर सवार स्त्रियों को तलवार लिए हुए युद्ध का दृश्यांकन किया गया है। अमीर खुसरो का मत है कि राजकुल से संबंधित बालिकाओं को अन्य प्रकार की शिक्षा के साथ सैनिक शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जानी चाहिए।

सामान्य वर्ग में कुछ कारणों से स्त्री शिक्षा के ह्रास के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। इसका एक विशेष कारण बालिकाओं की वैवाहिक आयु का कम होना था। इस प्रकार 12 वर्ष की आयु में विवाह हो जाने से स्त्रियों की शिक्षा संभव नहीं थी।[22] वाशय के मतानुसार बौद्ध धर्म के अंतर्गत तंत्र शाखा के जन्म से जो अनाचार फैला उससे बचने के लिए भी बालिकाओं का विवाह कम आयु में कर दिया जाता था। 12वीं शताब्दी तक मुस्लिम आक्रमण के कारण बाल विवाह की प्रथा और अधिक सुदृढ़ हो गई। अतः इस सब कारणों से बचने के लिए युवावस्था के पूर्व उनका विवाह संपन्न करा दिया जाता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि बाल्यावस्था में विवाह हो जाने से शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। अल्तेकर का मत था कि स्त्रियों को शूद्रों की कोटि में रखने से भी स्त्री जगत के अधिकारों की बड़ी क्षति हुई थी।

अवलोकित युग में एक तरफ हम देखते हैं कि बाल विवाह के कारण स्त्रियों की शिक्षा पर प्रभाव पड़ा वहीं धनी एवं कुलीन वर्ग की व्यस्क स्त्रियों ने शिक्षा ग्रहण की। हर्षचरित्र में राज्यश्री उच्च शिक्षा प्राप्त एक विदुशी थीं। जिसका विवाह युवावस्था प्राप्त होने पर हुआ था। स्त्रियों की स्वतंत्रता का ह्रास पर्दा प्रथा और बाल विवाह की प्रथा के प्रचलन से हुआ जिससे शिक्षा का पतन हुआ। साधारण परिवार की स्त्रियों को शिक्षा का अवसर नहीं मिला। समृद्ध परिवार में इस स्त्रियों की शिक्षा व्यवस्था कायम रही लेकिन समाज में धार्मिक एवं सामाजिक परिवर्तन तथा राजनैतिक उथल–पुथल के कारण जनसाधारण में स्त्री शिक्षा का उत्तरोत्तर पतन होता गया। हम देखते हैं कि विवेच्य युग में स्त्री शिक्षा तो कायम रही लेकिन वेद अध्ययन पर प्रतिबंध लगा दिया गया था इसके साथ ही यह भी देखने को मिलता है की धनि एवं कुलीन वर्ग की स्त्रियों को ललित कला के साथ ही साथ कई विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सामान्य वर्ग की स्त्रियों का प्रश्न है वह अधिक संतोषजनक नहीं था। विवेच्य काल में स्त्री शिक्षा सामान्य ना होकर वर्ग विषेश तक ही सीमित रही। समाज में निम्न वर्ग तथा निर्धन परिवार की स्त्रियों को षिक्षा प्राप्त करना कठिन हो गया था। नारी शिक्षा को सीमित करना पुरुष के अपने दमनात्मक आचरण का परिणाम था। वैदिक युग से ही नारी की सीमित शिक्षा व्यवस्था का उल्लेख प्राप्त होता है। पूर्व मध्यकाल आते–आते उनकी शिक्षा व्यवस्था पतन के कगार पर आ खड़ी हुई।

संदर्भ–सूची

1. वूमैन पोजीशन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ. 204
2. इंडिया एजुकेशन इन एंशिएन्ट एण्ड लेटर टाइम, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, लन्दन, पृ. 77
3. अल्तेकर, ए. एस., एजुकेशन इन एन्शिएन्ट इंडिया, वाराणसी, 1975 पृ. 220
4. संध्या, प्राचीन भारत में नारी की स्थिति, शोध प्रबन्ध, 2017, पृ. 124
5. वाकिफ, मोहम्मद, भारतीय शिक्षा व्यवस्था, गौड़ पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2011, पृ. 120
6. विश्वनाथ मंदिर, अर्द्ध मंडप की बायीं बालकनी
7. कल्चरल फोरम, पृ. 74
8. कथासरितसागर, 95.92, के. एन. शर्मा का हिन्दी अनुवाद, पटना 1960
9. संध्या, प्राचीन भारत में नारी की स्थिति, शोध प्रबन्ध, 2017, पृ. 131
10. पद्मगुप्त कृत नवसाहसांक चरित, 4.59 पृ. 63
11. वायु पुराण–107.5–6
12. मिश्र, उर्मिला प्रकाश, प्राचीन भारत में नारी, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2012, पृ. 43
13. एपीग्राफिया इंडिका, जिल्द–18, पृ. 109
14. पूर्वोक्त, मिश्र, उर्मिला प्रकाश, पृ. 49
15. जनरल ऑफ न्यूमिसमेटिक सासायटी इन इंडिया, जिल्द–7, पृ. 70
16. पूर्वोक्त, वाकिफ, मोहम्मद, भारतीय शिक्षा व्यवस्था, पृ. 120
17. वही, पृ. 121
18. पाणिनी कालीन भारत, पृ. 281
19. कामसूत्र, पृ. 1/31/16
20. एपीग्राफिया इंडिका, जिल्द– 15, पंक्ति 12–22
21. कंदरिया तथा जगदम्बा मंदिर का आधार

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

English Lit.: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 182-187

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Wordsworth's Tintern Abbey : An Ecocritical Reading

*Dr. Shiv Narayan Yadav**

Ecocriticism is the study of literature in relation to the environment. Scholars seek to analyse texts to illustrate the environmental concerns and how the subject of nature has been treated in different ways by the author in it. It first started in USA where it is associated with the Association for the Study of Literature and Environment (ASLE). It is also referred to as "green studies" , "ecopoetics" and "environmental literary criticism". Cheryll Glotfelty defines it in The Ecocriticism Reader (1996) as "the study of relationship between literature and the physical environment. Just as feminist criticism examines language and literature from a gender-conscious perspective and Marxist criticism brings an awareness of modes of production and economic class to its reading of texts, ecocriticism takes an earth-centred approach to literary studies." (P. XXVIII) His approach was "to restore professional dignity to the undervalued genre of nature writing." (P XXX

(I). Lawrence Buell defines it as "a study of the relationship between literature and environment in a spirit of commitment to environmental praxis." (P.430.n.20) Simon Estok defined ecocriticism in 2001 as the movement that "has distinguished itself, debates notwithstanding, firstly by the ethical stand it takes, its commitment to the natural world as an important thing rather than simply as an object of thematic study, and secondly, by its commitment to making connections." (P.220)

Camilo Gomides offers a functional definition that is both broad and discriminating the field of enquiry that analyses and promotes works of art which raise moral questions about human interactions with nature, while also motivating audiences to live within a limit that will be binding over generations. Following this definition, Aston Nichols has recently argued that the historical dangers of a romantic version of nature now need to be replaced by "urbanatural roosting", a view that seeks to link urban life and natural world and argues for humans to live more lightly on the planet the way virtually all other species do. Such a view relies on anthropocentrism and the mainstream assumption that the natural world be seen primarily as a resource for human beings. Environmental crisis is caused primarily by a cultural tradition in the West of the separation of culture from nature and the elevation of the former to moral predominance. Arne Naess, a Norwegian philosopher, developed the notion of deep ecology which emphasizes the basic interconnectedness of all life forms and natural features and presents a symbiotic and holistic world view rather than an anthropocentric one.

William Reuckert is said to be the first person to use the term ecocriticism in his essay Literature and Ecology : An Experiment in Ecocriticism (1778). Ecocriticism owes much to Rachel Carson's Silent Spring. "The intention of Reuckert was to focus on the application of ecology and ecological concepts to the study of literature." (Glotfelty and Harold Fromm, P.107) Ecocriticism emerged in England with the publication of Romantic Ecology : Wordsworth and the Environmental Tradition

* *Assistant Professor, Dept. of English, S. M. M. Town P G College, Ballia*

(1991) by Jonathan Bate. Under it the development of an environmental justice movement , a collective term for the efforts of poor communities to defend themselves against the dumping of toxic wastes bring questions of class, race, gender and colonialism in the ecocritical evaluation of texts. Thus ecocriticism is an increasingly heterogenous movement which has evolved over time and continues to evolve even now.

Wordswoth's Tintern Abbey is a study in ecocriticism, in which the poet shows his concern for the preservation of nature, written as it was against the background of Industrial Revolution. During Industrial Revolution, urbanization was leading to a change in people's living conditions. There was an exodus of people from villages to cities. Because of the expansion of factories, there was need of workers to fill job positions. The factory owners, however, did not pay proper wages to the workers. As more and more people came to the cities, because of the lack of housing facilities workers were crammed into dirty small houses. People were no longer living in their villages in the midst of nature but in urban cesspools.

Industrial Revolution had a most significant impact on Romantic poets because it served as a direct antithesis to their subject matter during that time. Eighteenth century poetry was called town poetry and it was largely the cityscape that attracted the attention of poets most. But during the Romantic Revival, it is the rural landscape that forms the core of poetry especially the poetry of Wordsworth. In the Preface to Lyrical Ballads, Wordsworth says that he has selected most of the incidents and situations from rural life. The expansion of factories had destroyed nature which led Romantic poets to criticize the Revolution and called upon the people to recur to the days before industrialization and see how different they were.

Wordsworth is primarily a poet of nature. He loved nature even when he was a boy. He enjoyed the beauty of rural landscape, the mountainous country, its dewy meadows and the river Dervent provided him ample scope to give a full play to his boyish spirit. He bathed in the river, basked in the sun and wandered through the fields. At the age of 18, when he went to Johns College Cambridge, even there he longed for vacations.

Tintern Abbey does not illustrate all the features of ecocriticism but some of them are unmistakable. That it is a landscape poem is in itself a proof of the fact that it is an ecocritical poem. The view of Wordsworth in it is not anthropocentric. He does not treat nature as a human resource. He does not elevate man over nature. He treats man and nature as similar categories. Thus what the Norwegian philosopher Arne Naess emphasizes, he sees the basic interconnectedness of all life forms and natural features. He also seeks to restore professional dignity to the genre of nature poetry in this poem, as Glotfelty puts it.

Wordsworth composed this poem as he was returning from his second visit to Tintern Abbey. He had already visited this place five years ago. He compares his reactions of the first visit to those of the present. The poem shows how Wordsworth's attitude to nature has changed during the last five years. The poet says that he once again hears the murmuring sound of the river Wye as it enters the countryside from its descent from the hills. It appears as if the peace of the sky were descending on the earth through the high hills. When he sits under the sycamore tree, he is reminded of his earlier visit when he reposed under this tree in the same way and saw the pastoral fields, rows of fruit trees with their unripe fruits and undergrowth which were all wrapped in greenery. He sees the hedge rows which hardly appear so, because of their abundant growth and the grazing land.

The greenery of the landscape stands in sharp contrast with that of other landscapes which have been destroyed due to the expansion of factories. He watches wisps of smoke curling up towards

heaven from amongst the trees. The smoke, says the poet, might be rising either from the fire made by vagrant dwellers or some hermit living in his cave. The vagrant dwellers or the hermit evoke the picture of the Golden Age when there was complete harmony between man and nature. Man, then, did not destroy nature but lived on its bounty. Wordsworth loves nature because it fills his mind with peace:

These beauteous forms,
Through a long absence, have not been to me
As is a landscape to a blind man's eye:
But oft, in lonely rooms, and 'mid the din
Of towns and cities, I have owed to them,
In hours of weariness, sensations sweet,
Felt in the blood, and felt along the heart;
And passing even into my purer mind
With tranquil restoration. (Lines 22-30)

Though the poet has been away from these beautiful forms for five years, yet the memory of the landscape whether he has been in lonely rooms or in the midst of the din and bustle of city life, has invariably given him pleasure. This pleasure, initially felt in the blood, is purely physical. His next feeling is of the heart and that is emotional. Lastly, the feeling passes into the mind and fills it with calmness. Thus nature has physical, emotional and mental effect on the poet.

The poet goes on to say that nature has also a moral effect on man. It produces a pleasure which does not have a trivial effect on man's moral deportment. The small acts of kindness and love that men perform in life is because of the influence of the nature. The poet says that apart from these effects, he is indebted to nature for another gift which is of more noble aspect, this is, the blissful state of mind into which he falls from the contemplation of nature:

Nor less, I trust,
To them I may have owed another gift,
Of aspect more sublime; that blessed mood,
In which the burthen of the mystery,
In which the heavy and the weary weight
Of all this unintelligible world,
Is lightened:—that serene and blessed mood,
In which the affections gently lead us on,—
Until, the breath of this corporeal frame
And even the motion of our human blood
Almost suspended, we are laid asleep
In body, and become a living soul:
While with an eye made quiet by the power
Of harmony, and the deep power of joy,
We see into the life of things. (Lines 36-49)

In this state of mind, the mystery of this world unfolds itself. As the poet meditates on the forms of nature, they begin to reel one after another before his mind's eye and he feels as if his respiration and

blood circulation were suspended. The poet says that in this trance-like state he becomes oblivious of his body and surroundings and becomes one with nature. There is, thus, no dichotomy left between man and nature. The mental vision calmed by this perception of unity enables the poet to apprehend the real nature of things.

The belief of the poet that man and nature are not different categories indicates that he does not treat nature as mere resource for the use of man, but as an inalienable part of his existence. This view shows that everything in this world is interconnected, which is a feature of ecocriticism. Here the poet treats man not as superior but as a part of nature. This attitude is against anthropocentrism which is another feature of ecocriticism. The poet says that even if people do not subscribe to this view, he cannot overlook the beauty of landscape which has been a source of pleasure to him, whenever he has turned to it amid the unending bustle and anxieties of the world or when the hectic occupation with worldly affairs sat like a burden on his heart.

Wordsworth seeks to revive the picture of his previous visit. Though in the beginning the picture is dim, yet by and by it revives in the mind. The buoyancy of youth has gone which makes him sad. The landscape, he finds, is not as appealing as it was before. While he looks at the beautiful scene of nature, he does not exhaust his enjoyment but reserves some for the future:

While here I stand, not only with the sense
Of present pleasure, but with pleasing thoughts
That in this moment there is life and food
For future years. (Lines 62-65)

Wordsworth says that as nature gives pleasure to us, therefore, we should not destroy it. He compares the present visit with that of the past and says:

Though changed, no doubt, from what I was, when first
I came among these hills; when like a roe
I bounded o'er the mountains, by the sides
Of the deep rivers, and the lonely streams,
Wherever nature led; more like a man
Flying from something that he dreads, than one
Who sought the thing he loved. For nature then
(The coarser pleasures of my boyish days,
And their glad animal movements all gone by,)
To me was all in all (Lines- 66-75)

Recalling his earlier visit, Wordsworth says that when he came first among these hills, he was different from what he is now. Then he bounded over the mountains and banks of rivers and streams like a startled roe. He went from place to place as if he had no urge of his own and was led in his movement by the urge of nature itself. His position, then, was like that of a man who dreads the thing he loves rather than seeks it. The rougher joys and physical exercises have now become a thing of the past. Nature was then all in all to him.

Wordsworth says that during the first visit, the sensuous aspects of nature appealed to him most. He felt a passion for the forms and colours of nature. He had an appetite, a feeling and a love for them which did not need to be supplemented by contemplation. The poet says that now he has outlived that stage. He no longer feels the same giddy pleasures and physical enjoyment now, which of course is a loss but he does not complain about it as it has been more than compensated. Wordsworth says:

Not for this
Faint I, nor mourn nor murmur: other gifts
Have followed, for such loss, I would believe,
Abundant recompence. For I have learned
To look on nature, not as in the hour
Of thoughtless youth, but hearing oftentimes
The still, sad music of humanity,
Not harsh or grating, though of ample power
To chasten and subdue. (Lines 85-93)

When he looks at the spectacle of nature, its harmony makes him keenly aware of human suffering which makes him pause and think. The idea of unity or interconnectedness of things which is a feature of ecocriticism has been more eloquently expressed in the following lines:

And I have felt
A presence that disturbs me with the joy
Of elevated thoughts; a sense sublime
Of something far more deeply interfused,
Whose dwelling is the light of setting suns,
And the round ocean, and the living air,
And the blue sky, and in the mind of man,
A motion and a spirit, that impels
All thinking things, (Lines 93-102)

Wordsworth says that he feels a presence which binds all the objects of nature and man. He feels it in the light of setting sun, the round ocean, the living air, the blue sky and the mind of man. This presence or consciousness stimulates every thought and its object and pervades all things. It is because of this interconnectedness of nature and man that the poet still loves the meadows, the woods, and mountains, and everything that he beholds on this earth by means of his sense apparatus. He loves all that his eye and ear recreate or perceive it. He finds in them the support of all his thoughts. They are his nurse, the guide, the guardian of his heart and soul of all his moral being. This view of nature is not anthropocentric as here Wordsworth elevates nature above man. This view is also against the idea of the Great Chain of Being current in the eighteenth century according to which man occupies a position above that of other species and therefore he has a right to kill the animals, usurp their habitat and deplete the resources of nature.

The poet says that even if this creed were not true, the company of his sister is enough to sustain his cheerfulness. He sees the incarnation of himself in his sister when he watches the gleams of her eyes or hears her voice. He tells his sister that nature never betrays the heart that loves her. If man does not cause any injury to her, she will not react against him. She will continue to give him one joy after another and fill his mind with such peace and beauty that neither criticism nor disrespect nor unkind greetings, nor the dull routine of daily life can ever shake his cheerful faith that all which we behold is full of blessings.

In the name of modernization and scientific development we have been inflicting all kinds of injuries on nature like deforestation, pollutions, nuclear tests, overuse of natural resources and the like.

As a result, nature has begun to visit her wrath upon us in the form of calamities such as earthquakes, tsunami, global warming, climate changes etc.

If we begin to believe like Wordsworth that nature is full of blessings. We shall never cause any harm to her. He asks his sister to enjoy the moonlight and the cold mountains. In future these carefree enjoyments shall be turned into sober pleasures. Her mind shall then be the repository of all lovely forms and pleasant sounds. Then if loneliness, fear, pain or sorrow are ever apportioned to her lot, and if the poet is not near her, with what a joy will she remember him and his affectionate address. She will not then perhaps forget that there was a time when she stood with him a long worshipper of nature on the bank of the river Wye. She will also not forget that even after years of absence these hills and cliffs, the pastoral forms will be dear to him not only for themselves but also for her sake.

Wordsworth, loves nature. He worships her. She gives him pleasure. She shapes his moral behavior. She helps him apprehend the unity of things. She is his nurse, guide, the guardian of his heart and the soul of all his moral being. If she occupies such a high place in his view it is difficult to think that he will ever advocate the destruction of nature. The poem is, thus, a study in ecocriticism.

References

1. Bate, Jonathan. Romantic Ecology. Wordsworth and the Environmental tradition. London and New York Routledge, 1991

2. Buell, Lawrence. Toxic discourse. Critical Enquiry 24.3 (1998):639-665.

3. Estok, Simon (2001). The Environmental Imagination: Thoreau, Nature Writing and the Formation of American Culture. Cambridge Massachusetts's and London, England: Harvard University Press, 1995

4. Glotfelty and Harold Fromm (eds). The Ecocriticism Reader : Landmarks in Literary Ecology. Athens and London. University of Georgia, 1996.

5. Gomides, Camilo. "Putting a New Definition of Ecocriticism to the test. The Case of Burning Season, A Film Adaptation." ISLE (2006).

6. Nicols, Aston. Beyond Romantic Ecocriticism: Toward Urbannatural Roosting. New York. Palgrave Macmillan, 2011

7. Rueckert, William. "Literature and Ecology : An Experiment in Ecocriticism. " Lowa Review 9.1 (1978):71-86

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 188-191

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

समकालीन हिन्दी उपन्यास में आदिवासी अस्मिता का प्रश्न

*नीलू सिंह**

सारांश : निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है। आज के भूमंडलीकरण के दौर में उनके विश्वास, निवास स्थान एवं उनकी संस्कृति को बचाये रखने की चुनौती सर्वोपरि है। इस समाज के ठेकेदार, महाजन, पुलिस, वनरक्षक, पूंजीपति, नेता इस विशिष्ट संस्कृति को खत्म कर देना चाहते है। रोजगार की तलाश में पलायन तथा घटते जंगल एवं बढ़ते उद्योगों के कारण विस्थापन का अंकन भी साहित्य में बखूबी हुआ है। आदिवासी वैचारिकी अभी शैशवावस्था में है, इसे सही आकार एवं दिशा प्रदान करने में आज के बहुत से साहित्यकार लगे हुये हैं। फिर वहाँ माध्यम कविता हो, कहानी हों, उपन्यास हो या फिर आलोचना! सभी क्षेत्रों में इन पर लिखा जा रहा है । यह लिखना स्वंय आदिवासियों द्वारा तथा गैर आदिवासी साहित्यकार दोनों ही के द्वारा हो रहा है। अनुज लुंगुन की कविता 'अघोषित उलगुलान' कविता में आदिवासी जीवन को देखा जा सकता है :–

लड़ रहे हैं आदिवासी
अघोषित उलगुलानों में
कट रहें है वृक्ष
माफियाओं की कुल्हाड़ी से और
बढ़ रहे है कंक्रीट के जंगल,
दाडू जाये तो जाये कहाँ
कटते है जंगल में
या बढ़ते है जंगल में''?

मुख्य शब्द–*वनवासी–जनजाति आदिवासी, एकीकृत–समूचा, अंखंड, प्राचीनतम –सर्वाधिक पुराना, वैचारिक –विचार संबंधी, जद्दोजहद–प्रयत्न, घोटुल–सामूहिक निवास, खानाबदोश–स्थायी निवास न होना, कोयलांचल–कोयला खदानों का समूह, यायावर–घुमक्कड़, दिकू–सम्मानित अतिथि।*

प्रस्तावना : आज के वैश्वीकरण ,उत्तर आधुनिक एवं तकनीकी, वर्चस्वाद के युग में 'स्व' की पहचान उत्कृष्टता के फलस्वरूप 'अस्मिता' का प्रश्न एक महत्वपूर्ण खोज के रूप में उभरा है। अस्मिता का प्रश्न भूमंडलीकरण के नारों को चुनौती देता हुआ उठ खड़ा हुआ है जिसके अनुसार 'स्थानीयता' के प्रति सम्मानित दृष्टि के बगैर हम वैश्विक होने का दावा ही नहीं कर सकते हैं' अस्मिता विमर्ष ''वैश्विक एकरूपतावाद'' एवं यांत्रिकता के प्रतिरोध स्वरूप उभरी एक सशक्त आवाज है, यह निज पहचान को बनाये रखने की कशमकश है। अस्मिता के इस प्रश्न का उत्तर पाने की कोशिश साहित्य का भी आधार है। समकालीन साहित्य में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, प्रौढ़ विमर्श, आदि इसी अस्मिता के प्रश्न से ही प्रसूत है। हिन्दी साहित्य में साठोत्तरी दशक में आदिवासी को आंचलिकता के परिप्रेक्ष में ही परखा या समझा जाता था, पर समय के साथ ही आदिवासियों की स्व को बचाने की कसक को आंचलिकता या दलितों से अलग करके देखा जाने लगा। आज आदिवासी अस्मिता का स्वर, प्रमुख रूप से साहित्य में अपना स्थान बना पाने में सक्षम हुआ है, चाहे फिर वह कविता हो कहानी या उपन्यास सभी जगह इसे अपनी बात कहने का भरपूर स्कोप मिला है। समकालीन उपन्यासों का परिपेक्ष लेकर हम यहाँ आदिवासियों की मूल समस्याओं से रूबरू होने की कोशिश करेगें।

* *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, रजा स्नातकोत्तर महाविश्वविद्यालय, रामपुर उ.प्र.*

उपन्यासों (साहित्य) में आदिवासियों की उपस्थिति को जानने से भी पहले हमें समाज में उनकी पहचान या जगह को जानना होगा। आदिवासी कौन है कहाँ रहते है। आदिवासी समाज के संदर्भ में यह आम धारणा है कि यह समाज मुख्यधारा से अलग रहने वाला मनुष्यों का समूह है। इसी कारण इनकी संस्कृति रचना तथा साहित्य का वैसा विषय नहीं बन पायी जैसा गॉव शहर, मध्यम वर्ग, स्त्री, दलित या कोई भी वर्ग बना। मुख्यधारा से अछूतापन ही इसकी सबसे बड़ी वजह रहीं। वनों में निवास करने वाले इन वनवासी (आदिवासी) समुदाय को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात मुख्यधारा में शामिल करने के लिये संविधान में कुछ प्रावधान भी किये गये है।

भारत में आदिवासियों में भौगोलिक भिन्नता के समान ही सांस्कृतिक भिन्नता भी पायी जाती है। उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, बिहार झारखण्ड एवं भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में कुल मिलाकर आदिवासियों की 461, जनजातियाँ हैं (चंदा समिति) सभी की भाषा, रहन सहन धार्मिक मान्यताओं में व्यापक अन्तर है। इन्हें बस एक ही बात एकीकृत करती है इनका जंगलों में निवास एवं अपनी संस्कृति से अपार श्रद्धा इसका सम्पूर्ण संघर्ष ही अपनी जल जंगल एवं जमीन को लेकर है। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदाया–गारो, खासी, संथाल, थारू, उंराव, भील, मुंडा, गोंड, भोटिया, मीणा, टाडा, आदि है। श्यामाचरण दूबे ने कहा है 'आदिवासी समूह इस (भारत) भू–भाग के प्राचीनतम निवासियों के प्रतिनिधि है, उनकी संस्कर्षतियों को हम देश की विकसित सभ्यता का मूलधन मान सकते हैं।'

आदिवासी साहित्य के अध्येता प्रो0 वीर भारत तलवार ने तदभव 34 में छपे अपने लेख में आदिवासी सम्बन्धी साहित्य की चार श्रेणियां बनाई हैं[1] कुछ ऐसे लेखक है जो आदिवासी समाज के बारे में बहुत कम और सतही जानकारी रखते हैं और साथ ही अपने संवर्ण हिन्दू संरकार से ग्रस्त हैं, अपने सामाजिक सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है और उसी दृष्टि से आदिवासी समाज को चिंतित करते हैं,[2] दूसरी श्रेणी उन लेखकों की है जो लम्बे समय से आदिवासियों के करीब रहते आये है, और उनसे पूरी सहानुभूति रखते है, उनके समाज से थोड़ा बहुत वाकिफ भी है, इनकी प्रमुख प्रवृत्ति आदिवासियों के दमन, शोषण और उत्पीड़न को चिलित करने और उनकी आर्थिक राजनीतिक समस्याओं को उठाने की है।[3] उन लेखकों का साहित्य जो आदिवासियों के बीच लम्बे समय तक रहे है, जिन्होंने उनका अच्छा बुरा देखा है और उनकी प्रवृत्ति को भी समझने का प्रयास किया है।[4] चौथी श्रेणी खुद आदिवासियों द्वारा लिखे साहित्य की है। वह उन्होंने अपनी मूल भाषाओं में लिखा हो या हिन्दी बंगला या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में, इससे फर्क नहीं पड़ता'। वीर भारत तलवार इसी चौथी श्रेणी के साहित्य को ही आदिवासियों का सच्चा साहित्य मानते हैं शेष तीन श्रेणियों को वट आदिवासी सम्बन्धी साहित्य कहते हैं।

साहित्य जीवन की अनुभूति है। साहित्य में जीवन के यथार्थ का चित्रण कई रूपों में किया जाता है। दलित आदिवासी या स्त्री चेतना के साहित्य में यथार्थ चित्रण ने ही जनसामान्य को वस्तुस्थिति से अवगत कराते हुये इन वैचारिक आन्दोलनों को सजीवता के साथ सक्रियता प्रदान की। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के अनुसार 'यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उसके यथार्थ नन्गरूप में रख देता है।'' हिन्दी उपन्यासकारों रांगेय राघव, राजेन्द्र अवस्थी संजीव, तेजिन्दर मधु कांकरिया, मनमोहन पाठक, राकेश कुमार सिंह, हरिराय मीणा, श्री प्रकाश मिश्रा, मैत्रेयी पुष्पा, रवेन्द्र आदि ने जनजातीय अस्मिता के प्रश्न को व्यवस्थित रूप से उठाया है। समकालीन उपन्यासकों ने आदिवासियों के अलगाव, बदलाब की चेतना अपनी अस्मित को बचाए रखने की जद्दोजहद तथा परिवर्तन की आहटों को अपनी कलम से शानदार अभिव्यक्ति प्रदान की है। हिन्दी साहित्य में आदिवासी लेखन परम्परा के रांगेय राघव कृत कब तक पुकारूँ (1953) उपन्यास का महत्वपूर्ण स्थान है। हालांकि गंगासहाय मीण रागेय राघव के उपन्यास कब तक पुकारूँ को पूर्णतया आदिवासी उपन्यास नहीं मानते हैं 'चूंकि नट जाति आदिवासी के रूप में स्वीकृत नहीं हैं, इसलिये इस पर बहुत से सवाल है। नट समुदाय वैधानिक दृष्टि से आदिवासी नहीं है। समकालीन आदिवासी केन्द्रित उपन्यास की प्रथम झलक देवेन्द्र सत्यार्थी के रथ के पहिये में दिखाई देती है। मध्यप्रदेश के मोंड जनजाति के जीवन को रेखांकित करने वाला यह उपन्यास प्रथम बार आदिवासी जीवन को उसकी पूर्णता के साथ साहित्य में अकिंत करता है। इस उपन्यास के बारे में गोपाल राय ने लिखा है 'इस उपन्यास में संग्रहालयों में बंद पुरातात्विक यर्थाथ और सजीव रूप से' विद्यमान पुराकालीन मनुष्य के जीवन के अध्ययन को वरीयता दी गई है।[5] रेणु का मैला आंचल (1954) नागार्जुन का वरूण का बेटे (1957) तथा उदय शंकर भट्ट के (सागर लहरें और मनुष्य (1956) में भी आंचलिकता के साथ ही आदिवासी समाज का स्वरूप भी चिन्तित है। इनमें से वरूण के बेटे तथा सागर लहरें और मनुष्य में मछुआरों के जीवन के विभिन्न पहलुओं कों आधार बनाया है। रेणु के मैंला आँचल के संथालों की कथा कही गयी है। पर अपने सम्पूर्ण कलेवर में यह उपन्यास

आंचलिक ही ज्यादा है आदिवासी नहीं। राजेन्द्र अवस्थी का जंगल के फूल (1960) इस दिशा में एक चर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास अपनी अस्मिता को खतरे में पड़ा देख ब्रिटिश साम्राज्य के शोषण के विरूद्ध खड़े होने वाले गोंड जनजातीय समाज की सर्तकता पर आधारित है। स्वंय लेखक ने उपन्यास के विषय में कहा है। इस उपन्यास के द्वारा मेरा मूल उद्देश्य बस्तर के धोटुल जीवन वहाँ की संस्कृति वहाँ के निवासियों के रीतिरिवाज और उनके जीवन के समग्र चिंता को सामने रखना है।''[6] उपन्यासकार केवल आदिवासियों के जीवन समाज को ही नहीं वरन् उनके रीति–रिवाज संस्कृति, धार्मिक मान्यताओं को भी अपने सृजन का आधार बनाता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जिन उपन्यासों का मुख्य रूप से नाम लिया जा सकता है वह है सूरज किरण की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी (1958), जंगल के आस पास, राकेश वत्स (1985), शैलूष, शिवप्रसाद सिंह (1963), धार, संजीव (1990), गगन घटा घनहारी, मनमोहन पाठक (1991), पाँव तले की दूब, संजीव (1995), जहाँ बाँस फूलते हैं, श्री प्रकाश मिश्र (1997), अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा (2000), जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव (2000) आदि ।

इन उपन्यासों में प्रमुख रूप से करनटों, संथाल, उराँव, मुंडा, गोंड़, कबुतरा, मिजो आदि जनजातियों के सामाजिक तथा भौगोलिक परिदृष्य के साथ–साथ उन पर औद्योगिकरण के प्रभाव स्वरूप हो रहे अत्याचार एवं शोषण का वर्णन भी संजीव रूप से मिलता है। 'सूरज' किरन की छाँव में बस्तर के गोंड जनजाति के जीवन संघर्ष का अंकन हुआ है। मणि मधुकर ने राजस्थान के गाडिया लुहार आदिवासी समाज को दृष्टि केन्द में रखकर पिंजरे में पन्ना उपन्यास लिखा इस उपन्यास में गाडिया लुहार, ख्याल की नायिका पन्ना और नदेस्या की लोककथा के माध्यम से तीन कथाएँ निरूपित की गई हैं। दमकडी आदिवासी समाज के पूँजीपतियो द्वारा शोषित होने की कथा जंगल के आस पास में चिन्तित हैं। शैलूष आदिवासी नटों पर आधारित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह कबीलाई जीवन की गहन भीतरी दुनिया का एक सजीव दस्तावेज है। यायावरी जीवन जीने वाले आदिवासी समूह के जीवन पर मशीनीकरण तथा भौतिकता का गहराता संकट एवं खानाबदोश जीवन के लोक संस्कृति को बचाने की जद्दोजहत करता नट इस उपन्यास की विषय वस्तु है। 'धार' तथा 'पाव तले की दूब' जनजातियों को रचना का विषय बनाकर लिखने वाले प्रौढ़ उपन्यासकार 'संजीव' की अमर कृतियाँ हैं। उन्होंने आदिवासी जीवन तथा कोपलांचल की संस्कृति को बहुत ही निकटता से देखा है तथा संवेदनशीलता से महसुस भी किया है जिसके दर्शन हमें उनके रचित उपन्यासों में होते हैं।

पूर्वोत्तर भारत के आदिवासी जीवन को केन्द्र में रखकर उपन्यास लिखने वाले श्री प्रकाश मिश्रा हैं। इनके महत्वपूर्ण उपन्यास जहाँ बांस फूलते हैं (1996) और रूप तिल्ली की कथा (2005) है। जहाँ बांस फूलते हैं में मिजो आन्दोलन और मिजो संस्कृति को समझने का प्रयास किया गया है। उपन्यास के बारे में वीर भारत तलवार लिखते हैं। ''जहाँ बांस फूलते हैं'' इसलिये महत्वपूर्ण नहीं है कि एक ऐसे विषय का चुनाव किया है, बल्कि इसलिये महत्वपूर्ण नहीं है कि एक ऐसे विषय का चुनाव किया है, बल्कि इसलिये महत्वपूर्ण है कि वह दृष्टि उपलब्ध की है तो इस विषय को सही ढंग से देखने के लिये जरूरी है। सबसे बड़ी बात यह है कि उनके पास वह सहानुभूति व संवेदनशीलता है जिसके बिना आदिवासी समाज को समझा नहीं जा सकता'। 'रूप तिल्ली की कथा' मिजोरम के खासी समुदाय को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इस उपन्यास में धार्मिक राजनीतिक वर्चस्व के खिलाफ खासी का विद्रोह चित्रित है। इसी प्रकार मनमोहन पाठक का गगन धरा धटहारी घृणित सांमती शक्तियों के खिलाफ संघर्षरत आदिवासी चित्रित हैं। इसके आलावा बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में श्याम परमार का मोरझाल शानी का शालवानो के दीप शानी का ही कस्तुरी आदि प्रमुख है। बीसवीं सदी के अन्त और इक्कींसवीं सदी की शुरूआत में आदिवासी जीवन आधारित हो उपन्यास आए। मैत्रैयी पुष्पा का अल्मा कबुतरी (2000) तथा संजीव का जंगल जहाँ शुरू होता है (2000)। दोनों ही उपन्यास समकालीन आदिवासी समाज, उनके रहन–सहन, शोषण, संस्कृति, स्व को बचाने की जद्दोजहद और स्त्री अस्मिता के प्रश्न को बड़ी ही सजीवता से उठाते हैं। 'अल्मा कबुतरी' में जहाँ 'अल्मा' कबुतरा' जनजाति के शोषण के साथ स्त्री मुक्ति की गाथा कहती है। बुन्देलखण्ड कि कबुतरा जनजाति और कज्जा समाज के लोगों के मध्य का द्वन्द्व ही इसका प्रमुख विषय है।

'हम सब एक लकडी नहीं' बँधे हुये गट्ठर हैं। तोड़ने से न टूटेगें। चित्तौड़ से लेकर झाँसी की रानी का साथ निभाने की सजाएँ भोगो। भोगेंगें!''[8]

संजीव सांतवे आठंवे दशक के ऐसे रचनाकार है जिनकी लेखनी सदियों से अभिशप्त वंचित समुदाय के अस्तीत्व की लड़ाई के लिये चली है। ऐसे ही उपन्यास जंगल जहॉ शुरू होता है। इसमें थारू जनजाति के शोषण के साथ चम्पारन की भौगोलिक दुश्वारीयों का चित्रण भी मिलता है। भ्रष्ट राजनीति माफिया तथा वैश्यावृत्ति महाजनी सभ्यता पर प्रहार करता है।

यह उपन्यास थारू जनजाति की व्यथा गाथा है। उपन्यासकार कहता है 'डाकू समस्या' कोई ऊपर का आवरण नहीं है कि आप उसे खरोंचकर फेंक दें। इनकी जड़ों में भूमि सुधार का न होना, ढीला प्रशासन, पॉलिटिकल सेन्टर, रोजगार की समस्या, धर्म, टिपिकल भैगोलिक स्थिति वगैरह है–ये सब इंटररिलेटेड है। सारा कुछ दुरूस्त कर दीजिए रोग खुद–ब–खुद खत्म हो जायेगा।''[9]

समकालीन समय में अनुभूति की परिपक्वता एवं संचार साधनों के विस्तार ने जनजातियों की विषम स्थिति से हमें परिचित कराया है। अब वह सिर्फ जंगल में निवास करने वाले वनवासी न होकर वो भी एक समाज है जो औरों से भिन्न होकर भी अपनी स्वतन्त्रा एवं विशिष्ट अस्तित्व रखता है। इसी स्व को बचाने के लिये वह हथियार भी उठा लेता है। 'खुले गगन' के लाल सितारे, मधु काँकरिया का उपन्यास नक्सलवादी समस्या तथा उसके पीछे की वजह की पड़ताल करता लधु उपन्यास है। इसके अतिरिक्त मधुकर सिंह वजाहत, अनहद ढोल (2005) संथाल विद्रोह की कहानी कहता है। काला पादरी तेजिन्दर (2002) के केन्द्र में जेम्स खाखा द्वारा उँराव जाति के धर्मान्तरण की समस्या को दिखाया गया है। राकेश कुमार सिंह 'पठार का कोहरा' (2003), झारखण्ड के मुंडाओं के इतिहास का दर्शन कराता है। रमणिका गुप्ता आदिवासी चिंतन के क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित नाम है। इन्होंने अपनी संवेदनशील लेखनी के द्वारा दो लधु उपन्यास आदिवासी स्त्री पर लिखे 'सीता' और 'मौसी'। दोनों ही आकार में लधु उपन्यास हैं। विस्थापन के कारण आदिवासी संस्कृति के संकट को यहाँ पर पहचाना गया है। इतिहास में आदिवासियों की पहचान एवं उनके बलिदान को याद दिलाता उपन्यास लेकर हरिराम मीणा आते हैं। उनका उपन्यास 'धूणी तपे तीर' भीलों तथा मीणों द्वारा अस्तित्व एवं स्वाभिमान की रक्षा हेतु स्व के बलिदान की कथा कहता है। भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास रेत (2008) में सामाजिक, सांस्कृतिक, अस्मिता तथा समस्त आदिवासी समाज में मौजूद विसंगतिपूर्ण बहुआयामी प्रक्रिया को आवाज दी है। 'रेत' में कंजक जाति की जन्मजात वैश्यावृत्ति का चित्रण है। जिसमें 'वैद्य' जी के माध्यम से उनके अन्दर के स्वाभिमान को दर्शाया गया है। समकालीन कथाकार रणेन्द्र के दो उपन्यास 'गायब होता देश' और ग्लोबल गाँव के देवता' काफी चर्चित रहा है। 'गायब होता देश' में मुंडा जनजाति की महागाथा है। इनके उपन्यास अपने कलेवर के कारण ही नहीं वरन उसमें उपस्थित मिथकीय चेतना की वजह से भी चर्चा का विषय बना। जनजातियों के सामाजिक ताने–बाने के साथ उनकी धार्मिक मान्यताओं का चित्रण भी बाखुबी इनमें हुआ है। विद्रेही के माध्यम से 'गायब होता देश' में गायब होते आदिवासियों की खुद को बचाने और खत्म न होने की पीड़ा अभिव्यक्त है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' में असुर जनजाति का वर्णन है। यहाँ आकाशचारी देवता सम्बोधन उद्योगपतियों एवं राजनितिज्ञों के लिये प्रयुक्त हुआ है । असुर समुदाय का शोषण इन्ही ग्लोबल गाँव के देवताओं के कारण किया जा रहा है। जो संसाधनों का अन्धाधुन दोहन कर अपने गाँव (रहने के स्थान) को स्वर्ग बना रहे हैं।

हिन्दी कथा साहित्य में व्यक्ति के तनाव, दुःखों, यातनाओं और इन सब के बीच अपनी अस्मिता को जिन्दा रखने की लड़ाई में आदिवासी निरन्तर संघर्षरत है। हाशिये पर ठिठके यह आदिवासी उदात्त रूप में आम पाठक के समक्ष उपस्थित हो गया है। आज के समय में आदिवासी रचनाकर स्वयं भी लेखन के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त कर रहा है। हिन्दी साहित्य में यह सर्वथा नयी बनती हुयी वैचारिकी का समय है।

यहाँ सामाजिक स्थितियों का प्रत्यक्ष प्रभाव अस्मिता पर देखा जा सकता है।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. आदिवासी भारत, योगेश अटल, यतीन्द्र सिंह सिसोदिया, प्राक्कथन।
2. आदिवासी और आदिवासी साहित्य की अवधारणा, वीरभारत तलवार, तद्भव–34, नवम्बर 2016, पृ. 29–46
3. आदिवासी और हिन्दी उपन्यास, गंगा सहाय मीणा, पृ. 127
4. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृ. 263
5. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पूर्व पीठिका
6. झारखण्ड के आदिवासियों के बीच, वीर भारत तलवार, पृ. 449
7. अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 175
8. 'जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, पृ. 146

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Pol.Science: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 192-197

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

महिला सशक्तिकरण : राजनीतिक सहभागिता के संदर्भ में

*मनोज कुमार वर्मा**

किसी भी देश में महिला सशक्तीकरण का मामला उनकी राजनीतिक सहभागिता से उतना ही जुड़ा हुआ है जितना कि अन्य क्षेत्रों में उनकी तरक्की व सहभागिता से। दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्र में महिलाओं की सहभागिता पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम रही है। यद्यपि एक ओर जहाँ पाश्चात्य देशों में महिलाओं को राजनीतिक अधिकारों के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा वहीं भारत में स्वतंत्रता पश्चात नवनिर्मित संविधान द्वारा महिलाओं को सत्ता में भागीदारी देने के लिए पुरुषों के समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो गये थे।

महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का तात्पर्य निर्वाचन में मतदान एवं प्रत्याशी के रूप में सहभागिता से लेकर महिलाओं की सत्ता में भागीदारी तक से है। नार्मन एच0 नीई एवं सिडनी वर्बा के शब्दों में, ''राजनीतिक सहभागिता आम लोगों की वे विधि सम्मत गतिविधियाँ हैं जिनका उद्देश्य राजनीतिक पदाधिकारियों के चयन और उनके द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करना होता है।'' किन्तु वर्तमान में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के कारण राजनीतिक सहभागिता मात्र मतदान एवं राजनीतिक सक्रियता तक सीमित नहीं है, बल्कि राजनीतिक सत्ता में भागीदारी से भी जुड़ गई है। सत्ता में भागीदारी होने का अर्थ है शक्ति प्राप्त करना और वैध शक्ति (सत्ता) ही वह प्रमुख प्रक्रिया है जो समाज की अन्य उपव्यवस्थाओं एवं संरचनाओं को निर्देशित, संचालित एवं प्रभावित करती है, इसलिए राजनीतिक सहभागिता महिला सशक्तीकरण हेतु एक महत्वपूर्ण माँग बन गई है।[1]

देश की आधी आबादी महिलाओं की है। राजनीति में उनकी सहभागिता अभी बहुत कम है। लोकतन्त्र की मजबूती के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। निर्णय निर्माण प्रक्रिया में स्त्री पुरुष दोनों की बराबर भूमिका होनी चाहिए। भारत की ऐतिहासिक, सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों के कारण महिलाओं को राजनीति में अपने हिस्से का आसमान अभी नहीं मिल पाया है। स्वतंत्रता के बाद से अब तक लोकसभा के 17 चुनाव हो चुके हैं लेकिन निर्वाचित महिला सांसदों की संख्या अपेक्षा के अनुरूप नहीं कही जा सकती।

आजादी के बाद भारतीय राजनीति में सुचेता कृपलानी, नन्दिनी सत्पथी, शीला दीक्षित, मोहसिना किदवई, मारग्रेट अल्वा, जे0 जयललिता, सोनिया गांधी, मायावती, ममता बनर्जी, सुषमा स्वराज, स्मृति ईरानी, बसुन्धरा राजे सिन्धिया, निर्मला सीतारमण आदि महिला नेत्रियों ने अपनी योग्यता और प्रशासनिक क्षमता का लोहा मनवाया है। इन्दिरा गाँधी ने अपने नेतृत्व क्षमता से पूरी दुनिया में अपनी धाक जमाई थी। प्रधानमंत्री के रूप में श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने महिलाओं की ख्याति अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाई। प्रतिभा पाटिल ने देश के सर्वोच्च संवैधानिक पद राष्ट्रपति को प्राप्त कर महिलाओं का मान बढ़ाया। मीरा कुमार और सुमित्रा महाजन ने लोकसभा अध्यक्ष के रूप में सफलता के कई मानदण्ड स्थापित किए हैं।

सारणी–1 लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

वर्ष	कुल सीट	महिला सदस्य	प्रतिशत
1952	499	22	4.41
1957	500	27	5.40
1962	503	34	6.76
1967	523	31	5.93
1971	521	22	4.22
1977	544	19	3.49
1980	544	28	5.15

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सन्त गणिनाथ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुहम्मदाबाद गोहना, मऊ, उ.प्र.*

1984	544	44	8.09
1989	517	27	5.22
1991	554	39	7.04
1996	543	39	7.18
1998	543	43	7.92
1999	543	49	9.02
2004	539	44	8.16
2009	543	59	10.87
2014	543	61	11.2
2019	543	78	14.36

(स्रोत– भारतीय चुनाव आयोग)

लोकसभा में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को दर्शाने वाली उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि लोकसभा में महिलाओं का प्रतिशत बहुत कम है और यह अभी तक 15 प्रतिशत तक नहीं पहुँच पाया है।

सारणी–2 लोकसभा में महिला उम्मीदवार

वर्ष	पुरूष	महिला	कुल	महिलाओं का प्रतिशत	निर्वाचित पुरूष (%)	निर्वाचित महिला (%)
1952	1831	43	1874	2.3	26.08	51.16
1957	1473	45	1518	3	31.7	60
1962	1915	70	1985	3.5	24	50
1967	2302	67	2369	2.8	21.3	44.8
1971	2698	86	2784	3	18.5	24.4
1977	2369	70	2439	2.8	22.1	27.1
1980	4478	142	4620	3	11.5	19.7
1984	5406	164	5570	2.9	9.2	25.6
1989	5962	198	6160	3.2	8.5	13.6
1991	8374	325	8699	3.7	5.9	12
1996	13353	599	13952	4.2	3.8	6.7
1998	4476	274	4750	5.7	11.2	15.7
1999	3976	278	4254	5.8	12.3	17.3
2004	5050	355	5405	6.5	9.8	12.6
2009	7514	556	8070	6.8	6.4	10.6
2014	7577	668	8251	8	6.3	11.42
2019		724	8049	9		10.8

(स्रोत– भारतीय चुनाव आयोग)

सारणी–2 यह दर्शाती है कि लोकसभा चुनावों में पुरुष उम्मीदवारों की अपेक्षा महिला उम्मीदवारों की संख्या अत्यंत कम रही है। यह 1952 में 2.3 प्रतिशत से बढ़कर 2019 में 9 प्रतिशत हो गई। जनसंख्या की तुलना में महिला उम्मीदवारों का प्रतिशत बेहद कम है। राजनीतिक दल महिलाओं को चुनाव में इसलिए टिकट देने से मना कर देते हैं कि उनकी पुरुषों की अपेक्षा जीतने की सम्भावना कम रहती है। लेकिन उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि महिलाओं की जीत का प्रतिशत पुरुषों की जीत के प्रतिशत से हमेशा अधिक रहा है।

सारणी –3 आम चुनावों में महिलाओं का मतदान प्रतिशत

वर्ष	पुरूष	महिला	कुल	पुरूष और महिला सहभागिता के बीच अन्तर
1952	—–	––	61.2	
1957	—–	––	62.2	
1962	62.0	46.6	55	15.4
1967	66.7	55.5	61.3	11.2
1971	60.9	49.1	55.3	11.8
1977	66.6	54.9	60.5	11.7
1980	62.2	51.2	56.9	11.0
1984	68.4	59.2	64.0	9.2
1989	66.1	56.9	62.0	9.2
1991	61.6	51.4	61.0	10.2
1996	62.1	53.4	57.9	8.7
1998	62.1	53.4	57.9	8.7
1999	64.0	55.6	60.9	8.4
2004	62.15	53.64	58.07	8.5
2009	60.0	56.0	58.21	4.0
2014	52.8	46.95	66.44	5.8
2019			67.11	0.4 *

(स्रोत– भारतीय चुनाव आयोग)

*(हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, 20 मई, 2019)

उपरोक्त सारणी महिलाओं की मतदान में सहभागिता को दर्शाती है। इस सारणी से यह स्पष्ट होता है कि चुनाव में मतदान के मामले में महिलाएं पुरुषों की अपेक्षा थोड़ी पीछे हैं। लेकिन उनके बीच का यह अन्तर लगातार कम होता गया है और 2019 के लोकसभा में यह घट कर मात्र 0.4 प्रतिशत रह गया है।[2]

भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास यह दिखाता है कि बड़ी संख्या में महिलाएं स्वतंत्रता के संघर्ष में भागीदार थीं लेकिन महिलाओं की राजनीति में सहभागिता स्वतंत्रता पश्चात कम हो गई। महिलाओं की कम राजनीतिक सहभागिता के लिए अनेक कारक जिम्मेदार हैं। साक्षरता की निम्न दर, श्रम का परंपरागत विभाजन, आर्थिक रूकावटें, राजनीतिक प्रशिक्षण का अभाव आदि कारक महिलाओं को राजनीतिक सहभागिता से रोकते हैं। चुनाव बहुत खर्चीले होते जा रहे हैं, महिलाएं चुनाव लड़ने के लिए बड़ी धनराशि की व्यवस्था करने में असमर्थ होती हैं। भ्रष्टाचार तथा राजनीति का अपराधीकरण महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में बड़ी बाधा बन गया है। विभूति पटेल का आकलन है कि महिला अधिकार समूहों की बहुलता के बीच राजनीति गंदी पैंतरेबाजी तथा हेरफेर से युक्त गतिविधि के समान है और इसलिए शक्ति और राजनीति उनके लिए विशेष गान मात्र हैं।[3]

राजनीतिक सहभागिता सर्वप्रथम निजी या निजी क्षेत्र से जुड़ी धारणा है। यह धारणा महिलाओं के राजनीति के प्रति रूझान और राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करती है तथा राजनीति में संलग्नता के लिए महिलाओं के बीच झिझक पैदा करती है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि महिलाएं राजनीति में रुचि नहीं रखती है।[4] जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने राजनीति को पेशा बताते हुए इसे पुरुषों के पेशे के रूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए राजनीतिक पदों पर महिलाओं की पहुँच इस विश्वास से बाधित होती है कि वे मुश्किल काम नहीं कर सकतीं। पुरुष अपने से सम्बन्धित सक्रिय राजनीतिक महिलाओं को निश्चित क्षेत्र का अतिक्रमण करने वाले के रूप में देखता है। राजनीतिक मामलों में महिलाएं ऐसी असामान्य समस्याओं का सामना करती हैं जिनसे उनके पुरुष साथी बिलकुल अनिभज्ञ होते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की महत्वहीन भूमिका के लिए विविध कारण जिम्मेदार हैं, उनमें रीति रिवाज, शरीर क्रिया विज्ञान, मनोविज्ञान और उर्ध्वाधर गतिशीलता का अभाव तथा संरक्षण का अभाव, विशेषकर वरिष्ठ महिला राजनीतिज्ञों द्वारा।[5]

महिलाओं की कम राजनीतिक सहभागिता के लिए सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पर्यावरण बड़े पैमाने पर जिम्मेदार है। महिलाओं की निम्न राजनीतिक सहभागिता के प्रमुख कारण निम्न हैं–

(1) समाज में निम्न स्थिति, (2) शिक्षा का कम प्रसार, (3) अति निम्न आर्थिक स्थिति, (4) बाधक सांस्कृतिक मानदण्ड, (5) राजनीतिक वातावरण।[6]

महिलाओं के ऊपर थोपे गये सामाजिक और सांस्कृतिक मानदण्ड उन्हें राजनीति में प्रवेश लेने से रोकते हैं। उन्हें अपने पर थोपे गए हुक्म को मानना पड़ता है और वे समाज के बोझ को ढोती हैं। वे अपनी वंचना और कमजोर स्थिति को भी समाज की संस्कृति सोच कर ढोती रहती हैं। सार्वजनिक दृष्टिकोण केवल यही नहीं निर्धारित करता है कि कितनी महिलाएं आम चुनाव जीतती हैं बल्कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से यह भी निर्धारित करता है कि कितनी महिलाओं को सार्वजनिक पद के लिए विचार किया गया या मनोनीत हुईं।[7]

भारत में महिलाओं की स्थिति संबन्धी समिति ने यह टिप्पणी की है कि उसे अनेक विधायकों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने बताया है कि राजनीति में सक्रिय भागीदारी से अनेक महिलाओं को रोकने वाले कारकों में हिंसा और चरित्र हनन की धमकियां थीं। ''उनमें से कुछ का राजनीतिक सक्रियता का लम्बा रिकार्ड है, लेकिन फिर भी वे चुनावों में उम्मीदवारी का सामना करने से हिचकती हैं।'' यह टिप्पणी अभी भी सटीक बैठती है।[8]

भारत में महिलाओं ने पुरुषों के पेशों में अपनी बड़ी पैठ बनाई है। व्यापार, कला, औषधि, इंजीनियरिंग, कानून तथा संस्कृति जैसे क्षेत्रों ने महिलाओं को अपना हुनर साबित करने का मौका उपलब्ध कराया है। लेकिन महिलाएं राजनीति के क्षेत्र में अपनी जमीन पाने में नाकाम रहीं हैं। ये प्रवृत्ति दिखाती है कि राजनीति में महिलाओं की सहभागिता के लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आज भी कुछ को छोड़कर उत्कृष्ट महिला सांसद अपनी ही पार्टी के अंदर दरकिनार और शक्तिहीन महसूस करती हैं। राजनीतिक दलों के पुरुष नेता पार्टी की निर्णय–निर्माण ईकाइयों में महिलाओं को शामिल करने में या अपने संगठन के भीतर महिलाओं के अनुकूल माहौल तैयार करने में मदद करने में कम तत्परता दिखाते हैं। राजनीतिक निर्णय निर्माण में महिलाओं की सहभागिता की कमी के महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। यह महिलाओं को एक नागरिक के रूप में महत्वपूर्ण अधिकारों और दायित्वों से वंचित कर देता है और नीति निर्माण एवं निर्णय निर्माण से उनके सरोकारों व हितों को बाहर कर देता है। उनकी आवाजें राष्ट्रीय बजट पर महत्वपूर्ण फैसलों तथा सरकारी प्राथमिकताएं तय करने में लापता हैं। उनका कौशल, और दृष्टिकोण अक्सर अनसुना, अनदेखा या उपेक्षित रहता है। इसलिए विशेष उपायों की आवश्यकता है अन्यथा हमारा लोकतंत्र गंभीर दोषपूर्ण बना रहेगा अगर यह महिलाओं को उचित स्थान देने में असफल रहता है।[9]

महिलाएं भारतीय समाज में एक ऐसे वर्ग का निर्माण करती हैं जो कि परम्परागत रूप से प्रताड़ना, उपेक्षा, व पिछड़ेपन का शिकार रही हैं। अतः जब संविधान की प्राथिमकताओं के अनुरूप समाज के कमजोर वर्गों को उठाने की बात आती है तो महिला वर्ग उसमें प्रमुख रूप से आता है।

भारतीय लोकतंत्र की मजबूती के लिए यह जरूरी है कि राजनीतिक नीतियों, और कानूनों का निर्माण, निर्धारण व क्रियान्वयन महिलाओं व पुरुषों द्वारा मिलकर समान रूप से होना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने ठीक ही कहा है कि ''राष्ट्र की उन्नति के लिए महिलाओं की सहभागिता बहुत जरूरी है। इसलिए महिला वर्ग का जागना, जागकर उठना तथा उठकर आगे बढ़ना बड़ा अनिवार्य है।[10]

स्वतंत्रता के समय से ही समाज के प्रत्येक वर्ग की महिलाएं राजनीति में सक्रिय रही हैं प्रत्यक्ष राजनीतिक सहभागिता ने महिलाओं के आत्मविश्वास को बढ़ाया है तथा उनके जीवन में निजी व सार्वजनिक द्वन्द्व की बाधाओं को दूर किया है।[11] हालांकि महिलाओं के राजनीति में प्रतिभाग करने के अधिकार का मूल मुद्दा इस प्रकार तय हुआ कि उनकी राजनीतिक भूमिका एक खुला प्रश्न बनी हुई है।[12]

महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता के रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए अनेक प्रयास किये गए हैं। महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को महिला सशक्तीकरण की अनिवार्य दशा मानते हुए भारत सरकार ने 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायती राज संस्थाओं व नगर निकायों में कुल स्थानों का एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिया है। महिलाओं की राजनीति में सहभागिता बढ़ाने के लिए महिला आरक्षण विधेयक सर्वप्रथम 1996 में देवगौड़ा सरकार के समय संसद में पेश किया गया। किन्तु अभी तक यह राजनीतिक दलों के निहित स्वार्थों की वजह से पारित नही हो सका है।

यद्यपि हमारा संविधान स्पष्ट एवं जोरदार शब्दों में स्त्री–पुरुष सामनता का उद्घोष करता है। लेकिन क्या वास्तव में भारतीय नारियों को समानता का अधिकार प्राप्त है? वास्तविकता तो यह है कि संवैधानिक और राजनीतिक समानता का स्वाद नारियों के केवल उस वर्ग तक पहुँच पाया है, जिसके पास शिक्षा एवं सामाजिक मान प्रतिष्ठा है। कभी कभार इन्दिरा गाँधी को प्रधानमंत्री तथा किरण बेदी को प्रशासनिक अधिकारी के रूप में पेश करके या फिर तैंतीस प्रतिशत आरक्षण देने जैसे मुद्दों को हवा में उछालकर यह सिद्ध करने का झूठा प्रयास किया जाता है कि'' भारतीय नारियों को भी संविधान की उद्घोषणा के अनुरूप सामाजिक व राजनैतिक अधिकार प्राप्त हैं।''[13]

सरकारों द्वारा पिछले दो दशकों में महिला आरक्षण विधेयक को संसद में पारित कराने की कोशिश होती रही है, किन्तु राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में यह कोशिश छलावा मात्र लगती है। ऐसे मौकों पर पूर्व सांसद गीता मुखर्जी के ये शब्द याद आते हैं–''औरतों के विरूद्ध दुनिया के सारे मर्द एक हो गए हैं।''[14]

संसद में महिलाओं के तैंतीस प्रतिशत आरक्षण के सम्बन्ध में पक्ष और विपक्ष में अनेक तर्क दिये जाते हैं। हर विचार के पक्ष और विपक्ष होते हैं। महिलाओं के 33 प्रतिशत आरक्षण के सम्बन्ध में अपने अपने मत हैं। इस सम्बन्ध में यह सुझाव उचित ही लगता है कि आरक्षण के द्वारा चयनित महिला को दो से अधिक बार आरक्षण के आधार पर चुनाव से रोक लगा देनी चाहिए। ऐसी महिला तीसरी बार आरक्षण का लाभ प्राप्त न कर पाये। इससे न केवल कुछ अभिजन महिलाओं के एकाधिकार को चुनौती मिलेगी वरन् अन्य महिलाओं को भी राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी का अवसर मिलेगा।[15]

महिलाओं के संसद में आरक्षण की जरूरत आज इसलिए भी है कि नीतियों के निर्धारण में उनसे जुड़ी चीजे नहीं आ पातीं। यह दुःखद भी है कि पिछले कुछ ही वर्षों में सदन में उनकी मौजूदगी का प्रतिशत भी काफी घटा है। राजनीति जिसे आज 'काजल की कोठरी वाला क्षेत्र' कहा जाता है को साफ–सुथरा बनाने के लिए भी महिलाओं का आरक्षण बेहद जरूरी है। इनके आने से राजनीति स्वच्छ होगी, परम्परा की दृष्टि से देखें तो नैतिकता, सहनशीलता और विवेक के मामले में वे पुरुषों से हमेशा आगे रही हैं। उनका 'क्रिएटिव' पक्ष भी राजनीति के लिए काफी सकारात्मक हो सकता है।[16]

महिलाओं की राजनीति में सहभागिता बढ़ाने हेतु राजनीतिक दलों की आचार संहिता में नियम बनाकर महिलाओं को स्थान प्रदान करने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में बीजिंग सम्मेलन (1995) मे राजनीतिक दल की भूमिका पर सविस्तार विश्लेषण हुआ था और यह सुझाव भी दिया गया था कि सभी देशों में राजनीतिक दलों द्वारा महिला उम्मीदवारों का कोटा निश्चित किया जाय और साथ ही दलों के आंतरिक संगठन में सभी स्तरों पर महिला पदाधिकारियों की व्यवस्था करें। कई देशों में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता बढ़ाने के लिए विशेष कार्यक्रमों की शुरूआत की गई, जैसे– बच्चों के लिए क्रेच की व्यवस्था, दलों की बैठकों का समय इस तरह निर्धारित करना कि महिलाओं को घर की जिम्मेदारी पूरा करने में बाधा न हो आदि।[17]

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की सफलता के मूल मे उसके नागरिकों की राजनीतिक सक्रियता निहित होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो राजनीतिक सहभागिता, जागरूकता एवं व्यवस्था में जनता की सक्रिय रुचि ही इसकी सफलता का आधार होती है। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी उनके विकास का अभिन्न अंग है। इस दृष्टिकोण से राजनीतिक सक्रियता का अर्थ महिलाओं के द्वारा केवल वोट डालना ही नहीं वरन् सत्ता में हिस्सा लेना, पार्टी और सरकार में सभी स्तरों पर निर्णय लेने या नीति निर्धारण में हिस्सा लेना है। चेतना बढ़ी है और अपनी कानूनी स्थिति का उपयोग करते हुए वह सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ रही है।[18]

निष्कर्ष–भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता भले ही विकसित लोकतांत्रिक देशों में उनकी राजनीतिक सहभागिता की तुलना में कम है किन्तु इसे निराशाजनक नहीं कहा जा सकता। अभी तक सम्पन्न हो चुके आम चुनावों के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि संसद में उनका प्रतिनिधित्व लगातार बढ़ा है। वर्तमान में संसद में उनकी भागीदारी 14 प्रतिशत से ऊपर है। चुनावों में उम्मीदवारी के मामले में भी उत्तरोत्तर वृद्धि दिखती है तथा मतदाता के रूप में भी उनकी सहभागिता बढ़ी है। 2019 के आम चुनाव में महिलाओं का मतदान प्रतिशत पुरुषों के लगभग बराबर रहा। जबकि राजनीतिक दलों का माहौल महिलाओं के अनुकूल नहीं है तथा उन्हें पार्टी में अपनी जगह बनाने के लिए कड़ा संघर्ष और बहुआयामी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। महिलाओं की उचित राजनीतिक सहभागिता सुनिश्चित करने के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि महिलाओं को सामाजिक रूढ़ियों, परम्परागत रूप से विद्यमान रही है असमानता पूर्ण और शोषण की सामाजिक स्थितियों, उनकी स्वतंत्रता को

प्रतिबन्धित करने वाली परिस्थितियों तथा अज्ञान और अशिक्षा की निर्योग्यताओं से मुक्त किये बिना उनके द्वारा राजनीतिक अधिकारों के स्वतंत्र रूप से प्रयोग और राजनीतिक प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में उनकी सार्थक सहभागिता की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. गुप्ता, नीलम, (2015), भारत में महिलाओं के राजनीतिक अधिकार एवं नेतृत्व के आयाम, सारिका दूबे (सं.), Women Empowerment-challenges of Millennium, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

2. लोकसभा चुनाव 2019–हिन्दुस्तान 22-09-2019 https://www.livehindustan.com>

3. Patel, Vibhuti, Getting a Foot Hold Politics, Women in Political Decision Making Process, Social Action, vol.65, No. 1, Jan- March 2005, p. 40

4. Kumar Abhilasha, Sabina Kidwai, (1998), Crossing the Sacred Sine: Women Search for Political Power, Orient Longman, New Delhi. p 3.

5. Bhatt, Shantha, (1995), Women Parliamentarians of India, Shiva Publishers, Udaypur, p. 190

6. Sinha, Niroj (ed.) (2006), Women in Indian Politics, Gyan Publishing House, New Delhi, p.55

7. Narayana, Jayaprakash, Dhirubhai Seth, Yogendra Yadav, Madhu Keshwar, (2000), Enhancing Women's Representation in Legislature-an Alternative to the Government Bill for Women's Reservation, Manushi, No. 116, p.7

8. Welch S., L. Sigelman, (1982), Change in Public Attitudes Towords Women in Politics, Social Science Quarterly, University of Texas Press, 63(2), p.312.

9. गोपालन, डॉ. सरला, (2002), समानता की ओर अपूर्ण कार्य, भारत में महिलाओं की स्थिति 2001, राष्ट्रीय महिला आयोग, पृ. 283

10. ताराचन्द, History of the Freedom Movement in India, Vol. II, Dept. of Publication, Govt of India, 1967

11. Swarup, Hemlata, (1993), Ethnicity, Gender and Class, International Conference of Historians of the Laborour Movement, Europaverlag, Vienna, p.367

12. Rajbala, (1999), The Legal and Political Status of Women in India, Mohit Publications, New Delhi, p. 217

13. झा, संजीव, कुमार, नारी के अधिकारों पर कब्जा परायों का, अमर उजाला 'रूपायन', 12 दिसम्बर, 1997

14. मुखर्जी, गीता, महिला आरक्षण विधेयक के नाम पर हुए पाखण्ड, दैनिक जागरण, 10 मई 1997

15. Barnwal, Sanjay, (2015), Political Participation: A Savior to Women, Sarika Dubey (ed.), Women Empowerment-challenges of Millenium, Adhyayan Publishers and Distributors, New Delhi, p. 47

16. राजशेखर, स्वच्छ होगी राजनीति, राष्ट्रीय सहारा, शनिवार, 18 जुलाई, 1998

17. सिन्हा, निरोज, (2001), महिला सशक्तीकरण–वायदे और हकीकत, आधी जमीन, ऐपवा का मुखपत्र, अक्टूबर–दिसम्बर 2001, पृ. 13

18. मोदी, सरोज (1991), विधानसभा में महिला विधायक, मित्तल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 5–6

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 198-201

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

सुभाष पंतजी का उपन्यास 'पहाड़ चोर' में औद्योगिक परिदृश्य

*डॉ. रश्मि मालगी**

श्री सुभाष पंतजी आज के विशिष्ट साहित्यकार हैं। एक सफल उपन्यासकार और कहानीकार भी रहे हैं। उनका व्यक्तित्व संवेदनशील व संघर्षमयी है।

साहित्य के प्रति आप विषय को विविध क्षेत्रों से चुन लेते हैं। जहाँ आज का अंतिम व्यक्ति बसता है। घटनाओं और वैचारिकता का ताना बाना भी उनकी कहानियों में या उपन्यासों में दिखाई देता है। आपने कभी नाटकीय ढंग से नहीं लिखा। सहज जीवन की घटनाओं को प्रस्तुत करना आपके बायें हाथ का काम रहा है। स्वाभाविकता विश्वसनीयता और सीधापन आपकी रचनाओं की विशेषता हैं। इस कारण लेखक स्वयं कहते हैं, ''लेखक तो जीवन को देखने की दृष्टि रखता है। लेखन के लिए भाषा व कच्चा माल हमें जीवन से प्राप्त होता है। अनुभव को रचना व कच्चेमाल को फिनिश प्रॉडक्ट में कैसे बदलना होता है, यह तमीज़ हमें महान शास्त्र पढ़कर लेखक नहीं बना जा सकता है।''[1] किसी अनुभवी को रचना बनाने के लिए व लेखक बनने के लिए लंबे समय तक अवचेतन में पकना व आत्म मंथन के दौर से गुजरना चाहिए। इसी कारण आँचलिकता की दृष्टि से झंडूखाल की संस्कृति में लोकगीत लोग–गाथाओं विश्वास मान्यताओं के साथ संजोया गया है। करुणादायक चित्रण को वे सजीवता के साथ सामने लाने की कोशिश करते हैं। पहले ज्यादातर व्यंग्य और करुणा की कहानियाँ लिखा करते थे। आज की राजनैतिक व्यवस्था में जो कुछ हो रहा है, उसे लेकर रचनाएँ करते हैं। साहित्य का दृष्टिकोण विचारात्मक दृष्टिकोण है, जो रचनाओं में गंभीर रूप से उभरा है।

आधुनिकता का प्रमुख आधार औद्योगीकरण है। उद्योग धंधों की स्थापना से सामाजिक जीवन प्रगति में परिवर्तन हुआ है। औद्योगिक वस्तियों के साथ–साथ कामगार, तकनीकी विशेषज्ञ, संचार साधन सड़कों का निवास स्थल भी उसी गति से बढ़ने रहे हैं। औद्योगीकरण ने सारे परिवेश को बदलकर रख दिया है।

डॉ. गंगाप्रसाद विमल के शब्दों में ''औद्योगीकरण ने प्रकृति के दृश्यांकनों की जगह मानव निर्मित के दृश्य स्थापित किए हैं। पश्चिम के संदर्भ में जंगलों को नगरों में तबदील किया है, और भारत के एक नई संस्कृति को विदाई देकर छोटे पैमाने के उद्योगों के रूप में एक नई संस्कृति की स्थापना की शुरुआत की है।''[2] औद्योगीकरण से ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योग धंधों का अंत हुआ। ''शहर उद्योगों के केंद्र बन गए, शहरीकरण होने लगा।''[3] शांति ग्रामीण जीवन से निकलकर मनुष्य भाग–दौड़ वाली जिंदगी में आ गया जहाँ उसे अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ा। इस संदर्भ ने मानसिक तनाव को जन्म दिया। शहरों में आकर व्यक्तिगत आवश्यकताए बढ़ गई जिनकी पूर्ति के लिए वह दिन रात काम में व्यस्त होने लगा। नगरीकरण की प्रक्रिया से परिवार का परंपरागत स्वरूप प्रचलित मानदण्ड और व्यक्ति का वैयक्तिक जीवन भी प्रभावित हुआ। संयुक्त परिवार छोटे परिवारों में बदल गए। यातायात तथा संचार के साधनों के विकसित होने से अंधविश्वासों का अंत हुआ और समाज में नये उदार विचारों का महत्व बढ़ गया। मशीनों के साथ काम करते–करते मनुष्य का जीवन भी यांत्रिक हो गया। उसकी संवेदनाएँ नष्ट होने लगीं। अधिक धन की लालसा से मनुष्य भौतिकवादी बन गया। औद्योगीकरण से ही समाज दो वर्गों में बँट गया यथा, पूँजीपति और श्रमिक वर्ग। पूँजीपति अपने स्वार्थ के लिए मजदूरों का शोषण करते थे।

पहाड़ चोर और औद्योगीकरण–हिन्दी कथाकार सुभाष पंतजी अपने इस उपन्यास में एक पहाड़ी गाँव झण्डूखाल के संदर्भ में आजादी मिलने के बाद दशक बाद की स्थितियों का जायजा लेते हैं। पहाड़ी गाँव का कोई बनांचल का आदिवासी बहुत क्षेत्र बदलाव या विकास के सूत्र यहीं खोजने पर वस्तुस्थिति की शुद्धता को सही मायनों में आंका जा सकता है।

सुभाष पंतजी इस सत्य को जानते हैं, इसलिए उन्होंने झण्डूखाल नामक गाँव में लोगों की दिनचर्या को आधार बनाते हुए बृहत्तर गद्य कृति देकर झण्डूखाल गाँव में जो अपनी दिनचर्या को सुखद रूप से बिताते हुए एक–दूसरे का सुख–दुःख जानते हुए, सभी सक दूसरे से प्रेम करते हैं। दो वक्त की रोटी के लिए गाँव के लोग संघर्ष करते हैं,

* *प्लाट नं.-9, सिद्धारूढ़ कालोनी, शिविगिर, धारवाड़, कर्नाटक*

भाईचारा का संबन्ध रखते हैं, यहाँ मोचियों के 26 परिवार रहते हैं। इनके जीवन का आधार हैं, इनके खेत। पहाड़ झरने व आपसी प्यार तथा विश्वास इन्हीं आधार व गुणों के कारण पीढ़ियों के बावजूद गरीबी व पिछड़ेपन से युक्त सभी लोग सुख से रहते हैं। इनका जीवन अभावों से भरा है, और ये कुछ बेहतर बदलाव भी चाहते हैं। उसके सपने भी देखते हैं। उनके जीवन में रंगीन सपनों को लेकर कुछ उद्योगपति पधारते हैं और रुपयों का लालच देकर गाँव के लोगों में आपसी फूट डालकर उनके गाँव को तहस–नहस करने में जुट जाते हैं। समय–समय पर गाँव के लोग अपने गाँव की सुख शांति को लौटाने के लिए उनके इरादों को कुचलता है। जैसे ''भारतवर्ष से व्यापार करने के लिए विदेशी राष्ट्रों में होड़ भी लगी रहती थी। इसी उद्देश्य से सन् 1600 में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना इंग्लैंड में हुई।''[4] ठीक उसी प्रकार झण्डूखाल में भी कुछ लोग आते हैं। भले ही यह काम देरी से ही सही परंतु अपने मतलब पर अडिग रहे। इस बीच कितने लोग उसका इंतजार करते हुए काल कवालित हो गये। लेकिन आखिरकार इस भाग्यवान पीढ़ी के सामने उस प्रतीक्षित आजादी की दस्तक होने जा रही है। वक्त तो बहुत लगा लेकिन इन जीवों में भरे आदमी एक प्राइवेट कंपनी के लोग हैं, जिसे सरकार ने पत्थर से चूना बनाने के लिए खनन का लाइसेन्स दिया है। जो झण्डूखाल के लोगों की सड़क बनाने हेतु उनकी खेती की जमीन कुछ मुआवजे के बदले में पाना चाहती है, जिससे कंपनी की गाड़ियाँ आ–जा सकें तथा पहाड़ के खनन का काम सुचारू रूप से चले। जैसे अंग्रेजी राज के खत्मे के बाद गाँधीजी खेती किसानी के क्षेत्र में एक नयी क्रांति का सूत्रपात करना चाहते थे। ठीक वैसे ही झण्डूखाल के लोगों की सड़क बनाने हेतु उनकी खेती है। यह अलग बात है कि कुछ लोगों को अंततः गलत लगता है और अन्य को सही।

इस प्रकार कंपनी के लोग गाँव में फूट डालते हुए चले जाते हैं। भारतीय कारीगरों द्वारा निर्मित माल अरब, मिस्र, रोम, फ्रांस तथा इंग्लैड के बाजारों में बिकता था। झण्डूखाल खनन से इसलिए प्रभावित ही रहा कि उसका भी वही सुंदर भविष्य होने वाला है। स्त्रियाँ खुश नजर आ रही हैं। उन्हें लग रहा था, कि अब गाँव बदल जाएगा।

हमारे सिर का बोझ नीचे उतर जाएगा। बच्चे तो घोड़े पर सवार होंगे। उसी में विरोध करता हुआ टोपन रम्मे जैसे व्यक्ति भी है जिन्हें पता चलता है कि औद्योगीकरण के द्वारा प्रकृति के संसाधनों व अधिकारियों की सत्ता द्वारा लूटी जाने लगी। फलस्वरूप उन पर अवलंबित और उनके सहारे न उखड़ने लगे व सर्वहारा बनकर शहरों की ओर भागने को विवश होने लगे।

आधुनिक तथा यांत्रिकता का बढ़ावा प्रभाव–अब गाँव भी औद्योगिक विकास एवं शहरी संस्कृति के प्रभाव से मुक्त नहीं रह गए हैं। ग्रामीण जनों की जीवन शैली में निरंतर बदलाव आ रहा है। आजादी के बाद विशेषकर कृषि क्षेत्र में आयी यांत्रिकता से एक आम किसान पर बेअसर पड़ा है। इस उपन्यास की यह है कि इसमें आधुनिकता व यांत्रिकता से उनके खेतों पर काफी प्रभाव पड़ा है। पहले सड़क की वजह से खोना पड़ा, आधुनिकता से वे परे नहीं थे। कंपनी के आने से उनके जीवन में एक आशा की नयी किरण फूटी थी। गाँव के लोग सोच रहे थे कि कंपनी वाले हमें काम देंगे हमारी हैसियत बढ़ेगी, पैसा मिलेगा तो जिंदगी बदलेगी गाँव में सभी नौकरी करेंगे। लेकिन हुआ यह कि जो कंपनी वाले आये हुए थे, झण्डूखाल का नाम वास्तव में मिटा देना चाहते थे। यूँ तो सीधा सादा जीवन व्यतीत कर गाँव के लोग संघर्ष करते हुए दो जून की रोटी खाकर भी सुखी हैं। सभी एक दूसरे से प्रेम करते हैं, व सभी के सुख–दुःख के भागीदार होते हैं। उनके जीवन में एक बहुत भारी बदलाव आता है। परंतु तमाम लोग चाहकर भी कंपनी की दासत्व से मुक्त नहीं हो पाते हैं।

विस्फोट धमाका इनके जीवन के अंग बन गये हैं, डाइनामाइट से पहाड़ तोड़ना व पर्यावरण की असुरक्षा से झण्डूखाल पर बुरा प्रभाव पड़ता जा रहा है। बुलडोजर से गाँव का नाश होता है। जिससे बेकारी बेरोजगारी की बढ़ावा मिलता जा रहा। पहाड़ खोखला होता गया। खेत बंजर पड़ने लगे। अब वहाँ धान उगाना मुश्किल हो गया है। किसान के बदले मजदूर बनना गुलामी को सहना करना अनिवार्य प्रतीत होने लगा। आपसी भेद–भाव के उत्पन्न होने से जीवन तहस–नहस होता गया।

आधुनिकता के कारण विदेशी वस्तुओं के प्रति लोग आकर्षित होने लगे। उनकी वस्तुएँ अब पूरे विश्व में राज करने लगी है। सड़क पर जो गाड़ियाँ खेतों को चीरते हुए निकलती अनुमान होने लगा कि ये गाड़ियाँ हमारी आत्माओं की चीरती हुई निकल पड़ रही है। प्रस्तुत उपन्यास के पात्र इसके जिंदा मिसाल साबित हुए है। जिसके औद्योगीकरण का हादसा बदलाने तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गाँव की परम्परागत संरचना का विध्वंस और परिवर्तित गाँव का यथार्थ–आधुनिकता तथा औद्योगीकरण के बढ़ने प्रभाव के फलस्वरूप वर्तमान ग्रामीण संस्कृति की मान्यताओं में बदलाव आने लगा। पारस्परिक उनके संबंधों में परिवर्तित लक्षण उनके पारस्परिक जातीय व सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण ''भारतीय गाँव आकर प्रकार एवं दृष्टि से समान नहीं है। जजमानी व्यवस्था के रूप में अंतर्जातीय संबंध भारतीय गाँवों की अपनी विशेषता है। गाँव व्यवस्थित रूप में सामूहिक मानव निवास की प्रथम स्थापना है, कृषि अर्थव्यवस्था के

विकास की उपज है।''[5] असल में औद्योगीकरण तथा नगरीकरण ने जिस गाँव की संरचना में बदलाव ला दिया है, उसी ने महान कृषक संस्कृति को भी बदलकर रख दिया है। किसी भी समाज की संस्कृति हो उसकी विशेष उपलब्धि मानवजीवन में मूल्यों का समावेश करना ही होता है। जब किसी युग का उत्थान होता है, तब सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है।

इस प्रक्रिया के मध्य पुरातन सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। इसी कारण मूल्य क्षीण होते जाते हैं। उनके स्थान पर हर नवीन मूल्य स्थापित हो जाते हैं। ये नवीन मूल्य परिवर्तन एवं आगामी समाज तथा युग की आवश्यकताओं के अनुकूल होते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में गाँव की परंपरागत का विध्वंस का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि कंपनी गाँव के कुछ लोगों को खदान पर नौकरी देकर गाँव को दो हिस्सों में तोड़ देती है। अब गाँव में दो दल बन गये हैं। किसान से कंपनी के मजदूर बनने की अकड़ व बड़प्पन से पैसे की ताकत से किसान के इरादों को बार–बार कुचला जाता रहा अमीर वर्ग।

बेरोजगारी (बेकारी)–संसार की सबसे बड़ी भयावह समस्या है बेरोजगारी। केवल भारत को ही नहीं, यह प्रश्न सारी दुनिया को सता रहा है। बेरोजगारी एक बड़ी बीमारी जैसी ही है, जो देश के विकास के जड़ मूल को कुतर–कुतर कर खा रही है। इसे कम करने का प्रयत्न सदियों से होता आया है। परंतु हर देश के विकास के साथ–साथ बेरोजगारी भी बढ़ती जा रही है। ''औद्योगिक विकास के साथ इसी बेकारी से अजीब आकर बेकार व्यक्ति कुकर्म की तरफ बढ़ता जा रहा है। ग्रामों में नगरों में और महानगरों में यह बेकारी बड़ी बिकराल समस्या बन बैठी है।''[6] इस तरह लेखक अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने में कामयाबी हासिल कर चुका है।

गाँव को बचाने का संघर्ष–समाज जीवन के विकास के साथ–साथ नयी–नयी सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती है। ये समस्याएँ मानव विकास में बाधा पहुँचाती है। झण्डूखाल में आये परिवर्तन से जनजीवन में अनेक समस्याएँ उभर कर आई। ग्रामीण जनजीवन नगरी जनजीवन व मानवीय संबन्धों में अनेक समस्याओं का निर्माण हुआ। यांत्रीकरण व औद्योगीकरण ने कई समस्याओं को जन्म दिया। नैतिक व सांस्कृतिक मूल्य विघटन ने कई समस्याएँ पैदा की। संयुक्त परिवार की टूटन और गाँव में फैली राजनीति से कई समस्याएँ उभरी हैं। उदाहरण के लिए–महँगाई, कृषक जीवन, बेकारी, मानव संबन्ध की समस्याएँ हैं। आज के जनजीवन में समस्याओं ने विविध मुखी रूप धारण कर लिया है। प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में उद्योगपतियों ने जो फुट डाली, उसका उद्देश्य गाँव वाले समझ नहीं पाये थे। गाँव में फूट डालने से कंपनी को अधिक लाभ हुआ। इसलिए कंपनी वाले द्वारा साबरा को अपने जाल में फँसा लेते हैं। लेकिन खदान का काम शुरू होते ही आपत्तियाँ शुरू हो जाती हैं। जैसे सड़क बनाते समय कुछ लोगों के खेत चले जाते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण–पर्यावरण प्रदूषण दृष्टि से 'पहाड़ चोर' पहाड़ों के नाजायज दोहन व अनंत रजस्वला प्रकृति के बन्ध्याकरण की एक करुण दास्तान है। ऐसा उत्तरांचल ही नहीं उससे जुड़ा उत्तर–पश्चिम के अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में भी आज तक ऐसा ही होता आया है। आजादी के बाद के इन वर्षों में पत्थर माफियाओं ने स्वतंत्र भारत के राज्य व केंद्र सरकारों की नाक के नीचे भूमि की अमूल्य खनिज संपदा से खिलवाड़ किया है। जबकि दूसरी ओर हिमालय के समूचे वनसंपदा को भी लकड़ी के ठेकेदारों व लकड़ी के तस्करों ने बुरी तरह उजाड़ा है। इनमें 'पहाड़ चोर' की कथा एक ऐसी बुलंद आवाज है, जो ऐसी व्यवस्थाओं का खुलकर प्रतिपादन करती है। कथाकार के अनुसार 'जमीन, पानी, जंगल व जानवर इन पर ही तो पहाड़ का जीवन टिका है। कोई भी एक चीज़ हिली, तो जीवन की जुरी टूटी।'' झण्डूखाल के प्रकृति चित्रों में वह सहज आकर्षण है, जो न केवल पहाड़ों में रहने वालों को बल्कि पहाड़ों से बाहर के निवासियों को भी प्रभावित करेगा। पहाड़ का सौंदर्य बदलते समय के रंग, बरसात और सर्दियों की खूबसूरती वहाँ के पेड़ पौधों पर कंपनी के आने से किस प्रकार परिणाम हो सकता है, इसका चित्रण उपन्यासकार बखूबी से वर्णन करते हैं।

पूँजीपतियों की शोषण गति–देश नया नया आजाद हुआ था। देश के अग्रणी उद्योगपति घनश्याम दास विड़ला को गाँधी से चुहल करने की सूझी। विड़ला ने बापू से लहजे में कहा कि आप तो जीवन भर लड़ाकू रहे हैं, आजादी की लड़ाई के दिनों में आप अंग्रेजों से लड़ते रहे हैं, अब जब आजादी मिल गयी है। तब आप किससे लड़ेंगे? बापू ने तपाक से कहा कि गुलाम भारत में अंग्रेज हमारे दुश्मन नम्बर एक हैं। आप चाहें तो यह लड़ाई मीठी हो सकती है, उद्यमियों द्वारा संचालित छोटे व मझोले उद्योगों के दिन अब लद चुके हैं।

इस प्रकार भारी पैमाने पर हमारी अर्थ व्यवस्था का अनऔद्यीगीकरण हो रहा है। इस उपन्यास में पूँजीवादी व्यवस्था में होनेवाले शोषण का जहाँ वर्णन किया गया है, वहीं सामाजिक जीवन में होने वाले अवसाद को भी प्रस्तुत किया है। समाजवादी व्यवस्था में संपत्ति के समान बँटवारे के साथ ही साथ थोपी नेतागिरी का विरोध भी किया है। इस प्रकार से यह स्पष्ट हो गया है कि धन पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था के रहते समाज जीवन में लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था दिन–ब–दिन हीन होती जा रही है। इसी प्रकार पूँजीवाद व्यवस्था में जनता के शोषण को रोकने के लिए हैं। इस व्यवस्था से आम जनता तो पिसती जाती है।

विदेशी वस्तुओं के प्रति मोह–गाँव में परिवर्तन होने के कारण संबंधी कंपनी में काम करने से अधिक आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया बढ़ रही हैं। आजकल लोग विदेशी वस्तुओं के प्रति मोह दिखा रहे हैं। गाँव में पहले साबरा में विदेशी वस्तुओं का इस्तेमाल करना शुरू किया है। जब से कंपनी में नौकरी मिली तब साबरा का कोट सारे गाँव में चर्चा का विषय बन गया था। जिन्होंने देखा उनके बीच भी, जिन्होंने नहीं देखा सिर्फ सुना उनके बीच भी। इस पर भी आम स्वीकृति थी, कि कोट मोहन बाबू ने साबरा के लिए विलायत से मंगवाया गया है। क्यों मंगवाया? यह बताने की जरूरत नहीं। झण्डूखाल के लोग बहुत समझदार है। कोई भी चीज़ अच्छी हो तो झण्डूखाल लिए उसका संबन्ध विलायत से जोड़ देते। वाह! कितनी बढ़िया है। विलायती की होगी। उनको पता तक नहीं था कि बिलायत कहाँ है? ये तो पता नहीं कहते हैं पर सात समंदर पार है। गोरों का देश गोरों ने सारी दुनिया पर राज किया है। अब वहाँ की चीजें दुनिया पर राज कर रही हैं। साबरा का कोट वाकई विलायत का था। यह सेकंड–हैंड कोट पैंट उसने मोटिया बाजार से खरीदा था। नगद पचास रुपयों में। ऐसा कोट पहने और सीटी बजाते हुए साबरा कुछ अकड़ और दर्प के साथ सड़क पर चला जा रहा था। मानों अपनी रियासत का मुआयना कर रहा हो। इस तरह औद्योगीकरण के प्रभाव को गाँव के लोगों को भी आकर्षित कर दिया है।

कृषि की स्थिति–भारत को आजादी मिलकर साठ वर्ष से अधिक समय बीत गया। परंतु किसानों की करुण कथा बदस्तूर बनकर स्वतंत्रता पूर्व ग्रामीण जनता यहाँ की सामंतवादी व्यवस्था के आने से समस्त जनता पिसती रही। असल में देखा जाये तो स्वतंत्रता से पूर्व समाजवादी अंग्रेज, पूँजीपति और जमीनदार शोषण के तीन ही पक्ष थे। इन्हीं पक्षों को मध्य नज़र रखते हुए गाँधीजी के विचार थे कि यदि भारत के गाँव नष्ट हुए तो पूरा देश नष्ट हो जायेगा। लंबे समय तक की परतंत्रता में भारतीय किसान को दयनीय स्थिति में सहना पड़ेगा। इसलिए जब ब्रिटिश शासन की समाप्ति के बाद आजादी मिला, तो देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने कृषि को सुधारने के लिए कई योजनाओं को बनायी। उनका विचार था कि 'कृषि हमारे सभी विकासात्मक कार्यों के आधार है। यदि हम कृषि के क्षेत्र में पिछड़ जाते हैं तो इस बात के कोई मायने नहीं होते हैं कि हमने और क्या हासिल किया।

मूल्यों में गिरावट–औद्योगीकरण की प्रक्रिया से तथा आधुनिकीकरण के आवेग से परंपरागत भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता खंडित होने लगी। भारतीय संस्कृति की मूल्यवत्ता इस आपाधापी में निरर्थक भी लगने लगी। इस औद्योगीकरण की प्रक्रिया से समाज के ढांचे में बदलाव आने लगा। भारतीय संस्कृति एक नये ढाँचे में गढ़ने लगी। मानवीयता पर होने लगे आघात का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में गाँव का अपना ही व्यक्ति बाहरवालों का साथ देता रहा। उदाहरण के लिए–साबरा व मोहनबाबू को ने गाँव की चिंता था, न लोगों की। इनकी मिलीभगत से गाँव में कंपनी आई जिससे मानवीय आघात सहना पड़ा।

शहरों के सांस्कृतिक मूल्यों में गिरावट के आज जिसे गाँव में भी यह प्रथा शुरू हो गयी। कंपनी वाले साबरा के एक शराब के प्याले से अंदर कर लेते हैं, वह उनका ही गुलाम बना है। अपने ही लोगों को धोखा देने के लिए टोपन के विरोध को भी वह नहीं सुनता। सड़क बन जाती है गाड़ियाँ जब खेत से निकलकर छाती चीरकर निकलती हैं और कंपनी तक पहुँचाती हैं।

'पहाड़ चोर' एक ऐसी शदी की कथा है, जिसमें मनुष्यता की साँसे टूटती जा रही हैं। टोपन भारतीय किसानों की परंपरा में आता है। जिसकी उम्मीदें नियति की पाटों में पिस जाती हैं। सुभाषजी अपने को एक आशावादी लेखक के रूप में स्थापित करते हैं। तीन सौ पचपन पृष्ठों वाला में फैला 'पहाड़ चोर' उपन्यास भविष्य के लेखकों के लिए एक चुनौती देता नजर आता है। झण्डूखाल की चूना–खदानों के धमाकों के थम जाने के बाद इसे इक्कीसवीं सदी के कथा जगत में प्रारंभिक धमाके के तौर पर याद रखा जायेगा।

संदर्भ–सूची

1. सुभाष पंतजी के पत्र व्यवहार द्वारा पत्र प्राप्त।
2. डॉ. गंगाप्रसाद, आधुनिकता : साहित्य के संदर्भ में, पृ. 68
3. डॉ. प्रतिभा पाठक, समकालीन हिंदी उपन्यास की आधुनिकता, पृ. 20
4. एम.के. सिंह, आज का भारत, पृ. 96
5. विश्वभर दयाल गुप्त, 'ग्रामीण समाज शास्त्र साहित्य के परिप्रेक्ष्य में, पृ. 26
6. डॉ. बाबूराव धमाल, साठोत्तरी हिंदी और मराठी के सामाजिक उपन्यास का प्रकृति–एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 78

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

English Lit.: Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 202-205

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

A Conceptual Framework of Chinese Diaspora

Sunil Kumar Dwivedi*

Abstract : *Diaspora is a scattered population of human beings in order to secure betterment for their or their relatives' life. Its process may be willingly or forcefully, voluntary or involuntary. From the original reference to the scattering of Greek, Jewish, African, American, Australian, Armenian, Scottish, Indian, Chinese people, diaspora has come to signify more metaphorical journeys of people from their original homes to other places for the purpose of dwelling and working there. This paper tries to explore and exemplifies the conceptual background of Chinese diaspora.*

***Key Words**: Diaspora, Community Migration, Emigration, Immigration, Identity crisis, Chinese descendants or overseas Chinese.*

An unknown critic has aptly defined the conceptual trap of Chinese Diaspora as an idea that easily slides into the same registry as other historically and politically laden terms. Designations of 'sojourners', 'Chinese descendants,' and 'overseas Chinese', are the terms, respectively invented and privileged at different historical junctures to subsume the diverse phenomenon, of Chinese Diaspora under the domination of Chinese sects. Combining the terms in one as 'Chinese Diaspora' refers to the population of approximately 46 million ethnic Chinese people living outside China, Hong Kong, Taiwan and Macau. Wang in 1991 has given four principal patterns of Chinese diaspora which is fully affected by the root cause of diaspora, and that's immigration. The first and foremost pattern of Chinese diaspora is *Huashang* pattern known as Chinese Trade Pattern which is characterized by the merchant class of society who left their Chinese home and settled in the host countries for the growth of their progress and prosperity. A large number of Chinese people especially male society, displaced and disrooted and relocated generation by generation into the host countries with their multiple identifications. As they got more progress in their business, they were well settled down and brought up as the local families into the host countries and their rooted connections with Chinese culture became as strong as it could be at the proper time. Such type of Chinese migration has been very prominent into many Asian countries, especially the Southeast Asia before the 1850s. Lyn Pan's book *Sons of the Yellow Emperor: A History of the Chinese Diaspora* provides us a great historical records about the Huashang pattern of Chinese diaspora. The first recorded Chinese emigration, following Huashang pattern of diaspora can be taken as the Quin Dynasty which occurred during 221-206 BC into Japan or the Philippines.

The second pattern of Chinese diaspora is recorded as the *Huagong* pattern which means coolie pattern of Chinese diaspora which occurred from the 1840s through the 1920s. During this time, a large number of Chinese migrated to North America and Australia to maintain their livelihood and living standard better than that of China. The migration during this period involved 'coolie trade' in low level of occupation in Gold mining and railway department of these particular countries. Pan has written about the present movement of the Chinese migrants that "Chinese coolie migrants went to work in virgin territories across the world and most of them lived there by the sweat of the brow" (Pan, 61).

* ***Research Scholar, English Department, Dr. R. M. L. Avadh University, Ayodhya.***

The historical record of the Chinese diaspora maintains the development of the coolie trade term, giving the history of 1840s and 1870s in which it is narrated that coolie trade took to "the bulk of Chinese migrants to the new world with the shipload after shipload reaching Cuba, Peru and… British Guiana between 1840s to 1870s" (Pan, 67). Between "1870s and 1880s many Chinese migrants are found visiting Hawaii and California" (Pan, 94) for the sake of coolie trade. Pan's estimation reported in his book that 'by 1870s, one out of every four workers in California was Chinese.' After reading Postan and Luo, one can find them standing with the principle of Pan about Chinese coolie trade. They maintain Chinese Diaspora study with the fact that during the "rapid growth of the frontier economy in the United States between the 1850s and the 1880s" (Postan & Luo, 328), thousands of Chinese people migrated mainly to the Western United States, under the head of indenture workers and agriculture labourers. They also came as cooks, laundrymen and other occupationists in which Americans did not take interest. Chinese emigrants who were fit for the *Huagong* pattern of diaspora were assigned as the men of peasants and their migrations were often temporary because it was seen that a large number of Chinese returned China after ending their contracts in the foreign countries.

The third pattern of Wang's Chinese diaspora is *Huaqiao* which means the Chinese sojourn pattern of diaspora in which one can find the emigration of the well educated professionalists for the sake of better opportunities in the other parts of the world. It is seen that this pattern of Chinese diaspora was dominant for a long period after the fall of Qing Dynasty in 1911. Education was recognized as the best way to promote the Chinese culture and the nationalism into the renowned area of the overseas Chinese. At a time the slogan 'without Chinese education or the Chinese culture there can be no overseas Chinese' came into the study of Chinese literature with an interesting concernment. Many Chinese education experts or the teachers went to the countries of Southeast Asia to educate the siblings the Chinese education so that the mission can be achieved from the 1920s to the 1950s. The deep sense of nationalism came to be recognized as the crucial way of living for the common people under the imperial rule of the Qing Dynasty. Consequently, the people started to leave their home town without getting an official permission in the search of their livelihood. These people were considered as the traitors into the eyes of their home town administration so they were mistreated and even executed and the same happened with the members of their family. When the Lanfang Republic was established in West Kalimantan, and Indonesia, it was again stated and verified that permission could be taken by all of them but under the Republic of China from 1911 to 1949, all of these rules were falsified and abolished which resulted many of Chinese to migrate outside of Republic of China mostly to the coastal regions via Fugian, Guangdong, Hainan and Shanghai. In this way, there occurred the largest historical migration of China during this period of Chinese diaspora. Most of the nationalists and neutral refugees fled away from Mainland China to the Southeast Asia especially to Singapore, Brunei, Thailand, Malaysia, Indonesia and Philippines as well as Taiwan known as the Republic of China and the remaining nationalists who were staying there were tortured and even executed. The people who emigrated to Singapore and Malaysia gained citizenship in 1957 and 1963, respectively, as these countries got independence. By contributing in the funding of Kuomintang in China, some of them tried to reclaim for their mainland in China from the Communists. The very term is often used by the PRC government to refer to the Chinese ethnicities which live outside of the PRC, regardless citizenship. PRC placed severe restrictions on the movement of its citizens from the 1950s to the 1980s. It is reported that in 1984, British government consented to transfer the sovereignty of Hong Kong on the proposal of the PRC. It has been successful and transfer sovereignty occurred in 1997 so most of the citizens of Hong Kong could have visas and the citizenship of their country. They could remain in the

country and emigrate from the country as they feel to have their originality, which resulted another wave of migration to the United States, United Kingdom (especially England), Australia, Canada, Europe and other parts of the world. Although a vast majority of Chinese ethnicity is known as *Han Chinese* or all the groups of Chinese ethnicities such as Cantonese, Hoochew, Hokkien, Hakka and Teochew. All of these ethnicities have a little relevance to the ancient dynasty of Chinese diaspora. Most of the Chinese diasporans who entered Western countries, were overseas Chinese after the Tiananmen Square protests of 1989.

The fourth pattern of Chinese diaspora described by Wang is *Huayi* which means Chinese descent. It is a recent phenomenon of the Chinese diaspora which could be seen after the 1950s onwards. It describes the people of Chinese descent re-migrating into another foreign country from the foreign countries. The term can be verified with the example of Chinese people living in Southeast Asia where, one can find a number of Chinese migrating to Western Europe in the recent days "especially since 1950s after seeing the present mentality of the Southeast Asian nations who now compelled these Chinese unwanted" (Wang, 9) while these descent Chinese played their major role in the growth of Southeast Asian countries economy. Their economic attempt has been appreciated well as the Chinese are well reminded by the people in these countries. They were recognized to be profited from the indigenous people reluctantly that's why they were tortured, claiming to be the self centered and at last these Chinese left these countries and moved elsewhere. So, once again the readers can find the atrocities of the locale to remove the economic growth without knowing the real spirit of consequences. All the four patterns of Chinese diaspora in the eyes of Wang, have been a root cause of displacement and dislocation and relocation of Overseas Chinese but *Huashang* pattern of Chinese diaspora is the most elementary and it has been existed for a long time. Combining the importance of all these pattern Wang writes – "Chinese migration will be based on *Huashang* pattern, supplemented by the new *Huayi* pattern with some features of the *Huaqiao* pattern surving here and there." (Wang, 12) Between the 1850s and the 1950s, it is found that a great number of Chinese workers, especially male workers from the coastal provinces started to leave their Chinese home in the effort of seeking better employing opportunities in the Southeast Asia. Between the 1950s and the 1980s, a widespread violence and instability occurred in China which resulted into the shifted migrants at a large measure towards the more industrial areas including North America, Europe, Japan and Australia. During this period, a large number of migrants were unskilled as they were driven by the growing demand for cheap manual labours in China. They were fulfilling their needs without getting training in their business to maintain their existence in the world and in this way they were looking suffering from their identity crisis. Further, it was found that the thirst of their knowledge for maintaining their existence or their living standard motivated them at a great strength and it resulted in Chinese migrants to have been developed as a multi-class and multi-skilled profile in line with requirements of globalization and technologically advanced economy. For a more comprehensive study, the research scholars must have the causes of Chinese diaspora which maintains the established knowledge that the economic and religious concerns have been the root cause for the development of Chinese people living abroad into the various countries of the world. This migration of the Chinese people can be categorized under the head of the forced migration and such migrant community can be exemplified as the displacement of Budhists from China and relocation of these pilgrims into Central, Southern and Eastern Asia. The Chinese migrants have a long history of migration into the various parts of the world. Different waves of migration created the different group of people among overseas Chinese such as the old and the new immigrants in Southeast Asia, North America, Oceania, the Caribbean, South Africa, and Europe. In the 19th century of the Colonialial period, there came the height of Chinese diaspora. Many colonies felt the lack of labour

class people meanwhile in the provinces of Fujian and Guangdong in China we are introduced with the Taiping Rebellion in the Ming dynasty when Zheng He (1371- 1435) became the envoy of the Ming. He compelled a number of Chinese especially Cantonese and Hokkien to visit to the South China Sea and the Indian Ocean to explore a new way of trade for the sake of the development of the country. The estimation of the Overseas Chinese Affairs Office narrates at an interval that a number of Chinese are found migrating into the different area of the world. The latest estimation presents its reports before its readers that 5.7 million or approximately one tenth of all Chinese migrants are living out of China into the various countries of the world. The doubtful, yet the official records made confirm to the readers that cross-border ethnic groups are not calculated Chinese emigrant minorities unless they left China like the Hmong who are not associated as the part of the Chinese diaspora. It is also reported that from the mid 19th century onward a large number of emigration has been directed to the Western countries like United States of America, the United Kingdom, Australia, Canada, Brazil, New Zealand, Argentina and to the Western Europe as well as to Peru, Panama and to Mexico. In the recent years study, it has been found that the People's Republic of China has maintained a strong bond between the African Countries. Consequently, over one million Chinese have been moved to these countries in the past 20 years. Europe has a million of Chinese while Russia survives more than two (lacs) hundred thousand people of Chinese in the various places of Russian colonies. Nearly, eighty thousand people are living in Germany under the heads of Chinese migrated population. Australia has not more yet over thirty thousand Chinese as the diaspora community. There are over fifty million of Chinese living abroad in all over the world, playing the role of the Chinese diaspora. Also the readers are introduced with the fact that more than 75% of Chinese migration are living in Singapore while 23% in Malaysia, 14% in Thailand, 10% in Brunei and 1% in Indonesia, Philippines and Vietnam. China and Taiwan, officially known as the Republic of China, is very prominent to maintain the citizenship of the overseas Chinese population. As far as relation of citizenship is concerned, one can see the Nationality Law of the People's Republic of China which does not allow dual citizenship as here we have a statement in which its clear perspective is stated – "Any person born abroad who are Chinese or whose parents from Chinese nationals shall have Chinese nationality. But a person whose parents are both Chinese nationals and have both settled abroad or who has acquired foreign nationality at birth shall not have Chinese nationality." (art. 5) The overseas Chinese are found using Chinese language at a great strength and for this there is a number of factors which can be studied well including their ancestry, assimilation through the generational changes and official policies of their country or their migrant ancestors as the "regime of origin". Generally, most of the established Chinese population in the Western world and in Asia, follow the trend of 'Cantonese' as the common community vernacular and 'Mandarin' is also being followed by the new arrivals at a great strength in many China towns in all over the world.

References

1. Pan, Lynn. *Sons of the Yellow Emperor: A History of the Chinese Diaspora*. MA: Little Brown, Bostan 1990. print

2. Postan DL Jr. and Luo H. "Chinese Student and labor migration to the United States: trends and policies since the 1980s". *Asian and Pacific Migration Journal* 16(3): 325-355. 2007. print

3. Wang, G., *China and the Chinese Overseas*. Times Academy Press, Singapore. 1991. print http.org/wiki/Chinese Diaspora.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 206-207

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

ममता कालिया के कहानियों पर एक दृष्टि

*मनोरमा सिंह**

ममता कालिया का जन्म 2 नवम्बर, 1940 को वृन्दावन (उ0प्र0) में हुआ था। साठोत्तरी कहानी की प्रमुख हस्ताक्षर ममता कालिया अपने सहज और उत्कृष्ट लेखन के कारण हिन्दी कहानी के परिदृश्य पर सातवें दशक से एक सशक्त महिला कहानीकार के रूप में प्रख्यात हैं।

ममता कालिया जीवन संघर्षों को अपने साहित्य के लिए प्रेरणा स्रोत मानतीं हैं, वे अपने परिवेश के इर्द–गिर्द से ही कथानक को बुन लेती हैं। इनकी कहानियों के केन्द्र में स्त्री जीवन है, जिसमें मध्यमवर्गीय, कामकाजी, नौकरीपेशा स्त्रियाँ हैं। स्त्री की दुःख, दर्द और उसके जीवन की त्रासदी को आपने कहानियों में बड़ी ही मार्मिकता के साथ पिरोने का साहस दिखाया है। ममता जी के कहानियों की लोकप्रियता का कारण है कि सभी कहानियाँ जीवन से निकलती हुई स्त्री की संवदेना, आकांक्षाओं, उसके जीवन मूल्यों तथा जिन्दगी के हर लम्हें को किसी न किसी रूप में उसके भीतर पाये जाने वाला अन्तर्विरोधों तथा जीवन से साक्षात्कार कराती हुई प्रतीत होती है।

आपके 'छुटकारा' कहानी संग्रह में नारी के आधुनिक विचारों को प्रकट करती हुई कहानियाँ हैं। प्रेम एक बिन्दु पर आकर समाप्त हो जाता है और बोझ तुल्य लगता है, कहानी की नायिका इस प्रेम से छुटकारा पाकर अपने को स्वतन्त्र महसूस करती है। आपकी कहानियाँ सममामयिकता से जुडने के साथ–साथ अपने समाज के शाश्वत मूल्यों की पहचान भी कराती हैं। कहानियों की विशिष्टता ममता जी की बेबाक सोच है, जिन्होंने स्त्री के बदलते सामाजिक सम्बन्धों समाज में स्त्री की बदलती स्थिति, पारम्परिक नैतिक मूल्यों के विघटन, रिश्तों के खोखलेपन, स्त्री पर होने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव, स्त्रियों की मानसिक यातना, आर्थिक पराधीनता आदि का बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया है।

'बीमारी' कहानी में नगरीय जीवन की व्यस्तता और पारिवारिक सम्बन्धों में आये बदलाव और अजनबीपन की कहानी है। 'सीट नं0–6' कहानी में अविवाहित कामकाजी नारी के व्यवहार में आयी संकीर्णता का अंकन किया गया है। तो वहीं 'लगभग प्रेमिका' कहानी में आधुनिक विचारों वाली कामकाजी स्त्री, विवाहित नारी के जीवन में समाया अकेलेपन और अजनबीपन से छटपटाती हुई नारी का चित्रण किया है। जितेन्द्र श्रीवास्तव ममता कालिया की कहानियों के बारे में लिखते हैं–''ममता की कहानियों को स्त्री विमर्श की कहानियाँ न कहकर वृहत्तर जीवन–मूल्यों की कहानियाँ कहना अधिक संगत होगा। वे उन स्त्री कथा–कारों से भिन्न हैं जो 'पुरुषमात्र' को खलनायक की तरह प्रस्तुत कर मुँह के बल लिटा देती हैं और उसकी आत्मा तक को लहूलुहान करके ही दम लेती है ममता जी की कहानियों में स्त्री–पुरुष सम्बन्ध और पारिवारिक मूल्य केन्द्रीय तत्व की तरह उपस्थित हैं।''

ममता जी की कहानियाँ रूमानी या काल्पनिक न होकर जीवन के ठोस धरातल पर टिकी हैं, निम्न मध्यमवर्गीय जीवन के छोटे–छोट ब्यौरों का गुंफन, नश्तर का सा काटता तीखा व्यंग्य और चुस्त चुटीले जुमले आपकी कहानियों के प्रमुख गुण हैं। 'सेमिनार' कहानी में पाखी के माध्यम से लेखिका ने व्यंग्य का बहुत सार्थक एवं सर्जनात्मक उपयोग करते हुए इस समूची धारा के विरूद्ध एक सशक्त प्रतिवाद प्रस्तुत किया है। आपकी कहानियाँ व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हैं, व्यक्तिगत अनुभव के बिना कोई साहित्य मूल्यवान और भावमयी नहीं हो सकता, जिसका केन्द्रीय स्वर अतीत से मुक्त होकर वर्तमान में जीने का आग्रह है। कहानियों में अनुभव की सच्चाई और संवेदनशीलता के साथ स्त्री–पुरुष सम्बन्धों, स्त्री विडम्बना ही नहीं उसकी आकाक्षांएँ भी बड़ी सच्चाई और विशिष्टता से व्यक्त करती हैं।

ममता कालिया लिखती हैं–''निज के और समय के सवालों से जूझने की तीव्र उत्कंठा और जीवन के प्रति–नित नूतन विस्मय ही मेरी कहानियों का स्रोत रहा है।'' 'उसका यौवन' और 'अपने शहर की बत्तियाँ, में बेरोजगार युवकों

* *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, महात्मा जोतिबाफुल्ले रूहेलखण्ड, विश्वविद्यालय, बरेली*

की कहानियाँ जो सिर्फ दिवास्वप्नों में जीते हैं, सुनहरे भविष्य के बारे में सोचते तो हैं पर परिश्रम कम करते हैं। 'जाँच अभी जारी है, में हम विषय वैविध्य देख सकते हैं, परिवार से लेकर परिवेश तक नितांत वैयक्तिक गोपनीय अनुभव से लेकर साहित्यक पत्रकारिता के क्षेत्र तक की विभिन्न तस्वीरें अंकित है। 'बोलने वाली औरत' कहानी संग्रह में लेखिका ने नारी की असंख्य छवियाँ अंकित की हैं। मध्यमवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं को झेल रही, उनसे जूझ रही घरेलू महिलाओं की दास्तान है, वहीं 'पच्चीस साल की लड़की' कहानी संग्रह में अविवाहित नायिकाओं के अकेलेपन की मानसिकता का अंकन तथा 'पिकनिक' कहानी में विश्व बाजारवाद और आधुनिक जीवन शैली की झलक दिखाई देती है।

ममता कालिया जी यह समझाने में अधिक समय नहीं लगाती कि अपने निजी जीवन के सुख–दुःख और प्रेम की चुहलों से कहानी को बाँधे रखकर उसे वयस्क नहीं बनाया जा सकता है। आपकी कहानियों की दुनिया पूरे मध्यवर्ग की स्त्री को केन्द्र में रखकर जटिल सामाजिक संरचना में स्त्री की स्थिति और नियति को परिभाषित करना चाहती हैं। ''एक पत्नी के नोट्स' को जटिल संरचना वाले भारतीय समाज में स्त्री–पत्नी की पीड़ा का महत्वपूर्ण साक्ष्य है। यह एक ऐसी तिलिस्म की मानिंद है, जिसके अन्दर वह कितनी भी दूर तक घूमने–भटकने को आजाद है, लेकिन उसके बाहर निकलने के सारे रास्ते उसके लिए बन्द है।

सारांश–ममता कालिया की कहानियाँ व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित स्त्री चेना को रेखांकित करती है जीवन के त्रासदी के अलग–अलग कोंण आपकी कहानियों में देखे जा सकते हैं, इनमें पति–पत्नी के सम्बन्ध और आधुनिक नारी की मनःस्थिति का सूक्ष्म और प्रभावी चित्रण मिलता है। ममता जी, अपनी कहानियों में संयमित और संक्षिप्त वर्णन करती हैं, इनकी भाषा दैनिक जीवन की है जिसे आपने सृजनात्मक रूप दे दिया है। आपकी कहानियाँ स्त्री–साहितय की नींव को मजबूत करतीं है और समसामयिक यथार्थ से जुड़कर अपने समय और युगबोध का साक्षात्कार कराती हुई नई दिशा की ओर उन्मुख हुई हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. डॉ. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास।
3. ममता कालिया, दस प्रतिनिधि कहानियाँ।
4. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य।
5. मधु सिंह, आठवें दशक की हिन्दी कहानी।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Music : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 208-211

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

रस, भाव एवं ठुमरी

*प्रगति मिश्रा**

सारांश–संगीत का प्रादुर्भाव और विकास मानवों के साथ ही हुआ है और यह मानव जीवन में ऐसे रचा–बसा है, मानो यह मानवों के निमित्त प्रकृति द्वारा प्रदत्त नैसर्गिक उपहार हो। क्योंकि भावनाएँ जन्मजात होती हैं और वे स्वयं अभिव्यक्त हो जाती हैं। जैसे–उदास मन में रूदन के साथ शोक, प्रफुल्लित मन में हास के साथ उत्साह आदि भाव हृदय में स्वयं ही उद्भूत होते हैं। प्रकृति प्रदत्त प्रायः सभी वस्तुएँ और भावनाएँ प्रारम्भ में स्वच्छंद होती हैं। अथक प्रयास और अभ्यास के द्वारा मनुष्य उन्हें वश में कर पाता है। कहा जाता है कि संगीत में वह ताकत है, जो मनुष्यों की भावनाओं को नियंत्रित कर सकती है। भारतीय संगीत का विकास लोक–संगीत से ही हुआ है, जो धीरे–धीरे शास्त्रीय होता चला गया। अभी भी जो लोक गायन पद्धति हमारी संस्कृति में संस्कार–गीत, गाथा–गीत, पर्व–गीत, बारहमासा गीतों के रूप में विद्यमान है और उनका मूल उद्देश्य ही जन–मानस के हृदय में विभिन्न भावों का उद्रेक करना है।

Keyword : *कथक, भाव, रस, उद्रेक, निष्पत्ति, संगीत।*

जीवन को सरल बनाने हेतु आज दो कार्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं–विज्ञान और कला। विज्ञान के अंतर्गत तमाम आविष्कार मनुष्यों की भौतिक जीवन शैली को आसान बनाने हेतु हुए हैं। वहीं कलाओं की बात करें तो यह मनुष्यों की मानसिक अवस्था को स्वस्थ रखने हेतु विभिन्न स्वरूपों में विकसित हुई है। ठुमरी के वास्तविक परिचय को समझने हेतु यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है, क्रमवार तरीके से समझने के लिए हम सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद को लें तो, वेदों की रचना क्लासिक संस्कृत में हुई। यह क्लासिक संस्कृत प्रारम्भ में साहित्य की भाषा थी, जोजन–साधारण की समझ से परे थी, इसीलिए वेद जनसाधारण की पहुंच से दूर थी और उन्हें खास वर्ग के निमित्त समझा जाने लगा। उस काल में जनसाधारण की भाषा लौकिक संस्कृत थी। धीरे–धीरे अन्य ग्रन्थ की रचना भी लौकिक संस्कृत में की गई, जो सर्वसाधारण के लिए सुलभ थी। उदाहरण के लिए नाट्यशास्त्र को देखा जा सकता है, जिसकी भाषा लौकिक संस्कृत थी। जब कोई भाषा साहित्य की भाषा बनती है तो उसके साथ एक लोक भाषा भी अपना स्वरूप निर्धारित कर लेती है, जो उस काल की बोलचाल की भाषा होती है। समय बीतने के साथ धीरे–धीरे बोलचाल की भाषा साहित्य की भाषा बन रही थी और उसकी एक नई उप भाषा भी उद्भूत होती जा रही थी। यह क्रम क्रमशः पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, मागध ी, अवधि, व्रज, अर्द्धमागधी से होते हुए खड़ी बोली हिन्दी तक आ पहूंची और आज हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट भाषा के रूप में उपस्थित है और हिन्दी की कई उपभाषाएँ राजस्थानी, पंजाबी, भोजपुरी, मैथिली और अंगिका इत्यादि मौजूद हैं। आसान शब्दों में समझा जाय तो ठुमरी गायन शैली भी संगीत में सरलता प्राप्ति के लिए ही उद्भूत हुई है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की कठिन शब्दावली, कठिन लय और कठिन प्रस्तुतिकरण आमजन के लिए दुःसाध्य से थे, जिसकी वजह से यह मंदिरों और दरबारों तक सीमित रहा था। ठुमरी ने लोक का सहारा लेकर टप्पा गायन की लोक शैली से स्वयं का विकास किया और भारतीय संगीत को सर्वसाधारण हेतु सुलभ बनाया, कठिनाईयों से मुक्त किया, कर्ण प्रिय बनाया, मधुर बनाया और रसराज श्रृंगार को अपनी भावाभिव्यक्ति का आधार बनाया।

इसी प्रकार भारतीय उप शास्त्रीय गायन शैली ठुमरी का भी मूल उद्देश्य मूलतः रतिभाव से संबंधित है, जो श्रोताओं के हृदय में श्रृंगार रस की निस्पत्ति करता है।

''रीतिकाल में जहां ब्रज के सन्त गायकों द्वारा राधा कृष्ण–संबंधी श्रृंगार–पदों का प्रादुर्भाव हुआ, वहां मुसलमान बादशाहों के दरबार में लगभग वैसे ही पदों की रचना ठुमरी के नाम से प्रसिद्ध हुई।''[1]

ठुमरी और उसमें निहित भाव की रस अभिव्यक्ति को समझने हेतु इसमें निहित कुछ विशिष्टताओं पर ध्यान देना आवश्यक है।

* *शोध छात्रा, संगीत विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर*

- रचना शैली
- गायन शैली
- अभिनय पक्ष
- वाद्य–यन्त्र
- नृत्याभिनय
- भावाभिव्यक्ति
- रसनिस्पत्ति

रचनाशैली–कहा जाता है कि ठुमरी का विकास टप्पा लोकगायन शैली से हुआ है। इसलिए इन गीतों की रचना प्रक्रिया को सूक्ष्मता से देखने के बाद इसमें निहित लोक का समावेश परिलक्षित होता है। जिसमें मुख्य है इसकी भाषा का लोक होना, क्योंकि प्रायः सभी ठुमरियों की भाषा ब्रज और अवधि है, पंजाबी ठुमरियों में भी टप्पा के प्रभाव से लोक तत्व ही सर्वाधिक हैं।

''बुन्देलखन्ड प्रदेश ब्रज के साथ लगा हुआ है, यहाँ होली उत्सव पर 'लेद' नामक लोक गीत गाने की प्रथा है। यह 'लेद' नामकलोक गीत ठुमरी गायन शैली से बहुत मिलता है। लेद लोक गीत जब सुना जाता है तब ऐसा izhr gksk gS cqUnsy[kUMh Hkkk esa Bqejh xk;h tkjgh gS''[2]

रचना की प्रक्रिया में सर्वग्राह्य रस श्रृंगार विद्यमान है। श्रृंगार के संयोग व वियोग दोनों पक्षों में पर्याप्त मात्रा में ठुमरियों की रचना हुई है। जो रति व करूण भावों को मुखरता से अभिव्यक्त करती है। इन ठुमरियों में राधा–कृष्ण, नायक–नायिका इत्यादि की अनेक भावनाओं का निरूपण किया जाता है, जैसे–

''कैसी करूँ, मानत न साँवरो कन्हैया।
कुंज की गलिन श्याम, छेड़े नित ब्रज की बाम।
गरवाल गावे पीत–पटको कसैया।
भृकुटि–कमानतान, मारत है नैन बान।
सखिन समाज मध्य छेड़े निरदैया।
नित–प्रित आन छैल, रोकत सखिन गैल।
कैसे निभ पावें कहूँ ब्रज की लुगैया।
बरजो न माने ऐसो ढीठ करूनेश आली।
भयोरी अनोखी वो ही ब्रज की बसैया।
कैसे करूँ।।''[3]

ख्याल की तरह जटिलता से ठुमरी ने स्वयं को पृथक कर रखा है और आसान छोटे लोक शब्दों का इस्तेमाल बड़ी ही सहजता से भावों को अभिव्यक्त कर सकते हैं।

गायनशैली–सुमधुर कंठों वाले गायक ठुमरी गायकों में श्रेष्ठ माने जाते हैं, क्योंकि श्रृंगार रस के भावों की अभिव्यक्ति के लिए मधुरता अति आवश्यक है। ठुमरी गायक मधुर कंठों से बोल बनाव की पद्धति अपनाते हैं, जिसमें एक ही शब्द के इस्तेमाल हेतु कई भाव प्रकट करते हैं, जैसे– रूठना, मनाना, विनती, जिरह, अटखेलियां इत्यादि हैं। ठुमरी गायन शैली में मुर्कियों का इस्तेमाल भी विभिन्न भावों को व्यक्त करने हेतु खूब प्रभावी सिद्ध होता है। ठुमरी गायकी की शैली में शास्त्रीयता के साथ लोक का भी सम्मिश्रण है।

''ठुमरी गाय की ने अपना एक अलग स्थान बनाया है। इस गायकी में जन भाषा समाई हुई है। जिसके सरल और सुबोध होने के कारण इसे गेयता प्राप्त हुई है। छोटी–छोटी मुर्कियाँ, स्वर लगाव के कारण इसका सौन्दर्य और भी मिठास की तरफ झुकता है। ठुमरी गायकी की शैलियाँ भी अपनी गायन शैली से अलग ही सौन्दर्य प्रदान करती है। इस गायकी ने हमारे हिन्दुस्तानी संगीत की चमकदार परम्परा को जन्म दिया है।''[4]

यह अत्यंत सूक्ष्म, चमकदार, पारदर्शी और ऐसी श्रृंगारपरक गायन शैली है जिसे सुनकर ही उसकी गहराई का अंदाजा लगाया जा सकता है।

अभिनय पक्ष–ठुमरी का शाब्दिक अर्थ ठुमक कर रिझाने से है। इसीलिए विद्वानों के अनुसार यह नृत्य पर आधारित गायन शैली है। ठुमरी का विकास भी मुख्यतः वाजिद अली शाह के दरबार में कथक नृत्य के साथ ही

हुआ। लेकिन जब से ठुमरी ने अपनी स्वतंत्र सत्ता विकसित करनी शुरू की तो नृत्याभिनय की कमी को पूरा करने हेतु अभिनय का इस्तेमाल किया जाने लगा। अर्थात् गायिकाएं गायन के साथ भावों को व्यक्त करने हेतु अभिनय का भी सहारा लेने लगी। धीरे–धीरे ठुमरी गायन में अभिनय की यह पद्धति खूब फलने–फूलने लगी और इसका अनिवार्य अंग बन गई।

''हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में जलसा यानी बैठक जिसमें ध्रुपद, ख्याल और बाद में उत्तर भारत में जन्मी भाव प्रधान शब्दों से अलंकृत दो संगीत के प्रकार ठुमरी और टप्पा की यह संतुलित गायन पद्धति परंपरागत चली आ रही है। ठुमरी यह विषय नायिका के मन की अलग–अलग भावनाओं का संगीतमय चित्रण है। इसे पेश करने में कौशिकी वृत्ति के साथ भाव, स्वर, लय, भाषा का आश्रय लिया जाता है, जिसमें अभिनय अपने आप ही पेश होता है।''[5]

प्रख्यात ठुमरी गायिका शोभा गुर्टू के विषय में प्रचलित है कि वह आँखों से भी गान करती हैं। यहाँ इस उक्ति का तात्पर्य यह है कि शोभा जी ठुमरी में निहित भावों को आंखों के अभिनय से भी व्यक्त करती है।

वाद्ययंत्र–मूलतः हारमोनियम, तबला और सारंगी का इस्तेमाल ठुमरी को लोक से जोड़े रखता है, ये वाद्ययंत्र हमारी लोक परंपरा और संस्कृति का हिस्सा है। लोक में श्रृंगारपरक भावनाओं को लोक वाद्यों के साथ व्यक्त करने पर भावों का उद्रेक सहज हो जाता है। श्रोता ठुमरी गायक और गायिकाओं द्वारा प्रेषित भाव को मनोयोग से स्वीकार करने लगता है और गायन, वादन से वातावरण में निष्पत्ति रस अनुभूत करने लगता है। यहाँ भी श्रोताओं की रुचि को ध्यान में रखते हुए रस के प्रवाह को बनाये रखने हेतु बोल बनाव की पद्धति से गायक और वादक अपनी–अपनी विधा के जरिए प्रश्नोत्तरी करने लगते हैं, युगलबंदी करने लगते हैं, जिससे दर्शक या श्रोता उत्पन्न रस का आस्वादन कर सके।

''वैशिक संगीत में सारंगी वादकों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कई सारंगी वादक गाने के साथ वेश्याओं को ठुमरी गायकी भी सिखाते थे। इसलिए सारंगी वादक, तबला वादक और कथक नर्तकों का ठुमरी से गहरासंबन्ध है।''[6]

नृत्याभिनय–नृत्याभिनय से तात्पर्य है कि ठुमरी ही एक मात्र ऐसी गायन शैली है, जिसमें कथक नर्तकों को अभिनय की पूरी छूट रही है, यह अभिनय सिर्फ वाचिक नहीं होता। अभिनय के बांकी तीनों अंग–आंगिक, सात्विक और आहार्य कथक की मूलभूत प्रवृत्ति है। यहाँ कथक नर्तक ठुमरियों के नृत्य प्रदर्शन में अभिनय का समस्त भाव प्रदर्शित करते हैं। ठुमरियों पर आधारित कथक में कठिन लयकारियाँ अपेक्षाकृत कम होती है। जयपुर घराने का तैयारी प्रधान कथक ठुमरियों की सहज भावाभिव्यक्ति नहीं कर सकता, क्योंकि इसकी भावाभिव्यक्ति तो सिर्फ अभिनय ही कर सकता है। लखनऊ घराने के कथक ने जहाँ भावपक्ष प्रबल है, ठुमरियों के नृत्याभिनय के लिए सर्वथा योग्य हैं और संभवतः इसी वजह से लखनऊ में ही ठुमरियाँ फली–फूली और विकसित हुई।

''मुगलों के आक्रमण से भारतीय संगीत में आध्यात्मिकता का स्थान श्रृंगारिकता ने ले लिया। पदों के स्थान पर ठुमरियों की रचना होने लगी। इनमें ब्रजभाषा की प्रधानता रही अधिकांश ठुमरियों की रचना, नायिकाओं की विभिन्न दशाओं और उनकी प्रकृति को ध्यान में रखकर की गई। ऐसी कोई नायिका नहीं जो ठुमरी के परिधि में ना आए अनगिनत भाव ठुमरी में पिरोकर नृत्याभिनय के माध्यम से व्यक्त किए जाते हैं।''[7]

भावाभिव्यक्ति–काव्य के अंतर्गत दो प्रमुख भाग होते हैं–शब्द और अर्थ। शब्द का सीधा संबंध काव्य की बनावट से है, तुकबंदी उसे है वही अर्थ का संबंध सीधे तौर पर काव्य में निहित भावों से ही है। भारतीय उपशास्त्रीय गायन शैली ''ठुमरी'' अपने आप में भावों की ऐसी गतिमान सरिता लिए उपजी है जो निरंतर प्रवाहित होती रहती है। ''ठुमरी के काव्य में अगर, हम देखें तो उसमें श्रृंगारपूर्ण रति भाव दिखाई देता है। संयोग और वियोग बस। इसी का वर्णन हमें ठुमरी के काव्य और गायकी में अभिव्यक्त होते दिखाई देता है।''[8]

जहां एक तरफ ठुमरी में श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्षों में आलंबन और उद्दीपन अर्थात् प्रियतम से मिलन बिछुड़न तड़पन आदि सभी भावों का समावेश परिलक्षित होता है, वहीं दूसरी तरफ भारतीय संगीत में श्री कृष्ण राधा और गोपियों के प्रेम से उद्भूत संयोग, वियोग, मिलन और बिछुड़न के भी वर्ण श्रृंगारिकता से परिपूर्ण मिलते हैं। कुछ ठुमरियों में एक साथ दो भाव भी परिलक्षित होते हैं जैसे अवध के नवाब वाजिद अली शाह (अख्तर पिया) की एक ठुमरी दृष्टव्य है–

''बाबुल मोरा नैहर छूटो हि जाए।
चार कहार मिल डोलिया उठावें।
अपना बेगाना छूटो हि जाए।
अंगना तो पर्वत भयो देहरी भई विदेश।

जे बाबुल घर आपने।

मैं चली पिया के देस।''[9]

जहां एक ओर इसी ठुमरी में दुल्हन के ससुराल जाने की और बाबुल के घर को छोड़ने की विरह भावना है तो वहीं दूसरी ओर मरणोपरांत मनुष्य के शरीर को घर से शमसान तक ले जाने की भावना भी व्यक्त की गई है। कहा जा सकता है कि ठुमरी भारतीय संगीत में भाव अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है।

रसनिस्पत्ति–अब हम ठुमरी गायन शैली की रस निष्पत्ति की बात करें तो

''विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः''[10)]

भरत के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के सहयोग से रस की निष्पत्ति होती है। ''रस के लिए भाव की उपस्थिति अनिवार्य है। यदि ऐसा है तो फिर अलग से विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव क्या है? भारत ने विभाव का अर्थ विज्ञान अथवा विशेष ज्ञान कराने वाले तत्व के रूप में किया है। इसी को कारण, निमित्त अथवा हेतु कह सकते हैं। अर्थात् भाव, वाचिक, आंगिक और सात्विक अभिनय के माध्यम से विभाजित होते हैं, इसलिए इन कारणों को विभाव भी कहते हैं।''[11]

अभिनय की तरह ही है हमारी गायन शैली का उद्देश्य भी रसोद्रेक करना है या यूं कहें श्रोताओं के मन में रस की निष्पत्ति करना है। अभिनय की ही तरह ठुमरी भी विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति की क्षमता को परिपूर्ण है। मुख्य तौर पर श्रृंगार रस से संबंधित रति आदि भावों की निष्पत्ति के लिए ठुमरी गायन का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है।

''गीत, वाद्य, नाट्य और नृत्य के आश्रय से भाव जागृत हो कर रस उत्पन्न करता है, जिससे अलौकिक आनंद प्राप्त होता है। जो कलाकार अपनी कला द्वारा जितनी जल्दी श्रोता या दर्शकों की रसमय अवस्था उत्पन्न करने में समर्थ होता है वह उतना ही सफल माना जाता है''[12]

कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत में स्वरों के साथ–साथ गीतों के शब्दों का भी बहुत महत्व है। साथ ही गीतों की मधुरता का भी खूब महत्व है। ठुमरी की रचनाओं का भावार्थ देखें तो ज्यादातर श्रृंगारात्मक रति भाव ही दिखाई देता है, जिसमें श्रृंगार रस के संयोग, वियोग, आलंबन और उद्दीपन आदि सभी पक्षों और भावों की प्रधानता निहित है। ठुमरी भारतीय संगीत में रसों को निष्पत्त करने वाला एवं भावों को अभिव्यक्त करने वाला सबसे प्रमुख माध्यम है।

सन्दर्भ–सूची

1. गर्ग; डॉ. लक्ष्मीनारायण : कथक नृत्य, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), पृ. 149
2. पोहनकर; अंजली : सफर ठुमरी गायकी का, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ. 19
3. गर्ग; डॉ. लक्ष्मीनारायण : कथक नृत्य, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), पृ. 154, 155
4. पोहनकर; अंजली : सफर ठुमरी गायकी का, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ. 43
5. वही, पृ. 1
6. वही, पृ. 8
7. श्रीवास्तव; पंडित सतीश चंद्र खरे, डॉ. अल्पना : कत्थक शास्त्र परिचय संगीत श्री प्रकाशन, कानपूर, पृ. 48
8. पोहनकर; अंजली : सफर ठुमरी गायकी का, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ. 33
9. वही, पृ. 34
10. त्रिपाठी; राधाबल्लभ : संक्षिप्त नाट्यशास्त्रम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 81
11. अंकुर देवेन्द्र राज : दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 61
12. गर्ग; डॉ. लक्ष्मीनारायण : कथक नृत्य, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), पृ. 125

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 212-214

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

आधुनिक परिवेश में रामचरित मानस की सांस्कृतिक प्रासंगिकता

*डॉ. आभा सिंह**

वर्तमान परिवेश में भौतिकवादी चकाचौध के युग में सांस्कृतिक क्षरण की भयानक परिस्थिति में उग्रवाद एवं आतंकवाद के भयंकर संघर्ष से परिचालित पशुवत जीवन के पथ में फॅसे मानव के लिये रामचरितमानस सुपथ और उज्ज्वल प्रकाश दिखाता हुआ जीवन में आलोक भरने में सक्षम है क्योंकि रामचरितमानस सत्–असत्, ऊँच–नीच, साधु–असाधु, दुर्जन–सुजन सभी पात्रों का अपने मानस में चित्रण कर असत् पात्रों को पराजय का मुख दिखाकर उन पर सत् की विजय स्थापित की है।

रामचरितमानस के लंकाकाण्ड में जैसा धर्मरक्षा का रूपक गो0 तुलसीदास जी ने खींचा है–

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होई सो स्यंदन आना।।
सौरज धीरज तेहिरथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजनु सारथी सुजान। बिरत चर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन को दंडा।।
अमल अचल मन त्रोन समाना। समजम नियम सिलीमुख नाना।।
कवल अभेद बिप्र गुर पूजा। एहिसम बिजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहॅ न कतहुँ रिपु ताके।। (मानस 6/23, 4,5,6/80)

'सखा धरगमय अस रथ जाके जीतन कहुँ रिपु ताके।' विश्व के किसी साहित्य एवं संस्कृति में दुर्लभ है। यह है 'रामचरितमानस' के महत्ता। मानस सार्वदेशिक सर्वकालिक है। इसकी प्रशंसा में जो भी कहा जाये, थोड़ा है। यह देवों की विभूति, सन्तों, सुजनों का सम्बल है।

रामचरितमानस वर्तमान समय में जन सामान्य के बीच रामायण के नाम से विख्यात और पूज्यनीय हैं मानस सम्पूर्ण विश्व में सुख शान्ति स्थापित करने वाला है। प्रत्येक व्यक्ति इसका रसास्वादन कर मंत्रमुग्ध हो जाता है। मानस की प्रत्येक चौपाई व दोहा वर्तमान मानव–जीवन को अपनी ओर आकर्षित कर उसे अपने अनुरूप बनाने में पूर्ण सामर्थ्य है। आज भी हम अपने दैनिक जीवन का आरम्भ मानस के दोहे, चौपाई का मनन व नमन करके ही करते हैं। उठते–बैठते, सोते–जागते, भारतीय समाज व संस्कृति के लोग रामचन्द्र जी का स्मरण अवश्य करते है। हम अपने जीवन में राम तथा उनके भाइयों का ही आदर्श स्थापित करना चाहते हैं। आज भी हमारे माता–पिता का यही सपना या इच्छा होती है कि हमारे बच्चें राम का सा आदर्श जीवन व्यतीत करें। उन्ही के दिखाये हुए मार्ग पर चलकर उनके आदर्शों को अपने जीवन में बनाये रखें। इससे यह ज्ञात होता है कि आधुनिक समय में भी भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता निरन्तर बनी हुई है।

सभ्यता मनुष्य के वस्त्रों की तरह होती है जो समय–समय पर धारा के प्रवाह के समान होती है जो युगानुरूप परिवर्तित होती है। संस्कृति आत्मा के समान है जो नया शरीर तो अवश्य धारण कर लेती है परन्तु उसका स्वरूप नहीं बदलता है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर का अमर तत्व आत्मा है, उसी प्रकार किसी जाति की आत्मा उसकी संस्कृति है। रामचारितमानस ने अपनी शक्तिमत्ता, सरलत, श्रेष्ठता और व्यापकता द्वारा पूर्ण बल से इस भारतीय समाज की संस्कृति और मानव जीवन को जीवन्त बनाये रखने का महान कार्य किया है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से भारतीय संस्कृति और समाज की आत्मा को जीवित रखने में महान योगदान किया है। वह भी ऐसे समय में जब इस संस्कृति का जीवन–मरण का संघर्ष क्रूर आक्रान्ता विदेशी

* *प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया महाविद्यालय, खजूरगाँव, लालगंज, रायबरेली*

संस्कृति से चल रहा था। महान कवि और कलाकार युग का प्रतिनिधित्व करते हुए युग का निर्माण भी करता है। इस देश की जनता को निर्ममता और क्रूरता से अपने दमन चक्र के नीचे पीसने वाले इस धरती को छोड़कर चले गये। उनके दुःशासन का भारत–धरा से अन्त हो गया, किन्तु 'मानस' का सांस्कृतिक रामराज्य आज भी भारतीय जन–मन के ह्रदय–सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने जितनी गहराई से चिन्तन किया, उतने ही श्रेष्ठ तत्व 'मानस' की थाली भर कर संसार को लुटाये।

रामचरितमानस मनुष्य के चारित्रिक जीवन को ऊपर उठाने में, पारिवारिक आदर्शों की स्थापना करने में समाज के लिये मांगलिक विधान की सृष्टि करने में तथा राष्ट्रीय चरित्र के मालिन्य व कालुष्य को दूर कर उसे प्रकाशित करने में मानस पूर्ण सशक्त व सक्षम है। मानस के समस्त पात्र–राम, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, सीता आदि लोक संसार जगत की प्रेरणा में उत्तम एवं आदर्श चरित्र की साकार एवं सजीव प्रतिमाएं हैं। इन सभी पात्रों में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र सर्वाधिक प्रशस्त एवं जनसामान्य को प्रेरणा प्रदान करने वाला है। राम का सम्पूर्ण चारित्रिक जीवन मानवता के पुनीत–पावन व उज्ज्वल धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है। राम आदर्शमय जीवन आज भी हमारे समाज के लोगों के लिये अनुकरणीय व प्रेरणाप्रद है। उनका सम्पूर्ण जीवन कर्तव्यनिष्ठा, आत्मविश्वास, शौर्य, त्याग व बलिदान से समुज्ज्वल एवं महिमामंडित हैं मानस में व्यक्त राम का व्यक्तित्व आज्ञापालन और सेवाभाव पूर्ण है। जो आधुनिक परिवेश में समस्त भारतीय संस्कृति के लिये अनुकरणीय है। मानस में राम का स्वरूप अत्यन्त आदर्श पूर्ण व कल्याणकारी है। उनका जननायक रूप, जनप्रेम, सामाजिक समता, लोकमत, निष्ठा, अन्याय का प्रतीकार, अत्याचार, दमन, ऊँच–नीच के भेदभाव से रहित वन्य जाति प्रेम से ओत–प्रोत हैं।

अधम ते अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी।।

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता।।

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।

भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।। (मानस 3/23/35)

इस प्रकार के आदर्शवान व्यक्तियों की हमारे वर्तमान समाज में नितान्त आवश्यकता है, जो अपने चारित्रिक उत्थान के साथ–साथ समाज व देश का भी कल्याण कर सके। आधुनिक समय में ही रामचरितमानस हमारे देश नेताओं, युवाओं, प्रशासकों व शासकों के लिये आदर्श उपस्थित करने की क्षमता रखता है। मानस से प्रेरणा लेकर हम आज भी अपने जीवन को उत्तम व चरित्रवान बनाये रख सकते हैं। इस प्रकार आधुनिक परिवेश में भी रामचरितमानस की प्रासंगिकता निरन्तर बनी हुई है।

आधुनिक युग में भड़कीली सभ्यता व संस्कृति के युग में राम के अन्दर समाहित समस्त मानवीय आदर्शमय गुण, जिनमे कर्तव्यभाव, तप, लोकहित और प्रेम की भावना से भरे समस्त तत्व मानव जीवन के लिये अनुकरणीय तथा राष्ट्रीय चरित्र के उत्थान में अत्यधिक सहायक प्रतीत होते हैं। राम के सदृश आदर्शवान बनकर ही किसी भी राष्ट्र का जीवन अमर हो सकता है और समाज तथा मनुष्य के चरित्र की रक्षा की जा सकती है। राम जैसा चरित्रवान व्यक्ति सम्पूर्ण संसार जगत में ढूँढने पर भी नहीं प्राप्त हो सकता। हमारी भोगवादी संस्कृति एवं मानव जीवन की समस्याओं का समाधान हमें राम चरित्र से तथा उनके व्यावहारिक प्रयोगो से हो सकता है। मानस में राम द्वारा स्थापित मर्यादायें इतनी उदात्त एवं भव्यतापूर्ण है कि उनकी कल्पना मात्र से ही युग–युग के प्रबुद्ध लोकश्रद्धा से नत हो जाते हैं। रामचरितमानस मानवीय जीवन के कष्टसाध्य रोगों, मानसिक विकारों आदि को दूर करके मानव जीवन में नयी संजीवनी का संचार करता है। मानस वह संजीवनी बूटी है जिसका पान करके अपने जीवन को सार्थक बनाया जा सकता है। आधुनिक समय में भी जब व्यक्ति चारों ओर से निराश्रित होता है, उसे कोई भी मार्ग सुझायी नहीं देता है तब वह मानस के बताये हुए मार्ग अथवा उसके दोहे, चौपाई पढ़कर अपने मन को सान्त्वना प्रदान कर मन में एक नयी स्फूर्ति का संचार प्राप्त करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानस अत्यन्त प्राचीन होत हुए भी नित नूतन बना हुआ हमारी संस्कृति को उद्दीप्तमान कर रहा है। आधुनिक समय में भी मानस की सांस्कृतिक प्रासंगिकता मानव जीवन में निरंतर बनी हुई अपना प्रकाश प्रज्ज्वलित कर रही है।

रामचरितमानस आध्यात्मिक भारतीय संस्कृति एवं एकांगी भौतिकवादी संस्कृतियों के मध्य द्वन्द्व का कथानक है जहाँ राम, भरत, लक्ष्मण, सीता तथा ऋषिगण त्यागनिष्ठ आध्यात्मिक मानव संस्कृति के प्रतिनिधि है, वहीं रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद एवं अन्य निशाचर अधिनायकवादी एवं भोगवादी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। गोस्वामी जी ने इन्हें निशाचर की संज्ञा दी है–

मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।

जिनके यह आचरण भावन। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी।। (मानस/1/183/12)

व्यक्ति के निर्माण में व व्यक्ति समाज की सुरक्षा और समृद्धि के प्रति मानवीय संवेदना भी अपने गहन रूप में अभिव्यंजित होती है। मानस के माध्यम से गोस्वामी जी ने यह व्यक्त किया है कि सद्चरित्रता के द्वारा ही शान्ति और सुव्यवस्था सम्भव हो सकती हैं जब–जब व्यक्ति तथा समाज के व्यक्ति तथा समाज के व्यक्तित्व में गिरावट उत्पन्न होती है, तब तब आसुरी शक्तियों ने विश्व मानवता को हानि पहुँचाने का प्रयास किया हैं। मानस में आध्यात्मिक जवीन मूल्यों के पराभव और भौतिक मूल्यों के उत्कर्ष का वर्णन गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया हैं मानव में सीताहरण मानवीय मूल्यों की संस्कृति के तिरस्कार का व्यंजक है क्योंकि सीता आध्यात्मिक मूल्यों से सम्बलित भारतीय मानस–संस्कृति की प्रतिनिधि है। मानस का सांस्कृतिक जीवन आधुनिक परिवेश में भी जीवन्त बना हुआ है।

रामचरितमानस आज भी हमारे बीच जीवन्त बना हुआ एक ऐसी मानव संस्कृति व सभ्यता का आदर्श प्रस्तुत करता है, जो नैतिकता पर आधारित है। जिसमें मानव–गरिमा को सर्वोच्च स्थान व प्राथमिकता प्रदान की गयी है। मानस के अभाव में विश्वशांति की कल्पना मात्र एक दिवास्वप्न ही होगा। अतः वर्तमान समय में आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, सांस्कृतिक अधिनायकवाद, भौतिक एवं यांत्रिक उपभोक्तावाद के पराभव के लिये राम की नहीं बल्कि राम जैसे चरित्र की आवश्यकता है। जो समाज में व्याप्त आसुरी शक्तियों का संहार करके दैवीय एवं सत् चरित्रवान तथा आदर्श व्यक्तियों की स्थापना कर सके। आधुनिक समय में भी समाज को मानस तथा मानस के पात्रों जैसे–चरित्र की नितान्त आवश्यकता है। वर्तमान समय में भी मानवीय मूल्यों को बनाये रखने तथा उसके सांस्कृतिक क्षरण को रोकने के लिये मानस का रसास्वादन करना आज भी हमारे लिये प्रासंगिक हैं। मानस से प्रेरणा ग्रहण करके आज भी हम अपना चारित्रिक उत्थान कर समाज का उचित मार्गदर्शन कर मानस की प्रासांगिकता बनाये रख सकते हैं।

प्राचीन भारतीय संस्कृति जिन शाश्वत मूल्यों को लेकर खड़ी होती दिखायी देती है, उसके कुछ मानव मध्य युग में आते–आते टूटते दिखते हैं। आधुनिक काल तक पहुँचते–पहुँचते मूर्तिपूजा, अवसरवाद, वर्णाश्रम तथा अनेक सामाजिक विसंगतिया खारिज हो जाती है। इस तरह रामचरितमानस में देवता, राक्षस, नर, वानर, आदिम जाति इत्यादि की संस्कृतियाँ समन्वय का प्रतीक बन जाती हैं। तुलसीदास जी की समन्वयात्मक दृष्टि में कोल, भील, वानर तथा पक्षियों की संस्कृति भी एकरूपता ले लेती है जो आज के विश्व के अनेकानेक संस्कृतियों के समन्वय की प्रेरणा देता है। मानस की सांस्कृतिक प्रासंगिकता भी इसी बात में हैं कि सत्–असत्, ऊँच–नीच, साधु–असाधु, सुर–असुर, पशु–पक्षी सब में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिये। जिसके लिये मानवीय संवेदना का विस्तार आवश्यक हैं संस्कृतियों के संरक्षण में रहते हुए मनुष्य अपने व्यक्तित्व को अपनी प्रतिभा, चमक से भर देता हैं इसीलिये उसका समग्र व्यक्तित्व ही संस्कृति का पर्याय बन जाता है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. मानस चंदन (त्रैमासिक) पत्रिका, स0–डॉ0 गणेशदत्त सारस्वत, पृ.–24 संस्करण जनवरी–मार्च 2006
2. संकटमोचन कृपा निधान, सं.–दयाशंकर सिंह, पृ.–55, सं0–2000, प्रकाशक–सरस्वती प्रिन्टर्स नया, इलाहाबाद
3. मानस चंदन (त्रैमासिक) पत्रिका, सं.–डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, पृ.–2, संस्करण–अक्टूबर–दिसम्बर 2003
4. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास जी, पृ. 541, सं. 2048, प्रकाशक–गीता प्रेस, गोरखपुर
5. मानस चंदन (त्रैमासिक) पत्रिका, सं.–डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, पृ.–16 संस्करण जुलाई–सितम्बर, 2002
6. तुलसी मानस संदर्भ, डॉ. रामस्वरूप आर्य, डॉ. गिरिजाशरण अग्रवाल, पृ.–156 सं.–1974
7. श्री हनुमान ज्योति (त्रैमासिक) पत्रिका, डॉ. रामकृष्ण शर्मा, पृ.–27 संस्करण अक्टूबर–दिसम्बर, 2006
8. राम कथा के पात्र, डॉ. भ.ह. राजूरकर,, पृ.–112 सं.–1972
9. तुलसी काव्य चिंतन, रामप्रतिपाल मिश्र, पृ. 84, सं0–1976
10. भारतवर्ष का इतिहास, ले.–प्रो. श्री नेत्र पाण्डेय, पृ.–101, सं. 1977–78

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Economics : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 215-216

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

छत्तीसगढ़ में कृषि विकास : ग्रामीण बैंकों की भूमिका

*रवि शंकर गुप्ता**

1. प्रस्तावना–किसी भी राष्ट्र के विकास मे कई महत्वपूर्ण कारकों मे उद्यमशीलता का अपना एक अलग महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि और ग्रामींण उद्यमिता के विकास मे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, लेकिन कृषि के विकास में इनकी और भी व्यापक भूमिका हो सकती है। किसी भी समाज, ग्राम, नगर, शहर, राज्य या राष्ट्र, सभी के विकास हेतु प्राकृतिक संसाधनों के साथ उसके कुशलतम उपयोग हेतु पर्याप्त वित्त सुविधाओं की भी नितांत आवश्यकता होती है।

अपेक्षित वित्त सुविधा शहरी क्षेत्रों मे तो अन्य बैंकों के रूप में पर्याप्ता के साथ उपलब्ध है, किन्तु भारत जैसे ग्राम बाहुल्य राश्ट्र मे ग्रामीण बैंकों का अति महत्वपूर्ण स्थान होते हुए भी ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं के अभाव तथा लोगों में इनके प्रति जानकारी एवं जागरूकता के अभावके कारण हमारे ग्रामीण क्षेत्र निर्धनता, बेरोज़गारी तथा पिछड़ेपन का शिकार है, ऐसी स्थिति मे बिना ग्रामीण बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओ के ग्रामों में उद्यमिता व कृषि क्षेत्रों का विकास संभव नहीं है, जिसके बिना ग्रामों के सर्वांगीण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है।

2. कृषि विकास मे ग्रामींण बैंको की आवश्यकता–आज़ादी के छः दशकों के बाद भी देश के ग्रामीण क्षेत्र, जहॉ भारत की कुल जनसंख्या की लगभग सत्तर प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, में बैंकिंग सुविधाओं का अभाव है। वर्तमान परिदृय में बिना समुचित वित सुविधाओं के शहरी क्षेत्र हो या ग्रामीण क्षेत्र किसी भी प्रकार के कृषि कार्य या उद्योग की ना तो नींव ही रखी जा सकती है और ना ही उनका सुचारू संचालन ही संभव है। ग्रामीण बैंकों की संख्या ग्रामीण जनसंख्या की तुलना में अपर्याप्त है, परिणामस्वरूप ग्रामीण तथा कृषक उद्यमी परिवार वित्तीय सुविधाओं से वंचित हो जाते हैं और अपनी कार्यक्षमता व कुशलता द्वारा अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने तथा देश के आर्थिक विकास मे अपने महत्वपूर्ण योगदान के अवसरों से वंचित रह जाते हैं–

3. भारत मे ग्रामीण एवं शहरीं जनसंख्या व बैंकिंग सुविधाओं के तुल्नात्मक ऑकड़ें :

Rural & Urban Banking at Glance					
Group	Population (Crore)	Branches (in '000)	Per Branch Population	Share of Deposits	Share of Advances
Rural	83	34	24	9%	8%
Urban	38	59	6	91%	92%
Total	121	93	13	100	100
Source: Census 2011 & RBI Banking Statistics – Handout Dec`11 () denotes percent					

उपरोक्त ऑकडों के अध्ययन से स्पष्ट है, कि ग्रामीण बैंकों की संख्या, शहरी आवश्यकता से अधिक है, जबकी ग्रामीण क्षेत्रों में इन बैंकों की संख्या आवश्यकता से भी कम है।

4. ग्राम विकास में कृषि की आवश्यक्ता–भारत मे ग्रामीण क्षेत्रों की लगभग नब्बे प्रतिशत लोग कृषि कार्य मे संलग्न है, कृषि कार्य मे संलग्नता का अर्थ है वे लोग जो कृषि कार्य कर रहें है उन्हे वर्ष के केवल चार से पॉच माह ही रोज़गार प्राप्त हो पाता है, वर्ष के अन्य माह मे वे लोग मौसमी बेरोज़गारी के शिकार हो जाते हैं।

इन महीनों में इनके समक्ष दो विकल्प होते है या तो वे बेरोज़गार हो कर अपने घरों मे बैठें रहें या रोज़गार की तलाश में शहर की ओर पलायन करें, जहॉ उन्हें अपनी आजीविका चलाने के लिए मजदूरी करनी पड़ती है,

* *शोधार्थी, अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, शहीद महेन्द्र कर्मा विश्वविद्यालय, जगदलपुर (छ.ग.)*

या छोटे–मोटे उद्योग धन्धों में लगना पड़ता है। ये सभी अपने रोज़ी–रोटी की तलाश मे अपने–अपने घर परिवार, गांव को छोड़कर शहरों मे काम करने के लिए विवश होते हैं। फिर कृषि कार्य के मौसम मे अपने खेतों में कार्य करने चले आतें है कार्य खत्म हो जाने पर पुनः शहरों की ओर पलायन करते है, अन्य समस्याओं के अतिरिक्त एक और समस्या यह भी है कि हर बार जब वे कृषि कार्य के बाद रोज़गार की तलाश में शहर जाते हैं तो यह निश्चित नहीं होता कि हर बार काम छोड़ने के उपरान्त उसे वहॉ दोबारा काम मिल ही जाए, अर्थात कई बार उसे वहॉ भी रोज़गार नहीं मिल पाता है।

इन विभिन्न समस्याओं को दूर करने की दिशा में थोड़ा भी विचार किया जाए, तो एक मार्ग दिखाई पड़ता है वह यह है कि यदि कृषि कार्य को आधुनिक तकनीक अपनाकर उन्नत विधि से किया जाए तो गांवों में ही उन्हें वर्षभर दो से तीन फसल के माध्यम से बेहतर कृषि पैदावार से लाभ अर्जन के अवसर प्राप्त हो जाए तो समस्या का कुछ हल अवश्य ही प्राप्त होगें। समस्या का मूल कारण ग्रामों में आधुनिक कृषि तकनीक व पर्याप्त वित्त का अभाव है। जिसे दूर करने के लिए ग्रामों में आधुनिकि कृषि प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए इसके लिए इस तथ्य पर विचार करना होगा कि किन ग्रामीण क्षेत्रों मे किस तरह की फसलों की संभावनाएँ अधिक उपलब्ध है, उन फसलों के पैदावार हेतु आवश्यक वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था किन ग्रामीण बैंकों या वहॉ उपलब्ध अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा किया जा सकता है, इन तथ्यों पर विचार कर संभावनाओं के आधार पर ग्राम या ब्लॉक स्तर पर आधुनिक कृषि हेतु कार्य किये जाने चाहिए।

5. कृषि की सफलता हेतु ग्रामीण बैंक–किसी भी कार्य की शुरूवात मात्र ही उसकी सफलता की गारन्टी नहीं होती किसी भी उद्योग धन्धों या व्यवसाय की भांति ही ग्रामीणों द्वारा की जानी वाली कृषि या उद्योग व्यवसाय में भी लाभ अथवा हानि की बराबर संभवनाऍ विद्यमान रहती हैं, ऐसी स्थिति में यदि कृषि अथवा उद्योग में हानि होने पर, एक ओर व्यवसायिक हानि तो दूसरी ओर बैंक ऋण व ब्याज चुकाने की समस्या, किसी भी ग्रामीण के सामने घाटे की एक त्रासदी के रूप में आ सकती है। इससे बचने के लिए दो मुख्य उपाय किए जा सकते है, **पहला** उपाय सभी कृषकों का बीमा कराया जाए। **दूसरा** उपाय, जो ग्रामीण बैंक अब तक ग्रामीणों को कृषि तथा उद्योग हेतु केवल ऋण प्रदान करती रही है, वे अब ऋण सुविधा का लाभ प्राप्त करने वाले ग्रामीणों को उनके व्दारा किए जा रहे कृषि या उद्योगों के लिए व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जिसमें उन्हें प्रशिक्षित करने की जिम्मेदारी बैंक प्रबंधन की हो, ताकि ऋण प्राप्त करके कृषि या उद्योग में नियोजित ग्रामीण पर्याप्त कुशलता पूर्वक अपना कार्य कर सके और पर्याप्त लाभार्जन कर अपने परिवार, समाज, ग्राम व देश के विकास मे अपना योगदान दे सके साथ ही बैंकों का सही समय पर ऋण अदायगी भी आसानी से कर सकें।

भारत के विकास की तारतम्यता में ग्रामीण बैंक अधिक से अधिक ग्रामीण क्षेत्रों तक अपनी पहुँच बना चुके हैं, भारत में ग्रामीण बैंकों की विस्तृत श्रृंखला है, जिनके माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी सेवाऍ उद्यमियों, सीमांत कृषकों एवं गरीब परिवारों को प्रदान कर रहे हैं।

यदि हम छत्तीसगढ़ के संदर्भ में बात करें तो छत्तीसगढ में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के शाखाओं की कुल संख्या **259** हैं, जिनमें से बस्तर संभाग में इनकी शाखाओं की संख्या **54** है।

6. निष्कर्ष–चुंकि बस्तर संभाग आदिवासी बहुल क्षेत्र है एवं इस क्षेत्र मे पर्याप्त जागरुकता का अभाव है, अतः शासन–प्रशासन को इस क्षेत्र मे पर्याप्त ध्यानाकर्षण की आवश्यकता है, ताकि इस क्षेत्र में ग्रामींण बैंकों की पर्याप्त वित्त सहायता प्राप्त हो, जिससे ग्रामीण कृषक एवं उद्यमी अधिक से अधिक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के माध्यम से शासन द्वारा संचालित विभिन्न लाभकारी वित्तीय योजनाओं का लाभ लेकर कृषि व उद्यमिता क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी देकर, समाज, प्रदेश, व राष्ट्र के विकास मे अपना विशिष्ट योगदान दे सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Singh, K.K. , Alis, Rural Development Strategies in Developing Countries
2. Sundaram Sataya, Rural Poverty and Area Planning
3. National Bank for Agriculture and Rural Development, NABARD,
4. Balakrishnan .T, Microfinance and Rural Development
5. Yadav, K.P., Economic Planning and Development
6. Prasad Kiran, Communication and Empowerment of Woman
8. George, O., Woman Livelihoods and Socio Economics Growth
9. Journals Rural Development
10. Source : Census 2011 & RBI Banking Statistics

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 217-220

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

हिन्दी कथा साहित्य और स्त्री जीवन

*डॉ. पदमा राम परिहार**

सारांश–हिन्दी कथा साहित्य को कल्पना, रोमांस और थोथे आदर्शों से मुक्ति दिलाकर साहित्य और में अनिवार्य सम्बन्ध मानते हुए उसे यथार्थ भूमि पर प्रस्तुत किया है, वहीं कथा साहित्य में पूँजीवादी एवं सम्राज्यवादी शोषण के प्रति आक्रोश एवं विद्रोहात्मक भावनाओं का भी चित्रण हुआ है। नारी के बदलते सामाजिक मूल्यों से ही हम समाज के मूल्यों को भली–भांति परख कर सकते हैं। महिला कथाकारों ने स्त्री की स्थिति को गंभीरता से लिया है, क्योंकि वे खुद स्त्रियाँ हैं, इसलिए उन्होंने अपने कथा साहित्य में स्त्रियों के चरित्र–चित्रण पर विशेष बल दिया और अधिकत्तर स्त्रियों पर आधारित रचनाओं का ही सजृन किया। वे जानती हैं कि पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों की क्या दशा है? और हिन्दी कथा साहित्य में स्त्रियों की क्या दशा है? इस सन्दर्भ में वर्तमान समय में अनेकों स्त्रियों ने अपनी सजृनशीलता से महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दी कथा साहित्य में उत्तरोत्तर स्त्रियों की दशा और दिशा में परिवर्तन आया है। विशेषकर आज़ादी के बाद सामाजिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में आने वाले परिवर्तनों ने जीवन को नए ढंग से देखने और समझने की दृष्टि दी। जिससे परम्परागत किले भी ध्वस्त हुए प्रतीत होते हैं। इस प्रकार हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति हुई।

बीज शब्द–*साम्राज्यवादी, शोषण, पूँजीवाद, आदर्शवाद, संवेदनशीलता, स्त्री–मुक्ति आन्दोलन आदि।*

प्रस्तावना–स्वाधीनता संग्राम के दौरान हिन्दी कथा साहित्य पर आग्रह अधिक रहा, परिणामस्वरूप पूर्व आधुनिक काल की अन्य विधाओं को कथा साहित्य ने पीछे छोड़ दिया। फोर्ट विलियम कॉलेज ने हिन्दी गद्य साहित्य के विकास पर जोर दिया। क्योंकि यही एक ऐसा साहित्य था जिसके द्वारा मानव–मन की गहराइयों को आसानी से अभिव्यक्त किया जाता था। यही भाषा स्वतन्त्रता संग्राम की भाषा भी बनी। शरतेन्दु काल हिन्दी कथा साहित्य के विकास में प्रारम्भिक अवस्था के रूप में अग्रसर होता हुआ दिखाई देता है, जहाँ पर स्त्रियों के विकास में वे कुछ पहल जरूर करते हैं। हालांकि खुद शरतेन्दु का नारी के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण रहा है। वे नारी को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। नारी की दयनीय दशा से आक्रान्त होकर उन्होंने 'नीलदेवी' की रचना की, जिसमें विकास की चेष्टा की। इसी प्रकार उन्होंने स्त्रियोचित विकास के लिए 'बालाबोधिनी' पत्रिका का भी सम्पादन कार्य किया। जिसमें उन्होंने स्त्रियों को ज्ञान–विज्ञान तथा पश्चिमी संस्कृति से भी परिचित कराया। 'नीलदेवी' रचना की भूमिका के द्वारा शरतेन्दु ने अपना दृष्टिकोण स्त्रियोन्मुख रखा है कि "मैं यह इच्छा नहीं रखता हूँ कि इन गौरांगी युवती समूह के समान हमारी कुल लक्ष्मी–गण भी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के साथ घूमें परन्तु और बातों में जिस प्रकार अंग्रेज स्त्रियाँ सावधान होती हैं, पढ़ी लिखी होती हैं, घर का कामकाज संभालती हैं, अपनी जाति और देश की सम्पत्ति–विपत्ति को समझती हैं, उसमें सहायता देती हैं और इतने समुन्नत मनुष्य जीनव को व्यर्थ गृहदास्य और कलह ही में नहीं खोती, उसी भांति हमारी गृह देवता भी वर्तमान हीनावस्था का उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें, यही लालसा है।"[1] शरतेन्दु खुद नारी की हीनावस्था को भारतीय समाज की रुढ़िगत परम्परा का परिणाम ही मानते थे। इसलिए इन्होंने नारी को सम्मानजनक स्थिति प्रदान की है। लेकिन इनके युग में भी नारी परम्परागत मूल्यों और बन्दिशों में ही जकड़ी रही। क्योंकि परम्परावादियों को भय था कि कहीं नारी पश्चिमी संस्कृति से परिचित होकर पुरुषवादी मानसिकता को चुनौति न दे दें। इसलिए हमारे कथाकारों ने पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं का सहारा लिया और इन्हीं कथानकों में नारी को उलझाये रखा। 'परीक्षा गुरु', 'भाग्यवती', 'आदर्श दम्पति', 'वामशिक्षक', 'आदर्श–रमणी' आदि ढेरों उपन्यास रचे गये, जिनमें नारी को गृहस्थी का मेरूदण्ड मानकर उपदेश दिए गये हैं। कुल मिलाकर यहीं प्रवृति द्विवेदी युग तक रही, जिनमें परिवार की सेवा, बच्चे जनना और घरवालों के लिए रोटी–पानी करना ही रह गया था, कभी आर्थिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता महसूस ही नहीं की।

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सान्ध्य)*

प्रेमचन्द, यशपाल, प्रसाद, जैनेन्द्र, अज्ञेय, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्वदा आदि कथाकारों ने अपने साहित्य में स्त्री–मुक्ति की पृष्ठभूमि तैयार की है। एक ओर जहाँ इन्होंने समाजगत रूढ़ियों और स्त्री को मात्र भोग्या समझे जाने वाले संस्कारों का विरोध किया, वहीं दूसरी ओर स्त्री को अपने स्वाधीन अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रेरित भी किया।

प्रेमचन्द पहले कथाकार थे जिन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को कल्पना, रोमांस और थोथे आदर्शों से मुक्ति दिलाई। इन्होंने कथा साहित्य और जीवन में अनिवार्य सम्बन्ध मानते हुए उसे यथार्थ भूमि पर प्रस्तुत किया है। ब्रह्म समाज, थियोसोफीकल सोसायटी, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि अनेक संस्थाएँ भारतीय सामाजिक जीवन की विकृतियों को दूर करने के लिए प्रयत्नशील थीं। इन संस्थाओं ने नारी समस्या को गम्भीरता से उठाया, क्योंकि नारी समाज में सर्वाधिक पीड़ित, प्रताड़ित और बन्धनग्रस्त हैं। इस समय भारतीय नारी की दशा एक भयंकर रूप धारण कर चुकी थी। समाज के सारे धर्म, नीति कानून केवल नारी के लिए बने हुए प्रतीत होते थे। लेकिन पुरुष इन सभी अंकुशों से मुक्त था। प्रेमचन्द ने एक उपन्यासकार के रूप में नारी की समस्याओं के मौलिक कारणों को समझा और उपन्यास साहित्य को मानव चरित्र के यथार्थ से जोड़ा। "प्रेमचन्द के उपन्यासों में जिन परिस्थितियों का चित्रण हुआ है वे ठोस धरती की परिस्थितियाँ हैं जो हमारी आर्थिक सामाजिक और नैतिक मान्यताओं के सूत्रों से बुनी गई हैं।"[2] प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के लिए वह विशाल क्षेत्र चुना जो जीवन की वास्तविक परिस्थितियों और उनसे जूझते पात्रों से सम्बन्धित था। उन्होंने उन पात्रों को सूक्ष्मता, कलात्मकता और गम्भीरता से अध्ययन कर चुन–चुन कर अपने कथानकों में संजोया। प्रेमचन्द ने नारी के प्रति अपार श्रद्धा एवं आदर रखा, तथा नारी दुर्दशा का सारा दोष समाज पर आरोपित किया। जो स्त्री शरतेन्दु युग में घूंघट से बाहर अपना चेहरा निकालने में सक्षम नहीं थी, वही स्त्री महादेवी के परवर्ती युग, प्रयोग और साठोत्तर के बाद के काल में क्रमशः जागृत है, और आज दूसरों को जागृत करती है।

स्वयं प्रेमचन्द ने अनेक दुखों और क्लेशों को भोगा था, उनका जीवन अतृप्त इच्छाओं का इतिहास रहा है, इसलिए वे पीड़ा में रस लेते थे। प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' में नारी की मूल समस्या पर ध्यान दिया है। इसमें नारी की क्या स्थिति है इस सन्दर्भ में रामविलास शर्मा ने कहा है कि "सेवासदन की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। प्रेमचन्द ने तमाम पुरानी सांस्कृतिक परम्पराओं को तोड़ते हुए वर्तमान समाज में नारी की पराधीनता को अपने निष्ठुर और वीभत्स रूप में चित्रित किया है।"[3] 'निर्मला' उपन्यास नारी जीवन की करुण और दुखमय जीवन–गाथा को प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में नारी दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की बलिवेदी पर अपने प्राण न्यौछावर करती है। निर्मला को विवाह से कोई प्रसन्नता नहीं है वह बहन से कहती है कि "हम लड़कियाँ है, हमारा घर नहीं होता है।"[4] इस प्रकार प्रेमचन्द ने निर्मला के रूप में मध्यवर्गीय समाज की शोषित नारी का चित्रण किया है, जो आर्थिक विवशता और सामाजिक कुरीतियों का शिकार होती है। लेकिन गोदान की मालती आधुनिक नारी का उदाहरण प्रस्तुत करती है वह कहती है "स्त्री जानती है कि आप 'राम' नहीं हैं, पहले आप 'राम' बनिये, स्त्री अपने आप 'सीता' 'सावित्री' बन जाएगी। सुशिक्षित स्त्री एक तरफा उपदेश पसन्द नहीं करेगी।"[5] इसी प्रकार धनिया तथा प्रसाद की 'तितली' (उपन्यास) में भी विद्रोह तथा क्रान्ति का स्वर है। 'बूढ़ी काकी' में बुद्धिराम विधवा बूढ़ी काकी की सम्पूर्ण सम्पति लेकर भी उसे भरपेट अन्न नहीं देता, 'बेटों वाली विधवा' तथा 'कफन' कहानी में स्त्री दरिद्रता का यथार्थ चित्रण है। 'बड़े घर की बेटी' में संयुक्त परिवार के विघटन की ओर संकेत है, यही समस्या 'अलग्योझा' में है। 'घासवाली' में महावीर अपनी पत्नी मुलिया को घास बेचने के लिए बाजार भेजता है उसके रूप–लावण्य एवं शृंगार पर कुछ मनचले उसे घास के मूल्य से अधिक पैसे देते हैं। लेकिन मुलिया को अपने गुजारे के लिए सब कुछ करना पड़ता है। विधवा की स्थिति तो बड़ी त्रासदीपूर्ण होती है। 'धिक्कार' में मानी (एक पात्र) अपने चाचा के यहाँ नौकर का सा जीवन जीती है।

इस युग में गाँव की नारी को भी कथा साहित्य में स्थान मिला, लेकिन मुख्य रूप से 'अबला' के रूप में चित्रित हुई है। प्रेमचन्द और प्रेमचन्द युगीन कथा साहित्य में नारी चित्रण मुख्यतः पत्नी के रूप में हुआ है। प्रेयसी और माता का रूप गौण है। नौकरी करती हुई भी कम ही नारियां दिखाई देती है। त्याग, बलिदान, निष्ठावान और मर्यादा पर बल दिया गया है। हालांकि नारी जीवन की समस्याओं के प्रति सजग होते हुए भी परम्परागत मूल्यों और आदर्शों को अपनाते रहे। प्रेमचन्द और प्रसाद लगभग हिन्दी कथा साहित्य में साथ–साथ ही अवतरित हुए है। जयशंकर प्रसाद के कथा साहित्य में नारी प्रेम, सेवा और सम्पूर्णता लिए हुए है। और उसे पुरुष की सहायिका और कल्याण करने वाली माना है। प्रसाद ने नारी को परम्परागत, माता, पत्नी, प्रेमिका, पुत्री आदि रूपों में अंकित

किया और परिस्थिति से विवश नारी को वेश्या तथा देवदासी के रूप में भी प्रस्तुत किया। नारी पात्रों की संवेदना से प्रसाद के नारी पात्र एकदम करूण और भावुक जान पड़ते हैं। शायद यही कारण है नारी पात्रों में प्रेम, दया, क्षमा और करुणा की भावना मिलती है जो उन्हें आदर्श प्रतिमा का रूप प्रदान करती है। यही कारण है कि 'आकाशदीप' की 'चम्पा' 'पुरस्कार' की 'मधूलिका' 'सालवती' की 'सालवती' आदि लोकमंगल की भावना से पूर्ण प्रेम की प्रतिमाएँ हैं। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि प्रसाद के कथा साहित्य में कर्मशील शक्ति से सम्पन्न नारी रानी, विधवा, धीवदबाला, कोलकुमारी, मालिन, दासी, देवदासी, भिक्षुणी आदि अनेक रूपों में चित्रित हैं।

यशपाल के कथा साहित्य में पूँजीवादी एवं सम्राज्यवादी शोषण के प्रति आक्रोश एवं विद्रोहात्मक भावनाओं का चित्रण हुआ है। क्योंकि उनका कथा साहित्य पूर्णतः समाजवादी है। उनके उपन्यासों में कुछ नारी पात्र अवश्य पार्टी में काम करते मिलेंगे। 'दादा कामरेड' की शैल आतंकवादियों से सहानुभूति रखती है। राजनीति में भाग लेने के लिए शैल यशोदा को भी प्रेरित करती है। यशोदा पति की अनिच्छा के बावजूद काम करती है, उसे अपने पति के क्रोध की कोई चिन्ता नहीं है। इस प्रकार इनके साहित्य में अधिकत्तर नारी अपना स्वतंत्र अस्तित्व व अस्मिता रखती हैं। 'दादा कामरेड' की शैल, दिव्या की दिव्या पार्टी कामरेड की 'गीता' मनुष्य के रूप की मनोरमा आदि स्त्रियां विषम परिस्थितियों में भी अपने व्यक्तित्व का सौदा नहीं करती है, बल्कि उसकी अस्मिता बनाये रखने के लिए जीवनपर्यन्त संघर्षरत् रहती हैं। यहाँ हम देखते हैं कि प्रेमचन्द और प्रसाद की नारी की तुलना में यशपाल की नारी काफी प्रगतिशील और अपनी अस्मिता के लिए जागृत है।

यशपाल नारी को मार्क्सवादी नजरिये से देखते हैं, इसलिए वे सन्तानोत्पति का साधन नहीं मानते हैं। उनका मानना है कि "स्त्री का स्थान माता का जरूर है, वह पूजा की भी पात्र है, परन्तु पूजा के पात्र जितने देवी–देवता होते हैं, वे सब मन्दिर में बन्द रहते हैं और चाबी रहती है, पुजारी की जेब में। घर के मन्दिर में स्त्री पूजा की प्रतिमा है, पर मन्दिर का मालिक पुजारी तो पुरुष ही है इसलिए उसी का अधिकार और शासन चलना जरूरी है।"[6] इससे लगता है कि पुरुष अपने आत्माभिमान के लिए नारी का इस्तेमाल करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यशपाल के नारी पात्र भाग्य प्रवंचना में न पड़कर संघर्ष के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं, वही प्रेमचन्द के यहाँ भाग्य प्रवंचना का बोल बाला अधिक था। यशपाल की नारी अपने स्वत्व के प्रति जैनेन्द्र और अज्ञेय के नारी पात्रों से अधिक सजग हैं, उसमें परम्परागत स्त्रीत्व नहीं है और न ही वह पुरुष की वर्जनाओं से जकड़ी हुई हैं। कुल मिलाकर इनके कथा साहित्य में आधुनिक नारी व उसकी समस्याओं को चित्रित करते हुए नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता पर जोर दिया। तभी नारी को पुरुष यातना से मुक्ति मिल सकती है।

हिन्दी कथा साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक कथाकारों अज्ञेय, जैनेन्द्र, जोशी जैसे कथाकारों ने नारी जीवन को विभिन्न परम्पराओं से मुक्त कर स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया, और सेक्स, सन्त्रास, घुटन जैसी विषमताओं को मुख्य रूप से उभारा है। इस प्रकार की रचनाओं पर इन लेखकों ने जोर अधिक दिया है। इलाचन्द्र जोशी के 'त्याग का शेग' की मनिया कुशाग्र बुद्धि के कारण अपने आपको मात्र पत्नी बनकर जीवन जीने को व्यर्थ मानती है। इसलिए वह अपने पति से कहती है कि "तुम मेरी इस स्वतन्त्र प्रगति में विघ्न न डालो और रास्ता छोड़कर अलग खड़े हो जाओ।"[7] इस प्रकार इस समय की नारी अपनी कर्मठता और निष्काम सेवा शव से अपने में विश्वास करने वाली अधिक है। जैनेन्द्र की नारियाँ अनेक रूपों में सामने आती हैं, जिसमें विधवा विवाह को मुख्य रूप से 'परख' जैसे उपन्यासों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। प्रेम, दाम्पत्य जीवन, पारिवारिक सम्बन्धों आदि को जैनेन्द्र ने अपने कथा साहित्य में उद्धरित कर चित्रित किया। इसी प्रकार अज्ञेय भी अपने कथा साहित्य के पात्रों को निजी जीवन के लिए खुली छूट देते हैं। अज्ञेय के पात्र सामाजिक न होकर व्यष्टि चिन्तन पर जोर देते हैं। शेखर से लेकर रेखा, शशि तक काम शव में अतृप्त होकर तृप्ति की खोज में भटकते रहते हैं। 'शेखर एक जीवनी' में नारी से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ उठायी गई हैं।

नारी विकास और ह्रास का इतिहास मानव सभ्यता एवं संस्कृति का ही इतिहास है। नारी के बदलते सामाजिक मूल्यों से ही हम समाज के मूल्यों की भली भांति परख कर सकते हैं। जैनेन्द्र ने सबसे पहले पुरुषों की अपेक्षा नारी की समस्याओं का गंभीरतापूर्वक अध्ययन कर अपने उपन्यासों और कहानियों में चित्रण किया। प्रेमचन्द युग में नारी को पुरुष की सहधर्मिणी और सहभागिनी के रूप में चित्रित किया गया, परन्तु प्रेमचन्दोत्तर युग में नारी का स्वतन्त्र व्यक्तित्व उभर कर आया क्योंकि इस युग में और बाद में, अनेक स्त्री लेखिकाएँ भी हिन्दी कथा साहित्य में आयीं, जिन्होंने कथा सहित्य को एक मजबूती प्रदान करने के साथ–साथ स्त्री जीवन की मूलभूत समस्याओं को सशक्तता के साथ लेखन को आधार बनाया। जिससे हिन्दी कथा साहित्य में स्त्रियों की दशा में परिवर्तन आया। हालांकि प्रेमचन्दोत्तर युग में नारी स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में उभर रही थी, मगर पुरुषों की दासता से एकदम स्वतन्त्र या मुक्त नहीं हुई थी। वह अंतर्मन में बाह्य एवं आंतरिक विपरीत परिस्थयों से लगातार संघर्ष करती रही।

मनोविश्लेषणात्मक कथाकारों ने नारी को स्वतन्त्रता तो दी है, मगर यौन प्रदर्शन में पीछे नहीं रहे। इन कथाकारों ने नारी का जो रूप समाज के सामने रखा वह एक घिनौना रूप ही कहा जाएगा। नारी को भोग्या के रूप में समझा गया। मगर नारी मुक्ति आन्दोलन नारी स्वातन्त्र्य और नारी की बढ़ती हुई शक्ति ने पुरुषवादी वर्चस्व को तोड़ दिया।

इसी मुक्ति आन्दोलन ने पुरुषों को विचलित कर दिया है। पुरुषों की संकुचित दृष्टि और उसे भोग्या की संज्ञा देने की प्रतिक्रिया स्वरूप नारी का एक अन्य रूप उभर कर आया है। वह है, 'विद्रोहिणी नारी' का रूप जो समाज में व्याप्त विसंगतियों और सड़ी–गली परम्पराओं एवं नैतिक रूढ़ियों को चुनौती देती हुई निरन्तर आगे बढ़ रही है। नये कथाकारों के कथा साहित्य, इस प्रकार की सड़ी–गली परम्पराओं को एकदम नकारता है। उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन की घुटन, विवशता और कुण्ठाओं का सजीव चित्रण हुआ है। आज हमें ऐसी नारियों का चित्रण मिलता है, जो पति तथा समाज के अत्याचारों से पीड़ित और विवश होकर विवाह प्रथा का विरोध करती है, इसके साथ–साथ वे स्वछन्द प्रेम में विश्वास रखती हैं।

महिला कथाकारों ने स्त्री की स्थिति को गंभीरता से लिया है, क्योंकि वे खुद स्त्रियाँ हैं, इसलिए उन्होंने अपने कथा साहित्य में स्त्रियों के चरित्र–चित्रण पर विशेष बल दिया। अधिकत्तर स्त्रियों पर आधारित रचनाओं का ही सजृन किया। वे जानती हैं कि पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों की क्या दशा है? और हिन्दी कथा साहित्य में स्त्रियों की क्या दशा है? इस सन्दर्भ में वर्तमान समय में अनेकों स्त्रियों ने अपनी सृजनशीलता से महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्त्री जीवन की हर छोटी–से छोटी समस्या को उन्होंने कथा साहित्य के द्वारा सामने रखा। जबकि पुरुष प्रधान स्त्रियोचित कथा साहित्य में स्त्री को पुरुषवादी नजरिये से देखा और परखा, जिससे पुरुषों के द्वारा लिखित स्त्रियोचित कथा साहित्य में स्त्री अपनी अस्मिता के लिए छटपटाती हुई प्रतीत होती है। लेकिन उशा प्रियंवदा की 'रूकोगी नहीं राधिका' की नारी, नारी संघर्ष की कथा बयान करती है। यहाँ राधा स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में आधुनिक नारी है। लेकिन यह अलग बात है कि आधुनिक नारी की समस्या भी आधुनिक है। जिसमें नैतिक मूल्यों का कोई मतलब नहीं होता है। "आर्थिक स्वातन्त्र्य ने नारी को अपने होने का गहरा बोध दिया है। इस अहसास ने प्रेम और विवाह सम्बन्धों में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किया है। नारी के लिए अब पति देवता नहीं और पति के लिए पत्नी मात्र घर की नौकरानी नहीं। नारी का यह स्वतन्त्र व्यक्तित्व समाज की प्रगति के लिए आवश्यक बन कर घर परिवार में तनाव उत्पन्न कर रहा है।"[8] इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि आज का परिवेश अर्थहीन खोखली जीवन पद्धति और वैषम्य की स्थिति को बेनकाब करता है। जिससे हिन्दी कथा साहित्य में मानवीय मूल्यों की एक गहरी छाप दिखाई देती है। विभिन्न कथाकारों की रचनाओं में इस बदले हुए सम्बन्धों की पहचान होती हैं। वर्तमान के नारी पात्र आज भी यहीं कहीं हमारे चारों ओर मंडराने वाले पात्र हैं, जो समकालीन कथा साहित्य के द्वारा अपने वास्तविक रूप में हमारे सम्मुख दिखाई पड़ते हैं।

उपसंहार–यही कहा जा सकता है कि हिन्दी कथा साहित्य में उत्तरोत्तर स्त्रियों की दशा और दिशा में परिवर्तन आया है। विशेषकर आज़ादी के बाद सामाजिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में आने वाले परिवर्तनों ने जीवन को नए ढंग से देखने और समझने की दृष्टि दी। जिससे परम्परागत किले भी ध्वस्त हुए प्रतीत होते हैं। आज नारी का स्वतन्त्र होकर अपने कार्यों के प्रति निर्णय लेना इसी परिवर्तन का परिणाम है। आर्थिक रूप से स्वतन्त्रता, राजनीतिक भागीदारी तथा सामाजिक न्याय आदि जैसे मुद्दे स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य में जोर–शोर से उभरे हैं। इस प्रकार विभिन्न पड़ावों से गुजरती हुई भारतीय स्त्री ने आज हिन्दी कथा साहित्य में सम्मानजनक स्थिति प्राप्त की है। नारी चेतना के कारण ही आज पुरुषों ने भी नारी की अस्मिता और उसकी सत्ता को स्वीकार किया है।

संदर्भ

1. शरतेन्दु हरिश्चन्द्र, नीलदेवी, भूमिका से उद्धरित
2. डॉ. इन्द्रनाथ मदान, उपन्यास : पहचान और परख, पृ. 65
3. रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द युग, पृ. 33
4. प्रेमचन्द, निर्मला, पृ. 5
5. प्रेमचन्द, गोदान, पृ. 151
6. यशपाल, दादा कामरेड, पृ. 90
7. इलाचन्द्र जोशी, त्याग का भोग, पृ. 475
8. डॉ. ज्ञान अस्थाना, हिन्दी कथा साहित्य : समकालीन सन्दर्भ, पृ. 59

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 221-226

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

विकासखण्ड सोंधी जनपद जौनपुर में साक्षरता की क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप का भौगोलिक अध्ययन

*प्रशान्त यादव** *डॉ. अनामिका सिंह***

शोध सारांश–साक्षरता के माध्यम से किसी भी प्रदेश विशेष में सामाजिक व आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है, उच्च साक्षरता जहाँ सामाजिक उन्नयन के लिए उत्तरदाई होता है और मानव संसाधन की गुणवत्ता में वषद्धि करती है, वहीं निम्न साक्षरता प्रदेश विशेष को पिछड़ेपन की ओर ले जाती है, किसी भी जनसंख्या के शून्य से 06 वर्ष आयु वर्ग की जनसंख्या (बच्चों की संख्या) को साक्षरता परिकलन से बाहर रखा जाता है, सात वर्ष से लेकर सभी आयुवर्ग के लोगों में पढ़ने–लिखने की क्षमता और किसी एक भाषा को समझने की योग्यता को साक्षर कहते हैं। अध्ययन क्षेत्र, विकास सोंधी जनपद जौनपुर का एक विकासखण्ड है, जो भौगोलिक दृष्टि से मध्य गंगा मैदान में अवस्थित है। 2011 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की कुल साक्षरता 58.1% है, जो उसी समय में जनपद जौनपुर (58.4%) उत्तर प्रदेश (67.7%) और भारत 73% की तुलना में कम है, परन्तु यह अल्प साक्षरता का प्रतिशत साक्षरता को हतोत्साहित नहीं करता, वरन् प्रोत्साहित करता है, क्योंकि 2001 की तुलना में 2011 में 11.6% धनात्मक परिवर्तन हुआ है जो देश व प्रदेश की तुलना में अधिक है।

भूमिका–साक्षर व्यक्ति सुविज्ञ होता है, जो समसामयिक परिस्थितियों के प्रति जागरूक होता है। जिस जनसंख्या में निरक्षरता व्याप्त होती है, उस जनसंख्या में अन्धविश्वास और कुरीतियां और अनेक सामाजिक बुराइयां उच्च स्तर पर पाई जाती हैं जबकि उच्च साक्षरता वाले समाज स्वयं के साथ–साथ अन्य उपेक्षित लोगों की सेवाएं करने में समर्थ होते हैं। साक्षरता ज्ञान का प्रकाशपुंज है, जो अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करती है, जिससे समाज में नवीन जागरूकता का परिसंचरण होता है, जनसंख्या की गुणात्मक गत्यात्मकता के लिए साक्षरता का उन्नयन अत्यंत आवश्यक है, शिक्षा की अनिवार्यता को समझते हुए ही प्रत्येक व्यक्ति को साक्षर होना अनिवार्य बनाया गया है। साक्षरता वस्तुतः वह वैयक्तिक गुण है जो किसी व्यक्ति के पढ़ने–लिखने की क्षमता को प्रकट करती है। साक्षरता ही है, जो किसी मानव के सोच–विचार और कार्य करने की योग्यता में वृद्धि करती है और नित्य उसे नई खोज की दिशा में प्रवृत्त करती है। इसी से सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। साक्षरता से ही समाज में व्याप्त अंधविश्वास, रुढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता, सामाजिक भेदभाव एवं निर्धनता जैसी स्थिति से दूर रहने के लिए प्रोत्साहन एवं मार्ग मिलता है। निरक्षर व्यक्ति देश की आंतरिक, वर्तमान एवं वास्तविक स्थिति अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विदेश नीति एवं तकनीकी दृष्टि से आधुनिक उद्योगों को परिस्थिति समझने में असफल रहता है। विद्यालय शिक्षा की अवधि के आधार पर साक्षरता निर्धारण के पक्ष में नहीं थे। साथ ही वह देश की प्रचलित भाषा में नाम लिखने और पढ़ने की योग्यता के आधार पर साक्षरता निर्धारण के पक्ष में भी नहीं हैं। सन 1903 में फिनलैण्ड में साक्षरता निर्धारण के लिए सबसे कठिन परिभाषा को अपनाया गया। केवल उन लोगों को साक्षर माना गया जो कठिन प्रश्नों को हल कर सकते थे। जो उनके असफल रहे, उन्हें दो श्रेणियों में विभक्त किया गया :

* *शोध छात्र, भूगोल विभाग, श्री कृष्णदत्त पी.जी. कॉलेज, जौनपुर*

** *एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, श्री कृष्णदत्त पी.जी. कॉलेज, जौनपुर*

(1) अर्द्धशिक्षित, जो लिख पढ़ तो सकते थे और (2) अशिक्षित जो न लिख सकते थे और न ही पढ़ सकते थे (यूनेस्को 1957 पृ. 29)। किसी भी व्यक्ति द्वारा पढ़ने–लिखने की योग्यता को साक्षरता कहते हैं। साक्षरता मनुष्य के बौद्धिक स्तर में उन्नयन करती है। साथ ही नवाचारों से परिचित होता है और उसमें अनुसंधान की प्रवृत्ति जागृत होती है जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। साक्षरता शिक्षा का एक अंग है। समाज में व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता, सामाजिक भेदभाव निर्धनता आदि को दूर करने में साक्षरता महत्व सर्वोपरि है। आज के वैज्ञानिक तकनीकी युग में साक्षरता का महत्व भी बढ़ता जा रहा है, क्योंकि निरक्षर या अनपढ़ व्यक्ति समाज और देश की वर्तमान वास्तविक स्थिति तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को समझने में असमर्थ होता है तथा तकनीकी दृष्टि से अकुशल होने के कारण आधुनिक उद्योगों तथा सेवाओं में उचित योगदान भी नहीं कर पाता है और वर्तमान काल में भी वह देश या प्रदेश आर्थिक रूप से अधिक सम्पन्न है। जहाँ साक्षरता कुछ दर और वह देश पिछड़े हुए हैं। जहाँ साक्षरता दर निम्न है। इतना ही नहीं, साक्षरता का विभिन्न जनांकिकी पक्षों जन्मदर, मृत्युदर, प्रवास, व्यावसायिक संरचना, नगरीकरण आदि के घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। अतः जनसंख्या की विशेषताओं और जनांकिकीय लक्षणों की क्षेत्रीय विभेदशीलता के अध्ययन के लिए साक्षरता का विश्लेषण भूगोल के लिए आवश्यक हो जाता है। इसीलिए जनसंख्या भूगोलविद् जनसंख्या संघटन के अन्य तत्वों के साथ ही साक्षरता के क्षेत्रीय विश्लेषण को भी महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है।

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गोल्डन 1968, ट्रीवार्था 1969, डेविस किंग्सले 1955, कृष्ण और श्याम 1973, गोसल 1967, मित्रा 1964, डी०पी० पण्डा 2007, नूतन त्यागी 1990, संगीता शुक्ला और डी०डी० कश्यप 2016, आर०सी० चांदना 2017, रामकुमार तिवारी 2017, अजय कुमार पटेल और विनय कुमार राय 2017, शम्भूराम और विवेक चन्द्र मौर्य 2014 आदि विद्वानों ने सराहनीय कार्य किया।

शोध पत्र का उद्देश्य–प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य विकासखण्ड सोंधी (जनपद जौनपुर) में साक्षरता के क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप की प्रवृत्ति का अध्ययन करना है। साथ ही साथ विभिन्न जनगणना वर्षों में साक्षरता में होने वाले परिवर्तन का विश्लेषण करना है।

अध्ययन क्षेत्र–अध्ययन क्षेत्र (विकासखण्ड सोंधी, जनपद जौनपुर) का अक्षांशीय विस्तार $25^0 25'00''$ उत्तरी अंक्षाश से $26^0 12'30''$ उत्तरी अंक्षाश रेखाओं के मध्य तथा देशान्तरीय विस्तार $82^0 35'00''$ पूर्वी देशान्तर से $82^0 46'30''$ पूर्वी देशान्तर रेखाओं के मध्य है। इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 292.33 वर्ग किलोमीटर है, अध्ययन क्षेत्र में कुल 16 न्याय पंचायतें हैं, यहाँ की कुल जनसंख्या 300,818, जिसमें 145648 पुरुष तथा 155170 स्त्रियाँ हैं। इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र का लिंगानुपात 1065 है। अध्ययन क्षेत्र मध्यगंगा मैदान में अवस्थित है। अध्ययन क्षेत्र के मध्य से होकर उत्तर रेलवे की वाराणसी, जफराबाद, शाहगंज, अकबरपुर, फैजाबाद, लखनऊ रेल–मार्ग जाता है जिसके समानान्तर दुद्धी–लुम्बिनी मार्ग का विस्तार हैं। जलवायु कटिबंध की दृष्टिकोण से यह शीतोष्ण जलवायु कटिबंध के अन्तर्गत है परन्तु तीनों ही ऋतुएँ पराकाष्ठा पर घटित होती है। अध्ययन क्षेत्र की प्रमुख नदियाँ कोवर और बेसो है, जो पूर्णतः मौसमी सरिताएँ हैं, परन्तु कोवर नदी में वर्षपर्यन्त लघु मात्रा में जल रहता है। अध्ययन क्षेत्र में निर्वाहन मूलक कृषि की जाती है।

आँकड़ा संग्रह एवं शोध विधितंत्र–प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक आँकड़ों के आधार पर तैयार किया गया है, परन्तु शोधकर्त्ता ने अध्ययन क्षेत्र के लोगों से समय–समय पर सम्पर्क करके साक्षरता की प्रवृत्ति का परीक्षण करने का प्रयास किया है। कुल पुरुष और स्त्री साक्षरता का परिकलन निम्नलिखित सूत्र की सहायता से किया गया है–

तथ्य विश्लेषण–2001 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की कुल साक्षरता 46.8 प्रतिशत थी, जो बढ़कर 2011 में 68.40 प्रतिशत हो गई। 2001 में 54.05 प्रतिषत पुरुष और 32.41 प्रतिशत स्त्रियाँ साक्षर थीं, जबकि 2011 में अध्ययन क्षेत्र की साक्षरता में 22.32 प्रतिशत की वृद्धि अंकित की गई। 2001 और 2011 दोनों ही जनगणना

वर्षों में अध्ययन क्षेत्र जौनपुर जनपद की तुलना में पिछड़ी हुई दशा में है। 2001 में अध्ययन क्षेत्र की कुल साक्षरता जौनपुर जनपद की तुलना में 13.76 प्रतिशत कम थी जबकि 2011 में यह अन्तर 3.15 प्रतिशत का ही रह गया, इससे यह प्रमाणित होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 2001 की तुलना में 2011 में साक्षरता दर में तीव्र वृद्धि हुई है, परन्तु यह वर्षद्धि जनपद व देश की तुलना में कम है तथा उत्तर प्रदेश से अधिक है। 2001 में जौनपुर जनपद की तुलना में अध्ययन क्षेत्र में 22.13 प्रतिशत पुरुष कम साक्षर थे, यह प्रतिशत घटकर 2011 में 5.16 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार 2001 में जनपद और अध्ययन क्षेत्र की स्त्री साक्षरता में 11.66 प्रतिशत का अन्तर था, जो घटकर 2011 में 1.58 प्रतिशत रह गया।

2011 की जनगणना के अनुसार ताखापूरब और भादी उच्चतम साक्षरता वाली न्याय पंचायतें हैं। जहाँ पर 60 प्रतिशत से अधिक साक्षरता पायी जाती है जबकि खलीलपुर, कुहियाँ, बड़उर, मानीकला, बरगी, पाराकमला, सबरहद, बड़ागाँव और कोपा मध्यम साक्षरता वाली न्याय पंचायतें हैं, जहाँ पर 55 से 60 प्रतिशत के मध्य साक्षरता पायी जाती है। 2011 में रानीमऊ, खेतासराय, रुधौली, जमदहाँ और मेहरावाँ न्यूनतम साक्षरता वाली न्याय पंचायतें हैं, जहाँ पर 55 प्रतिशत से कम साक्षरता पायी जाती है। अध्ययन क्षेत्र 2001 में साक्षरता की दृष्टिकोण से दयनीय स्थिति में था, क्योंकि उस समय अध्ययन क्षेत्र की समस्त न्यायपंचायतें न्यूनतम साक्षरता श्रेणी के अन्तर्गत थीं। 2011 की जनगणना के अनुसार कोपा, ताखापूरब, भादी, सबरहद, पाराकमाल, बड़उर, कुहियाँ और खलीलपुर न्यायपंचायतें पुरुष साक्षरता की दर्षष्टिकोण से शीर्ष पर हैं, बड़ागाँव, रानीमऊ, खेतासराय, रुधौली, जमदहाँ, बरगी, मानीकला और मेहरावाँ न्यायपंचायतें पुरुष साक्षरता की दृष्टिकोण से मध्यम श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। 2011 में अध्ययन क्षेत्र की एक भी न्यायपंचायत न्यूनतम श्रेणी के अन्तर्गत नहीं आती थी, जबकि 2001 में पुरुष साक्षरता की दृष्टिकोण से समस्त न्याय पंचायतें न्यूनतम श्रेणी के अन्तर्गत आती थीं, जहाँ पर 60 प्रतिशत से कम साक्षरता पाई जाती थी। 2011 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र में पुरुष और स्त्री की साक्षरता का अन्तर 25.82% है जो स्त्री साक्षरता की दयनीय स्थिति का सूचक है। 2011 में ताखापूरब, भादी, पाराकमाल और बरगी स्त्री साक्षरता की दृष्टिकोण से उच्चतम हैं, जहाँ पर 50 प्रतिशत से अधिक साक्षरता पायी जाती है। कोपा, बड़ागाँव, रानीमऊ, खेतासराय, रूधौली, जमदहाँ, मानीकला, बड़उर, कुहियाँ और खलीलपुर न्यायपंचायतें मध्यम साक्षरता की श्रेणी में हैं, जहाँ पर 45 से 50 प्रतिशत के मध्य साक्षरता पायी जाती है, जबकि अध्ययन क्षेत्र की एक मात्र न्यायपंचायत मेहरावाँ न्यूनतम श्रेणी के अन्तर्गत आती है, जहाँ पर 45 प्रतिशत से कम साक्षरता पायी जाती है। 2001 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की समस्त न्याय पंचायतें स्त्री साक्षरता की दृष्टिकोण से न्यूनतम श्रेणी में आती हैं। यदि हम अध्ययन क्षेत्र में 2001 और 2011 की साक्षरता के परिवर्तन का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट होता है कि कोपा, ताखापूरब, बड़ागाँव, भादी, सबरहद और कुहियाँ न्यायपंचायतों में साक्षरता परिवर्तन का प्रतिशत 15 प्रतिशत से अधिक है। पाराकमाल, रानीमऊ, खेतासराय, रुधौली, जमदहाँ, बरगी, मानीकला बड़उर और खलीलपुर में साक्षरता परिवर्तन का प्रतिशत मध्यम स्तर का है, जो 10 से 15 प्रतिशत के मध्य पाया जाता है। अध्ययन क्षेत्र में मेहरावाँ एक मात्र न्याय पंचायत हैं, जहाँ पर परिवर्तन का प्रतिशत 10 प्रतिशत से कम पाया जाता है।

निष्कर्ष–अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता के क्षेत्रीय वितरण से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि, जो न्याय पंचायतें शाहगंज नगरपालिका के आस–पास है, वहाँ साक्षरता वृद्धि दर प्रोत्साहित करने वाली है तथा जिन न्याय पंचायतों में मुसलमानों की संख्या अधिक है, वहाँ पर साक्षरता वृद्धि दर हतोत्साहित है। गाँवों में लोग साक्षरता के महत्व को अभी भी न जान पाने के कारण अपने बच्चों को कम आयु में ही विभिन्न प्रकार के मुद्रार्जन के कार्यों में लगा देते हैं और ऐसे बालक तथा बालिकाएँ विद्यालय जाने से वंचित रह जाते हैं। 2001 और 2011 की साक्षरता के आँकड़ों को देखने से स्पष्ट होता है कि सभी न्यायपंचायतों में 2001 की तुलना में 2011 में साक्षरता में धनात्मक वृद्धि हुई है, परन्तु जनपद जौनपुर की तुलना में अध्ययन क्षेत्र की साक्षरता कम है।

तालिका संख्या–1

विकासखण्ड सोधी में (जनपद जौनपुर) में साक्षरता

क्र. सं.	न्यायपंचायत	2011			2001			कुल साक्षरता में परिवर्तन
		कुल साक्षरता	पुरुष साक्षरता	स्त्री साक्षरता	कुल साक्षरता	पुरुष साक्षरता	स्त्री साक्षरता	
1-	कोपा	59.4	69.6	49.5	43.09	55.4	30.83	16.31
2-	ताखापूरब	60.0	68.01	51.4	43.6	55.5	31.5	16.4
3-	बड़गाँव	59.3	64.6	49.1	41.3	53.5	28.4	18
4-	भादी	71.53	66.9	50.5	45.2	54.6	35.7	26.33
5-	सबरहद	58.1	65.2	50.56	43.05	51.3	34.7	15.05
6-	पाराकमाल	57.9	65.1	50.8	45.5	54.2	37.2	12.4
7-	रानीमऊ	54.8	61.5	48.6	41.9	52.4	32.2	12.9
8-	खेतासराय	54.1	61.7	46.7	41.5	51.3	32.06	12.6
9-	रुधौली	54.8	63.1	46.6	40.4	54.3	26.7	14.4
10-	जमदहाँ	53.9	61.9	46.07	41.05	50.4	31.2	12.85
11-	बरगी	57.2	63.5	51.3	44.9	54.6	35.8	12.3
12-	मानीकलॉ	56.9	63.8	49.6	43.6	54.5	32.9	13.3
13-	बड़उर	57.8	67.8	47.8	44.7	56.5	32.7	13.1
14-	कुहियाँ	58.4	67.7	49.3	41.7	54.7	28.9	16.7
15-	मेहरावाँ	53.9	63.5	40.1	45.1	56.6	34.1	8.8
16-	खलीलपुर	57.1	66.4	48.1	44.3	55.0	33.8	12.8
17-	अध्ययन क्षेत्र कुल योग	68.40	78.64	58.23	46.8	54.05	32.41	22.32
18-	जौनपुर	71.55	83.8	59.81	59.84	76.18	44.07	11.71
19-	उत्तर प्रदेश	67.7	77.3	57.2	56.36	68.8	42.2	11.34
20-	भारत	73.0	80.9	64.6	64.84	75.26	53.67	8.16

स्रोत–उपजनगणना निदेशक, लखनऊ द्वारा प्रदत्त प्राथमिक जनगणना सार की ग्रामानुसार सी०डी०

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Golden H.H. (1968), "Literacy" International Encyclopaedia of the Social Science, Vol. 9, McMillan Company and Free Press.

2. Trewartha, G.T. (1969), A Geography of Population : World Patterns, John Wiley and Sons, New York.

3. Davis, Kingsley (1955), "Social Demographic Aspects of Economic Development in India", In Simonson Kuznets et.al. (End.) Economic Growth : Brazil. India, Japan, Duke University Press, Durham.

4. Mitra, Ved (1964) : Education in Ancient Indian, Arya Book Depot, New Delhi.

5. Krishna G. and Shyam, M. (1973), "Spatial Perspective on Progress of Female Literacy in India 1907-71", Pacific Viewpoint, Vol. 14.

6. Chandna, R.C. (1980) : A Georaphy of Population, Kalyani Publishers, New Delhi. p no. 228-248.

7. त्यागी, नूतन (1990) पूर्वी उत्तर प्रदेश में साक्षरता तथा ग्रामीण विकास उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक–26, पृ. 1–2.

8. पण्डा, बी0पी0 (2007) जनसंख्या भूगोल, मध्य प्रदेश ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

9. शुक्ला, संगीता एवं कश्यप, डी.डी. (2016) छत्तीसगढ़ राज्य में साक्षरता दर का मापन (कोटा विकासखण्ड के दवनपुर ग्राम के संदर्भ में प्रतीकात्मक अध्ययन), उत्तर प्रदेश जियोग्राफिकल जर्नल, वाल्यूम–21, पृ. 90–96.

10. पटेल कुमार अजय कुमार और राय विनय (2017), "अम्बेडकरनगर जनपद (उ.प्र.) में साक्षरता वृद्धि : एक भौगोलिक विश्लेषण" राष्ट्रीय भौगोलिक पत्रिका, अंक–2, वर्ष–8, दिसम्बर 2017, पृ. 87–93.

11. तिवारी, रामकुमार (2017) जनसंख्या भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, पृ. 218–229.

12. Gosal, G.S. (1964) "Literacy in India : An Interpretative Study", Rural Sociology, vol. 29.

13. शम्भूराम और विवेकचन्द्र मौर्य (2014) विकासखण्ड जलालपुर (जनपद जौनपुर) में साक्षरता का स्थानिक एवम् कालिक वितरण प्रतिरूप का भौगोलिक अध्ययन, Research Discourse Page No. 282-284.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Botany : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 227-230

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Impact of Cement Industry Pollution on Physio-Morphology Attributes of Kadam (*Anthocephaluscadamba*) around K.J.S. Cement

*Sandeep Pratap Singh** *Manoj Kumar Singh***

Abstract : A *study was carried out to assess the impacts of cement dust pollution on selected plant species around K.J.S. cement industrial belt, Maihar (M.P.). Sampling was done at different distance from 0.5-2.0 km from the point sources. Effect of cement dust on chlorophyll content, carotenoid content, visible injuries and dust deposition of Kadam (Anthocephaluscadamba) plant species as compared to control site Unchehera (20 km away from the cement industry). Increased concentration of cement dust pollutants sources invisible injuries like progressive decline in photosynthetic ability and effects the growth and productivity of Kadam tree. Present paper attempts to focus on impact of cement emission on plant vegetation and adversely affected physiologically.*

Key Words : Cement dust, Chlorophyll, Pollution, Kadam tree

Introduction : India is the major sources of dust and sand storms (DSS) in the country. India is the second largest cement producer in the world and the central India covers the seven states of our country. It has a long industrial development and M.P. is situated in the geographical heart of Indiabetween latitude 21.02°N-26.87°N and longitude 74.02'E-82°49'E. The cement industry role a vital part in the in stabilities of the environment and produces air pollution hazards (stern, 1976). Air pollution has become a major hazard to the survival of plants in the industrial zones (Gupta and Mishra, 1994). Someemployees have also former studied the impact of air pollution on the plants with reference to foliar anatomical and biochemical changes by experimenting on various sensitives plants (Samal and Santra, 2002). Increased contraction of the above pollutants causes progressive reduction in the photosynthetic ability of leaves, closure of leaf stomata and, mainly, a reduction in growth and productivity of plants (Larcher, 1995).

Satao et al., (1993) also reported that due to cement dust reducedplant productivity and of chlorophyll concentration in a number of plants. Cement dust are potentially harmful to the environment. Cement dust pollution severely effect the growth and morphology of plants, it might be in the form of visible marking on the foliar such as chlorosis and necrosis etc. Reduction in growth parameters is due to the cumulative effect of the casual factors on the physiological processes necessary for plant growth and its development (Suchtzki and Cregg, 2007). Photosynthesis pigments in green plants and assessment of their concentrations in foliage provide an estimate of Potential Photosynthetic Capability (Gitelson and Merzlyak, 1996 and Carter, 1998).

* ***Research scholar, Department of Botany, Govt. P.G. college Satna (M.P.) India***

** ***Professor of Botany, Govt. P.G. College Satna (M.P.) India***

All the atmospheric pollutants retained by leaves are transformed inside the plant and effect its photosynthesis and respiration. At the level,the damage manifests aschlorotic and necrotic lesions (Landis and Yu, 1995). The objective of present study was to analyses the effects of dust pollutants on chlorophyll 'a', 'b' and total chlorophyll,carotenoidscontent, injuries and dust depositionof Kadam (*Anthocephaluscadamba*) plant species around K.J.S cement plant. Plants around the cement industry were selected for physio-morphologic analysis. Also, plants from pollution free sites were taken as reference for compression.

Material and Method : Maihar is situated at 24.27°N-80.75°E. On the national highway NH-7 and has an average elevation of 367 meters (1204 fit). In The present study, four sampling sites were selected around cement industry. According to the locals of Maihar, it is said that they are the ones to visit the goddess in this remote forest. They called the mother goddess by the name 'Sharda Mai', and henceforth she became as popular as 'Mata Shard Mai'. The people of believe that Alha is alive and come at 4 am in the morning to warship the 'Goddess Sharda'.

Four selected sites station around the cement plant, up to a distance of 2 km, were decided for each season. In the present study, only Kadam tree was performed at each site during 2019-20 on season basis. Plants were examined for physicochemical parameters such as chloroplast pigment, carotenoids piment, visible injury and foliar dust deposited. Chlorophyll and carotenoids were extracted at 80% acetone and readings were measured at 623, 647,615 and 480 nm and calculation were made according to (Arnon, 1949) using absorption coefficient.

The dust deposited on plant leaves surface and 20 leaves from different branches of selected plant species have been collected and kept in separate polyethene bags. The water containing dust has been filtered through pre-weighed filter paper. The difference in the weight of filter paper yielded the amount of dust on the sampled leaves and the leaves area was calculated. The absolute of dust deposition may be important for physical effect. Chlorosis is the phenomenon of leaves yellowing due to the loss of chlorophyll. Necrosis means the wilting of plants due to the lack of chlorophyll. Leaves were collected at different heights and the percentages of leaves exhibiting chlorosis and necrosis were calculated (Carloson et al., 1996).

Result and Discussion : The impact of cement dust on chlorophyll pigments, carotenoids, visible injuries and dust deposition of Kadam at various study sites around the cement industry. Cement plant around K.J.S cement plant Maihar are given in table 1. The data reveals that chlorophyll concentration fluctuated from 0.357 to 0.389 mg/gm, chlorophyll b from 0.056 to 0185 mg/gm and total chlorophyll from 0.384 to 0.547 at site 3 and control site in Kadam tree. The lowest concentration both chlorophyll and carotenoid are found at site 3 which receives highest dust fall from cement plant areas. Dusted or encrusted leaf surface is responsible for reduced photosynthesis and thereby causing a reduction in chlorophyll content

Table 1: Parameters of Kadam Tree at Various Study Sites Around K.J.S Cement Plant from (2019-20)

S. No.	Parameter	Site 1	Site 2	Site 3	Site 4
1	Chlorophyll 'a' mg/g	0.364±0.006	0.361±0.004	0.357±0.003	0.389±0.005
2	Chlorophyll 'b' mg/g	0.062±.0004	0.064±0.003	0.056±0.003	0.185±0.004
3	Total chl. mg/g	0.447±0.002	0.405±0.003	0.384±0.003	0.547±0.004
4	Carotenoid's mg/g	0.824±0.006	0.844±0.003	0.765±0.004	0.885±0.003
5	Chlorosis/necrosis %	6.25	4.48	5.5	5.5
6	Dustdeposition mg/cm^2	6.6	7.3	5.2	6.4

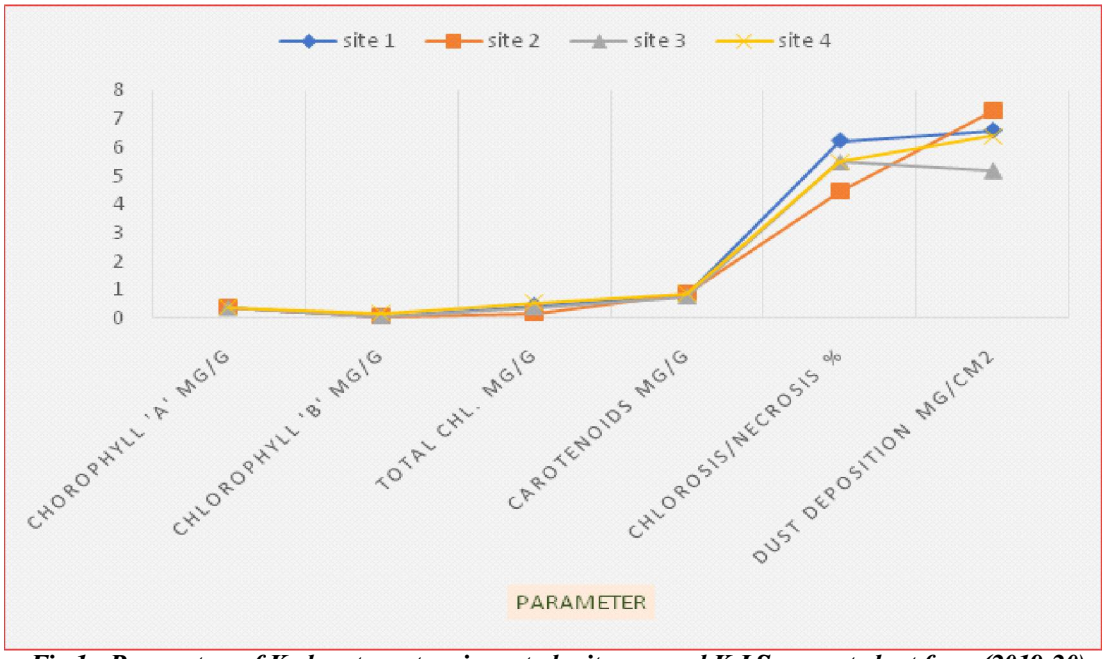

Fig 1 : Parameters of Kadam tree at various study sites around K.J.S cement plant from (2019-20)

(Joshi and Swami, 2009). There chlorophyll is not present, as in autumn foliage. The yellow and organs of carotenoids are predominant. Significant changes were observed in carotenoid concentration of trees nearest to the cement industry. In the study conducted by Joshi and Swami, (2009). The cement air pollution severely affects the growth and morphology of plants. It might be in the form of visible markings on the foliage such as chlorosis and necrosis etc. shows the data on leaves suffered from chlorosis/necrosis of all site plants. It was found that the highest values resulted in site 2. The maximum deposition per cm^2 was on site 3 on selected plants. Dust effects plant physiology at both physically as well as atthe chemical and biochemical level. The absolute level of dust deposition may be important for physically effects. Brown and Breg, (1980).

Conclusion : The present study shows that the deposition of cement dust has an effect on vegetation characteristics and between plant tree. The physio-morphological characters of kadam were studied at different distances from the industry and compared with the control plant. The data indicated from different sites indicate that chloroplast pigment, carotenoids. Visible injury and dust deposition were affected by cement dust pollution. The kadam tree growing in control site were healthy than the trees growing near the cement plant. Chlorophyll content is important for the photosynthetic action and reduction in chlorophyll content has been used as an indicator of air pollution since it is fairly sensitive to air pollutants. Proper maintenance and machine efficiency ensure reduction in the generation of dust and gases during various operation. They would reduce adverse impact on vegetation.

References

1. Arnon DT. "Acetone Method for the Extraction of Chlorophyll from Leaf Tissue." *Plant Physio*., 1949; 24: 1-5.

2. Brown J. & Brege R. "Investigations Along the Yukon River-Prudhoe Boyhaul Road, US Army Cold Regions Research and Engineering Laboratory, CRREL*." Environment Engineering and Ecological Beseline. Report 80-90. 1980; Pp: 101-128.*

3. Carter G.b., "Reflection Wave Bands and Indices for Remote Estimation of Photosynthesis and Stomata Conductance in Pine Canoies. *Remote Sens.Environ*.,1998; 63: 61-72.

4. Cartoson RE. "A Coordinator Guide to Volunteer Lake Monitoring Methods, North American Lake Management Society." 1996.

5. Gupta Ak. & Mishra RM. "Effect of Line Kiln's Air Pollution on Some Plant Species." *Pollution Resc*., 1994: 13: 1-9.

6. Joshi PC. & Swami A. "Air Pollution Induced Changes in the Photosynthetic Pigments of Selected plants Species." *J.Environ.* Boil, 2009; 30: 295-298.

7. Joshi PC. & Swami A. "Physiological Response of Some Tree Species Under Road Side Automobile Pollution Streets Road Around City of Haridwar, India." *J. Environ*., 2007; 27: 365-374.

8. Larcher W. "Physiological Plant Ecology." Springer-Verlag, Berline, Germany."1995.

9. Landis WG. & Yu MH. "Introduction to Environment Toxicology, Impacts of Chemicals Upon Ecology System." *CRC Press*, Inc. Boca Roton, USA.1995.

10. Samal AC. & Santra SC. "Air Quality of Kalyani Township and Its Impact on Surrounding Vegetation." *India J. Environ*. Hlth, 2002.

11. Satao RN., Kene HK. & Ulemale RM. "Effect of Cement Dust Pollution on Growth the Yield of Cotton." *A Plant Physical*.,1993;7: 73-77.

12. Suhutzki RE. & Cregg B. "Abiotic Disorders Symptoms, Signs and Solutions. A Diagnostic Guide to Problem Solving." *Extension Bultetin*. 2007, 2996.

13. Stern AC. "Air Pollution Measurements, Monitoring and Surveille Ancer of Air Pollution, 3rd ed." *Academic Press*. New York, 1976.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 231-233

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

अंग प्रदेश की लोकगाथा बिहुला विषहरी : संदेश एवं चरित्र

*डॉ. कुमार चैतन्य प्रकाश**

शोध सार–बिहुला विषहरी/विषहरी पूजा अंग (भागलपुर बिहार) की ऐसी विशिष्ट लोकगाथा और पूजनोत्सव है, जिसमें एक साथ कई कलाओं, शैलियों, परम्पराओं और संस्कृतियों का समावेश है। जहाँ एक तरफ प्राचीन मंजूषा चित्रकला इसी लोकगाथा पर आधारित चित्रकथा शैली है, वहीं दूसरी तरफ विशिष्ट शैली का बिहुला गीत अपने आप में खास है। सावन महीने में होने वाले इस पूजनोत्सव का महत्व कई मायनों में खास है, इस समय पूरा अंग क्षेत्र लोक मंजूषा चित्रकलाओं, बिहुला गीतों और भगत नृत्यों से सराबोर रहता है। इस गाथा का विशेष महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है, क्योंकि पूरी गाथा और इससे जुड़ी हुई तमाम प्रक्रिया में प्रकृति से जुड़ाव का संदेश साफ परिलक्षित होता है।

Keyword- मंजूषा चित्रकला, बिहुला विषहरी।

होरे पूरब बंदौं हे बंदौं उगन्त सुरूज हे।

vjsmud spj.k gscakSfl j eap<k; xkjsl gsA[1]

अर्थात् पूर्व दिशा की ओर जहाँ सूर्य उदित होता है, उनकी वंदना करते हैं और गोरस (गाय का दूध) अर्पित करते हैं।

होरे दखिन बंदौं हे बंदौं बाबा वैद्यनाथ हे।

अरे उनके चरण हे बंदौं सिर में चढ़ाय गोरस हे।।[2]

कहने का तात्पर्य यह है कि दक्षिण दिशा में विराजमान भगवान वैद्यनाथ (शिव) की वंदना करते हैं और गाय के दूध से उनकी पूजा करते हैं।

होरेपश्चिम बंदौं हे बंदौं देव करता हे।

अरे उनके चरण हे बंदौं सिर में चढ़ाय गोरस हे।।[3]

अर्थात् पश्चिम दिशा में विराजमान देवों की वंदना करते हैं और गाय का दूध अर्पित करते हैं।

होरे उत्तर बन्दनी हे बंदौ गंगा हनुमान हे।

अरे उनके चरण हैं बंदौ सिर में चढ़ाय गोरस हे।।[4]

तात्पर्य यह है कि उत्तरवाहिनी गंगा और हनुमान जी की वंदना करते हैं तथा गाय के दूध से उनकी पूजा करते हैं।

यह गीत सावन के महीने में वर्तमान भागलपुर, मुंगेर (अंग प्रदेश) जिले के प्रायः सभी मंदिरों में सुना जा सकता है। लोक गायक ढोल, झाल और खँजड़ी के साथ एक अलग ही अंदाज में लगातार पंद्रह दिनों तक क्रमशः इसके सभी प्रसंगों का ऐसा गायन करते हैं कि पूरा क्षेत्र लोक रंगों से सराबोर हो जाता है।

भारतीय लोक संस्कृति में 'सती' विषय पर कई लोक कथाएँ प्रचलित हैं, लेकिन 'सती बिहुला' जिसे 'बिहुला विषहरी' के नाम से भी जाना जाता है, स्वयं में अनूठी ही है। बिहुला कथा की कई विशेषताओं में से एक है कि यह कथा गीतात्मक शैली में है अर्थात् एक लोकगाथा है। जिसकी अपनी विशिष्ट कथा–गायन शैली है। दूसरी विशेषता है इस कथा पर आधारित अपनी अनूठी चित्रकथा की शैली, जिसे मंजूषा चित्रकला कहा जाता है और तीसरी विशिष्टता है स्त्री सत्ता हेतु संघर्ष। इस गाथा में जहाँ एक तरफ नारी का दारूण संघर्ष सती बिहुला के माध्यम से परिलक्षित होता है तो दूसरी तरफ मनसा या विषहरी के माध्यम से समानता का अधिकार और पुरुष सत्ता को चुनौती देती हुई कथा भी मुखरित होती है।

कथा के अनुसार–महादेव शंकर माया तालाब सोनादह में नित्य स्नान करने आते थे। एक बार उनकी जटा टूट गई, जिससे कमल का फूल उत्पन्न हुआ और उसी से पाँचों बहन विषहरी का जन्म हुआ। पाँचों बहन के नाम हैं मैना, जया, भवानी, विषहरी और पद्मा। यह पाँचों बहन बारह वर्ष तक कमलदह में झूमरी खेलती रही। एक दिन बासुकी नाग ने इनको दर्शन दिया और बताया कि तुम लोगों के पिता शंकर हैं। पाँचों बहन शंकर के पास गई, लेकिन वहाँ पार्वती जी से उनका विवाद हो गया। अंत में इन्होंने पार्वती जी को नाग से डंसवा दिया, लेकिन अंत में वे पुनः जिंदा हो गई। शिव की पाँचों कन्याओं में से एक मनसा की इच्छा थी कि मर्त्य लोक (पृथ्वी) पर समस्त देवताओं की भाँति उसकी भी पूजा हो। मनसा की इच्छा जानकर शिव ने कहा कि पृथ्वी पर चम्पानगरी (भागलपुर) में चंद्रधर सौदागर (चांदो सौदागर) उनका परम भक्त है। अगर चंद्रधर मनसा की पूजा करने को तैयार हो जाता है, तो समस्त मर्त्य लोक में मनसा विषहरी की पूजा शुरू हो जाएगी।[5]

पिता शिव की बात सुन कर मनसा पृथ्वी पर चंपानगर आती है और चांदो को अपनी पूजा करने के लिए कहती है लेकिन चांदो अपने अभिमान में मनसा की पूजा नहीं करता है, उसका कथन है कि जिस हाथ से वह अपने ईष्ट शिव की पूजा करता है। उस हाथ से कानी मेढ़क खाने वाली सर्पिणी की पूजा कदापि नहीं करेगा। चांदो सौदागर के घमंड को देख कर मनसा आगबबूला हो जाती है और चांदो को सर्वनाश की धमकी देती है।[6]

मनसा चांदो सौदागर के छः बेटों को (जो व्यापार के लिए नौकाओं के द्वारा दूर देश गए थे) नाव सहित सागर में डुबो देती है। लेकिन चांदो इतना होने पर भी अपनी कही हुई बात पर अडिग रहता है। वह अपने सबसे छोटे बेटे बाला लखेन्द्र के लिए ऐसी वधु की तलाश में लग जाता है, जो लोहे के चने के दाल को पका सके। चांदो के लिए ऐसी कन्या की खोज का प्रयोजन यही है कि सिर्फ वही कन्या उसके बेटे को मनसा के प्रकोप से बचा सकती है। अंततः बासु सौदागर की बेटी बिहुला, चांदो की परीक्षा में सफल होती है। मनसा फिर प्रकट होती है और चांदो से कहती है कि सुहागरात में ही वह बाला लखेन्द्र को नाग से डँसवाकर मार डालेगी। सुरक्षा हेतु चांदो प्रसिद्ध शिल्पी विश्वकर्मा के द्वारा लोहे और बांस का छिद्ररहित भवन निर्मित करवाता है। मनसा द्वारा धमकी देने पर विश्वकर्मा उस भवन में सिर्फ एक बाल के प्रवेश करने जितना छिद्र छोड़ देता है। इसी छिद्र से मनसा अपने सेवक नाग मनियार को बाला लखेन्द्र और बिहुला की सुहागरात में भवन में प्रवेश करवाती है। मनसा के कहे अनुसार नाग मनियार बाला लखेन्द्र को डस लेता है, जिससे बाला की मौत हो जाती है। प्रसिद्ध अंगिका साहित्यकार डॉ. अमरेन्द्र एक साक्षात्कार के दौरान कहते हैं–

''यह बात आज से 1500 वर्ष पूर्व की है (या इससे भी पूर्व की) जिसे आज भी अंगप्रदेश में मंजुषा कला के नाम से स्मृत किया जाता है। दिन होता है 16 और 17 अगस्त (सावन या भाद्र मास का सिंह नक्षत्र) क्योंकि इसी दिन दुर्भेद्य लौह गृह में प्रवेश कर नाग ने लखेन्द्र का दंशन किया था।''[7]

बिहुला के संघर्ष की कथा यहीं से शुरू होती है। बिहुला अपने पति की पूर्व नियोजित मृत्यु से आहत होती है और संकल्प लेती है कि वह अपने पति के प्राण अवश्य वापस लाएगी। वह विश्वकर्मा के द्वारा केले के थम्ब की मंजुषा बनवाती है। जिस पर लहसन माली के द्वारा चांद, सूरज, तैतीस कोटि के देवताओं, विषहरी पांचों बहन, हनुमान, परिवार, चंदन वृक्ष इत्यादि भांति–भांति प्रकार के वस्तुओं और विम्बों के चित्र बनवाती है। बिहुला अपने मृत पति बाला लखेन्द्र के शव को गोद में रखकर गंगा में उतर पड़ती है। गंगा नदी के द्वारा गोकुल, सोमापुर, कागासैनी, गोदासैनी, बोचासैनी, जुआरी, शंखासैनी, गलतंत्री, जोंकासैनी इत्यादि घाटों की आपदाओं को पार करती हुई बिहुला नेतुला धोबिन के घाट पहुंचती है। नेतुला इंद्रासन के देवताओं के कपड़े धुलने का काम करती थी। नेतुला के सहयोग से बिहुला इंन्द्र की सभा में अपना नृत्य प्रस्तुत करती है और सभी देवताओं के साथ शिव को भी प्रसन्न करती है। शिव के आशीर्वाद से बिहुला अपने पति बाला लखेन्द्र के साथ अपने सभी ज्येष्ठों के प्राण वापस प्राप्त करने में सफल होती है। इस प्रकार सती बिहुला सभी के साथ वापस चम्पानगर आती है और अपने श्वसुर चांदो सौदागर को मनसा विषहरी की पूजा करने हेतु मनाती है। चांदो बायें हाथ से मनसा विषहरी की पूजा करता है। तभी से पूरे अंगप्रदेश में साथ ही बंगाल और असम में भी विषहरी पूजा प्रचलित है। संभवतः जितने बड़े स्तर पर इस पूजनोत्सव को मनाया जाता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह उत्सव अपने आप में कई खास लोक परम्पराओं, गाथाओं, शैलियों, कलाओं और लुप्तप्राय प्रजाति के सर्पों के संरक्षण का संदेश देता है। डॉ. अमरेन्द्र के अनुसार, ''एक दिन सर्प कहानियों में ही रह जाएगा। बढ़ते शहर, घटते जंगल, साँप के चर्मों का व्यापार– सर्प जाति को समूल नष्ट करने पर हम तुले हुए हैं। ऐसे में मंजूषा कला के माध्यम से हम समाज में इस विवेक को प्रचलित कर सकते हैं, कि साँप मनुष्य के दुश्मन नहीं वह आदमी का साथी है।''[8] भगत नृत्य, बिहुला विषहरी गीत

और मंजूषा चित्रकला वो विभिन्न कला शैलियाँ हैं, जिसमें खास भारतीय देसज संस्कृति विद्यमान है। मंजूषा चित्रकला सिर्फ बिहुला विषहरी कथा आधारित चित्र कथा शैली है, जिसमें सर्पों की विशेष प्रधानता है।

''मंजूषा कला में चंपा वृक्ष की पत्तियों और सर्पों से बनी जंजीर के बॉर्डर प्रमुख स्थान रखते हैं। अंग्रेजी के S के आकार में रेखाएँ इस तरह गुथी रहती हैं कि यह सामान्य जंजीर का भले बोध कराती हो, लेकिन वास्तव में यह रेखाएँ सर्पों को जोड़कर बनाई गई जंजीर है। कूंची के रखने के साथ ही सर्प के फन का स्वाभाविक रूप खड़ा हो जाता है। इसकी ओर विद्वानों का कम ही ध्यान गया है।''[9]

लेकिन आजकल प्रयोगात्मक रूप में विभिन्न पारम्परिक त्योहारों एवं अन्य प्रतीकात्मक उपादानों के रूप में भी यह कला विकसित हो रही है। सर्पों के प्रति यह गाथा समाज को संदेश देती है कि सर्प प्रकृति के सहचर हैं, जो पर्यावरण के संतुलन हेतु आवश्यक हैं।[10] नर–नारी समानता की बात हो तो इस लोकगाथा में मनसा विषहरी जिसकी ख्याति एक खलनायिका के रूप में स्थापित है, वह पुरुष देवताओं की भांति अपनी भी पूजा चाहती है। सीधे शब्दों में वास्तविकता तो यही है कि एक स्त्री उन तमाम पुरुषों से बराबरी का अधिकार चाहती है।[11] जिन्हें समाज ने जन्म से ही ऐसे अधिकारों से सुशोभित कर रखा है, जिसकी कल्पना भी एक स्त्री के लिए असहज है। अपनी पूजा के लिए यह मनसा के हक की लड़ाई है। मनसा के तमाम यत्नों से चांदों सौदागर को अपनी पूजा के लिए विवश करना स्त्री शक्ति को प्रतष्ठित करता है और बराबरी के अधिकार की अवधारणा को भी स्थापित करता है।[12]

निष्कर्ष–नारी के साहस, संघर्ष और समर्पण की बात हो तो बिहुला की यह दारूण यात्रा चकित करती है, जिसमें गंगा नदी के तमाम झंझावातों और बाधाओं से जूझते हुए अंततः वह शिवलोक पहुंच ही जाती है और कार्य सिद्धि कर सफलता प्राप्त करती है। मनसा विषहरी के चरित्र से इतर बिहुला नारी के समर्पण, त्याग और साहस की अद्भूत छवि प्रस्तुत करती है।

कहना कतई अतिशयोक्ति नहीं है कि हमारी लोक परम्पराओं में भी ऐसी संस्कृति, ऐसी कथाएं और ऐसे पात्र हैं, जिन्होंने हजारों साल पहले ऐसा संदेश प्रेषित किया था जो आज भी स्त्री सत्ता की आवाज को बुलंद करती है और समानता की धारणा को स्थापित करती है।

संदर्भ–ग्रंथ

1. सिंह, बाबू महादेव प्रसाद, बिहुला विषहरी सम्पूर्ण नौ खंड, प्रकाश पब्लिकेशन, कैलाशनगर, नई दिल्ली, 31 पृ. 3
2. वही, पृ. 03
3. वही, पृ. 03
4. वही, पृ. 03
5. वही, पृ. 02
6. वही, पृ. 03
7. डॉ. अमरेन्द्रः अंगिका लोक साहित्य और मंजूषा लोककला, समीक्षा प्रकाशन, जे. के. मार्केट, छोटी कल्याणी, मुजफ्फरपुर (बिहार) पृ. 102
8. वही, पृ. 112
9. वही, पृ. 103
10. वही, पृ. 103
11. मंडल, डॉ. ब्रह्मदेव, सती बिहुला का लोकतात्विक अध्ययन, पार्वती प्रकाशन, ब्रह्म निवास, बहत्तरा, राघोपुर, भागलपुर बिहार पृ. 19
12. वही, पृ. 20
13. वही, पृ. 22

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 234-237

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

इतिहास में कौरवी प्रदेश

*डॉ. कविता त्यागी**

सारांश : कौरवी प्रदेश वह प्रदेश है जिसने इतिहास को जिया, सराहा और अपने रोम–रोम में समेटा है। इसने अतीत के गौरव, मध्य की दासता और स्वतंत्रता की शंखनाद को अपने आंचल में सन्जोया है। इस देश की परतत्रंता से स्वतंत्रता तक की लम्बी यात्रा के बीच इस प्रदेश ने एक गौरवपूर्ण भूमिका निभाई है। क्रमबद्ध इतिहास में मेरठ का उल्लेख अशोक महान (273–232 ई0 पूर्व) के राज्यकाल में आता है। जिसके साम्राज्य की सीमाओं में यह प्रदेश भी सम्मिलित था। 1857 ई0 का संग्राम भारत वर्ष के इतिहास में एक अत्यन्त रोचक एवं महत्वपूर्ण घटना है। भारतवासियों की राजनीतिक चेतना श्रृंखलाबद्ध कहानी इसी घटना के साथ आरम्भ हुई मानी जाती है। सन् 1857 ई0 के स्वतन्त्रता संग्राम में कौरवी प्रदेश के मुख्य जनपद मेरठ का योगदान न केवल इस जनपद का अपितु पूरे देश के इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है। इस यात्रा के विभिन्न रंगों सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक को समझने के लिए हमें इतिहास के पन्ने पलटने होंगे।

मुख्य शब्द : *धर्मावलम्बियों, श्रृंखलाबद्ध, कोर्टमार्शल, शड़यन्त्र, अंगीकार कूटनीतिज्ञ, मूर्धन्य देशज।*

इतिहास में कौरवी प्रदेश : कौरवी प्रदेश से तात्पर्य कौरवी प्रदेश में बोली जाने वाली जनपदीय लोक–भाषा से है। साहित्यिक कौरवी को हिन्दी, उर्दू और दक्खिनी हिन्दी कहा जाता है। लोक–भाषा के रूप में बोली जाने वाली कौरवी के लिए कई नाम प्रचलित करने का प्रयत्न किया गया है। डॉ0 ग्रियर्सन ने इस पश्चिमी (हिन्दी) को 'देशज हिन्दुस्तानी' कहा। पण्डित राहुली सांस्कृत्यायन ने जनपद के आधार पर कुरू जनपद की मातृ भाषा होने के कारण तथा खड़ी–बोली साहित्यिक हिन्दी से पृथक करने के लिए इसका नामकरण कौरवी बोली किया[1] जो यद्यपि बहुत उपयुक्त प्रतीत होती है। पर अधिक प्रचलित नहीं है। इस दृष्टि से भारतीय के चार भाग किये जा सकते हैं– 1. प्राचीन इतिहास 2. मुस्लिम इतिहास 3. अंग्रेजी इतिहास 4. राजनीतिक चेतना।

1. प्राचीन इतिहास–क्रमबद्ध इतिहास में मेरठ का उल्लेख अशोक महान (213–232 ई० पूर्व) के राज्यकाल esa vkrk gSt l dsl kekT; dhl hekvkses; g çns'k Hkhl fEefyr FkkA[2] इस प्रदेश के मुख्य जनपद मेरठ के सम्बन्ध में यह कहा–सना जाता है व उल्लेख्य है कि मेरठ जनपद में अशोक ने कुछ स्तम्भ–लेख स्थापित कराये थे।[3] इन्हीं में से एक को फिरोजशाह तुगलक मेरठ से उठवाकर दिल्ली ले गया था और उसे वर्तमान कोटला–ग्राउण्ड में पुर्नस्थापित करवाया था। सम्राट हर्ष के समय (606–649) ई० पूर्व में मेरठ उसकी साम्राज्य–सीमाओं के अन्तर्गत था।[4]

बौद्ध–संस्कृति से भी इस प्रदेश का सम्बन्ध रहा है। बौद्ध–जनश्रुतियों में तथा बौद्ध–साहित्य में इसके संकेत प्राहार होते हैं। ऐसी भी मान्यता रही है कि धर्म–प्रचारार्थ भगवान बुद्ध के चरण–कमल इस प्रदेश में पड़े थे। मेरठ नगर में पुरानी तहसील के निकट वर्तमान में जो विशाल जामा मस्जिद है, वहां प्राचीनकाल में प्रसिद्ध बौद्ध–विहार था, जहां बौद्ध भिक्षु रहते थे। सन् 1875 ई० में आये भूकम्प से इस जामा मस्जिद का कुछ भाग ध्वस्त हो गया था। उसी ध्वस्त स्थान पर बौद्ध–विहार में प्रयुक्त कई पाषाण स्तम्भ बाहर आ गये थे जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि जामा मस्जिद बौद्ध–विहार के स्थान पर उसी विहार की सामग्री का प्रयोग करके बनी।

इस प्रदेश का प्राचीनकाल से ही जैन–संस्कृति के साथ अभिन्न रूप से सम्बन्ध रहा है। जैन महापुराणों के अनुसार आदि तीर्थकर ऋषभदेव ने हस्तिनापुर की स्थापना की थी। महावीर बुद्धकालीन सोलह जनपदों की राजधानी भी हस्तिनापुर ही थी। जैन परम्परा के अनुसार शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ तथा अर्हनाथ क्रमशः 16वें, 17वें तथा 18वें तीर्थकरों की जन्मस्थली हस्तिनापुर ही है। हस्तिनापुर में दो बड़े और 4 छोटे जैन मन्दिर तथा अनेक धर्मशालाएं हैं। ये सभी मन्दिर दर्शनीय हैं। यहां प्रत्येक वर्ष कार्तिक पूर्णिमा का जैन मेला लगता है। वर्तमान में जैन धर्मावलम्बियों ने इस पवित्र तीर्थ पर वृहत् जम्बू–द्वीप का निर्माण कराया है। इससे हस्तिनापुर का स्वरूप मनोमुग्धकारी तथा रमणीय बन गया है।

* *एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मेरठ कालिज, मेरठ*

2. मुस्लिम इतिहास–अलाउद्दीन खिलजी के समय में मेरठ जनपद की जनता को आर्थिक दुर्दशा के दिन देखने पड़े क्योंकि अपने सैनिक अभियानों के लिए खिलजी ने यहां की जनता से बहुत कड़े ओर भारी कर वसूल किये।[5] हिन्दुओं को दबा कर रखना एक धार्मिक कर्त्तव्य था क्योंकि वे पैगम्बर के विरोधी थे।[6]

किन्तु मुहम्मद तुगलक जो 1325 में गद्दी पर बैठा, खिलजी से भी चार कदम आगे बढ़ गया। कर वसूलने में उसने बड़ी क्रूरता का सहारा लिया। उसने इस जनपद के किसानों को अपनी खड़ी फसल में आग लगाकर घर–बार छोड़कर भाग जाने के लिए विवश कर दिया।[7] करों ने यहां की जनता की कमर तोड़ दी और उसे आर्थिक रूप से बर्बाद कर दिया।[8] 1398 ई० में मेरठ को तैमूर के भयंकर आक्रमण का सामना करना पड़ा जिससे यहां की जनता को लूटा गया तथा खड़ी फसल व मकानों को आग लगा दी गई तथा मेरठ जनपद को बर्बाद कर दिया गया। किन्तु फिर भी इस जनपद की जनता ने आक्रान्ताओं के सम्मुख सिर नहीं झुकाया। लोदी शासकों के काल (1414–51 ई०) में इस प्रदेश में शान्ति रही किन्तु 1526 ई० में जब यह कौरवी प्रदेश का परिचय बाबर के अधिकार में हो गया तथा 1540 ई० में यह शेरशाह सूरी के अधिकार में आ गया।[9] एक बार फिर यह हुमायूं के अधिकार में आ गया।[10]

अकबर के शासन काल में लगभग सारा मेरठ जनपद दिल्ली सूबे का ही एक भाग बना दिया गया।[11] सरधना तहसील को छोड़कर इस जनपद की सारी तहसीलें उस समय दिल्ली सूबे में मिला दी गई थीं। अकबर के बाद उसका बेटा जहांगीर तथा जहांगीर के बाद उसका बेटा शाहजहां के शासन–काल में मेरठ जनपद में कोई विशेष अशान्ति नहीं रही तथा शाहजहां के बाद उसका बेटा औरंगजेब गद्दी पर बैठा। अकबर, जहांगीर तथा शाहजहां औरंगजेब के शासन–काल में जज़िजा कर की कठोरता से यहां हिन्दुओं की आर्थिक दशा शोचनीय बन गयी तथा उन्हें इस्लाम अंगीकार करने के लिए विवश होना पड़ा।[12] औरंगजेब के अन्तिम दिनों में मुगल–शासन कमजोर हो गया तथा औरंगजेब के बेटे के शासन–काल में ही दिल्ली के सूबे (मेरठ जनपद भी उस समय इसी का भाग था) पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

3. अंग्रेजी इतिहास–इस प्रदेश के इतिहास में बेगम समरू का अपना एक विशेष स्थान है। 1778 ई० में सरधना की जागीर नज़फखान ने यूरोपियन कमाण्डर वाल्टा रीनहार्ड समरू को प्रदान की थी। बेगम समरू उसी की भारतीय पत्नी थी जो उस समय 25 वर्षीय युवती थी। इसी वर्ष वाल्टर रीनहार्ड की मृत्यु हो गयी और सरधना की जागीर बेगम समरू के अधिकार में आ गयी। तीन वर्ष बाद बेगम समरू ने रोमन कैथोलिक धर्म अंगीकार कर लिया था।[13] बेगम समरू एक कश्मीरी वेश्या तथा लतीफ़ खान की बेटी थी। लतीफ़ खान मेरठ जनपद के कुटाना गांव में रहता था। लतीफ़ खान की मृत्यु के वाद बेगम समरू दिल्ली चली गयी जहां वाल्टर रीनहार्ड उसकी ओर आकर्षित हो गया और दोनों ने विवाह कर लिया।[14] पति की मृत्यु के पश्चात् बेगम समरू ने तत्कालीन राजनीति में पर्याप्त रुचि ली। 1802–03 में उसने ब्रिटिश सेनाओं के विरुद्ध भी कार्यवाही की थी।[15] किन्तु वह एक कूटनीतिज्ञ महिला थी। उसने 1804 ई० में अंग्रेजों से इस आशय की सन्धि कर ली कि अपने जीवन–काल में अंग्रेज उसकी जागीर में कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे। 1825 ई० में उसने भरतपुर के विरुद्ध कम्पनी की सेनाओं की सहायता की।[16] वह आधी शताब्दी तक मेरठ जनपद की राजनीति पर छायी रही। 1820 ई० में उसने सरधना में रोमन कैथोलिक चर्च का निर्माण कराया था।[17] 1836 ई० में बेगम समरू की मृत्यु हो गई थी और उसकी जागीर पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया था।[18]

4. राजनीतिक चेतना–1857 ई० का संग्राम भारतवर्ष के इतिहास में एक अत्यन्त रोचक एवं महत्त्वपूर्ण घटना है। भारतवासियों की राजनीतिक चेतना श्रृंखलाबद्ध कहानी इसी घटना के साथ आरम्भ हुई मानी जाती है । सन् 1857 ई० के स्वतंत्रता–संग्राम में मेरठ का योगदान न केवल इस जनपद का अपितु पूरे देश के इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है।

24 अप्रैल, 1857 ई० को मेरठ छावनी में स्थित तीसरी कैर्वेलरी के 85 सैनिकों ने परेड के मैदान पर चर्बी लगे कारतूसों[6] को छूने तक से इनकार कर दिया था, फलतः उन्हें कोर्टमार्शल करके 10 वर्ष की सजा सुनाई गई। इस घटना से मेरठ में स्थित सेनाओं में विद्रोह की आग फैलने लगी। 10 मई, 1857 ई० को एक बार फिर तीसरी कैवेलरी के सैनिकों ने क्रान्ति का झण्डा उठाया। उन्होंने अपने बन्दी साथियों को छुड़ा लिया तथा 11वी रेजिमेण्ट के कमाण्डर फिनिश को भी गोली मार दी। 11 मई, 1857 को सैनिकों तथा नागरिकों ने दिल्ली पहुंचकर लाल किले के द्वार पर एकत्रित होकर बहादुरशाह जफ़र से क्रान्ति का नेतृत्व करने की प्रार्थना की। कुछ समय बाद दिल्ली छावनी में स्थित भारतीय सैनिक भी इन क्रान्तिकारियों से आ मिले।

भारत के प्रथम स्वतंत्रता–संग्राम महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के बाद मेरठ अखिल भारतीय स्तर के राजनीतिक–सामाजिक कार्यकर्ताओं की गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र रहा है। 1877 ई० में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी यहां आये और इण्डियन एसोसियेशन की एक शाखा मेरठ में खोली।[20] 1878 ई० में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की नींव रखी। 1909 ई० में आल इण्डिया लीग की एक शाखा यहां खोली गई। सन् 1919 में रोलेट अधिनियम, जिसे देश में काले कानून' की संज्ञा दी गई जिसका आशय था 'न वकील, न दलील, न अपील' के विरुद्ध समस्त जनपदों के लोगों ने अपने रोष प्रकट किया। स्थान–स्थान पर सार्वजनिक प्रदर्शन किये गये तथा 6 अप्रैल, 1919 ई० को यहां के छात्रों ने आम हड़ताल की। 13 अप्रैल, को जलियांवाला बाग के नर–संहार की घटनाओं के बाद छात्र–हड़ताल ने और जोर पकड़ा तथा यह दो सप्ताह तक चली। 1920 ई० में गांधी ने इसी प्रदेश से सर्वप्रथम असहयोग की योजना प्रस्तुत की।[21] पुलिस यातनाओं को झेलते हुए लोगों ने विदेशी वस्त्रों के वहिष्कार, मद्यनिषेध एवं विदेशी वस्त्रों को बेचने वाली दुकानों पर धरना दिया। 1929 ई० में इस जनपद और समस्त भारत तथा ब्रिटिश साम्राज्य में चर्चा का विषय बन गया। मार्च, 1929 ई० में सारे भारत के नेताओं को गिरफ्तार किया गया तथा मेरठ लाया गया।[22] यहां लाकर इन सभी नेताओं पर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के आरोप में मुकदमा चलाया गया। यह मुकदमा 'मेरठ षड्यन्त्र केस'[23] के नाम से विख्यात है। इस केस में सारे संसार की मज़दूर पार्टियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया।[24] जनवरी, 1933 में जाकर यह मुकदमा समाप्त हुआ, जिसमें प्रमुख अभियुक्तों को लम्बी सजाएं दी गयीं।[25]

1928 ई० ने साइमन कमीशन के विरोध में कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने यहां काले झण्डों का प्रदर्शन किया। 1930–31 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने सारे देश में एक नये जीवन का संचार किया। सर्वत्र नमक कानूनों को तोड़ा गया। मेरठ में सहस्रों लोगों ने नमक खाकर सहर्ष जेल जाना स्वीकार किया।[26]

भारत छोड़ो आन्दोलन के मध्य मेरठ में अनेक जन–सभाएं एवं प्रदर्शन किये गये। मेरठ कालिज के छात्रों के एक जुलूस पर एक सहस्र पुलिस ने लाठियों की वर्षा की जिसमें अनेक छात्र घायल हुए तथा 21 को बन्दी बनाकर जेल भेज दिया गया। लगभग 221 स्त्री–पुरुष इस आन्दोलन में जेल गये। 12 अगस्त को पुलिस की गोली से मवाना में 3 व्यक्ति मारे गये तथा 24 गम्भीर रूप से घायल हुए। 18 अगस्त को सरधना तहसील के भंभौरी ग्राम में पुलिस ने गोली चलाई जिसमें चार व्यक्तियों की मृत्यु हो गई तथा अनेक बुरी तरह घायल हए। मेरठ के गांधी–आश्रम की सम्पत्ति जप्त कर ली गई और वहां सरकारी ताला डाल दिया गया। सैनिक लेखा–जोखा नियंत्रक के दफ्तर में एक बम फेंका गया। 1942 ई० की क्रान्ति में 248 लोग बन्दी बनाये गये, 245 को सजाएं दी गयीं तथा 1,67,432 रुपये सामूहिक जुर्माना के रूप में जनता से वसूले गये।[27]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 54वां अधिवेशन 23–24 नवम्बर, 1946 ई० को मेरठ में किया गया अधिवेशन के स्थान का नाम पण्डित प्यारेलाल जी की स्मृति में प्यारेलाल नगर रखा गया (उनकी मृत्यु 1942 ई० में हो गई थी)। आचार्य जे० बी० कृपलानी इस अधिवेशन के सभापति थे। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरु, बल्लभ भाई पटेल, अब्बदुल कलाम आजाद, रफी अहमद किदवई प्रभृति देश के मूर्धन्य नेताओं ने इस अधिवेशन में भाग लिया। इसमें एकता–नैतिकता–अहिंसा–सत्य के मार्ग पर चलने के लिये जोर दिया गया।

निष्कर्ष : परतन्त्र भारत की स्वतन्त्र पर्यन्त जो एक लम्बी यात्रा है, उसमें इस प्रदेश के लोगों ने गौरवपूर्ण भूमिका निभायी है। उत्थान के शिखरों को छुआ है तथा पारस्परिक फूट–विभाजन के गर्त में गिरे हैं। 15 अगस्त, 1947 ई० को भारत की स्वाधीनता की घोषणा की गयी जिसका स्वागत हर्षोल्लास के वातावरण में इस प्रदेश में किया गया। किन्तु स्वाधीनता के साथ देश का दो टुकड़ों (हिन्दुस्तान और पाकिस्तान) में विभाजन भी किया गया। विदाई की बेला में देश के विभिन्न भागों में जो साम्प्रदायिक दंगे भड़के, उससे यह प्रदेश भी अछूता न रहा। वस्तुतः भारत एक दोहरा क्रान्ति के मध्य होकर गुजर रहा था। एक ही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की क्रान्ति जिसने 150 वर्ष पुराने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अन्त किया तथा दूसरी क्रान्ति थी हिन्दु–मुस्लिम विद्रोह हजार वर्ष प्राचीन मुस्लिम विजय तथा उसके विरुद्ध हिन्दू प्रतिक्रिया का अन्त किया।[28]

इस प्रकार इतिहास के पन्नों में इस प्रदेश का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वस्तुतः इतिहास में मेरठ आज भी एक स्मरणीय नाम है, क्योंकि यह वह स्थान है जहां पर स्वतन्त्र, सर्वप्रभुता सम्पन्न भारत के गणतन्त्र की कल्पना की गयी और पहली बार उसकी घोषणा भी।[29]

संदर्भ–ग्रंथ

1. खडी बोली का लोक साहित्य, डॉ. सत्या गुप्ता, पृ. 16
2. द अरली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, विसेन्ट स्मिथ, च० सं०, पृ. 178
3. वही,
4. प्राचीन भारत, डॉ. राजबली पाण्डेय, द्वि०सं०, पृ. 316
5. दी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, इलियट एण्ड डाउसन, जिल्द–3, पृ. 184
6. वही, पृ. 238
7. हिस्ट्री ऑफ मिडीवल इण्डिया, ईश्वरी प्रसाद, पृ. 348
8. वही,
9. गजेटियर ऑफ इण्डिया, मेरठ, पृ. 37
10. वही, पृ. 38
11. द अकबरनामा, अबुलफजल, पृ. 322
12. गजेटियर ऑफ इण्डिया, मेरठ, पृ. 40
13. बेगम समरू, बनर्जी, बी., 12
14. वही,
15. गजेटियर ऑफ इण्डिया, मेरठ, 46
16. बेगम समरू, बनर्जी, बी., पृ. 144
17. गजेटियर ऑफ इण्डिया, मेरठ, पृ. 49
18. वही,
19. चरबी लगे कारतूसों के सम्बन्ध में निम्नांकित पंक्तियां बड़ी प्रसिद्ध हैं–न ईरान ने किया न शाह रूस ने, अंग्रेज को तबाह किया कारतूस ने।
20. ए नेशन इन मेकिंग, एस. एन. बनर्जी, पृ. 48
21. 1921 मुवमेण्ट रिमेसेन्सेस गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, पब्लिकंशन्स, 1971, पृ. 206
22. कांग्रेस का इतिहास, पट्टाभि सीतारमय्या, 1935, पृ. 373
23. मेरठ षड्यंत्र किससे सम्बन्धित है अभियुक्तों के नाम हैं–
1. एस. एस. डांगे, 2. किशोरीलाल घोष, 3. डी० आर० थेगड़ी, 4. एस० वी० घटे, 5. के० एन० जोगलेकर 6. एस० एच० झांव, 7. शौकत उस्मानी, 8. मुजफ्फर अहमद, 9. फिलिप इस्प्रटवरली, 10. बी० एफ. ब्रेडले, 11. एस० एच० मीराजकर, 12. पी० सी० जोशी, 13. ए. ए. भल्ले, 14. जी.आर. कैसले, 15. गोपाल बसाक, 16. जी० एम० अधिकारी, 17. एम० ए० मजीद, 18. आर. एस. निम्बकर, 19. विश्वनाथ मुकर्जी, 20. केदारनाथ सहगल, 21. राधारमन, 22. धनी के० गोस्वामी, 23. गौरीशंकर, 24. रामशक्ल हुमा, 25 विश्वनाथ बनर्जी, 26. गोपेन्द्र चक्रवर्ती, 27. सोहन सिंह जोशी, 28. एम० जी० देसाई, 29. अयोध्याप्रसाद, 30. लक्ष्मणराव कदम, 31. एच० एल० हचीसन।
24. इण्डिया टुडे–रजनी पामदत्त, पृ. 341
25. वही, पृ. 345
26. मेरठ गजेटियर, पृ. 58
27. 42 रिवेलियन–गोविन्द सहाय, पृ. 270
28. दि ग्रेट डिवाइड, एच० वी० हडसन, पृ. 268
29. हिस्ट्री ऑफ नेशनल कांग्रेस, पट्टाभि सीतारमय्या, भाग–2 पृ. 783

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 238-243

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

उच्चतर माध्यम स्तर पर अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

*मुहम्मद आसिफ अन्सारी** *डॉ. राजेन्द्र कुमार जायसवाल***

सारांश : संसार के सम्पूर्ण रचना में मानव, प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट संरचना है, फलतः सृष्टि के विविध सृजनात्मक क्रिया कलापों में मानव और मानवीय क्रियाओं की सार्वधिक सहभागिता हैं। मानव एक बुद्धिजीवी एवं कल्पनाशील प्राणी है, वह जन्म के साथ ही अपने नैसर्गिक गुणों के आधार पर अपने आस–पास के वातावरण के साथ परस्पर सामन्जस्य स्थापित करते हुए अपने मूल्यों को परिमार्जित करता हैं। अगर व्यापक दृष्टि से देखा जाये तो मानव जीवन के प्रत्येक अनुभव में शिक्षा का एक विशेष महत्व होता है, अर्थात् शिक्षा ही जीवन है, जीवन ही शिक्षा है। शिक्षा वैयाक्तिक व सामाजिक विकास का एक अतिशक्तिशाली माध्यम है। प्रभावी शिक्षा द्वारा छात्रों में ऐसे ज्ञान कौशलों तथा अभिवृत्तियों का समावेश किया जा सकता है। जो उसे एक दूसरे से पृथक करती है। उक्त तथ्यों के आधार पर हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि शिक्षा ही एक ऐसा शक्तिशाली माध्यम है जिसके द्वारा बौद्धिक कौशलों जैसे– अभिवृत्ति समायोजन, सृजनशीलता अधिगम शैलियों का विकास किया जा सकता है, किन्तु अधिगम कौशल बालक में तभी विकसित हो पाते है जब वे शारीरिक तथा मानसिक रूप से परिपक्व तथा सृजनशील हों। उपरोक्त तथ्यों तथा संस्थागत वातावरण का विद्यार्थियों के समायोजन स्तर का शैक्षिक स्तर पर अध्ययन करने के लिए शोधकर्ता ने अपने शोध पत्र में इस शोध समस्या का चयन किया।

महत्वपूर्ण वाक्य–सर्वोत्कृष्ट, सृजनात्मक, नैसर्गिक, परिमार्जित, सामन्जस्य, अभिवृत्ति।

प्रस्तावना :–किसी भी राष्ट्र की धमनियों में शिक्षा ही विचारों और बौद्धिकता के रूप में प्रवाहित होती है। शिक्षा की इस महत्व को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि बुनियादी शिक्षा पर गम्भीरता से बिना ध्यान दिये कोई भी व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र को शिक्षा के शिखर पर नहीं पहुँचाया जा सकता। किसी भी राष्ट्र के बालक एवं बालिकायें ही उस राष्ट्र का भविष्य एवं बुनियाद होते हैं। यदि बालकों को गुणवत्ता पूर्ण एवं राष्ट्र की संस्कृति के अनुरूप शिक्षा का अवसर नहीं उपलब्ध कराया जाता तो समाज में असमानता की भावना में वृद्धि होती है जिससे उस समाज व राष्ट्र में अस्थिरता को बल मिलने के साथ ही भय का वातावरण निर्मित होगा और भय का वातावरण किसी भी राष्ट्र की प्रगति में निश्चित रूप से बाधक होता है।

अतः शिक्षा बालक के अन्तर्ज्ञानात्मक व बौद्धिक निरूपण का स्रोत है। बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में से एक किशोरावस्था बालक के सर्वांगीणता का एक प्रमुख साधक माना गया है। क्योंकि जब बालक बाल्यावस्था से किशोरावस्था में अपने पग रखता है तब एक उसमें उत्तम अमूर्त चिन्तन की योग्यताओं के विकास में बालक की बुद्धि का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। सामान्यतया यह अवधारणा है कि बालक जितना ही अधिक बुद्धिमान होता है उसके समायोजन की अभिवृत्ति भी उतनी ही अधिक प्रबल होती है।

किशोरावस्था अंग्रेजी भाषा के Adoleseence शब्द का हिन्दी पर्याय है। Adoleseence शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा से हुई है जिसका शाब्दिक अभिप्राय ''परिपक्वता की ओर बढ़ना'' अर्थात जब बालक क्रमशः बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था की ओर अग्रसर होता है तो उसमें कई महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। जैसे शारीरिक, मानसिक, व बौद्धिक परिवर्तन, इन परिवर्तनों को ही किशोरावस्था माना गया है। वस्तुतः किशोरावस्था, को यौवनावस्था से परिपक्वता, बुद्धि व विकास या संक्रमणकालीन अवधि के रूप में भी देखा जाता है। युवावस्था की ओर अग्रसर इनके मन में जीवन के प्रति एक विशेष स्वप्न और आदर्श होते हैं।

* *शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री गणेश राय पी.जी. कॉलेज, डोभी, जौनपुर*

* *शोध निदेशक, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री गणेश राय पी.जी. कॉलेज, डोभी, जौनपुर*

सामान्यतः विकास की चारों अवस्थाओं में किशोरावस्था सबसे जटिल व महत्त्वपूर्ण अवस्था है यही कारण है कि fd"kksjkoLFkk dks ifjorZu dky (Transitional Period) भी कहते हैं। इस अवस्था के बालकों को न तो बालक कह सकते हैं और न ही प्रौढ़। क्योंकि किशोरावस्था में बालक के ऐसे बहुत से गुण शिथिल व अपरिपक्वता की अवस्था में होते हैं जिसके कारण इस अवस्था के बालक और बालिकाएं उचित दिशा निर्देश के अभाव में अपने पद से दिगभ्रमित हो जाते हैं तथा विद्यालयीय अधिगम प्रक्रियाओं के साथ समायोजन कर पाने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

जिसके कारण किशोर काल का अध्ययन गंभीरतापूर्वक से करना चाहिए क्योंकि इस अवस्था में बालक व बालिकाओं में कई महत्वपूर्ण विकास की प्रक्रियाएं प्रारम्भ होने लगती है। अतः यहीं इसी तथ्य पर आकर समस्या उभरती है कि समायोजन है क्या? किशोरावस्था के दौरान बालक से समायोजन का स्वरूप कैसा होता है?

समायोजन के क्षेत्र एवं प्रकार—सब प्रकार से समायोजित बालक वह होता है जो पहले तो अपने आप से ही संतुष्ट और समायोजित हो तथा दूसरे अपने चारों ओर फैले वातावरण या परिवेश से उसका सही ताल मेल हो इस दृष्टि से समायोजन के क्षेत्रों को बालक तथा उसके वातावरण में ही निहित माना जाना चाहिए। एक व्यक्ति की दुनियाँ जहाँ उसके शारिरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण पहलुओं के इर्द–गिर्द घूमती है वहां उसे अपने सामाजिक परिवेश तथा कामकाज के क्षेत्रों में भी समायोजित होने की आवश्यकता पड़ती है समायोजन सम्बन्धी उसकी इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए हम किसी भी बालक के समायोजन क्षेत्रों को तीन मुख्य भागों—व्यक्तिगत, सामाजिक तथा व्यवसायिक में बांटकर समझने का प्रयत्न कर सकते हैं।

1. व्यक्तिगत समायोजन—बालक अपने आप से कितना समायोजित है। इस बात का निर्णय उसके उस क्षेत्र के समायोजन स्तर से ही ज्ञात होता है। कोई बालक किस क्षेत्र में किस स्तर तक समायोजित है, वह इस बात पर निर्भर करता है कि उस क्षेत्र से सम्बन्धित बालक विशेष की आवश्यकता ये कितनी सीमा तक पूरा होती है। अथवा उनके पूरी होने की संभावना व आशा से ही वह किस सीमा तक संतुष्ट रहता है जब तक ये आवश्यकताएं पूरी होती है या इनकी पूर्ति की आशा उसे रहती है, बालक समायोजित रहता है, विपरीत अवस्था मे वह कुसमायोजन का शिकार हो जाता है।

शारीरिक विकास और स्वास्थ्य सम्बन्धी समायोजन—यह व्यक्तिगत समायोजन का एक प्रमुख पहलू हो सकता है हर आयु स्तर पर कितना शारीरिक हो, इसका एक निर्धारित मापदण्ड, लम्बाई, भार, तथा शरीर के अंगो का विकास अगर सामान्य स्तर को छूता रहे तो बालक शारीरिक रूप से अपने आप को समायोजित अनुभव करता है अपने रंग रूप शरीर की बनावट आदि से भी उसे संतुष्टि अनुभव करता रहे यह बात भी उसके स्वास्थ्य सम्बन्धी समायोजन के क्षेत्र मे आती है और इस प्रकार का समायोजन उसे अपने आप से संतुष्टि या समायोजित होने में पूरी मदद करता है।

संवेगात्मक समायोजन—बालक के व्यक्तिगत और व्यवहार में संवेगो का एक प्रमुख स्थान है। अपने आप से समायोजित होने के लिए उसे संवेगात्मक परिपक्वता का होना अति आवश्यक है। उचित समय पर उचित रूप से उचित संवेगों की अभिव्यक्ति बालक के समायोजन के लिए काफी आवश्यक है। जो लोग ऐसा नहीं कर पाते वे संवेगो की अभिव्यक्ति बालक के समायोजन के लिए काफी आवश्यक है। जो लोग ऐसा नहीं कर पाते वे संवेगात्मक रूप से अस्थिर तथा कुसमायोजित माने जाते हैं।

लैंगिक समायोजन—लैंगिक या यौन सम्बन्धी आवश्यकता हमारी आवश्यकताओं मे एक आवश्यकता है इस आवश्यकता की पूर्ति जब तक सामाजिक मान्यता प्राप्त तरीकों से ठीक प्रकार होती रहे, बालक समायोजित अनुभव करता है। इसकी पूर्ति मे बाधा या कोई असंतोष कुसमायोजन को जन्म देता है।

व्यक्तिगत आवश्यकताओं से संबन्धित समायोजन—हमारे व्यक्तिगत समायोजन की परिधि में ऐसा समायोजन भी शामिल होता है जिनका सम्बन्ध हमारी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति से होता है। इन आवश्यकताओं में शारीरिक आवश्यकताओं के रूप में भूख, प्यास, नींद, विश्राम आदि आवश्यकताएं आती है। सभी प्रकार की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हम शुरू से अपने प्रयास करते रहते हैं तथा जीवनपर्यन्त यही प्रयत्न चलते रहते हैं।

हमें अपने प्रयत्नों में कितनी सफलता मिलती है अथवा हम किस सीमा तक अपने इन प्रयत्नों और उनके परिणामों से संतुष्टि का अनुभव करते हैं उसी सीमा तक हम समायोजित रहते हैं।

सामाजिक समायोजन—किसी भी बालक को अपने आप से संतुष्ट तथा समायोजित होने की जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही अपने सामाजिक परिवेश से जुड़े हुए व्यक्तियों एवं परिस्थितियों के साथ संतुलित

ताल मेल बनाये रखकर समायोजित रहने की होती है। अपने परिवेश और उपलब्ध परिस्थितियों से स्वयं को असंतुष्ट अनुभव करने वाला व्यक्ति भलि भाँति समायोजित नहीं रह सकता परिवेश का यह दायरा स्वयं उसके घर परिवार से शुरू होकर विश्व बंधुत्व की सीमाओं को छूता नजर आता है। समायोजन से अभिप्राय घर–परिवार से समायोजन के साथ–मित्र और सम्बन्धियों से तथा पड़ोसियों एवं समुदाय के अन्य सदस्यों से समायोजन शामिल है।

व्यवसायिक समायोजन–भरण पोषण के लिए धनार्जन अति आवश्यक होता है। क्योंकि इसी में हम अपनी व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उचित साधन प्राप्त होते हैं।

हम सभी अपने प्रयत्नों तथा मिलन वाले अवसरों के फलस्वरूप तरह–तरह के व्यवसाय अपनाते हैं और अपने–अपने ढंग से काम करते हुए उनसे समायोजित होने का प्रयास करते हैं।

पूर्व शोध साहित्य का अवलोकनः–1. कु0 सुधा (1982) ने किशोरों के विभिन्न समाजमीतिय समूहों का समायोजन बुद्धि उपलब्धि, सामाजिक आर्थिक पद्धति का एक अध्ययन किया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि सभी चरों का चारों समाजमीतिय समूहों में सार्थक अन्तर है।

2. लेकी पी0 (1996) ने ''समायोजन तथा व्यक्तित्व के सिद्धांत'' विषय पर शोध में पाया कि समायोजित व्यक्तियों उत्कृष्ट होता है, जबकि असमायोजित व्यक्तियों का व्यक्तित्व अन्तर्मुखी होता है।

शोध का औचित्य–शोधकर्ता द्वारा सम्बन्धित साहित्य का पूर्वावलोकन के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि पूर्व में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के समायोजन स्तर से संदर्भित कई महत्वपूर्ण शोध अध्ययन कार्य किये जा चुके हैं।

परन्तु भिन्नता के आधार पर सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों में समायोजन स्तर से शोध कार्यों का विशेषतः जौनपुर जनपद के संदर्भ में काफी अभाव पाया गया। अतः शोधकर्ता इस क्षेत्र में अपनी सहभागिता प्रस्तुत करना चाहता है।

समस्या कथन–''उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन''।

तकनीकी शब्दों की व्याख्या–1. उच्च माध्यमिक स्तर से तात्पर्य है कक्षा 11 व 12 में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी।

2. **सरकारी विद्यालय–**ऐसे उच्चतर माध्यमिक विद्यालय जिनके संचालन और देख–रेख की सम्पूर्ण जिम्मेदारी सरकार की होती है।

3. **गैर सरकारी विद्यालय–**ऐसे उच्चतर माध्यमिक विद्यालय जिनके संचालन और देख–रेख की सम्पूर्ण जिम्मेदारी किसी व्यक्तिगत संस्था या व्यक्ति विशेष के द्वारा होती है।

शोध प्रश्न–1. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में समायोजन का स्तर क्या है?

2. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की समायोजन स्तर में क्या कोई भिन्नता होती है?

3. उच्च माध्यमिक सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मध्य सम्बन्ध का क्या स्तर है?

शोध उद्देश्य–1. उच्च माध्यमिक स्तर पर सरकारी व गैर सरकारी मान्यता प्राप्त विद्यालयों के अध्ययन विद्यार्थियों के समायोजन का स्तर ज्ञात करना।

2. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों के कला व विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

3. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यायों के कला व विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के समायोजन स्तर का सह–सम्बन्ध ज्ञात करना।

शोध परिकल्पना–प्रस्तुत शोध अध्ययन शून्य परिकल्पना पर आधारित होगा।

1. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी व गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययन विद्यार्थियों के समायोजन में सार्थक अन्तर नहीं है।

2. उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत् बालक एवं बालिकाओं के समायोजन में सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन की परिसीमाएँ–शोध अध्ययन विषय के अन्तर्गत धन एवं शोध प्रतिदर्श के द्वारा अध्ययन हेतु उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए यह शोध निम्न सीमाओं के अन्तर्गत सम्पादित किया–

1. यह अध्ययन उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों तक सीमित है।

2. इस अध्ययन में उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला व विज्ञान वर्ग के 100 विद्यार्थियों का चयन किया गया जिसमें 50 कला वर्ग में तथा 50 विज्ञान वर्ग के विद्यार्थी शामिल हैं।

3. शोध अध्ययन हेतु जौनपुर जनपद के शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न इण्टरमीडिएट कालेज जिनमें शासकीय व अशासकीय दोनों शामिल है, तक सीमित है।

शोध विधि–प्रस्तावित शोध अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श–प्रस्तावित शोध अध्ययन में यादृच्छिक न्यायदर्श चयन विधि का प्रयोग करके परिभाषित जनसंख्या में छात्र–छात्राओं को न्यायदर्श हेतु चुना गया।

शोध में प्रयुक्त उपकरण–प्रस्तुत शोध कार्य में डॉ0 एच0एस0 अस्थाना द्वारा निर्मित समायोजन मापनी का प्रयोग किया।

सांख्यिकीय विश्लेषण–प्रस्तावित शोध अध्ययन में संकलित आंकड़ों के विश्लेषण एवं आख्या के लिए आंकड़ों के प्रकृति के अनुसार उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया। जिनके आधार पर परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं परिणामों की व्याख्या–प्रस्तुत अध्ययन में परिकल्पनाओं को ध्यान में रखते हुए मूल प्राप्तांकों के आधार पर सारणी तैयार की गयी, तदोपरान्त आंकड़ों का विश्लेषण एवं परिणामों की व्याख्या परिकल्पनाओं के क्रम में किया गया–

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कला व विज्ञान वर्ग के अध्ययनरत् विद्यार्थियों का समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् कला व विज्ञान वर्ग के लिंग (बालक/बालिका) के समायोजन में कोई अन्तर नहीं है।

सर्वप्रथम शोधकर्ता ने जौनपुर जनपद के समस्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में से न्यादर्श में सम्मिलित विद्यालयों से चयनित 100 विद्याार्थियों (50 बालक/50 बालिका) पर ''समायोजन सूची'' प्रशासित किया। इसके उपरान्त प्रयुक्त उपकरणों पर प्राप्त आंकड़ों के आधार पर आवश्यकतानुसार आवृत्ति वितरण की प्रसामान्यता की जाँच की गयी, प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु उपयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियों (मध्यमान, मानक विचलन, क्रान्तिक अनुपात) का प्रयोग प्राप्तांकों की गणना में की गयी।

सारणी संख्या–1

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन–

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक का स्तर
विज्ञान	50	169.04	14.25	3.34	1.20	0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है।
कला	50	165	18.85			

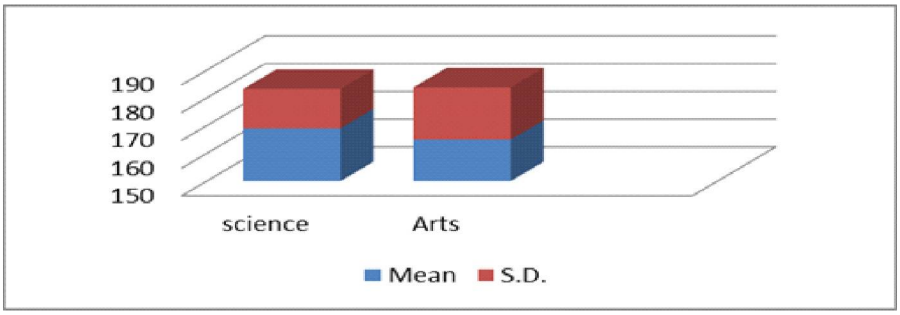

सारणी संख्या–01 से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों का समायोजन स्तर पर मध्यमान 169.04 प्रमाणित विचलन 14.25 ज्ञात हुआ, जबकि कला वर्ग के विद्यार्थियों का मध्यमान 165 व प्रमाणित विचलन 18.85 है। दोनों समूहों के मध्यमानों के मध्य क्रान्तिक अनुपात सार्थकता के मान 0.05 पर सार्थक निर्मित शून्य परिकल्पना है। ''उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् कला व विज्ञान वर्ग से समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' को स्वीकृत किया जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन से पूर्व की अवधारणाओं की उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की समायोजन स्तर में अन्तर होता है इसकी दृष्टि शोध अध्ययन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर नहीं हो सकी, शायद इसका कारण यह हो सकता है कि कला व विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत् विद्यार्थियों का एक ही आयु वर्ग होने के कारण अभिवृत्तियाँ व शिक्षण कौशल में समानता होने के साथ–साथ सामाजिक परिस्थितियाँ भी एक समान हैं।

द्वितीय परिकल्पना की जाँच हेतु उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के अध्ययनरत् विद्यार्थियों का लिंग (बालक/बालिका) के आधार पर उनमें समायोजन सम्बन्धी कारकों का मूल्यांकन किया गया।

न्यायदर्श हेतु चयनित 100 विद्यार्थियों में से 50 कला वर्ग (25 बालक/25 बालिका) तथा 50 विज्ञान वर्ग (25 बालक/बालिका) की संख्या थी। दोनों समूहों के समायोजन सूची सम्बन्धी मापने पर प्राप्त प्राप्तांकों का सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया, जिसका मान सारणी संख्या 2 व 3 में प्रदर्शित है।

तालिका संख्या–02

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला व विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत् बालिकाओं के समायोजन सार का तुलनात्मक अध्ययन।

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात
विज्ञान	25	169.04	16.02	0.77	6.23
कला	25	163.40	13.58		

0.01 स्तर पर सार्थक है।

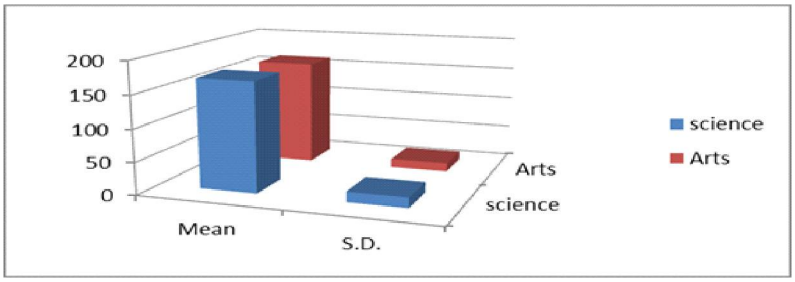

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला व विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत् बालिकाओं के अध्ययन संदर्भित समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन समायोजन स्तर सूची के अंकों के आधार पर मध्यमान का मान क्रमशः 163.40, 168. 20 तथा मानक विचलन 13.58, 16.02 है। दोनों समूहों के मध्यमानों के आधार पर सांख्यिकीय गणना करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 6.23 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के स्तर 0.01 स्तर पर सार्थक है। अतः शोध अध्ययन हेतु पूर्व में निर्मित शून्य परिकल्पना स्वीकार की जाती है। अर्थात उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् बालिकाओं में कलात्मक तथा समायोजन से सम्बन्धित स्तर एक समान ही पाया गया।

तालिका संख्या–03

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला व विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत् बालकों के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन।

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	अन्तर की प्रमाणिक त्रुटि	क्रांतिक अनुपात
विज्ञान	25	168.50	13.44	1.20	2.00
कला	25	166.16	22.96		

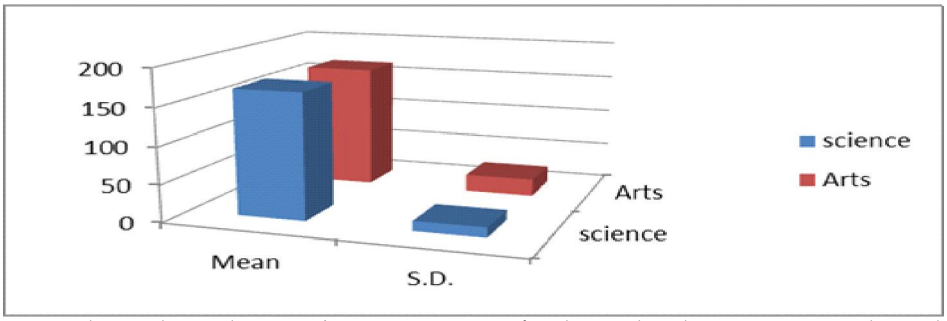

गणना तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है परिकल्पना की जाँच हेतु किये गये सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर दोनों समूहों के मध्यमानों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 2.00 ज्ञात हुआ जो कि सार्थकता के स्तर 0.05 पर सार्थक है। अतः शोध अध्ययन हेतु निर्मित परिकलपना ''कला व विज्ञान के विद्यार्थियों के समायोजन के समायोजन स्तर पर कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं।'' अस्वीकृत की जाती है। अर्थात दोनों समूहों के विद्यार्थियों के समायोजन स्तर में अन्त प्रदर्शित हो रहा है। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि कला वर्ग विद्यार्थियों की अपेक्षा विज्ञान वर्ग के बालकों में सृजनात्मक किया पद्धति व आदत सम्बन्धी क्रियाएँ अधिक प्रबल हो।

उपसंहार–प्रस्तुत शोध अध्ययन उच्चत्तर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के समायोजन से सम्बन्धित होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। चूँकि इस स्तर के विद्यार्थी किशोरावस्था में होने के कारण भविष्य को लेकर अत्यन्त सजग रहते है। तथा उनके मन एवं मस्तिष्क में उनको चिन्ताएँ, दिवास्वप्न व संवेगात्मक अस्थिरताओं से ग्रस्त होते हैं और उनके एक अनुचित कदम उन्हें अपने शैक्षिक उद्देश्यों से दूर कर सकता है। अतः इस शोध अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यार्थी की सामाजिक परिपक्वता तथा समायोजन का उसकी शैक्षिक निस्पति से बड़ा अटूट सम्बन्ध होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गिब्सन, टी. (1976), साइकोलाजी फार क्लास रूम, न्यूजर्सी प्रिंटर्स हाल, पृ. 207
2. कपिल, एच.के., अनुसंधान विधियाँ भार्गव बुक हाउस, आगरा।
3. पाठक, पी.डी., शिक्षा मनोविज्ञान, अमिताभ प्रकाशन, 22 भवानी नगर नौचण्डी।
4. पाण्डेय, के. पी., शिक्षा मनोविज्ञान, अमिताभ प्रकाशन, 22 भवानी नगर नौचण्डी ग्राउण्ड, मेरठ।
5. भटनागर, सुरेश, शिक्षा मनोविज्ञान, लायल बुक डिपो, मेरठ।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Philosophy : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 244-258

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

आचार्य बल्लभ का ब्रह्म, जगत एवं जीव विचार

*डॉ. दल सिंगार सिंह**

ब्रह्म सूत्र की व्याख्या–वेदान्त के अधिकांश सम्प्रदाय वेदों के अन्तिम भाग उपनिषदों के मूलपाठ में सन्निहित उपदेश के चरम अभिप्राय के सम्बन्ध में पृच्छा (प्रश्न अर्थात् Inquiry) पर आधारित हैं। मीमांसा शास्त्र इस मान्यता के आधार पर वैदिक पाठों के स्वरूप की पृच्छा में निरत रहता है। उसके अनुसार सभी वैदिक पाठों की व्याख्या इस रूप में की जानी चाहिए कि वे लोगों को कुछ प्रकार के कार्यों को करने या अन्य प्रकार के कार्यों को न करने का व्यादेश देते हैं। मीमांसा की यह भी मान्यता है कि उक्त व्यादेशों का आज्ञापालन 'धर्म' को उत्पन्न करता है और और उनकी अवहेलना या अवज्ञा 'अधर्म' को उत्पन्न करती है। वेदों का स्वाध्याय भी इस व्यादेश की आज्ञानुसार किया जाना चाहिए कि वेदों का अध्ययन करना आवश्यक है, अथवा गुरु के द्वारा वेदों का उपदेश दिया जाना चाहिए अथवा हमें उपनयन संस्कार में दीक्षित होने के लिए एक ऐसे गुरु को स्वीकार करना चाहिए जो हमें विस्तारपूर्वक वेदों का उपदेश देगा। मीमांसा और वेदान्त के सभी व्याख्याकार इस बात पर सहमत हैं कि वेदों के अध्ययन में विद्यार्थी द्वारा अर्थ के बोध का समावेश होता है। यद्यपि व्यादेश के यथा तथ्य स्वरूप के सम्बन्ध में और जिस यथावत ढंग से उक्त आशय कथित होता है, उसके सम्बन्ध में मतभेद है। आचार्य बल्लभ का ब्रह्मसूत्र पर भाष्य जिसमें यह निरूपित है कि स्वयं उपनिषद यह कहते हैं कि हम उपनिषदों के सम्यक् अर्थ का बोध तपस एवं परमात्मा के प्रसाद के द्वारा ही कर सकते हैं।[1]

बल्लभ का कथन है कि चूँकि विविध प्रकार के उपदेशों को प्रस्तुत करने वाले विविध प्रकार के 'शास्त्र' होते हैं, और चूँकि वैदिक पाठ स्वयं इतने जटिल हैं कि उनके सम्यक् बल को समझाना बहुत सरल नहीं है, इसलिए जब तक कोई ऐसा 'शास्त्र' नहीं हो जो स्वयं इन कठिनाइयों का विवेचन करे और पाठगत तुलनाओं तथा विरोधों के द्वारा उनको सुलझाने का प्रयास करें, तब तक एक साधारण व्यक्ति को उसके समुचित अर्थ के सम्बन्ध में बैध संशय हो सकता है, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि एक ऐसे विवेचन की एक वास्तविक आवश्यकता है, जैसा कि स्वयं व्यास जी द्वारा 'ब्रह्म सूत्र' या वेदान्त सूत्र' में किया गया था।[2]

आचार्य रामानुज मानते हैं कि 'ब्रह्मसूत्र' 'मीमांसा सूत्र' का अनुवर्ती है। यद्यपि दोनों कृतियाँ विभिन्न विषयों का निरूपण करती हैं, फिर भी उनमें उद्देश्य की अविच्छिन्ता है। अतः ब्रह्मसूत्र के अध्ययन के पहले मीमांसा सूत्र का अध्ययन किया जाना चाहिए। भास्कर के मत से मीमांसा सूत्र का अनुप्रयोग सार्वभौम है, सभी द्विजों को अपने दैनिक कर्तव्यों के लिए 'मीमांसा' और 'धर्म' के स्वरूप का अध्ययन करना चाहिए। ब्रह्मज्ञान केवल कुछ व्यक्तियों के लिए होता है। अतः ब्रह्मन् के स्वरूप का विवेचन केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए अभिप्रेत हो सकता है जो अपने जीवन के अन्तिम चतुर्थ आश्रम में मोक्ष की खोज करते हैं। जो व्यक्ति मोक्ष का अन्वेषण करते हैं, उन्हें भी 'धर्म' के दैनिक कार्यों को करना चाहिए। उस 'धर्म' का स्वरूप केवल 'मीमांसा' के अध्ययन से ज्ञात किया जा सकता है।

कुछ विद्वानों का कथन है कि ब्रह्मन् केवल उपनिषदों द्वारा निर्धारित दीर्घकालीन ध्यान की प्रक्रियारूपी विधि से ज्ञात किया जा सकता है। उस ध्यान का ज्ञान केवल यज्ञों के समुचित स्वरूप के ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। 'स्मृतियों में भी यह कहा गया है कि यज्ञों के द्वारा ही ब्रह्मन् के पवित्र तन का निर्माण होता है। (''महायज्ञेश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः'')।[3] अतः जब अड़तालीस 'संस्कारों' का पालन कर लिया जाता है, तब जाकर एक व्यक्ति ब्रह्मन् के स्वरूप के अध्ययन या ध्यान करने के योग्य बनता है। 'स्मृतियों' में यह भी कहा गया है कि केवल तीन ऋणों–(1) अध्ययन, (2) विवाह और (3) यज्ञों का अनुष्ठान–को चुनाने के पश्चात् ही एक व्यक्ति मोक्ष के लिए ब्रह्मन् पर अपने मनस् को केन्द्रित करने का अधिकारी बनता है। अधिकांश लोगों के अनुसार यज्ञ सम्बन्धी कर्तव्य ब्रह्म ज्ञान के लिए उपयोगी होते हैं। अतः यह माना जा सकता है कि ब्रह्म–जिज्ञसा–धर्मजिज्ञासा के बाद ही आनी चाहिए।[4]

लेकिन यदि यह तथा ब्रह्मन् के ध्यान के संयुक्त अनुपालन को स्वीकार कर भी लें तो, यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि ब्रह्म जिज्ञासा–धर्म जिज्ञासा के बाद आनी चाहिए। उसका अर्थ केवल यही हो सकता है कि ब्रह्मज्ञान

* *अध्यक्ष दर्शनशास्त्र विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)*

का स्वरूप 'धर्म' के उस स्वरूप से सम्बन्धित है माना जा सकता है जिसे समुचित रूप में 'मीमांसा शास्त्र' से ज्ञात किया जा सकता है। ऐसी मान्यता के अनुसार आत्मन् के स्वरूप का ज्ञान 'ब्रह्म–सूत्र' के अध्ययन से प्राप्त किया जाना चाहिए, लेकिन चूँकि आत्मन का ज्ञान यज्ञ सम्बन्धी कर्मों के अनुपालन के लिए भी अनिवार्य होता है, अतः यह तर्क किया जा सकता है कि 'धर्म' के स्वरूप की जिज्ञासा के पहले 'ब्रह्मसूत्र' से प्राप्त आत्मस्वरूप की जिज्ञासा आनी चाहिए।[5] न यह कहा जा सकता है कि जिन श्रुति पाठों द्वारा एक व्यक्ति से आत्म–संयमी बनने की अपेक्षा की जाती है (शान्तो, दान्तो आदि), उनके आधार पर यह तर्क किया जा सकता है कि धर्म के स्वरूप की जिज्ञासा ब्रह्मन् के स्वरूप की जिज्ञासा से पहले आनी चाहिए, आत्म–संयम की आवश्यकता का अनिवार्यतः यह अर्थ नहीं होता है–कि 'धर्म' के स्वरूप की जिज्ञासा को अग्रता दी जानी चाहिए क्योंकि एक व्यक्ति 'मीमांसा' का अध्ययन किये बिना भी आत्मसंयमी बन सकता है।

न यह कहा जा सकता है कि, जैसा आचार्य संकर कहते हैं कि ब्रह्म जिज्ञासा से पहले इहलौकिक एवं पारलौकिक सुखों के प्रति वैराग्य, चित्त–संयम, आत्म–संयम आदि उत्पन्न होने चाहिए। इस विषय पर भास्कर बल्लभ के मत के विरोध ा में तर्क करते हैं, और उनकी अस्वीकृति का कारण यह है कि उक्त गुणों की उपलब्धि अत्यधिक विरल ही होती है, दुर्वासा जैसे महर्षि एवं अन्य लोग भी उनको प्राप्त करने में असफल रहे। आत्मज्ञान के बिना भी एक व्यक्ति, दुःखों के कारण, विषयों के प्रति विरक्त हो सकता है तथा एक व्यक्ति सांसारिक उद्देश्यों से भी, चित्तसंयम एवं आत्म–संयम का, अभ्यास कर सकता है। इसके अलावा उक्त गुणों की प्राप्ति तथा ब्रह्म जिज्ञासा में कोई तार्किक सम्बन्ध नहीं है। न यह तर्क किया जा सकता है कि यदि ब्रह्म जिज्ञासा से पहले मीमांसा जिज्ञासा आती है तो, हम उक्त समस्त गुणों को प्राप्त कर सकते हैं। इसके अलावा, ब्रह्मन् के स्वरूप की जिज्ञासा केवल ज्ञान के महत्व में विश्वास के द्वारा ही वे उत्पन्न हो सकती हैं तथा महत्त्व के अवबोध के लिए ब्रह्म जिज्ञासा अनिवार्य है–इस प्रकार चक्रक अथवा चक्रम न्याय हो जाता है। यदि यह मान लें कि, जब वेदान्त पाठों का ज्ञान वेदोपदेश के श्रवण द्वारा समुचित रूप से अर्जित कर लिया जाता है तब एक व्यक्ति ब्रह्म जिज्ञासा की तरफ प्रेरित हो सकता है– तो यह भी आपत्तिजनक है। क्योंकि यदि वेदान्त पाठों के अर्थ को उचित रूप से ग्रहण कर लिया जाता है तो ब्रह्मन् के स्वरूप की जिज्ञासा को आगे कोई आवष्यकता नहीं है। यदि यह मान लें कि ब्रह्म ज्ञान केवल 'तत्त्वमसि' या त्वं सत्यं असि'–जैसे पाठों के श्रुति प्रमाण के द्वारा ही उत्पन्न हो सकता है तो,–यह भी आपत्तिजनक है। क्योंकि श्रुति प्रमाण के द्वारा ब्रह्मन् के स्वरूप की कोई अपरोक्षानुभूति एक ऐसे अज्ञानी व्यक्ति को नहीं हो सकती जो उसकी व्याख्या इस रूप में कर सकता है कि आत्मन् एवं शरीर में तादात्म्य होता है। यदि श्रुति–पाठों के द्वारा ब्रह्मन् की अपरोक्षानुभूति संभव है तो, मनन एवं निदिध्यासन के कर्तव्य का व्यादेश अनावश्यक है। इसलिए यह मानना गलत है कि ब्रह्म–जिज्ञासा से पहले 'धर्म–विचार' किया जाना चाहिए अथवा आचार्य शंकर द्वारा उल्लिखित अत्यधि ाक विरल गुणों की प्राप्ति की जानी चाहिए। फिर शास्त्रों में यह कहा गया है कि जिन व्यक्तियों ने वेदान्त के यथार्थ अर्थ की अनुभूति कर ली है, उन्हें संसार को त्याग देना चाहिए, अतः वैराग्य वेदान्त–पाठों के सम्यक् अवबोध के बाद होना चाहिए, पहले नहीं। फिर, ब्रह्म जिज्ञासा के पहले व्यक्ति यह नहीं जान सकता कि ब्रह्मन् उपलब्धि का चरम लक्ष्य है, पश्चादुक्त के ज्ञान के बिना व्यक्ति मन की अन्य उपलब्धियों की इच्छा नहीं करेगा और इस प्रकार ब्रह्मन् के सम्बन्ध ा में विवेचन में आवृत्त होगा।

पुनः, यदि कांक्षित गुणों वाला व्यक्ति वेदान्त–पाठों का श्रवण करता है, तो वह तत्काल मोक्ष प्राप्त कर लेगा और उसे उपदेश देने वाला कोई भी शेष नहीं रहेगा।

ब्रह्म–जिज्ञासा की कोई शर्त नहीं हो सकती। द्विज–जाति में से कोई भी उसका अधिकारी है। मीमांसक कहते हैं कि ब्रह्म–ज्ञान पर बल सम्पूर्ण वेदान्त–पाठों की व्याख्या ऐसे व्यादेशों के रूप में की जानी चाहिए जिनके अनुपालन से 'धर्म– की उत्पत्ति होती है। लेकिन यह बात गलत है। यद्यति किसी भी प्रकार की 'उपासना'–'धर्म' को उत्पन्न कर सकती है, फिर भी ब्रह्मन स्वयं धर्म के स्वरूप का नहीं होता है। सर्व 'धर्म' क्रिया के स्वरूप के होते हैं (''धर्मास्य च क्रियारूपत्वात्''), लेकिन ब्रह्मन् उत्पन्न नहीं किया जा सकता। अतः वह क्रिया–रूप नहीं होता है। ब्रह्मन् पर ध्यान करने के आभासी व्यादेश का अभिप्राय ब्रह्म–ज्ञान की महत्ता को बताना है, उक्त ध्यान–ज्ञान से सम्बन्धित मानसिक प्रक्रियाएँ होते हैं और किसी प्रकार की क्रियाएँ नहीं होते। यह ब्रह्म–ज्ञान अपने कर्तव्यों को समुचित रूप से करने में भी सहायक होता है। इसी कारण से जनक जैसे लोगों ने उसे प्राप्त किया और वे अपने कर्तव्यों को सुचारू रूप से करने में समर्थ हुए हैं।

यह मानना ठीक नहीं है कि वे व्यक्ति जिन्हें ऐसा मिथ्या प्रत्यय होता है कि आत्मन् शरीर है–कर्म करने के अयोग्य होते हैं, क्योंकि गीता कहती है कि–सच्चा तत्व ज्ञानी यह जानता है कि वह कर्म नहीं करता और फिर भी सदा 'कर्म' से सम्बन्धित रहता है। वह अपने सभी कर्मों को ब्रह्मन् को समर्पित कर देता है और किसी भी आयक्ति से रहित होकर वह कर्म करता है, जैसे कि एक कमल–पत्र जल से कदापि गीला नहीं होता। इसलिए निष्कर्ष यह निकलता है कि वहीं जिसे ब्रह्मन् ज्ञात है–अपने कर्म से कांक्षित फल उत्पन्न कर सकता है।

अतः जो 'धर्म' के स्वरूप के विवेचन में निरंत रहते हैं उनको ब्रह्मन् के स्वरूप का भी विवेचन करना चाहिए। जो मनुष्य ब्रह्मन् एवं कर्म को जातना है, उसमें अपने 'कर्म' के फलों की कोई इच्छा शेष नहीं रहती, क्योंकि उसने अपने सभी कर्म 'ब्रह्मन्' को समर्पित कर दिये हैं। इसलिए यह कहना ठीक नहीं है कि केवल वे व्यक्ति ही 'कर्म' को करने के अधिकारी हैं जो कर्म–फलों की इच्छा रखते हैं। कर्म का चरम और अत्यधिक अभीसिप्त उद्देश्य उसके फलों का समर्पण है।[6] बल्लभ का अभिप्राय यह है कि 'पूर्व–मीमांसा' और 'उत्तर–मीमांसा' अथवा (ब्रह्मसूत्र) दोनों ब्रह्मन् के स्वरूप को प्रतिपादित करने वाले दो भिन्न प्रकार मात्र हैं। दोनों मिलकर एक ही शास्त्र का निर्माण करते हैं। यह एक प्रकार से शंकर के अलावा सभी वेदान्त के टीकाकारों का मत है, यद्यपि उनकी उपागम–विधि में कुछ भिन्नता अवश्य है।[7] इस प्रकार रामानुज के अनुसार दोनों 'मीमांसाओं' से एक ही शास्त्र निर्मित होता है और यज्ञों अनुष्ठान ब्रह्मन् के निरन्तर स्मरण के साथ–साथ किया जा सकता है जो उनके अनुसार ब्रह्मन् की भक्ति, उपासना और अपरोक्षानूभूति में निहित होता है। भास्कर के अनुसार यद्यपि पूर्वमीमांसा का विषय उत्तरमीमांसा से भिन्न होता है, फिर भी उनका लक्ष्य एक ही होता है और वे एक ही शास्त्र का निर्माण करते हैं, और दोनों का ही, उद्देश्य ब्रह्मन् के स्वरूप को अनुभूतिगम्य करना है। भिक्षु के अनुसार ब्रह्मसूत्र का उद्देश्य उन वेदान्त पाठों के आभासी विरोधग्रस्त भागों का सामन्जस्य करना है जिन पर 'पूर्वमीमांसा' ने विचार नहीं किया है। ब्रह्मसूत्र का वही उद्देश्य है जो पूर्वमीमांसा का है, क्योंकि ब्रह्मन् के स्वरूप के सम्बन्ध में जिज्ञासा इस व्यादेश के कारण है कि ब्रह्मन् को ज्ञान करना चाहिए, और उसके फलस्वरूप चरम 'धर्म' की उत्पत्ति होती है। उत्तरमीमांसा पूर्वमीमांसा की पूरक हे। मध्य के अनुसार वे व्यक्ति ही ब्रह्मजिज्ञासा के अधिकारी है जिनमें भक्ति होती है।

ब्रह्मसूत्र या वेदान्त–सूत्र के प्रथम चार सूत्र अर्थत् (उसके) प्रथम अध्याय के, पाद प्रथम के, द्वितीय तथा तृतीय सूत्र क्रमशः ''जन्माद्यस्य यतः'' और ''शारसयोनित्वात्'' हैं। आचार्य बल्लभ इन दोनों सूत्रों को संयुक्त कर लेते हैं और उनका ''जन्माद्यस्यतः', शास्त्रयोनित्वात्'' के रूप में पठन करते हैं। टीकाकार कहते है, कि यही उचित क्रम है क्योंकि एर्व 'अधिकरण', आपत्तियों, निष्कर्षों एवं हेतुओं को प्रकट करते हैं। यदि तृतीय सूत्र 'शास्त्रयोनित्वात्' को द्वितीय सूत्र 'जन्माद्यास्य यतः' में समाविष्ट करके एक 'अधिकरण' नहीं बनाया जाएगा तो हेतुओं का लोप हो जाएगा। ब्रह्मन् जगत की अभिव्यक्ति तथा लोप का कारण है, और यह केवल शास्त्रों की साक्षी से ही ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार ब्रह्मन् चरम तथा अन्तिम कर्त्ता है लेकिन, यद्यपि उत्पत्ति, स्थिति, अव्यवस्था एवं विनाश सभी ब्रह्मन् के कर्तव्य से सम्भव होते हैं, फिर भी वे 'उसके' गुणों के रूप में' उससे सम्बन्धित प्रकार मात्र हैं। दोनों मिलकर एक ही शास्त्र का निर्माण करते हैं। यह एक प्रकार से शंकर के अलावा सभी वेदान्त के टीकाकारों का मत है, यद्यपि उनकी उपागम–विधि में कुछ भिन्नता अवश्य है।[8] इस प्रकार रामानुज के अनुसार दोनों 'मीमांसाओं' से एक ही शास्त्र निर्मित होता है और यज्ञों का अनुष्ठान ब्रह्मन् के निरंतर स्मरण के साथ–साथ किया जा सकता है जो उनके अनुसार ब्रह्मन् की भक्ति, उपासना और अपरोक्षानुभूति में निहित होता है। भास्कर के अनुसार यद्यपि पूर्वमीमांसा का विषय उत्तरमीमांसा से भिन्न होता है, फिर भी उनका लक्ष्य एक ही होता है और वे एक ही शास्त्र का निर्माण करते हैं, और दोनों का ही उद्देश्य ब्रह्मन् के स्वरूप को अनुभूतिगम्य करना है। भिक्षु के अनुसार 'ब्रह्मसूत्र' का उद्देश्य उन वेदान्त पाठों के आभासी विरोधग्रस्त भागों का सामन्जस्य करना है जिन पर 'पूर्वमीमांसा' ने विचार नहीं किया है। ब्रह्मसूत्र का वही उद्देश्य है जो पूर्वमीमांसा का है, क्योंकि ब्रह्मन् को ज्ञात करना चाहिए और उसके फलस्वरूप चरम 'धर्म' की उत्पत्ति होती है। उत्तरमीमांसा पूर्वमीमांसा की पूरक है। मध्य के अनुसार वे व्यत्ति ही ब्रह्मजिज्ञासा के अधिकारी है जिनमें भक्ति होती है।

ब्रह्मसूत्र या वेदान्त–सूत्र के प्रथम चार सूत्र अर्थात् (उसके) प्रथम अध्याय के, पाद प्रथम के, द्वितीय तथा तृतीय सूत्र क्रमशः–''जन्माद्यस्य यतः'', ''शास्त्रयोनित्वात्'' हैं। आचार्य बल्लभ इन दोनों सूत्रों को संयुक्त कर लेते हैं और उनका ''जन्माद्यस्य यतः, शास्त्रोनित्वात्'' के रूप में पठन करते हैं। टीकाकार कहते हैं कि यही उचित क्रम है क्योंकि सर्व 'अधिकरण', आपत्तियों, निष्कर्षों एवं हेतुओं को प्रकट करते हैं। यदि तृतीय सूत्र 'शास्त्रयोनित्वात्', को द्वितीय सूत्र 'जन्माद्यस्य यतः' में समाविष्ट करके एक 'अधिकरण' नहीं बनाया जाएगा तो हेतुओं का लोप हो जाएगा। ब्रह्मन् जगत की अभिव्यक्ति तथा लोप का कारण है, और यह केवल शास्त्रों की साक्षी से ही ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार ब्रह्मन् चरम तथा अन्तिम कर्त्ता है लेकिन, यद्यपि उत्पत्ति, स्थिति, अव्यवस्था एवं विनाश सभी ब्रह्मन् के कर्तव्य से सम्भव होते हैं, फिर भी वे 'उसके' गुणों के रूप में' उससे सम्बन्धित उपनिषदों का महत्त्व उत्कृष्ट होना चाहिए।

यह हम जानते हैं कि रामानुज ने जगत की उत्पत्ति से सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान ईश्वर के अस्तित्व को अनुमित करने के प्रत्यय का खण्डन किया और इस सिद्धान्त की स्थापना की कि ईश्वर, प्रत्यक्ष अनुमान– आदि प्रमाणों के द्वारा ज्ञात नहीं किया जा सकता, वरन् केवल श्रुतिपाठों की साक्षी से ज्ञात किया जा सकता है।

न्याय की प्रवृत्ति अनुमान के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने की रही। उदयन ईश्वर के अस्तित्व के पक्ष में जो युक्तियाँ देते हैं–इनमें से प्रथम यह है कि–जगत् कार्यरूप होने के कारण, उसको उत्पन्न करने वाला कोई कारण चाहिए (कार्यानुमान)। दूसरा तर्क यह है कि कोई ऐसी सत्ता होनी चाहिए जिसने सृष्टि के प्रारम्भ में अणुओं के निर्माण के लिए परमाणुओं को गतिशील बनाया (आयोजनानुमान)। तीसरा तर्क यह है कि यदि पृथ्वी ईश्वर के द्वारा धारण नहीं की गई होती तो वह आकाश में आलम्बित नहीं रह सकती थी (धृत्वानुमान)। चौथा तर्क यह है कि जगत के विनाश के लिए भी, एक कर्त्ता चाहिए जो कि ईश्वर को होना चाहिए (विनाशानुमान)। पाँचवा तर्क यह है कि शब्दों को दिये गये अर्थ ईश्वर की इच्छा के कारण होने चाहिए (पदानुमान)। षष्ठा तर्क यह है कि पुण्य तथा पाप, जिन्हें वेदों के व्यादेष से ज्ञात किया जा सकता है, उनका वेदों के स्वायिता को मौलिक परिचय होना चाहिए (प्रत्ययानुमान)। सातवाँ तर्क यह है कि श्रुतियाँ ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करती हैं। आठवाँ (वाक्यानुमान) सातवें से एक–रूप ही है। नवाँ तर्क है, कि–परमाणुओं के संघात का निर्माण उनकी संख्या पर निर्भर करता है, क्योंकि वे निरवयव हैं, संख्यात्मक प्रत्यय प्रत्यक्षकर्त्ता की सापेक्षिक मानसिक तुलना पर आश्रित होता है, सृष्टि के समय कोई ऐसी सत्ता होनी चाहिए। जैसे संख्यात्मक प्रत्यय के कारण संघात का निर्माण सम्भव होता है। यह नवॉ अनुमान (संख्यानुमान) है। यद्यपि ईश्वर जगत् का कारण माना जाता है, फिर भी उसके शरीर हो यह आवश्यक नहीं है क्योंकि उत्पादक के रूप में कारण के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि उसमें शरीर का होना आवश्यक हो, लेकिन अन्य विद्वान ऐसे हैं जिनके विचार में ईश्वर विशेष शरीरों, राम, कृष्ण आदि के 'अवतार' को उत्पन्न करता जिनके द्वारा वह, विशेष प्रकारों में कार्य करता है। लेकिन विज्ञान भिक्षु का यह विचार है कि 'सांख्य' के बुद्धि आदि पदार्थ परिणाम होने के नाते अपने पूर्व कारणों को पूर्वगृहीत करते हैं, जिनके सम्बन्ध में कुछ प्राप्त ज्ञान होना चाहिए और जिसका उद्देश्य उसके द्वारा पूर्ण हो,–ऐसा व्यक्ति ईश्वर है। इस विधि में पहले पदार्थों के एक मौलिक कारण (प्रकृति) को अनुभित किया जाता है, और ईश्वर वह है जिसे 'प्रकृति' का अपरोक्षज्ञान होता है जिसके फलस्वरूप वह पदार्थों की उत्पत्ति के लिए उसका रूपान्तरण करता है, और इस प्रकार स्वयं अपने उद्देश्य के लिए उसका प्रयोग करता है।

कुछ विद्वानों का यह मानना है कि उपनिषद्–पाठों में भी ब्रह्मन् के स्वरूप को अनुमति करने के उदाहरण मिलते हैं, और यद्यपि वादरायण व्यास स्वयं किन्हीं अनुमानों का प्रयोग नहीं करते फिर भी वे ऐसे पाठों का विवेचन करते हैं जो अनुमानों के आधार हैं। नैयायिक इस दृष्टि के रहे हैं कि अनुमान सही हैं क्योंकि वे उपनिषद पाठों के अनुकूल हैं। लेकिन आचार्य बल्लभ, आचार्य रामानुज और आचार्य भास्कर से सहमत हैं कि ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई अनुमान सम्भव नहीं है और उसका स्वरूप केवल उपनिषद–पाठों की साक्षी से ज्ञात किया जा सकता है।[9]

ब्रह्म विचार–बल्लभ के मत की संज्ञा 'शुद्धाद्वैत' है अर्थात् विशुद्ध अद्वैतवाद (जो शंकर के केवल अद्वैतवाद से भिन्न है)। समस्त जगत् यथार्थ है और सूक्ष्मरूप में ब्रह्म है। जीवात्माएं और जड़ जगत् तात्त्विक रूप में ब्रह्म ही हैं। बल्लभ मानते हैं कि जीव, काल प्रकृति या माया सब नित्य वस्तुएं हैं। वे ब्रह्म के ही तत्त्व से सम्बद्ध हैं और उनकी कोई पृथक् सत्ता नहीं है। ऐसे व्यक्ति जो माया की शक्ति को जगत् का कारण मानते हैं, वे शुद्ध अद्वैतवादी नहीं हैं क्योंकि वे ब्रह्म के अतिरिक्त भी एक दूसरी सत्ता को स्वीकार करते हैं। जहाँ शंकर जगत् की उत्पत्ति माया की शक्ति के द्वारा ब्रह्म से मानते हैं वही दूसरी ओर बल्लभ यह मानते हैं कि माया जैसे किसी तत्त्व के साथ सम्बन्ध के बिना भी वह जगत् का निर्माण करने में समर्थ है। बल्लभ का मत है कि शास्त्र ही अन्तिम प्रमाण है और हमारा तर्क उसके आदेशों के विरोध में नहीं जा सकता। ईश्वर सच्चिदानन्द है। वह गुणों से युक्त है। श्रुति के उन वाक्यों का जिनमें कहा गया है कि वह निर्गुण है–इसका तात्पर्य यह है कि उसमें साधारण गुणों का अभाव है (ब्रह्म रूप पर बल्लभ सराय 3/2/22)। ईश्वर शरीर धारी कृष्ण हैं जिनमें ज्ञान तथा क्रियारूप गुणों का आधान है। वही जगत का स्पष्ट है और हमें यह कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है कि उसको किसी भौतिक शरीर की आवश्यकता है–जैसी कि सांसारिक कार्यों के कर्त्ताओं की होती है क्योंकि हम लोगों पर जो बात लागू होती है उसका अतीन्द्रिय तथा सर्वोपरि ईश्वर के विषय में लागू होना आवश्यक नहीं है। वह केवल अपनी इच्छा की शक्ति से ही समस्त संसार की रचना करता है। वह केवल कर्त्ता ही नहीं भोक्ता भी है। यद्यपि उसे शरीर धारण करने की तो कोई आवश्यकता नहीं होती तो भी वह नानाविध रूपों में अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए प्रकट होता है। उसका सबसे श्रेष्ठ रूप वह है जिसे यज्ञ रूप कहा गया है और जिसका सम्बन्ध कर्म करने से है और उसकी पूजा, जैसा कि ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा है, कर्मों के द्वारा ही की जा सकती है। जब वह ज्ञान से सम्बद्ध होता है तो वह ब्रह्म है और उस अवस्था में ज्ञान के द्वारा ही–जैसा कि उपनिषदों में कहा गया है, उसे प्राप्त कर सकते हैं। सर्वोपरि कृष्ण की पूजा गीता तथा भागवत् के नियमों के अनुसार ही करनी चाहिए।

मनुष्यों तथा पशुओं की आत्मा में आनन्द रूप गुण अव्यक्त अवस्था में रहता है और इसी प्रकार प्रकृति में चैतन्यरूप गुण अव्यक्त अवस्था में है। ब्रह्म अपने गुणों के आविर्भाव तथा तिरोभाव द्वारा जिस रूप को चाहता है, धारण कर लेता है। बल्लभ ईश्वर को सम्पूर्ण इकाई मानते हैं। चूँकि ब्रह्म ही एकमास तत्व है। अतः अन्य सभी वस्तुएं ब्रह्म से अभिन्न हैं और इसलिए नित्य भी हैं। यथार्थ में जगत् अक्षय और नित्य है, लेकिन विष्णु की माया से इसका अविर्भाव व तिरोभाव अथवा उत्पत्ति व नाश होता है। व्यवहार दशा में भी सभी वस्तुएँ ब्रह्म स्वरूप मानी जाती हैं। धर्म और धर्मो में तादात्म्य सम्बन्ध है। धृत के द्रवत्य रूप धर्म के समान आगन्तुक प्रपन्च रूप धर्म को ब्रह्म रूप धर्मी से भिन्न नहीं माना जाता। माया को भगवान की शक्ति मानकर, शक्ति तथा शक्तिमान में अभेद मानते हुए, बल्लभ मत में एक मास ब्रह्म ही प्रमेय रह जाता है। निराकार, सच्चिदानन्द तथा सर्वभवन समर्थ (सभी होने के योग्य) ब्रह्म बिना किसी निमित्त के अपने अंश से, धर्मरूप से, क्रियारूप से, तथा प्रपन्च रूप से दिखलाई पड़ता है। ब्रह्म धर्मरूप से पहले ज्ञान, आनन्द, काल, इच्छा, क्रिया, माया, तथा प्रकृति के रूप में रहता है, लेकिन सर्वदा ऐसा नहीं रहता और उसके अविर्भाव होने पर वही 'काल' नहीं रहती। काल के साथ–साथ उत्पन्न इच्छा आदि शक्तियों का सदा एक–सा रहना भगवान ने ही किया। अतः ये भी नित्य हैं। इनमें 'काल' ही क्रिया–शक्ति रूप है। 'इच्छा' तो अभिध्यान–स्वरूपा' है अर्थात् संकल्पात्मिका है। इसी को 'काम' भी कहते हैं। श्रुति में इसी को कहा गया है–''सोऽकायत्'। भगवान् तदाकार ही है। 'संकल्प' के दो भेद हैं– बहुस्याम (मैं बहुत हो जाऊँ) और ‘iztk;s* ¼mRiUu gksÅ¡½[10] इन दोनों संकल्पों में पहला तो भेद बतलाता है इसलिए 'काल' से अतिरिक्त क्रिया, ज्ञान, तथा आनन्दरूप सत् चित् और आनन्द रूप ब्रह्म का धर्म अपने में भेद दिखलाते हुए अपने आश्रय 'ब्रह्म' को भी भिन्न करता है अर्थात् उसे भी क्रियावान, ज्ञानी, तथा आनन्दवान बनाता है। इस प्रकार सत्–चित्–आनन्द रूप 'ब्रह्म' भी हाथ पैर वाला साकार रूप धारण कर लेता है। लेकिन यह स्मरण रहे कि इस प्रकार भिन्न होने पर भी अपनी इच्छा से अभिन्न रहकर 'ब्रह्म' अखण्ड ही है। ब्रह्म की शक्ति उसके सत् अंश की 'क्रिया रूपा' और चित् अंश की व्यामोहरूपा' 'माया' है, जो कि त्रिगुणात्मिका है। ज्ञान और क्रिया–ये दोनों भगवान् की शक्तियाँ है। 'आनन्द' ज्ञान शक्तिमान तथा क्रिया शक्तिवाला हो जाता है। क्योंकि आनन्द तो ब्रह्म ही है। ऐसी स्थिति में त्रिदश की शक्ति जो व्यामोहिका' माया है (जिसे हम अविद्या भी कहते हैं) वह, चिदंश से जब 'ज्ञान रूप धर्म' पृथक् हो जाता है तब उसे अज्ञान में डाल देती है।

आचार्य बल्लभ द्वारा प्रतिपादित 'ब्रह्म' निगुर्ण एवं सगुण दोनों है। शुद्ध अद्वैत तत्त्व होने के कारण वह निर्गुण है तथा अनन्त ऐश्वर्य गुणों से युक्त होने के कारण वह सगुण भी है। आचार्य बल्लभ निगुर्ण तथा सगुण के विरोध का सामन्जस्य करते हैं। वे कहते हैं कि जिस–प्रकार एक ही ऋृजुसर्प कुण्डलादि अनेक रूपों को ग्रहण कर लेने पर भी कुण्डलादि अनेक रूपों में दिखाई देता है लेकिन सर्प और उसके कुण्डलादि में अभेद होता है, उसी प्रकार ब्रह्म का स्वरूप भी भक्त की इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार से स्फुरित होता है।[11] वस्तुतः ब्रह्म शुद्ध अद्वैत तत्त्व रूप ही है। पुरुषोत्तम का कथन है कि भक्त तादृश इच्छा की उत्पत्ति में ईश्वर की तादृश–तादृश फल देने की इच्छा ही प्रयोजिका है।

इस प्रकार चूँकि बल्लभ मत में ब्रह्म ही एक मास अद्वैततत्त्व है, इसलिए वह सर्वधर्म विशिष्ट है और विरूद्ध धर्माश्रय भी है। ब्रह्म में विरूद्ध धर्मों की स्थिति स्वाभाविक है, यह मायिक नहीं है। ब्रह्म कार्य और कारण दोनों रूपों में शुद्ध है। भगवान श्रीकृष्ण को परब्रह्म कहा गया है और भगवान की शक्ति तथा महिमा को अनन्त बताया गया है। भगवान के विषय में है कि वे एक भी हैं, अनेक भी हैं, निर्विशेष निगुर्ण भी है और सविशेष सगुण भी हैं। वे परम स्वतन्त्र हैं और भक्ताधीन भी हैं। वे सच्चिदानन्द हैं, वे अणु से भी अुण और महान से भी महान् हैं। वे अपने सत, चित् और आनन्द स्वरूप का अपनी इच्छारूपी शक्ति से विविध अंशों में आविर्भाव तथा तिरोभाव करते हुए जड़ जगत् चेतन जीवों और अन्तर्यामी नियामकों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। उनकी यह अभिव्यक्ति वास्तविक है, माया कल्पित नहीं। यह जगत् और जीव ब्रह्मरूप होने से सत्य तथा नित्य है। माया ब्रह्म की वास्तविक अघटित घटना पदीयस्वी शक्ति है जो उन्हीं में स्थित रहती है। अविद्या इस माया का भ्रान्ति जनक पक्ष है। इससे जीवों में ज्ञान का तिरोभाव और अज्ञान का आविर्भाव होता है।

ब्रह्म त्रिविध है। (1) आधिदैविक पर ब्रह्म, (2) आध्यात्मिक अक्षर ब्रह्म् और (3) आधिभौतिक जगत्। श्रीमद्भगवद–गीता में जगत् या प्रकृति को क्षर पुरुष, आत्मा को अक्षर पुरुष एवं पर ब्रह्म को क्षर से अतीत और अक्षर से उत्तम होने के कारण पुरुषोत्तम कहा गया है।[12] अक्षर ब्रह्म विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है और ज्ञानमार्ग द्वारा इसकी प्राप्ति सम्भव है। पुरुषोत्तम पर ब्रह्म अखण्ड–आनन्द परिपूर्ण है और उसकी प्राप्ति अनन्य भक्ति से पुष्टिमार्ग द्वारा होती है। सच्चिदानन्द भगवान की जब रमण करने की इच्छा होती है, एक से अनेक रूपों में अभिव्यक्ति की इच्छा होती है, तब वे स्वयं जगत, जीव और अन्तर्यामी रूपों में अभिव्यक्त होते हैं। इसमें भगवान की इच्छा, क्रीड़ा या लीला ही एकमात्र हेतु है। यह अभिव्यक्ति वास्तविक है। यह माया–कल्पित या विवर्त नहीं है। यह विकारयुक्त परिवर्तन

भी नहीं है। बल्लभमत में इसे अविकृतपरिणामवाद' कहा जाता है। भगवान् ही अविकृतभाव से जगदापि रूप ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार कटक–कुण्डलादि सुवर्ण के अविकृत परिणाम हैं क्योंकि कटककुण्डल आदि रूपों में परिणत होने पर भी सुवर्ण में विकार नहीं होता और उन्हें गलाकर पुनः सुवर्ण में परिणत किया जा सकता है, उसी प्रकार अविकृत भाव से जगदादिरूपों में अभिव्यक्त होने पर भी ब्रह्म में कोई विकार नहीं होता। कार्य वृहद और कारण ब्रह्म दोनों शुद्ध ब्रह्म रूप होने से एक ही है। जगत् तथा जीव सत्य और नित्य होने से उत्पत्ति–विनाश–रहित हैं। उत्पत्ति का अर्थ–आविभार्व तथा विनाश का अर्थ तिरोभाव है। बल्लभ मत में–आविर्भाव का अर्थ 'अनुभव योग्य होना' है। जिस प्रकार सूर्य से या दीपक से या मणि से प्रकाश की किरणें निकलती हैं अथवा जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग निकलते हैं उसी प्रकार ब्रह्म से जगत् और जीव निकलते हैं। अग्नि से स्फुलिंग के निकलने को व्युच्चरण, विकिरण या निर्मगन कहते हैं। यह निर्गमन उपत्ति नहीं और न स्फुलिंग का पुनः अग्नि प्रवेश उसका विनाश है। अतः व्युच्चरण होने पर भी जगत् या जीव की नित्यता अक्षुण्ण रहती है। सच्चिदानन्द भगवान के अविकृत चिद् अंश से जड़ जगत् का निर्गमन होता है। इसमें सद् अंश का आविर्भाव और चिद् अंश एवं आनन्द अंश का तिरोभाव रहता है। भगवान् के अविकृत चिद् अंश से जीवों का निर्गमन होता है। जीवों में सद् अंश एवं चिद् अंश का आविर्भाव तथा आनन्द अंश का तिरोभाव रहता है। जब भगवद् अनुग्रह से जीव में तिरोहित आनन्द अंश का आविर्भाव होता है तब वह मुक्त होकर भगवान के आनन्द का अनुभव करता है। ब्रह्म के सद् अंश से जीव की बन्धन सामग्री के रूप में जड़ जगत् का तथा चिद् अंश से बन्धनीय चेतन जीवों का निर्गमन होता है। ब्रह्म के अविकृत आनन्द अंश से अन्तर्यामी निर्गमित होते हैं जिनमें l r}fpr~vkSj vkuUn&r hukavkfoHkkZo grk gS ; sv Ur; keh t hokeaeamud sfu; ked cu dj j grsgSa[13] प्रत्येक जीव का एक नियामक अन्तर्यामी होता है।

अन्तर्यामी भी संख्या में उतने ही हैं जितने जीव होते हैं। ये अन्तर्यामी सचिच्दानन्द होने से वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप ही हैं। लेकिन जीवों के नियामक बनकर उनकी सहायता करने के कारण इन्हें जीवों के समान असंख्य माना गया है। ब्रहम इन अन्तर्यामियों का भी अन्तर्यामी है। ब्रह्म अपने विजातीय जड़–जगत्, सजातीय जीव तथा स्वगत अन्तर्यामी–इन तीनों रूपों में अनुस्यूत है। अतः वह इन तीनों का अन्तर्यामी है[14] और वह अपने परात्पर रूप में पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण हैं। दुःख आदि मायिक धर्म या मिथ्या या भ्रान्ति प्रतीति सिद्ध होने के कारण उसका अभाव भी मिथ्या है। ब्रह्म में दुःख आदि नहीं है। यह कहने से दुःखादि का मिथ्यात्व ही सिद्ध होता है। अतः ज्ञानी ज्ञेय ब्रह्मस्वरूप तिरोहित सर्वशक्ति एवं सर्व व्यवहार के अतीत हैं। पुरुषोत्तम का एक रूप सूर्यमण्डल आदि में है। यह अन्तर्यामी है, इसी का नामान्तर पुरुष या नारायण है। पुरुष त्रिविधि हैं– (1) महत्स्रष्टा, (2) ब्रह्माण्डसंस्थित, एवं (3) सर्वभूतस्थ। पुरुष से ही मत्स्य आदि लीला–अवतारों का आविर्भाव होता है। अक्षर से जो सब अन्तर्यामी निकलते हैं, वे इन मुख्य अन्तर्यामी के अंश हैं। वे आनन्द प्रधान, जीव की भाँति प्रत्येक शरीर में विभिन्न तत्त् जीवों के नियामक मात्र हैं, क्योंकि जड़ तथा जीव के अन्तर्यामी समूह में मुख्य अन्तर्यामी का एक–एक अंश ही प्रकट होता है।

बल्लभ–अनुयायी यह कहते हैं कि, जैसे प्राकृत सत्व से पृथक् भगवद्–धर्म–रूप विशुद्ध सत्व है। वैसे ही अप्राकृत रज और तम भी है। अप्राकृत सत्व स्वचिकीर्षित मत्स्य आदि आवृत्ति विधानपूर्वक, अयः पिण्ड में वहिन की भाँति उसमें आविभूर्त होकर तत्त् कार्य करता है। इस विशुद्ध संख्यात्मक विग्रह में जगत् के स्थित कार्य की चिकीर्षा में भगवान अग्नि अयोगोलक की भाँति आविष्ट होते हैं, तब ब्रह्मा और तमो विग्रह में आविष्ट होते हैं,– तब शिव कहलाते हैं। ये तीनों ही गुणावतार हैं। अप्राकृत विग्रह होते हुए भी तीन गुणों के नियामक होने के नाते ये 'सगुण' हैं। पुराण में परब्रह्म कहकर जो इनका गुण गाया गया है, उसका कारण यह है कि अंशी कृष्ण से इनका वास्तविक कोई भेद नहीं है। यद्यपि यह गुणावतार है, फिर भी विष्णु में चतुर्भुज, वनमाला, पीताम्बर आदि बहुसंख्यक पुरुषोत्तम–धर्म के प्राकट्यवश विष्णु ही उत्कृष्ट हैं। भगवान के रूप में अनन्त हैं। सर्वरूप ही पूर्णब्रह्म है, इसलिए ज्ञानमार्ग में विषय और फल में कोई विशेष नहीं है। उन्होंने क्रीड़ा के लिए जैसे जगत रचा है, वैसे ही अपनी प्राप्ति के लिए भक्तिमार्ग को भी पृथक् किया है। विभूति–रूप में साधन और फल नियत हैं। पूर्णफल दान के लिए स्वरूप या कृष्ण रूप होना ही पड़ता है। सायुज्य ही पूर्ण या मुख्य फल है। बल्लभ मत में सायुज्ज से तात्पर्य ब्रह्मैक्य नहीं, बल्कि योग है। यह ज्ञान लभ्य नहीं, कृष्ण सेवामाल लभ्य है। भगवान् के आविभूर्त होने पर ही भजन चलता है। इसलिए यह बहिर्भजन है।

कार्य–कारण–सम्बन्ध–बल्लभ दर्श में कारण रूप ब्रह्म और कार्यरूप जगत् में भेद नहीं है। जगत् ब्रह्म की आविर्भाव दशा है। ब्रह्म की कारणता उसकी तिरोभाव दशा है। इस सम्बन्ध में प्रस्थान रत्नाककार पुरुषोत्तमाचार्य का कथन हे कि उपादान रूप ब्रह्म के कार्य की जो शक्ति व्यवहार गोचर करती है–वह आविर्भाविका है। इस प्रकार आविर्भाव व्यवहार योग्यत्व तथा तिरोभाव व्यवहार योग्यत्व का नाम है।[15] इसीलिए आचार्य बल्लभ ने सजातीय जीव, विजातीय जगत् तथा सगत् अन्तर्यामी ईश्वर–ये ब्रह्म के तीन रूप बतलाये हैं। इसलिए जीवादि

ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं। ब्रह्म जीवादि में सदा अनुस्यूत है। बल्लभ दर्शन के अनुसार ब्रह्म जगत् का उपादान कारण तथा निमित्त कारण दोनों है। ब्रह्म के निमित्त कारणत्व के सम्बन्ध में तो कोई वैमत्य नहीं है, लेकिन उपादान कारणत्त्व विवेचन योग्य है।

बल्लभ दर्शन में ब्रह्म को समवायिकारण के रूप में स्वीकार किया गया है। लेकिन ब्रह्म की समवायिकारणता के विरोध में पूर्वपक्षी का तर्क है कि यदि ब्रह्म को समवायिककारण माना जाएगा तो ब्रह्म को विकारी (विकार का विषय) होना चाहिए अथवा विकारी मानना पड़गा (''समवायित्व विकृतत्त्व स्यापत्तेः'')। बल्लभ यह मानते हैं कि ''तन्तुसमन्वयात्'' सूत्र (ब्रह्मसूत्र) इस मत को स्थापित करता है कि ब्रह्मन् 'समवायिकारण' क्योंकि वह सत्, चित् एवं आनन्द के रूप में, अपने त्रिविध स्वरूप में सर्वत्र अस्तित्व (सर्वव्यापी होने के कारण) रखता है। 'प्रपञ्च' नाम, रूप व कर्म से निर्मित होता है और ब्रह्मन् उन सबका कारण है क्योंकि वह सर्वत्र अपने त्रिविध स्वरूप में स्थित रहता है। अद्वैत वेदान्त के आरोपवाद सिद्धान्त के विपरीत आचार्य बल्लभ का सिद्धान्त है कि ब्रह्म स्वेच्छा से सत्, चित् एवं आनन्द तत्त्वों के प्रभाव से भौतिक जगत्, जीवन तथा ब्रह्मरूप से संयुक्त होता है। अतः बल्लभ दर्शन पद्धति में ब्रह्म जगत का समवायिकारण बल्लभ दर्शन का समवायिकारणवाद माया को उपादन कारण मानने वाले अद्वैतवादियों के कारणवाद से तो भिन्न हैं ही, साथ ही न्यायदर्शन के समवाय कल्पना से भी भिन्न है। बल्लभ दर्शन के अनुसार कारण एवं कार्य का सम्बन्ध तादात्ममूलक है। कारण एवं कार्यरूप द्रव्यों का तादात्म्य निर्विवाद सिद्ध है।

अद्वैत वेदान्त के समान ही बल्लभ वेदान्त में भी माया ब्रह्म की शक्ति है।[17] लेकिन दोनों दर्शनों के दृष्टिकोण में अन्तर है। बल्लभ की 'माया' अद्वैत वेदान्त की माया की तरह मिथ्या नहीं है। बल्लभ दर्शन के अनुसार ब्रह्म मायाशक्ति के द्वारा ही अनेकरूपों में प्रकट होता है। इस प्रकार ब्रह्म की सहायिका शक्ति है।

बल्लभ मत अविकृत परिणामवाद का प्रतिपादन करता है। अविकृत परिणामवाद का तात्पर्य है–कारण का स्वरूपतः अविकृत रहते हुए कार्य रूप में परिणत हो जाना। जिस प्रकार अपने स्वरूप से विकृत हुए बिना ही स्वर्ण आभूषण रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म भी अविकृत हुए बिना ही जगत् रूप में परिणत हो जाता है। जिस प्रकार सर्प अपने को संकुचित एवं विकसित करता है, उसी प्रकार ईश्वर भी अपनी क्रीड़ा के लिए जगत् रूप में बदलता है और उसे समेट लेता है जिसे सृष्टि या प्रलय कहते हैं। इस जगत् की सृष्टि आविर्भाव और प्रलय तिरोभाव के रूप में होते हैं। वस्तुओं में अनुभव का विषय बनने की योग्यता या शक्ति आविर्भाव है (''अनुभव विषयत्वयोग्यताविर्भावः'')। उनमें अनुभव का विषय बनने की अयोग्यता तिरोभाव है (''तद् विषया योग्यता तिरोभावः'')। तिरोभव वह शक्ति है जिनके द्वारा वस्तुएँ इस प्रकार आच्छादित हो जाती है कि वे अनुभव के योग्य नहीं रहती। साधारणतः इन्द्रिय–अनुभव में प्रत्यक्षीकरण विषयक योगयता के रूप में आस्तित्व की परिभाषा दी जाती है, लेकिन पारमार्थिक दृष्टि से जिन विषयों का प्रत्यक्ष नहीं होता उनका भी अस्तित्व ईश्वर में रहता है। किसी विषय की न तो उत्पत्ति होती है और न विनाश ही होता है। भूतकाल में घटित सभी वस्तुएँ तथा भविष्यत् काल में घटित होने वाले सभी कार्यकारण रूप में ईश्वर में अस्तित्व रखते है भौतिक वस्तुओं में चैतन्य तथा चेतन जीवों में आनन्द के आवृत्त रहने के कारण वे अनित्य प्रतीत होते हैं। ब्रह्मरूप में जगत की सत्यता के कारण ब्रह्म ही जगत् का समवायिकारण है, जीव ब्रह्म का अंश है (''ब्रह्मरूपेण सत्यस्य जगतो ब्रह्मैव समवायिकारणम्'')[18]। ब्रह्म के आनन्द अंश को तिरोहित कर लेने पर चित–अंश की व्यामोहिका माया जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होने देती जो जगत् की उत्पत्ति में हेतु है। वह द्रव्य माया है जिसका उपादान प्रकृति है (''तत्र द्रव्य माया प्रकृतिर्हि अस्योपादनमिति'')।[19] सब कुछ का कर्त्ता ब्रह्म ही है। अतः सृष्टि मिथ्या या मायिक नहीं है। ईश्वर की इच्छा कर्म सापेक्ष है, जीव को उनके कर्म के अनुसार फल देना ईश्वर की इच्छा है। लीला के लिए सारी सृष्टि का निर्माण स्वयं ईश्वर करता है। कम–सापेक्ष ब्रह्म अपने से सृष्टि करता है। यही उसका महत्त्व है (''सापेक्ष्यमपि कुर्वन्तीश्वर इति महात्म्यम्'')।[20] जिस प्रकार कल्पवृक्ष, चिन्तामणि या कामधेनु वर चाहने वालों के इच्छानुसार उस–उस रूप में परिणत होते हुए भी अविकृत रहता है, उसी प्रकार ईश्वर भी सभी पदार्थों का निर्माण करके स्वयं भी अविकृत ही रहता है। ब्रह्म ही जगत् का निमित्त कारण है तथा समवायिकारण भी है। (''निमित्तकारणं समवायिकारणं च ब्रह्मैव'')।[21] ब्रह्म ने अपनी इच्छा से सत्, चित् एवं आनन्द के तत्त्वों के प्राबल्य के द्वारा स्वयं का जड़ पदार्थ, जीव तथा ईश्वर के रूपों में अभिव्यक्त किया है जिससे ब्रह्म जगत् का समवायिकारण है (''अनारोपितानागन्तुकरूपेणानुवृत्तिरेवं समवाय इति इदमेव च तादात्म्यम्'')।[22]

बल्लभ यह मानते हैं कि ब्रह्म अपनी पूर्णता से जगत–के सभी विषयों में तथा सभी जीवों में विद्यमान रहता है। उसने विभिन्न रूपों में केवल कुछ गुणों को उनके प्रबल रूप में अभिव्यक्त किया है। इस कारण नानात्व में किसी विकार का समवेश नहीं होता। इस कारण से बल्लभ उपादान कारण की तुलना में 'समवायिकारण' पद को

अधिक प्रसन्द करते हैं। 'उपादान' पद को छोड़कर 'समवायि' पद से क्या व्यवहार होगा, इस विषय में कहते हैं कि लोक में उपादान के प्रत्यय में विकार के प्रत्यय का समावेश होता है, तथा समवायिकारण का प्रत्यय सार्वभौम एवं निरूपाधिक व्याप्ति में निहित होता है (''नन्वत्रोपादानपदं परित्यज्य समवायिपदेन कुतोव्यवहार इति चेदुत्त्यते, y kd smi knku i nsd r ZfØ; ; KÇkr L; i fj fFNU; LeokfH/kku n' kZk r ~i d fr g; ZL; kskn kufefr **1A[23] विकार से उत्पन्न कार्य उपादान कारण में स्थित रहते हैं। उस (उपादनकारण) का अन्ततः उसमें विलय हो जाता है, लेकिन समवाय सम्बन्ध द्वारा एक साथ सम्बन्धित माने जाने वाले विविध रूपों में कोई भेद नहीं होता। माया ब्रह्म की एक शक्ति है जिसे अविद्या भी कहते हैं तथा वह ब्रह्म से अभिन्न है। इसी माया के द्वारा वह नानात्व के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करता है। यह अभिव्यक्ति न तो दोष है, न भ्रम, क्योंकि इस विकार, या परिणाम को समाविष्ट किये बिना ईश्वर की विधि रूपों में अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार भी जगत् यथार्थ है क्योंकि वह ईश्वर की यथार्थ अभिव्यक्ति है। यो तो सांख्य के पचीस तत्वों के अतिरिक्त कर्म, काल तथा स्वभाव, कुल अट्ठाइस तत्व बल्लभ को मान्य हैं। लेकिन मुख्य तत्त्व ईश्वर ही है, क्योंकि शेष तत्त्व ईश्वर के ही प्रतिरूप हैं।

जगत–प्रपन्च और संसार–बल्लभ–दर्शन पद्धति के अन्तर्गत (जीव के समान) जगत् भी ईश्वर का ही रूप है और वह ईश्वर से अभिन्न है।[24] जगत् ब्रह्म का अंशरूप परिणाम है। जगत् ईश्वर की आविर्भाविका शक्ति का ही फल है। ईश्वर स्वेच्छा से आविर्भाविका शक्ति के द्वारा जगत् रूप में आर्विभूत होता है और तिरोभाविका शक्ति के द्वारा समस्त जीवों तथा जगत् का ईश्वर में तिरोधान हो जाता है। इस प्रकार जगत् ईश्वर का रूप होने के कारण, अद्वैत वेदान्त की तरह मिथ्या नहीं है। ईश्वर ही समस्त जगत् का शासक तथा तथा नियन्ता है।

जिस प्रकार ब्रह्म अपने आनन्द अंश को तिरोहित कर जीव रूप में प्रकट होता है, उसी प्रकार ब्रह्म चित् तथा आनन्द अंश का तिरोभाव कर जगत् के रूप में प्रकट होता है। यह जड़ जगत् ब्रह्म के चित् एवं आनन्द अंश का तिरोभाव है। उस समय ब्रह्म केवल, एक अंश–'सत्' अंश के रूप में स्थित रहता है। ब्रह्म का 'सत्' अंश ही जगत है। अतः ब्रह्म का अंश होने से जत् 'वास्तव' है, लेकिन वह चेतन नहीं है क्योंकि उसमें ब्रह्म की चित् अंश नहीं रहता। यह जगत् 'सत्' है और ब्रह्म की लीला है, ब्रह्म से ही प्रकट होता है किन्तु ब्रह्म में किसी भी प्रकार का विकार नहीं होता, ब्रह्म सदा अविकृत रहता है। ब्रह्म जगत के रूप में रूपान्तरित होकर भी अविकृत ही रहता है, जैसे सुर्वण आभूषण के रूप में परिणत होकर भी अपने स्वरूप को नहीं खोता।[25] जिस प्रकार सर्प अपने को संकुचित और विकसित करता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी लीला के लिए जगत् के रूप में परिणमित होता है और फिर उसे समेट लेता है। बल्लभ के अनुसार यही जगत् को सृष्टि (उत्पत्ति) और प्रलय (विनाश) है। जगत् की उत्पत्ति और विनाश ब्रह्म के स्वरूप का आविर्भाव तथा तिरोभाव है। वस्तुतः उसमें अनुभव की योग्यता आना आविर्भाव है और उसका अभाव तिरोभाव है। बल्लभ के अनुसार जगत् न तो ब्रह्म को विपर्त है और ब्रह्म से भिन्न, बल्कि ब्रह्म का सत् अंश है। ब्रह्म अपनी इच्छा से अपने को जगत् के रूप में रूपान्तरित करता है, लेकिन उसके तात्त्विक रूप में कोई विकार नहीं आता है, व जगत् का उपादान कारण भी है और विभिन्न कारण भी है।[26] यह जगत् ब्रह्म से ही आर्विभूत है और ब्रह्म के समान ही तात्त्विक है।

बल्लभ दर्शन में जगत्–प्रपन्च में और संसार में एक विलक्षण भेद स्वीकार किया गया है, यह जगत् या प्रपन्च सच्चिदानन्द भगवान् की इच्छा से उनके 'सत्' अंश से आर्विभूत होने के कारण ब्रह्म–रूप होने से सत्य तथा नित्य है। नित्य होने से उत्पत्ति विनाश रहित है। ईश्वर–इच्छा से प्रादुर्भूत पदार्थों को जगत् कहते हैं। इसके विपरीत संसार या जीव का जन्म मरण चक्र अविद्या–कल्पित है। संसार अविद्याग्रस्त जीव द्वारा कल्पित किया जाता है। संसार अविद्या के द्वारा उद्भूत ममता रूप तत्त्व है। ज्ञान के उदय होने पर अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति के बाद, अविद्या के नष्ट होने पर– इस अविद्या कल्पित संसार का क्षय हो जाता है। किन्तु ब्रह्मरूप जगत का नाश नहीं होता। (''ब्रह्मत्वेनैव जगतः सत्यत्वम्'' अर्थात् ब्रह्म के रूप होने के कारण जगत सत है)। लेकिन संसार अविद्या का कार्य होने के कारण अनित्य है, और नष्ट होने योग्य है।

अविद्या पंचपर्वा (पाँच प्रकार की) है– (1) जीव का स्वरूप–अज्ञान, (2) देहाध्यास, (3) इन्द्रियाध्यास, (4) प्राणाध्यास, और (5) अन्तःकरणाध्यास। जब तक अविद्या है तब तक संसार है। ज्ञान के उदय होने पर अविद्या–निवृत्ति के साथ ही संसार की भी निवृत्ति हो जाती है। लेकिन ब्रह्म रूप होने के नाते जगत् अथवा प्रपंच का कभी नाश नहीं हो सकता क्योंकि, वह ब्रह्म के समान नित्य है। जगत–प्रपंच प्रकृति–जन्य नहीं है, न परमाणु जन्य है, न विवर्त रूप है, किन्तु भगवान का कार्य है जो उनकी इच्छा से उनके संदेश से आविर्भूत हुआ है। अतः कार्य होने पर भी अविकृत भगवद रूप ही है।[27] 'वाचारम्भण' वाक्य (छान्दोग्य 6/1/4) जहाँ कार्यों को नाम रूपात्मक और कारण को सत्य बताया गया है, जहाँ मृण्मय एवं लोहमय कार्यों को नाममात्र तथा भृत्तिका एवं लोहरूप कारण को सत्य निर्दिष्ट किया गया है, कार्य और कारण में अनन्यत्व का प्रतिपादन करते हैं। कार्य के

मिथ्यात्व का बोध नहीं कराते। लोहमय पदार्थ लोक के अविकृत परिमाण हैं। यदि श्रुति को कार्य का मिथ्यात्व अभीष्ट होता तो रज्जुसर्प या शुक्ति–रजत के दृष्टान्त देती, अविकृत परिणाम के नहीं।[28]

अविद्या के पंच पर्वों के द्वारा जीवों की बुद्धि में जगत् के पदार्थों के सम्बन्ध में जो द्वैतमूलक भ्रम उत्पन्न हो जाता है, उसे संसार कहते हैं। बल्लभ दर्शन के अनुसार जगत् मिथ्या न होकर उपर्युक्त द्वैतमूलक संसार ही मिथ्या है। उदाहरणार्थ–संसार बुद्धि के अनुसार जीव, जगत् के घटादि पदार्थों को सत्ता ईश्वर से पृथक समझाते हैं। बादावलिकार ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि बुद्धिवर्ती घट ही मिथ्या है, न कि प्रपंचान्तवर्ती घट।[29] इसी प्रकार अद्वैत वेदान्त के अन्तर्गत भी जगत् को नानात्त्व मूलक सिद्ध किया गया है– ''नेहनानास्ति किंचन'' (विवेक चूड़ामणि, 465)।

अतः बल्लभ मत में प्रपंच मिथ्या नहीं–यह भगवत्कृति–जन्य, अथ च भगवद्रूपात्मक है। इसलिए सत्य है। बल्लभ–अनुयायी भगवान में माया नाम की एक अचिन्त्य शक्ति को स्वीकार करते हैं। इस शक्ति के प्रभाव से भगवान दूसरे की सहायता के लिए निरपेक्ष भाव से सर्वाकार धारण कर सकते हैं। हम जिसे प्रपंच कहते हैं– वह भगवान का ही आत्मरूप है, जो केवल मायाशक्ति केवल से प्रपंच रूप में प्रतिभात होता है। माया के समान अविद्या भी उन्हीं की शक्ति है। इस शक्ति के वशीभूत होकर ही जीव–संसार–दशा का भोग करता रहता है। प्रपंच और संसार–एक पदार्थ नहीं है। 'मै', 'मेरा', –यही संसार का रूप है। अज्ञान, भ्रम आदि शब्द संसारवाचक या प्रपंचवाचक नहीं। प्रपंच ब्रह्मात्मक है, वह कभी अज्ञानकल्पित या भ्रान्त नहीं हो सकता। श्रुति में कहा गया है– ''स वैन रेमे', तस्मादेकाकी न रमते'', ''स द्वितीय मैच्छत्''–इससे यह ज्ञात होता है कि रमण या आनन्द के आस्वादन के लिए ही भगवान प्रपंच रूप में आविर्भूत होते हैं। प्रपंच के अन्तर्गत पुरुष, उसका किया हुआ साधन, उसका फल–सभी भगवान के रूप हैं। ऐसी स्थिति में कोई यदि अपने को कर्त्ता या फलभोक्ता समझे, तो यह उसकी केवल भ्रान्ति ही है। यही 'मैं–मेरा' रूप संसार है। अविद्यावश इस भ्रम का उदय होता है। जब तत्व ज्ञान की स्फुर्ति होती है, जब सब कुछ भगवान का रूप है, यह जाना जाता है, तब वह भ्रम या संसार निवृत्त होता है–परन्तु ब्रह्मात्मक प्रपंच की निवृत्ति नहीं होती। प्रपंच सत्य है लेकिन आविर्भाव और तिरोभाव, उसकी यह दो अवस्थाएं हैं। मुक्ति अर्थात् जीवन युक्ति काल में संसार की निवृत्ति होती है, लेकिन प्रपंच की निवृत्ति नहीं होती। उत्पादक और नाशक का पार्थक्य–निबन्धन संसार एवं प्रपंच का स्वरूपगत भेद अवश्य स्वीकार्य है। हजारो–हजार जीवों के मुक्त हो जाने पर भी प्रपंच का लोप नहीं होता। लेकिन भगवान जब रमण करने की इच्छा करते है, तब प्रपंच का रूप उनमें विलीन हो जाता है। इस अवस्था में जीवमात्र ही विश्राम–सुख का अनुभव करते हैं। लेकिन यह मुक्ति नहीं है। मुक्ति में अध्यास नहीं रहता, संसार निवृत्त होता है। भगवान् की इच्छा ही प्रपंच की उत्पत्ति और विनाश का कारण है। जीव के संसार–भ्रमण का कारण अविद्या है। विद्या के उदय से अविद्या की ही निवृत्ति होती है, प्रपंच की निवृत्ति नहीं होती।

अविद्या का विनाश होने पर जीव की मुक्ति होती है। विद्या से अविद्या का विनाश तो होता है, लेकिन वह सम्यक् विनाश नहीं। इसलिए वह मुक्ति भी यथार्थ मुक्ति नहीं है। समवायी के नाश से ही कार्य का सर्वथा विनाश होता है। विद्या सात्विक है, उसके द्वारा स्वजनक माया का विनाश नहीं होता, और जब तक माया है, तब तक सूक्ष्म रूप से अविद्या अवश्य ही रहेगी। अतः विद्या का फल अविद्या का अभिनव–मात्र है, यर्थाथ विनाश नहीं है। अविद्या से जो देह, इन्द्रिय और प्राण का अध्यास उदित होता है, विद्या द्वारा केवल वही उपमर्दित होता है, परिणामस्वरूप जन्म और मरण से छुटकारा मिलता है। लेकिन अध्यास नहीं रहने पर भी देह आदि के प्रपंचान्तर्गत होने के कारण उसके स्वरूप का लोप नहीं होता। यह भी एक प्रकार का मोक्ष है। इसका दूसरा नाम है–'बन्ध निवृत्ति'। पीताम्बर कहते हैं–''सहेतुकस्य सकार्यस्य बन्धस्योपमर्दरूपोऽभावो विद्याकृत मोक्षः।'' परन्तु विश्व माया–निवृत्ति ही यथार्थ मुक्ति है। वह विद्या से नहीं पायी जा सकती। विद्याजन्य मोक्ष में अविद्या स्वकारण माया में रहती हैं बल्लभ मत में माया ही देहात्मक धातु का कारणमूल है। माया में अविद्या रहती है, इसलिए तत्प्रयासन्न अन्तःकरण में कुछ अविद्या–मल रह जाता है, देह आदि का अध्यास अवश्य नहीं रहता।[30]

यहाँ पर प्रश्न किया जा सकता है कि यदि देह आदि में अध्यास नहीं रहता, तो देह आदि की स्मृति बिल्कुल नहीं रह सकती। देह आदि की अत्यन्त विस्मृति ही मृत्यु है। ऐसी अवस्था में देह आदि में अध्यास नहीं रहने से देह आदि को स्थिति किस प्रकार सम्भव है। इसका उत्तर यह है कि शास्त्र और लोक प्रसिद्धि के अनुसार जीवन्मुक्ति की अवस्था देह की स्थिति में भी विद्यमान नहीं रहने से भी उसका अवस्थान सम्भव है, यह मानना ही पड़ता है। अतः संसार के कट जाने से भी प्रपंच की सत्ता बाधित नहीं होती।[31]

जब तक जीव का जीवत्व रहेगा, तब तक संघात का लय होने से भी पुनरूद्भव की सम्भावना रहेगी। क्योंकि उस अवस्था में देह आदि संघात पंचत्त्व प्राप्त होते हैं, मूल कारण में विलीन नहीं होते। परन्तु जीव भाव की निवृत्ति होने से अर्थात् जीव के ब्रह्मभूत होने से या अक्षर में लीन होने से संघात मूल कारण में लीन हो जाता है, इसलिए और कोई चिन्ता नहीं रहती।[32]

ब्रह्म विभु वस्तु है। लेकिन, प्रलयकालीन आत्मरमण के बाद जब सृष्टि का प्रारम्भकाल आता है तब उनका विभुत्व तिरोहित प्राय हो जाता है। उनका पहला कार्य है–इच्छा–शक्ति और उसके बाद त्रिगुणात्मिका सूक्ष्म रूपा मायाशक्ति का प्रकाश। इस माया से वह परिच्छिन्न–से होते हैं, अर्थात् उनकी व्यापकता तिरोहित भी हो जाती है। तब देश प्रकट होता है। मायाबल से अंश समूह परिच्छिन होता है और इस परिच्छिन्न अंश द्वारा वह व्याप्त होकर अवस्थान करते हैं। माया ब्रह्म से अभिन्न शक्ति है। शंकर–सम्प्रदाय के अभिमत सत् और असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय माया को आचार्य बल्लभ स्वीकार नहीं करते।

आचार्य बल्लभ कहते हैं कि ब्रह्म अखण्ड और अविभक्त वस्तु होते हुए भी उनमें अनन्त रूप हैं। इन रूपों में परस्पर कोई भेद नहीं। इच्छावश अनन्त रूप को प्राकट्य निबन्धन उनमें विभाग है, ऐसा लगता–भर है। यही ब्रह्मस्वरूप है–सृष्टि का उपादान। ब्रह्म के बहु होने का संकल्प या भावना सृष्टि का निमित्त है। यह भावना सत्य और विषय की अव्यभिचारिणी है। उस भगवान् की इच्छा से, उनसे ही उन्हीं का स्वरूप भूत असंख्य चिदंश प्रथम सृष्टि में आविर्भूत होता है। भगवत्स्वरूप होने के कारण ये सब चिदंश साकार होते हुए भी उच्च–नीच भावेच्छानिमित्त निकलने के लिए निराकार होकर ही जन्मते हैं। शास्त्र में जीव कहकर इनका वर्णन किया गया है। इन सब जीवों का स्वरूप और धर्म दोनों ही चैतन्य हैं। ब्रह्म के संदेश से जड़ सृष्टि और आनन्दांश रूप में अन्तर्यामी समूह का प्रादुर्भाव होता है। जीव जैसे असंख्य हैं, वैसे ही अन्तयामी भी असंख्य हैं। प्रत्येक हृदय में हंस रूप जीव और अन्तर्यामी दोनों की स्थिति है। अतः सच्चिदानन्द ब्रह्म का सदंश जड़, चिदंश जीव और आनन्दांश अन्तर्यामी या परमात्मा है। जड़ में चैतन्य और आनन्द तिरोहित रहता है। जीव में आनन्द तिरोहित रहता है। आनन्द ही भगवान का आकार है। उसके लोपवश जड़ तथा जीव दोनों निराकार है।

चूँकि जीव चित प्रधान ब्रह्मांश है और उसमें आनन्दांश तिरोहित रहता है, अतः इस तिरोहित आनन्दांश के आविर्भूत होने से ही पूर्ण सच्चिदानन्दभाव प्रकटित होता है और व्यापकत्त्व आदि धर्मों का आविर्भाव होता है। यही **cãl kE; ;kcã Hkko gS**[33] अग्नि व्याप्त अयोगोलक में जिस प्रकार दाहकता आदि धर्मों की अभिव्यक्ति होती है, उसी प्रकार ब्रह्मर्मूत जीव की देह में भी वैसे जीवगत चिदानन्द का आविर्भाव होता है। वैसी स्थिति में रेह का जड़त्व नहीं रह जाता, उसकी त्रिगुणात्मकता कट जाती है और ब्रह्मरूपतां आविमूर्त होती है। देही जीव भी तब भोक्ता नहीं रह जाता, ब्रह्मरूप में प्रकाश पाता है। देही जीव भी तब भोक्ता नहीं रह जाता, ब्रह्मरूप में प्रकाश पाता है। तिरोहित आनन्द का प्राकट्य एकमात्र भगवान का इच्छामूलक है। उनकी इच्छा स्वतन्त्र है। वह वैसे अव्यक्त आनन्दांश को जगाकर किसी को ब्रह्मभाव प्रदान करते हैं और किसी को अक्षरसायुज्य देते है।[34]

स्वरूपतः एक होते हुए भी भगवान अनेक प्रकार से सृष्टि करते हैं। कभी साक्षात् भाव से करते है, कभी परम्परा से करते हैं। पुरुष, ब्रह्मा आदि द्वारा सृष्टि पुराण और पांचरात्र शास्त्र में प्रसिद्ध है। कभी–कभी भगवान् स्वयं ही प्रपंच रूप धारण करते हैं और दूसरे समय महान् ऐन्द्रजालिक की भाँति मायिक सृष्टि भी करते हैं। मायिक सृष्टि के अतिरिक्त अन्य सृष्टि में भगवान् स्वयं अनुप्रविष्ट रहते हैं। मायिक सृष्टि में ज्ञान आदि की फलसाधकता नहीं होती। वेद में आकाश आदि क्रय से क्रम सृष्टि की चर्चा भी है। असल बात यह है कि सृष्टि अनेक प्रकार की है। भगवान की शक्ति अनन्त और अचिन्तय है। इस सृष्टि–वैचित्य के द्वारा वेद आदि शास्त्रों ने भगवान् के महात्म्य का ही किंचित वर्णन किया है। महात्म्य–वर्णन को प्रधान उद्देश्य है–भक्ति का प्रतिपादन। भगवान् में संसार के पालन तथा नाश–इन दोनों की इच्छा रहती है।

''अननेजीवेनात्मानानु प्रविश्य नामरूपे व्याकरपाणि' इस श्रुति के अनुसार 'नामसृष्टि' और 'रूपसृष्टि' ये दो प्रकार की सृष्टि कही गई है। 'रूपसृष्टि' का कारण पंचात्मक भगवान है, अर्थात् तत्त्व तो एकमात्र ईश्वर है किन्तु उनके पाँच अंग हैं जैसा कि भागवत् में कहा गया है–''द्रव्यं कर्म व कालश्च स्वभावो जीव एव च। वासुदेवात् परो ब्रह्मनन चाऽन्योऽर्थोस्ति तत्त्वतः।'' (सुबोधिनी, पृ. 66)।

'द्रव्य' से माया समझाना चाहिए। पश्चात् इसी से महाभूत आदि भी लिए जाते हैं। कर्म जगत् का निमित्त कारण तथा भूतों का संस्कार–रूप भी है। 'काल' गुणों का क्षोभक, अर्थात् साम्यावस्था को नाश करने वाला तथा निमित्त रूप भी है। यही 'काल' आधाररूप में सभी जगह दिखाई पड़ता है। 'स्वभाव' परिणाम का कारण है। 'जीव' भगवान् का अंश–स्वरूप भोक्ता है। अवान्तर सृष्टि में 'अधिष्ठान' अर्थात् 'शरीर', 'कर्त्ता', 'जीव', 'इन्द्रिय', नाना प्रकार की चेष्टाएँ' अर्थात् प्राण के धर्म, 'दैव', अर्थात् भगवान् की इच्छा ये माने जाते हैं। ये सब तत्त्व 'रूप–सृष्टि' में कहे गये हैं। 'नाम सृष्टि' में एकमात्र सूत्ररूप भगवान् सुषुम्ना के मार्ग से शब्द–ब्रह्मरूप में प्रकाशित होते हैं। पश्चात् यही शब्द ब्रह्म नाद, वर्ण आदि रूप में प्रतीत होते हैं।

अतः संक्षेप में, हम देखते हैं कि बल्लभ के अनुसार यह जगत् सत्य है। वह उस अर्थ में मिथ्या नहीं है जिस अर्थ में अस्वार्य शंकर उसे मिथ्या कहते हैं जीव और जगत् दोनों ही ईश्वर के स्वरूप में से प्रकट हुए हैं, अतः वे मिथ्या नहीं हो सकते। जगत–ब्रह्म की आत्मसृष्टि है। ब्रह्म विचार करता है और उसके विचारमात्र से ही जगत् प्रकट होता है। परन्तु जगत् की इस सृष्टि के पीछे ईश्वर की कोई अतृप्त इच्छा शेष नहीं है। वह केवल उसकी लीला मात्र हैं। वह जगत् को स्वयं, स्वयं में से ही उत्पन्न करता है। इस प्रकार वह इस जगत का निमित्त एवं उपादान दोनों ही कारण है। यद्यपि जगत् ब्रह्म में से प्रकट होता है, फिर भी ब्रह्म में किसी भी प्रकार का विकार नहीं आता। यही बल्लभ का अविकृत परिणामवाद है। जगत् ब्रह्म की वास्तविक सृष्टि है, अतः वह मिथ्या नहीं है। ''यह सब ब्रह्म है'' का अर्थ यह नहीं होता कि यह जगत् ब्रह्म पर आरोपण है, और इस कारण मिथ्या है, जैसा कि आचार्यशंकर का मत है। उक्त श्रुतिबचन का अर्थ केवल यही होता है कि यह जगत्, अपनी विविधता के साथ, ब्रह्म से भिन्न नहीं है। एक विशाल वट वृक्ष की विभिन्न शाखाओं को दूर पर खड़ा व्यक्ति अलग–अलग वृक्षों के रूप में देखता है, परन्तु पास आने पर उसे यह ज्ञात होता है कि अज्ञानवश वह जिको अलग–अलग वृक्ष समझा रहा था, वे वास्तव में एक ही वृक्ष की विभिन्न शाखाएं हैं। ठीक इसी प्रकार, जो मनुष्य आध्यात्मिक दृष्टि से बिल है और इस प्रकार ब्रह्म से बहुत दूर हैं, वह जगत् की विभिन्नताओं को अलग–अलग सत्य समझता है, लेकिन ज्यों–ज्यों वह आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ता जाता है, और इस प्रकार ब्रह्म के निकट पहुँचता जाता है, उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है कि जिन पदार्थों को वह अलग–अलग सत्य समझा रहा था, वे वास्तव में ब्रह्म के ही विविध रूप हैं, अतः ब्रह्म ही हैं। बल्लभ कहते हैं कि धार्मिक ग्रन्थों और पुराणों में जगत् को मिथ्या केवल व्यावहारिक दृष्टि से ही कहा गया है। सांसारिक वस्तुओं की निःसारता को दिखलाने के लिए, ताकि जीव स्वयं को उससे अनासक्त रखे, जगत् को मिथ्या कहा गया है। जगत् को मिथ्या कहना केवल उपाय है, पारमार्थिक सत्य नहीं है। इस प्रकार माया रूप जगत् को भी अयथार्थ नहीं माना गया है क्योंकि माया इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जिसे ईश्वर स्वेच्छा से उत्पन्न करता है। ब्रह्म केवल विश्व का नैमित्तिक एवं उपादान, दोनों ही प्रकार का कारण ही नहीं है बल्कि वह स्वयं विश्व का रूप है। यदि ब्रह्म स्वयं नहीं जाना जाता, तो भी जब वह जगत् के रूप में प्रकट होता है तब जाना जाता है। किन्तु संसार अयथार्थ है।

संसार को यथार्थ मानने में तो आत्मा का व्यवहार ठीक है लेकिन जब वह इसको अनेकत्त्व के रूप में देखती है तब उसका व्यवहार ठीक नहीं है। संसार सत्य है, यद्यपि हमारी उसकी प्रतीति सत्य नहीं है। हम यह नहीं अनुभव करते कि यह संसार केवल ब्रह्म की ही एक आकृति है। इस प्रकार जीव के मस्तिष्क में जगत् के स्वरूप का एक भ्रान्तिपूर्ण विचार बैठा हुआ है। ऐसे व्यक्तियों की दृष्टि में जिन्होंने सत्य को प्राप्त कर लिया है, (उन्हें) यह जगत् ब्रह्मरूप में ही प्रकट होता है, और ऐसे व्यक्तियों के लिए जिन्होंने धर्मशास्त्रों के द्वारा सत्य का ज्ञान प्राप्त किया है, यह ब्रह्म तथा माया दोनों रूप में प्रकट होता है और ब्रह्म के अतिरिक्त रूप में भी, यद्यपि वे जानते हैं कि ब्रह्म यथार्थ है और माया यथार्थ नहीं है। अज्ञानीपुरुष ब्रह्म की यथार्थता तथा अनेकों प्रतीतियों की अयथार्थता के मध्य कोई भेद नहीं करते। यह प्रतीतिमात्र वस्तुएँ अपने को वाह्य तथा स्वतन्त्र रूप में प्रकट करती है। अविद्या का स्थान मनुष्य के मस्तिष्क के अन्दर है। बल्लभ जगत् की अयथार्थता के विचार को इस रूप में स्वीकार नहीं करते। यदि जगत् अयथार्थ है तो यह भी नहीं कह सकते कि वह ब्रह्म के साथ एकाकार है, क्योंकि अयथार्थ वस्तु तथा प्रतीति मात्र अयथार्थ वस्तु ear knkRE; dkl EcU/k ughagksl drkA /kkfeksdhl Etkouk rksgSyfdu ; g bZoj }kjk fuekZr ughagS[35]

जीव विचार–माया के द्वारा जकड़ा हुआ जीव बिना ईश्वर की कृपा से मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। मोक्ष का मुख्य साधन भक्ति है यद्यपि ज्ञान भी उपयोगी है। यदि हम ईश्वर के अन्दर श्रद्धा रखे तो सब पाप दूर हो सकते हैं। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसे क्रियात्मक जीवन में बहुत अतिशयोक्ति के साथ कहा जाता है। बल्लभ ने सब प्रकार की कठोर तपस्याओं को तुच्छ बताया है। यह शरीर ईश्वर का बनाया हुआ मन्दिर है और इसलिए इसे नष्ट करने का प्रयत्न करना कुछ अर्थ नहीं रखता। सर्वोपरि सत्ता के ज्ञान से पूर्व कर्म का स्थान है और जब उसका ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब भी कर्म विद्यमान रहते हैं। मुक्तात्मा पुरुष एब कर्मों को करते हैं उच्चतम लक्ष्य मोक्ष नहीं है, बल्कि कृष्ण की निरन्तर सेवा है तथा दिव्य लोकस्थ वृन्दावन की लीलाओं में भाग लेना है। बल्लभ, ब्रह्म की अतीन्द्रिय चेतनता में और पुरुषोत्तम में परस्पर भेद करते हैं। जीवन की बाधाओं से मुक्ति प्राप्त आत्माएं भिन्न–भिन्न प्रकार की है। एक वे हैं जिन्होंने अपने को पूर्व की अधीनता से मुक्त किया है, जैसे सनक ऋषि और जो ईश्वर की नगरी में निवास करते हैं जहाँ उन्हें ईश्वर की कथ से मोक्ष प्राप्त होता है। दूसरी वे हैं जो भक्ति का आश्रय लेती है और पूर्ण प्रेम का परिष्कार करके ईश्वर के सहचारी हो जाती हैं। बल्लभ ईश्वर के प्रति निष्काम प्रेम के जीवन पर अत्यन्त बल देते हैं।

एक पक्ष में ब्रह्म और दूसरे पक्ष में जीवात्माएं तथा जड़ प्रकृति के मध्य का सम्बन्ध विशुद्ध ऐक्यभाव (तादात्म्य) का सम्बन्ध है, जैसे अंश और अंशी का परस्पर सम्बन्ध होता है। भेद को तो बल्लभ ने गौण बताया, लेकिन अभेद

ही यथार्थ तथा मुख्य है। बल्लभ ''तत् त्वम् असि'' (वह तू है)—इस वाक्य की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह अक्षरशः सत्य है। लेकिन रामानुज तथा निम्बार्क इसे अलांकारिक अर्थों में लेते हैं। जब आत्मा परमानन्द को प्राप्त कर लेगी और जड़ जगत चैतन्य तथा परमानन्द दोनों को प्राप्त हो जाएगा, तब ब्रह्म और इनके मध्य का भेद सर्वथा मिट जाएगा—यह एक ऐसी स्थिति है जिसे रामानुज स्वीकार नहीं करते।

रामानुज के अनुसार जीव चिदणु द्रव्य के रूप में ईश्वर से भिन्न सत्ता के हैं, लेकिन ईश्वर के विशेषण या अंश या शरीर के रूप में ईश्वर से अभिन्न हैं। मध्यावाचार्य के अनुसार जीव ईश्वर पर आश्रित हैं और ईश्वर द्वारा नियम्य हैं, फिर भी स्वरूपतः वह ईश्वर से भिन्न हैं। निम्बार्काचार्य के अनुसार जीव अणुरूप तथा ईश्वराधीन होने से ईश्वर से भिन्न है, लेकिन ईश्वर के शक्तिरूप अंश के रूप में ईश्वर से अभिन्न है। भास्कर के अनुसार जीव स्वरूपतः ईश्वर से अभिन्न हैं, किन्तु उपाधि भेद के कारण ईश्वर से भिन्न है। बल्लभाचार्य के अनुसार जीव ईश्वर के अविकृत चिदंश से अविमूर्त होने के कारण भगवदरूप तो है, लेकिन आनन्दांश के तिरोधान के कारण तथा ऐश्वर्य आदि गुणों के तिरोभाव एवं अविद्या के कारण स्वयं को ईश्वर से भिन्न कल्पित करता है। बल्लभ के अनुसार जीव अणु और ईश्वर का ही अंश है। अणु होते हुए भी जीव सर्वव्यापक है लेकिन ईश्वर की तरह सर्वज्ञ नहीं है। वह जीव उसी प्रकार ईश्वर का अंश है जिस प्रकार स्फुलिंग अग्नि का अंश है। इस प्रकार जीव एवं ब्रह्म दोनों में अभिन्नत्व है। बल्लभ दर्शन पद्धति द्वारा प्रतिपादित जीव एवं ईश्वर का अंश—अंशी भाव सम्बन्ध वैष्णव तथा अन्य आचार्यों द्वारा प्रतिपादित जीव—ईश्वर सम्बन्ध से भिन्न है। मध्य दर्शन में भी जीव एवं ईश्वर में अंश—अंशी भाव सम्बन्ध बतलाया गया है लेकिन वहाँ जीवों की सत्ता ईश्वर से भिन्न है। वहाँ जीव एवं ईश्वर का दूरवर्ती सम्बन्ध है। निम्बार्क दर्शन में जीव ईश्वर से भिन्न होते हुए भी ईश्वर के समान हैं। निम्बार्क मत में भी जीव एवं ईश्वर के सम्बन्ध में अंश—अंशीभाव को स्वीकार किया गया है, लेकिन निम्बार्क दर्शन के अनुयायियों ने जीव एवं ईश्वर की भिन्नता तथा सादृश्य पर ही विशेष बल दिया है। रामानुज के मतानुसार ईश्वर जीवों के ज्ञान का विकास एवं संकोच करते हुए उनकी समस्त क्रियाओं का नियमन करता है। भास्कर मत में तो जीव स्वतः ईश्वर से सम्बद्ध है। उपाधि के कारण ही जीव ईश्वर से भिन्न दिखलाई पड़ता है। विज्ञान भिक्षु के अनुसार यद्यपि जीव वस्तुतः ईश्वर से भिन्न है लेकिन जीव ईश्वर स्वभाव सम्पन्न है, अतः ईश्वर से जीव अभिन्न है। इस प्रकार विज्ञान भिक्षु के मतानुसार भी जीव एवं ईश्वर में अंश—अंशी भाव सम्बन्ध है।

बल्लभ का जीव—ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्त उपर्युक्त सभी आचार्यों के सिद्धान्त से भिन्न है। जीव ईश्वर का अंश, ईश्वर से अभिन्न और जीवों का जीवत्व ईश्वर की आविर्भाव एवं तिरोभाव क्रियाओं का फल है। आविर्भाव एवं तिरोभाव क्रियाओं के द्वारा ही ईश्वर की कुछ शक्तियाँ एवं गुण जीव में तिरोभूत हो जाते हैं और कुछ आविर्भूत हो जाते हैं।

cYyHk dgrs gSa fd tho czã ds vkuUn rRo dk ifj.kfr fodkl (Involution) होने से उसमें से प्रकट हुए हैं, अग्नि में से अग्नि—स्फृलिंग की तरह। बल्लभ शंकर के इस मत से सहमत नहीं है कि वे अविद्या या माया से उत्पन्न हैं। अतः उनकी सत्ता केवल व्यावहारिक ही नहीं है, जैसा कि शंकर का मत है। पारमार्थिक दृष्टि से भी वे सत्य हैं। आत्मा चित् स्वरूप हैं, अनन्त है, नित्य है, अणुरूप है और ब्रह्म का अंश है। वे वास्तविक कर्त्ता और अपने कर्मों के फलों का भोक्ता है। शंकर के विपरीत, बल्लभ का यह मत है कि जीव एवं ब्रह्म के बीच शुद्ध ऐक्य नहीं है। वह ब्रह्म का अंश है। प्रसिद्ध श्रुतिवचन 'तत्त्वमसि' भी जीव एवं ब्रह्म के बीच शुद्ध ऐक्य की भिक्षा नहीं देता। वह केवल सार की एकता ही बताता है। इस श्रृतिवचन का अर्थ केवल यह होता है कि जीव एवं ब्रह्म सारतः एक है। जीव अपनी सत्ता के लिए तत्त्व पर निर्भर करता है। यह वैसे ही जैसे कि स्वर्ण की अँगूठी अपने अस्तित्व के लिए स्वर्ण पर निर्भर करती है।

कारणत्मक अक्षर ब्रह्म से सच्चिदानन्दात्मक अणु—अंश, बृहद् अग्नि राशि के छोटे—छोटे स्फुलिंग की तरह निकलते हैं। अक्षर ब्रह्म या भगवान का स्वभाविक धर्म विशुद्ध रास भी इसी प्रकार खण्डित होकर अणु—परिमाण में प्रति अंश से युक्त रहता है। मूल से अंश निकले के कारण भगवदिच्छा से प्रत्येक अंश में ही सत्वांश प्रबल और आनन्दांश तिरोहित होता है। यह चित् प्रधान, लुप्तानन्द, निरूपाधिक ब्रह्माणु ही 'जीव' शब्द से वाच्य है। भगवान का चिदंश ही जीव है। सृष्टि के समय ही जीव से भगवान का आनन्दांश तिरोहित होता है। ऐश्वर्य आदि का तिरोभाव उसके बाद होता है। जीव अणु है, किन्तु भगवदाविष्ट अवस्था में, अर्थात् आनन्द अंश की अभिव्यक्ति के समय व्यापकता आदि भगवद धर्म उससे प्रकट होते हैं, लेकिन तब भी जीव का व्यापकत्व सिद्ध नहीं होता। यशोदा की गोद में स्थित कृष्ण जिस प्रकार सर्वजगत् के आधार रूप में प्रकाशित हुए थे, उसी प्रकार भगवदाविष्ट जीव से भी कोटि—कोटि ब्रह्मांड प्रकाशित हो सकते हैं। अग्नि के सम्पर्क में लोहे के खण्ड में दाहकता आती है, लेकिन

इसलिए दाहकता लोहे का धर्म है, यह नहीं कहा जा सकता। व्यापकता भी उसी प्रकार आनन्दांश के सम्बन्ध से चिदंश में प्रकाशित मात्र होती है। (तत्त्वदीप और प्रकाश, पृ. 83)।

जीव सृष्टि का अर्थ बल्लभगत में यह नहीं है कि जीव अनित्य हैं। वास्तव में, जीव नित्य है, लेकिन जीव के जिस सृष्टि या निःसृति की बात कही गई है, वह उद्‌गमबोधक, उत्पत्तिवाचक नहीं है। व्यापक होने पर भी ब्रह्म से अंश का निकलना असम्भव नहीं। वस्तुतः उपादान, उपादेय, अधिकरण एवं व्यापार सभी ब्रह्ममय है।

बल्लभ अलग–अलग दृष्टि से जीवों के भेद करते हैं। एक दृष्टिकोण से जीव तीन प्रकार के हैं: (1) शुद्ध, (2) संसारी और (3) मुक्त। ब्रह्म से अणु के निकलने के बाद, आनन्दांश तिरोहित होने से जिस अवस्था का विकास होता है, उसे शुद्ध जीवभाव कहते हैं। यह शुद्ध चिद्‌भावमात्र है। वे ब्रह्म के श्री अंग से प्रकट हुए हैं। वे इस जगत् में नहीं आते। अतः अज्ञान आदि उन्हें स्पर्श नहीं कर पाते। इसके बाद अविद्या का सम्बन्ध संघटित होने से जीव वृद्ध या संसारी होता है। ऐसे जीव जन्म–मरण के चक्र में घूम रहे हैं। उस समय भगवदिच्छा से उसके ऐश्वर्य आदि गुण तिरोभूत होते हैं। शुद्ध–जीव में भगवान के ऐश्वर्य आदि षड्‌गुण का अंश रहता है। संसारी जीव भी तीन प्रकार के है : (1) दैवी, (2) मध्यम तथा (3) दानव या आसुर। दैवी जीव मोक्ष प्राप्त करने के योग्य हैं। मध्यमजीव जीवन–मरण के चक्र में घूम रहे हैं। दानव जीव जो अपने किसी पाप या दैवी शाप के कारण नरकगामी हो गये हैं। तात्पर्य यह है कि वृद्ध जीवों या संसारी जीवों में कोई–कोई दैवभावापन्न और कोई–कोई आसुर भावापन्न होते हैं। सूक्ष्म सद्‌वासना विशिष्ट मुक्ति–अधिकार को देवत्व कहते हैं। भगवान् जिनसे लीला कराना चाहते हैं उन्हें मुक्ति का योग्यता साधक देवत्व प्रदान करते हैं।[36] जीव के हृदय में उच्च भाव रहने पर भगवदिच्छा से ऐसा ही होता है और जिनके चित्त में नीच भाव स्थान पाता है, वे असद्‌वासनायुक्त होकर आसुर भाव प्राप्त करते है।[37] यह मुक्ति का प्रतिबन्धक है। यहाँ भी भगवदिच्छा ही मूल है। आसुर जीव स्थूल देह से नानाविध निन्दनीय कर्म करते हैं और उसके अनुसार नीच योनि में भ्रमण करते हैं। ये सदा संसारी हैं। भगवान जब तक आत्मरमण की इच्छा न करें, तब तक आसुर जीव की अविद्या और उसके कार्य की निवृत्ति की सम्भावना नहीं। लेकिन, वैसी इच्छा होते ही सर्वत्र विद्यमान अविद्या–कार्य संसार को भगवान् स्वयं ही नष्ट करे दें। तब जीवों को साधन करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। उस समय आसुर जीव भी शुद्ध अवस्था प्राप्त करेंगे।

शुद्ध जीव और संसारी जीव के अतिरिक्त तीसरे प्रकार के जीव मुक्त जीव हैं। ये अपने प्रयत्न और ईश्वर की कृपा से मोक्ष प्राप्त कर लिया है। मुक्त जीव दो प्रकार के हैं : (1) जीवन्मुक्त, और (2) परममुक्त। अविद्या की निवृत्ति होने से ही जीवन्मुक्ति अवस्था कही जा सकती है। सनक आदि मुनि जीवन्मुक्त हैं। जो व्यापक वैकुण्ठ या परम व्योम के अलावा अन्यान्य भगवद्–लोक में वास करते हैं, वे मुक्त हैं। उसके बाद भगवान की विशिष्ट कृपा के फलस्वरूप परमव्योम में प्रवेश होने से परामुक्ति या विशुद्ध ब्रह्मभाव होता है। दैव जीवों में कोई–कोई सत्संग पाकर मार्गानुरागजन्य श्रवणादि–सम्भूत फलरूपा स्वतन्त्र भक्ति द्वारा नित्य लीला में प्रवेश करते हैं।

एक अन्य दृष्टिकोण से भी जीवों का वर्गीकरण किया जाता है। इस दृष्टिकोण से भी जीवों को तीन वर्गों में रखा जाता है। (1) पुष्टि जीव, (2) मर्यादा जीव और (3) प्रवाही जीव।

(1) पुष्टिजीव–इनका स्वरूप ईश्वर द्वारा चुनी हुई आत्माओं का होता है। वे ईश्वर की भक्ति केवल उसके प्रति असीम प्रेम के कारण करती है। उनमें ईश्वर का आनन्द अंश प्रधान रहता है। बल्लभ का मत है कि पुष्टि–जीवों में भी तारतम्य (श्रेणीकरण) है। वह इस प्रकार है :

(1) प्रवाह पुष्टि–वे जीव जो अपने आश्रम के धर्मों का पालन केवल लोक संग्रह के लिए करते हैं। ऐसे जीवों में ध्रुव, निमी इत्यादि आते हैं। **(2) मर्यादापुष्टि**–ऐसे जीव जिन्हें ईश्वर की दिव्य विभूतियों का विशिष्ट ज्ञान रहता है। ऐसे जीवों में भीष्म आते है। **(3) पुष्टि–पुष्टि**–ऐसे जीव जो ईश्वर की विशेष कृपा प्राप्त करने के योग्य रहते हैं। भवगत स्वरूप को समझाने के लिए वे सर्वज्ञ बन सकते हैं। एसे जीवों में नारद, ऋषभ इत्यादि का नाम आता है। **(4) शुद्ध पुष्टि**–ऐसे जीव जिनमें ईश्वर के प्रति प्रेम उमड़ उठा है। ऐसे जीवों को ईश्वर पूर्ण हृदय से कृपा प्रदान करते हैं। ऐसे जीवों की संख्या अत्यन्त ही कम होती है।

(2) मर्यादा जीव– ऐसे जीव जो वेदों का अध्ययन करते है और उसमें बताये हुए ज्ञान मार्ग से मोक्ष प्राप्त करते हैं। ऐसे जीवों में ईश्वर का चित अंश प्रधान रहता है। वे ईश्वर की भक्ति मोक्ष प्राप्त करने के लिए करते हैं। बल्लभ कहते हैं कि ये जीव ईश्वर की वाणी में प्रकट हुए हैं। चित् अंशप्रधान होने के कारण ये जीव बौद्धिक मुक्ति प्राप्त करने के योग्य हैं। ऐसे जीव मोक्ष प्राप्त करने पर अक्षर ब्रह्म में लय हो जाते हैं।

(3) प्रवाही जीव–ऐसे जीव जो मोक्ष प्राप्ति का विचार भी नहीं करते। वे इन्द्रियजन्म आनन्द के उपभोग में मग्न हैं। ऐसे जीवों की नियति संसार–चक्र में घूमते रहना है। बल्लभ कहते हैं कि ये जीव ईश्वर की मनोसृष्टि हैं। ये जीव केवल ईश्वर की इच्छा में से प्रकट होते हैं। उनके चिदांश या आनन्दांश का इन जीवों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इनके संसार का अन्त हो जाने पर ये तमोगुण में लय हो जाते हैं, प्रवाही जीवों को भी पुनः दो वर्गों में

रखा जा सकता है। (1) दुई और (2) अज्ञ। दुर्ज्ञ जीव जो प्रकृति से ही दुष्ट हैं। अज्ञ जीव जो असुरों के प्रभाव से गलत रास्ते पर चले गये हैं। उन्हें धीरे–धीरे सही रास्ते पर लाया जा सकता है।

मध्वाचार्य के समान बल्लभ भी केवल कुछ ही जीवों को मोक्ष का अधिकारी समझतें हैं। अन्य जीव ऐसे हैं जो या तो अनन्त काल तक संसार चक्र में घूमते रहते हैं या नरक में सड़ते रहते हैं।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. ''अ–लौकिको हि वेदार्थो न युक्त्या प्रतिपद्यते तपसा वेद–युक्त्या तु प्रसादात्यरमात्मनः।'', चौखम्भा प्रकाशन, पृ. 13
2. ब्रह्मरूप, बल्लभभाष्य, चौखम्भा प्रकाशन, पृ. 20
3. 'मनु' 2/28
4. बल्लभ के अनुभाष्य पर पुरुषोत्तम की टीका, पृ. 25–6; एवं द्रष्टव्य, भारतीय दर्शन का इतिहास, एस.एन. दासगुप्ता, हिन्दी अनुवाद, अंक–4–5, पृ. 281
5. वही, पृ. 27; (दासगुप्ता), पृ. 282
6. दासगुप्ता, भारतीय दर्शन का इतिहास, अंक, IV, पृ. 283, ''फलकामाद्यनुपयोगातनेनैव तत् समर्पणात् नित्यत्वादप्यर्थ–ज्ञानस्य न फल–प्रेप्सुरधिकारी।'' अनुसार (बल्लभ) पर पुरुषोत्तम की टीका, पृ. 43
7. वही, पृ. 284, ''प्रकार भेदेनापि काण्ड द्वयस्यापि ब्रह्म प्रतिपादक तयैकवाक्यत्व समर्थन मीमांसा द्वय स्यैकशास्त्रस्य सूबनेन वृत्तिका रविरोधतोऽपि बोधितः।'', अनुभाष्य–पुरुष की टीका।
8. वही, पृ. 284, ''प्रकार भेदेनापि काण्ड द्वयस्यापि ब्रह्म प्रतिपादक तयैकवाक्यत्व समर्थन मीमांसा द्वय स्यैकशास्त्रस्य सूबनेन वृत्तिका रविरोधतोऽपि बोधितः।'', अनुभाष्य–पुरुष की टीका।
9. दासगुप्ता, भारतीय दर्शन का इतिहास, अंक, IV, पृ. 286, एवं अनुभाष्य पर टीका पृ. 74 'टीकाकारपुरुषोत्तम रामानुज प्रणाली के अनुसार ईश्वरवादी युक्तियों की आलोचना करते हैं।'
10. तैत्तिरीय उपनिषद्–2–6
11. अणुभाष्य–ब्र.सू. 3/2/127, चौखम्भा प्रकाशन, संस्करण 1906
12. गीता 8, 21–22, 15, 16–18
13. ''सच्चिदानन्द रूपेश्यो यथायथं जड़ाश्चिदंशजीवबन्धनपरिकरभूताः सदंशाः जीवाश्चिदंशा बन्धनीया आनन्दांशास्त्रन्नियामका अन्तर्याभिनश्च विस्फूलिंगन्यायेन व्युच्चरन्ति।'', अणु भाष्य–प्रकाश, पृ. 161–162
14. ''सजातीया जीवा विजातीय जड़ाः स्वगता अन्तर्यामिनः। त्रिष्वपि भगवान् अनुस्यूतः।'', तत्वार्थदीप प्रकाश 1,66
15. ''उपादानस्य कार्यम् या व्यवहारगोचरं करोति साशक्तिराविर्भाविका तिरोभावश्चतद्योग्यत्वम्।''– प्रस्थान रत्नाकर, पृ. 26
16. पुरुषोत्तमः प्रकाश टीका, अणुभाष्य, पृ. 90
17. प्रस्थान रत्नाकर, पृ. 159, चौखम्भा संस्करण
18. अणुभाष्य, 1/4/23
19. प्रस्थान रत्नाकर, पृ. 163
20. अणुभाष्य, 2/1/34
21. अणुभाष्य, 1/4/23
22. पुरुषोत्तम अणुभाष्य की टीका, पृ. 90
23. पुरुषोत्तम अणुभाष्य की टीका, पृ. 118
24. तत्वदीपन पर बल्लभ की टीका, पृ. 106
25. ''अनुभव विषय योग्यता आविर्भावः। तद्विषयत्व योग्यता तिरोभावः।'', विद्वन्मण्डन, पृ. 7
26. अणुभाष्य 1/1/4
27. ''प्रपंचो न प्राकृतः नामि परमाणुजन्यः नापि निवर्तात्मा, किन्तु भगवदकार्यः, तादृशोऽपि भगवदरूपः।'', तत्त्वार्थदीप प्रकाश, 1, 23

28. ''वाचारम्मणवाक्यानि तदनन्यत्वबोधनात्। न मिथ्यात्वाय कल्पन्ते जगतो व्यास गौरवात्।'' तत्त्वार्थदीप 1, 83

29. ''अत्रापि बौद्ध एवघटो मिथ्या, नतु प्रपंचान्तर्वर्तीति निष्कर्षः।'', बादावलि, पृ. 6, बृहन्मन्दिर पुष्टिमार्ग, सिद्धान्त कार्यालय, बम्बई, 1920

30. डॉ0 गोपीनाथ कविराज, भारतीय साधना की धारा, पृ. 74–75

31. वही,

32. वही,

33. पुरुषोत्तम ने कहा है– ''जीवोऽणुरपि ब्रह्मभावेऽणुत्त्वाविरोधेनैव व्यापकः सकल जगदाधारो भवित।'', अणुभाष्य प्रकाश 2/3/30

34. डॉ. गोपीनाथ कविराज, भारतीय साधना की धारा, पृ. 76

35. डॉ. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, अंक द्वितीय, पृ. 666

36. ब्रह्मवाद में है कि सृष्टिकाल में शक्ति पृथक्कृत होती है उस अवस्था में शक्ति–परिगृहीत भाव आसुरत्त्व और स्व–परिगृहीत भाव ही देवत्य है। अर्थात् भगवान् जिनसे विवाह करते हैं (परिग्रह), वे दैव जीव हैं। माया विवाहित जीव आसुर। किसी का त्याग नहीं किया जा सकता। भगवान् और दैव जीव कोई किसी का त्याग नहीं करते। माया और आसुर जीव भी उसी प्रकार परस्पर को नहीं छोड़ सकते। दोनों में ही भगवदिच्छा ही मूल कारण है। आसुर जीव भगवान् को नहीं पाता, क्योंकि उसमें मायाजनित मोहवश भगवान की ज्ञान तथा भक्ति रूप दो शक्तियों का कार्य नहीं होता, इसलिए उसका सायुज्य नहीं हो सकता। पुरुष का अंशभूत वीर्य जैसे स्त्रीगर्भ में प्रविष्ट और स्त्रीगृहीत होने से फिर पुरुष में प्रविष्ट नहीं करता, वैसे ही आसुरजीव भगवान् में प्रवेश नहीं कर सकता। (दृष्टव्य–ब्रह्मवाद विवरण, गोपाल कृष्ण भट्ट–कृत, 30–31; और दृष्टव्य डॉ0 गोपीनाथ कविराज, भारतीय साधना की धारा, पृ 67–68

37. प्रकृति यद्यपि ब्रह्म शक्ति और तदभिन्न होने से आनन्दात्मक हैं, फिर भी प्रकृति में प्रविष्ट असुर आनन्द को लेश भी नहीं पाते, क्योंकि भगवान उनके निकट अपना आनन्दरूप प्रकट नहीं करते। दैवी माया और आसुरी (एवं राक्षसी) माया में भेद है। माया का कार्य मोह दोनों में रहने पर भी पहली जगह वह मोक्ष का निमित्त है, दूसरी जगह बन्ध के लिए समझना होगा। प्रकृति जब भगवान में लीन हो जाती है और उसके साथ प्रकृतिस्थ आसुर जीव भी भगवान में लीन होते हैं, तब भी भगवद्–सम्बन्ध परम्परारूप में होने पर भी–आसुरजीव को आनन्द लाभ नहीं होता, क्योंकि उस समय व्यवधान रहता है। यही व्यवधान ही प्रलय और मुक्ति का भेदक है। मुक्ति स्व–रूप का आनन्दानुभव–रूप है, प्रलय केवल उदरवर्तित्व एवं स्व–विषयानुभव रूप। आनन्दानुभव भक्तिमास–साध्य है, भक्ति स्नेह रूपा है। यह आनन्दानुभव मोक्षदशा में होता है और तब भक्त भगवान के हृदय में लक्ष्मी की भाँति स्थितिलाभ करता है। प्रलय में केवल निद्रावत क्लेश का उपाय होता है (ब्रह्मवाद, 32–34)। जीव–मात्र ही यद्यपि स्वभावतः भगवान् का अंश है, फिर भी दैवादि–विभाग क्रीड़ा–निमित्त भगवदिच्छामूलक है। इसलिए उसमें वैचित्र्य है। (वही, 26–27); और डॉ0 गोपीनाथ कविराज, भारतीय साधना की धारा, पृ. 68

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 259-265

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

सन्त विनोबा भावे की राजनीतिक दृष्टि

डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय *

विनोबा भावे का जन्म 11 सितम्बर, 1895 में हआ। विनोबा भावे का मूल नाम विनायक नरहरि भावे था। उनकी मां उन्हें प्यार से विन्या बुलाती थी। विनोबा के पिता का नाम नरहरि भावे तथा माता का नाम रुक्मिणी बाई था। महाराश्ट्र के कोंकण क्षेत्र में गोगादा गाँव उनकी जन्मभूमि है। उनके पिता की गणित व रसायन विज्ञान में काफी रूचि थी। उन दिनों रंगों का बाहर से आयात करना पड़ता था। नरहरिभावे रात दिन रंगों की खोज में लगे रहते थे। उनकी एक इच्छा थी कि भारत को इस मामले में आत्मनिर्भर बनाया जा सके। विनोबा की मां एक विदुशी महिला थी। वह उदार चित्त व भक्तिभाव में डूबी रहती थी इसका असर उनके दैनिक कार्य पर भी पड़ता था। विनोबा के अलावा रूक्मिणी बाई के दो और बेटे थे। विनोबा सबसे बड़े और फिर बाल्कोबा और षिवाजी थे। गांधीजी द्वारा विनायक को विनोबा नाम दिया गया।

विनोबा का मन हमेशा अध्यात्म चिंतन में लीन रहता न उन्हें खाने–पीने की सुध न रहती थी, न स्वाद की खास पहचान थी। विनोबा को अध्यात्मिकता के संस्कार देने, उन्हें भक्ति वेदांत की ओर ले जाने में, बचपन में उनके मन में संन्यास और वैराग्य की प्रेरणा जगाने में उनकी मां रूक्मणी बाई का बड़ा योगदान था। बालक विनायक को माता–पिता दोनों के संस्कार मिले थे। गणित की सूझ–बूझ और तर्क सार्म्थय, विज्ञान के प्रति गहन अनुराग, परम्परा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि कोण और तमाम तरह के पूर्वाग्रहों से अलग हटकर सोचने की कला उन्हें पिता की ओर से प्राप्त हुई जबकि मां की ओर से मिले धर्म और संस्कृति के प्रति गहन अनुराग, प्राणीमात्र के कल्याण की भावना जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, सर्वधर्म समभाव, सहअस्तित्व और सम्मान की कला। आगे चलकर विनोबा को गांधीजी का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी माना गया। आज भी कुछ लोग यही कहते हैं। मगर यह विनोबा के चरित्र का एकांगी और एकतरफा विश्लेषण है वे गांधीजी के 'आध्यात्मिक उत्तराधिकारी' से बहुत आगे, स्वतंत्र सोच के थे। मुख्य बात यह है कि गांधी जी के प्रखर प्रश्नोत्तर के आगे, उनके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र मूल्यांकन हो ही नहीं पाया।

विनोबा 7 जून, 1916 को महात्मा गांधी के सम्पर्क में आये और उसके बाद यह सम्पर्क एकता चला गया। गांधी के साबरमती आश्रम से वर्धा के पवनार आश्रम तक विनोबा का बौद्धिक क्रियाजगत रहा है। हरिजनों द्वारा तेलंगाना में साम्यवादी प्रभाव के विरुद्ध कृषकों की समस्या का निवारण, नई तालीम, राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार, भूदान यज्ञ, ग्राम दान, जीवन दान, सर्वसेवा से संघ की गतिविधियां, डाकुओं की समस्या का समाधान और अंत में गौवध–निषेध आदि समस्त कार्य विनोबा के अथक प्रयास के ही परिणाम थे।

विनोबा में अपने राजनीतिक दर्शन में राजनीति को व्यवस्था सूचक पद बताया है इन्होंने राजनीति के बारे में सम्पति और सामाजिक सुख–दुख के संतुलन की व्यवस्था की बात कही है। उनके अनुसार राजनीति का मूलभूत और स्वाभाविक अर्थ है कम और अधिक सामर्थयवान व्यक्ति आपस में मिलकर व्यवस्था कैसे करे। विनोबा "राज्य शक्ति'' और "राज्य सत्ता'' के स्थान पर लोकशक्ति और लोकसत्ता चलाना चाहते थे इसलिए राज्य की सार्वभौमिकता का सवाल ही नहीं उठता।

विनोबा ने गांधी के अहिंसक प्रजातंत्र और पाश्चात्य राज्य पद्धतियों की त्रुटियों के आधार पर आदर्श और निर्दोष राज्य पद्धतियों के लिए व्यवस्थित ढंग से सैद्धान्तिक रूप से कुछ अनिवार्य अपेक्षाओं का प्रतिपादन किया जिसमें "ग्राम जनतंत्र', और "लोकसेवक संघ', के विचार के स्थान पर "लोकशक्ति' और "लोकनीति' नाम दिया तथा इनके लिए व्यापक आंदोलन चलाये जिसे सर्वोदय आंदोलन कहते हैं। विनोबा के आदर्श राज्य की विशेषता यथा–सर्वराष्ट्रीय मातृभाव, अल्पसंख्यको और बहुसंख्यकों का हितैक्य, सभी का सर्वांगीण और सम्मान विकास, अल्पमत शासन, न्यूनतम आय और तटस्थ या मुक्त ज्ञान का प्रचार आदि है।

* *एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, सेस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर (उ.प्र.)*

विनोबा भावे गाँधी विचारधारा के अग्रणी व्याख्याकार है उन्हें भारतीय दर्शन परम्परा में मूर्धन्य स्थान प्राप्त हैं। उन्होंने गांधी के समान ही अपने चिन्तन धारा में व्यक्ति को केन्द्रीय स्थान प्रदान किया और व्यक्ति के महत्त्व को स्थापित कर उसे नए आयाम प्रदान करने का सफल प्रयास किया। विनोबा के चिन्तन का विश्लेषण करने पर जो सबसे महत्वपूर्ण बात सामने आती है वह यह है कि वे हर कार्य को प्रारम्भिक अवस्था से करने पर बल देते हैं तथा किसी भी समस्या पर चिन्तन करने की अपेक्षा उस समस्या का समाधान करना चाहते थे, अर्थात् वे व्यक्ति को एक कर्म प्रधान जीव मानते हैं ऐसा उन्होंने अपने कार्यों के द्वारा भी सिद्ध करने का प्रयास किया।

जिस प्रकार गांधी ने अन्याय का प्रतिकार करने के लिए नैतिक साधनों का प्रयोग करते हुए साधनों की पवित्रता में विश्वास रखते हुए नवीन समाज की रचना के प्रयास किये ठीक उसी प्रकार विनोबा ने भूदान, ग्रामदान आन्दोलन के द्वारा प्रचलित अन्यायपूर्ण भू–व्यवस्था के विरूद्ध न केवल उपयुक्त वातावरण बनाया बल्कि कुछ दूर तक उसे दूर भी किया। भूदान, ग्रामदान आन्दोलन वस्तुतः जमीन की शिक्षा का आन्दोलन नहीं बल्कि यह तो अन्यायपूर्ण प्रचलित भू–व्यवस्था के विरूद्ध एक अहिंसक आन्दोलन है।

विनोबा भावे के विचारों में समाजवादी तत्व : विनोबा के विचारों में सही समाजवाद का अर्थ "सर्वोदय' है। सर्वोदय अन्य वादों से भिन्न है। वह ऐसा समाजवाद है जो न तो मार्क्सवाद से मिलता है, न संघवाद से मेल खाता है और न गिल्ड समाजवाद के समान है। सर्वोदय समाज सच्चा समाजवाद का रूप होगा। उसकी स्थापना के पीछे मानव की सर्वोच्च भावनायें होगी। कार्लमार्क्स का समाजवाद व लेनिन या स्टालिन का साम्यवाद उसके मुकाबले में कुछ भी नहीं है। समाजवाद औद्योगीकरण व केन्द्रीकरण पर बल देता है परन्तु सर्वोदय में इन दोनों व्यवस्थाओं का अन्त आयेगा। समाजवाद या साम्यवाद में श्रमिकों की तानाशाही आवश्यक है। सर्वोदय एक कृषि प्रधान देश के लिये उपयुक्त है जबकि समाजवाद उद्योग प्रधान देशों के लिए उपयुक्त होता है।

विनोबा का मानना है कि सर्वोदय समाज का आधार नैतिक है। व्यक्ति–व्यक्ति के परस्पर सम्बन्ध कैसे हों, इसी पर समाजवाद विचार करता है। जिस समाजवाद में व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण हो जाता है, वह समाज या राज्य का पूँजी बन जाता है। वह सच्चा समाजवाद नहीं। रूस तथा चीन जो अपने को समाजवादी कहलाने में गौरव का अनुभव करते हैं, व्यक्ति को कोई स्वतंत्रता नहीं देते। वास्तव में समाजवाद का ढोंग रचते हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता जिस समाज में न होगी उस समाज में व्यक्ति का विकास रुक जाएगा। व्यक्ति के विकास पर ही समाज का विकास आधारित है।

विनोबा के अनुसार समाजवादी कल्पना भौतिक कल्पना है। भौतिकवाद में प्रेम कहां, वहाँ तो प्रतिस्पर्धा तथा प्रतिद्वन्द्विता का राज्य है। आवश्यकताओं की संख्याओं में वृद्धि और फिर उनकी प्राप्ति के लिये पागलपन शान्ति तथा सुख कहा जा सकता है। समाजवाद में ईश्वर को पूंजीवादी समझ कर त्याग दिया जाता है, धर्म को भी पूंजीवादियों का समर्थक मानकर हटा दिया जाता है। जब सृष्टि के कर्ता के अस्तित्व से इन्कार किया जायेगा, तब वैज्ञानिक समाज निःस्वार्थ रह सकेगा, और उसकी योजना असफल होगी। सर्वोदय धर्म, ईश्वर तथा नैतिकता पर जोर देता है। अतः वह स्थायित्व का पुट रखता है।

विनोबा का समाजवादी चिन्तन राज्य को सर्वोच्च स्थान देता है और उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण करना चाहते थे। वे सार्वजनिक उद्योग तथा नियोजन एवं समाज सेवा पर अधिक बल देते हैं वे व्यक्ति के महत्व को गौण समझते थे ऐसे वातावरण में व्यक्ति अपना उचित प्रकार से विकास नहीं कर सकता है। सर्वोदय में व्यक्ति को समानता, स्वतन्त्रता तथा भाई–चारे की भावना प्राप्त होती है, इस वातावरण में व्यक्ति का विकास स्वतः हो जाता है। सर्वोदय सच्चा समाजवाद है जिसकी तुलना न तो ब्रिटेन के समाजवाद और न ही रूस के साम्यवाद से की जा सकती है। सर्वोदय बिल्कुल नई समाज व्यवस्था है जिसमें कार्यकर्ता लोग निःस्वार्थ भाव से लोकहित की सेवा में लगते हैं। सर्वोदय में हृदय परिवर्तन पर जोर दिया गया है समाजवाद में ऐसा नहीं है।

विनोबा का कहना है कि मार्क्स ने स्थायी समाज के अभ्युदय के कौशल के स्थान पर पूंजीवादी समाज में संघर्ष का उद्घोष किया था। लेनिन ने पूंजीवादी समाज को परास्त कर राजशक्ति द्वारा समाज परिवर्तन का कौशल प्रकट किया था। किन्तु इसकी मूल्यवत्ता भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र रही है। विनोबा ने गांधी विचार के आधार पर समतापूर्ण समाज का निर्माण और समाज की प्रत्येक इकाई में सद्गुणों का विकास एक ही सिक्के के दो पहलू माना है। विनोबा एक ऐसे समाज के आकांक्षी है जिसमें व्यक्ति और समाज के विकास का पूर्ण अवसर हो। यह समतापूर्ण सर्वोदय समाज है।

विनोबा का मानना था कि समाजवाद की स्थापना प्रबल व्यक्ति द्वारा निर्बल व्यक्ति को प्रताड़ित करके हुआ है। समाजवाद की स्थापना शोषण के आधार पर हुई है। विनोबा के विचार में शोषण हिंसा है। विनोबा का मानना है कि समाजवाद में समाज के साथ न्याय नहीं कर सकते हैं समाजवाद समाज को रूपान्तरित करना चाहता हैं किन्तु इसका चिन्तन सर्वांगीण नहीं है। यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता का विरोधी है। समाजवाद में व्यक्ति के पास कुछ नहीं है, न उसका शरीर और न उसकी इच्छा। समाजवादी सरकारे शासन या शिक्षा सभी कुछ राज्यवादी या अपने सिद्धान्तों के अनुकूल चाहते हैं।

विनोबा का सर्वोदय से तात्पर्य न तो केवल पूंजीवादी वर्ग के उत्थान से है और न ही केवल सर्वहारा दल की निरंकुशता से। सर्वोदयी समाज एक ऐसी नैतिक शिला पर आधारित होगा जिसमें सभी का कल्याण हो, जिसमें न वर्ग संघर्ष हो न ही हिंसा। इसमें शोषक और शोषितों के बीच प्रेम व सद्भावना के साथ समन्वय स्थापित होगा। विनोबा की ग्रामदान की योजना एक प्रकार से अहिंसक ग्राम साम्यवाद है। विनोबा ने परम्परागत समाजवाद की अवधारणा में विवेकपूर्ण, वास्तविक और वैज्ञानिक परिवर्तन से नये समाज की संरचना या नूतन जीवन दर्शन को प्रशस्त किया है।

गाँधीवादी समाजवाद बनाम सर्वोदय : अवधारणात्मक पक्ष : विनोबा का सम्पूर्ण समाजवादी दर्शन इनके सर्वोदय में निहित है। सर्वोदय विचार को आगे बढ़ाने वाले सन्त विनोबा भावे ने कहा कि सर्वोदय समाज की अवधारणा अनेक समस्याओं का समाधान है "जब लोग मुझ से सर्वोदय समाज के संगठन के स्वरूप के बारे में पूछते हैं, तो मैं उन्हें बतलाता हूँ यह एक क्रान्तिकारी विचार है और न कि एक संगठन है। यह ऐसी चीज है जिस पर विचार और क्रिया की जाये।'' इसी बात को स्पष्ट करते हुए विनोबा ने कहा, "महानतम संख्या के महानतम भालाई के पाश्चात्य विचार में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की समस्याओं के कीटाणु निहित हैं, किन्तु सर्वोदय का विचार जैसा कि गीता में उपदेश दिया गया है, सबकी भलाई में स्वतः अर्पित कर देना है। यह वास्तव में सत्य और अहिंसा के प्रति हमारी ओर से निरपेक्ष आस्था की मांग है। हमें अपने निजी एवं सावजानक जीवन में कभी भी असत्य का सहारा नहीं लेना चाहिए, न ही अपने व्यापार अथवा अन्य धन्धों में ऐसा करना चाहिए। हमें यह प्रयास करते रहना चाहिए कि हमारे जीवन में हिंसा को कोई स्थान न मिले।' इस महान विचार के पीछे जो कुछ है हमें उस पर चिन्तन करना चाहिए उसे अभिव्यक्ति देनी चाहिए और हर समय उसका स्मरण करते रहना चाहिए...संसार की सभी समस्याओं का समाधान इसमें मिलेगा।

विनोबा ने सर्वोदय समाज की भावना को न केवल सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि से जोड़ा, अपितु यह भी कहा कि सच्चा सर्वोदयी अथवा सेवक ईश्वर का अनन्य भक्त होगा, तभी यह सबका भला कर पायेगा। इस भावना की पुष्टि करते हुए विनोबा ने संत तुलसीदास के इस कथन को उद्धृत किया, "सामान्यतः लोग अपनी अपनी वैयक्तिक भलाई चाहते हैं। कुछेक अपने ही लोगों का भला चाहते हैं लेकिन केवल ईश्वर के सेवक ही सबका भला चाहते हैं।

सर्वोदय समाज के अर्थ और निहितार्थ को स्पष्ट करते हुए, विनोबा ने कहा "दूसरों की आवश्यकताओं का ध्यान भी रखो और अपनी आवश्यकताओं को इस ढंग से सन्तुष्ट मत करो कि अन्य लोगों को कष्ट हो। विनोबा ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जो प्रेम तथा सत्य पर आधारित है।

सर्वोदय एक नैतिक विचारधारा है। सर्वोदय की दृष्टि से जैसा कि गीता में कहा गया है "सर्वेभूतो हिताया अर्थात् समाज के सभी व्यक्तियों का हित। सर्वोदय की विचारधारा जीवन का वास्तविक सुख भोग में नहीं, अपितु त्याग मानती है और यही कारण है कि सर्वोदय भावी संयोजन की व्यवस्था भी प्रचलित पूंजीवादी व समाजवादी अथवा साम्यवादी संयोजन व्यवस्था से भिन्न है। सर्वोदय संयोजन दूसरों को जिलाने के लिए। सर्वोदय समाज की मौलिक इच्छा विकेन्द्रीकरण में निहित है जो आर्थिक व राजनैतिक दोनों ही क्षेत्रों में समानरूप से प्रतिस्थापित होती है इसका लक्ष्य शासन मुक्त तथा शोषण मुक्त समाज की रचना करना है। संयोजन की प्रक्रिया में कुछ गिने चुने अधिकारियों का हाथ न होकर समस्त जनता का हाथ होगा।

सर्वोदय से हमें यह प्रेरणा मिलती है कि दूसरों की कमाई को नहीं रखना चाहिये। हमें अपना भार दूसरों पर नहीं डालना चाहिए। दूसरे के धन को हम अपनी कमाई नहीं कह सकते इन दो नियमों के पालन से सर्वोदय समाज का प्रचार दुनिया में हो सकता है। विनोबा का मत है कि एक छोटा सा बच्चा भी सर्वोदय समाज का सेवक बन सकता है अगर वह दूसरों की सेवा करता हो और कुछ–न–कुछ पैदा करता है।

उन्होंने सर्वोदय की व्याख्या करते हुए लिखा है कि पश्चिम के लोगों ने "अधिक से अधिक लोगों के सुख का विचार रखा वास्तव में इसी में अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के झगड़े का बीज निहित है, लेकिन सर्वोदय की दृष्टि जैसा कि गीता में कहा है सर्वभूतों के हितों पर रत होने की है। उसके लिए हम सबको सत्य, अहिंसा की निष्ठा बढ़ानी है। अपने निजी और सामाजिक जीवन में तथा व्यापार उद्योग आदि में कभी भी असत्य का प्रयोग नहीं करना है।

जहाँ तक हो सके रचनात्मक कार्यक्रम बनाया गया है उसमें जितना बन सके करना व्यक्तिगत तौर पर मित्रों के साथ और जरूरत पड़ने पर स्थानिक संस्था बनाकर उसके पीछे जो महान दृष्टि है उसका विचार करना है और उसी का विचार यानी जप करना है। वे सर्वोदय शब्द को क्रान्तिकारी के साथ–साथ एक विचार मूलक और सर्वोदय के विचार को समन्वयात्मक मानते थे। उनका मत था कि इसमें अन्य विचारों के समन्वय की क्षमता है यह भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक स्वरूप के ही अनुरूप है। वे सर्वोदय को एक कार्ययोग भी मानते थे क्योंकि गांधी जी ने इसमें रचनात्मक कार्यक्रम जोड़कर इसे कर्म प्रधान बना दिया है।

विनोबा ने कहा है कि हमारा ज्ञान सर्वोदयकारी ह\ रचनात्मक कार्यक्रम हमारा कर्मयोग है तथा नाम स्मरण तथा परमेश्वर की सहायता लेकर अहिंसा आदि व्रतों का आचरण हमारा भक्ति मार्ग है। यही जीवन का सम्यक् दर्शन है जिससे दुनिया पावन होगी। विनोबा का मत था कि "सर्वोदय की कल्पना हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलती है। विनोबा ने सर्वोदय की धारणा और लक्ष्य स्पष्ट करते हुये कहा है कि–"इसका लक्ष्य कुछ व्यक्ति या व्यक्तियों का ही उत्थान नहीं है। इसका उद्देश्य अधिकतम संस्था का भी उत्थान नहीं है। हम अधिकतम संख्या के अधिकतम सुख से संतुष्ट नहीं हो सकते। हम तो सबसे ऊँचे के, नीचे के, सबल एवं निर्बल के, बुद्धिमान तथा बुद्धिहीन के सुख से ही संतुष्ट हो सकते हैं। इस प्रकार यह उपयोगितावादी दर्शन से भी भिन्न प्रतीत होता है।

विनोबा ने सर्वोदय समाज का शासन से मुक्त माना है। जिसमें जनता पर शासन का आवश्यक हस्तक्षेप नहीं होगा इसमें हस एक गाँव को स्वतन्त्रता होगी वह छोटे–छोटे स्वशासित ग्रामों का एक ढीला–ढाला संघ होगा। विकेन्द्रीकरण को अधिक महत्व दिया जायेगा। ऐसी व्यवस्था में राजनीतिक दलों की दलबन्दी का कोई स्थान नहीं होगा इसके स्थान पर विनोबा ने दल विहीन लोकतन्त्र की रूपरेखा दी। सत्ता की राजनीति के स्थान पर लोकनीति द्वारा शासन चलाया जायेगा। जनता का शासन होगा जिसमें पेशेवर राजनीतिज्ञों का कोई स्थान न होगा। लोकमत शक्ति होगी जिसमें पुलिस या दण्ड का भय नहीं होगा। इसमें शासन, प्रेम, समता, समानता व सहानुभूति पर आधारित होगा।

सर्वोदय के कतिपय आदर्श : आध्यात्मिक व नैतिक आदर्श : सर्वोदय के आध्यात्मिक व नैतिक आदर्श प्रचलित समाज की भौतिक मान्यताओं से सर्वथा भिन्न हैं। यही कारण है कि आज हमारे जीवन में प्रेम, सहयोग, सद्भावना, सत्य व अहिंसा के सभी मापदण्ड लुप्त होते जा रहे हैं। बिना नैतिक आदर्श की पूर्ति के समाज में न तो व्यवस्था दिखाई दे रही है ओर न ही लोकतंत्रीय जीवन सही अर्थों में सम्पन्न हो सकता है। आज भारत का नागरिक हताश, त्रस्त व आतंकित है। सर्वोदय के अन्दर इस त्रस्त निराश ध्वस्त सभ्यता के लिए उपचार उपलब्ध है और इसका प्रारम्भ विनोबा अन्तःशुद्धि से करते हैं। क्योंकि सर्वोदय प्रत्येक व्यक्ति के नैतिक जागरण की अनुभूति में ही पनपता है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, अस्तेय, शरीर श्रम स्वदेशी सर्वधर्म आदि गुण सर्वोदय के आंतरिक आधार हैं। भौतिक सुखों में वृद्धि करना, सर्वोदय समाज का लक्ष्य नहीं है यह तो जीवन का सादगी का मंत्र देता है।

आर्थिक आदर्श : आधुनिक युग में मानवीय जीवन की उपलब्धि हेतु आर्थिक समानता की अवधारणा को विनोबा भावे ने अत्यधिक महत्व दिया है। आर्थिक समानता के बिना अच्छे समाज की कल्पना निरर्थक है। विनोबा ने अपरिग्रह, अन्न श्रम तथा वेतन की समानता के माध्यम से आर्थिक समानता का आदर्श स्थापित करने का प्रयास किया है। विनोबा का कहना है कि आवश्यकताओं अथवा इच्छाओं को बहुगुणित करने के स्थान पर उनका परिसीमन करना चाहिए ताकि समाज में समन्वय एवं संतोष का वातावरण बना रहे। प्रकृति ने हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप अनुपात में सब वस्तुओं को उत्पन्न किया है। अतः प्रत्येक व्यक्ति द्वारा केवल अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुओं का उपयोग जाय तो विश्व में कोई भी व्यक्ति क्षुधा पीड़ित अथवा अन्य प्रकार से पीड़ित नहीं रहेगा। विनोबा के अनुसार किसी भी वस्तु का उत्पादन स्वयं के निमित्त न होकर राष्ट्र एवं समाज के निमित्त मानना चाहिए। उत्पादन समाज एवं राष्ट्र को अर्पित कर व्यक्ति स्वार्थ से ऊपर उठ जाता है।

विनोबा के आर्थिक समानता सम्बन्धी विचारों का यह तात्पर्य नहीं कि वे पूर्ण समानता अथवा गणितीय समानता के पक्षपाती हैं। विनोबा गणितीय समानता के स्थान पर औचित्यपूर्ण अथवा ऐसी समानता चाहते हैं जैसी कि हाथ की पांच अंगुलियों में होती है। पांचों अंगुलियां बराबर न होते हुए भी पूर्ण सहयोग से एक साथ मिलकर अनेक कार्य संपादित करती हैं। अंगुलियों में अन्तर भी इतना अधिक नहीं कि छोटी अंगुली एक इंच लम्बी हो और सबसे बड़ी एक फुट लम्बी। विनोबा के इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि यदि पूर्ण समानता असाध्य है तो असंतुलित असमानता भी हानिप्रद माननी चाहिए। इसके स्थान पर असमानता के माध्यम से समानता का प्रयोग होना चाहिए। विनोबा ने उदाहरण देते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि जैसे माता अपने बच्चों की पालन शक्ति, वय एवं आवश्यकता के अनुसार ही भोजन देती है वह भेदभावपूर्ण दिखाई देते हुए भी समानता का आदर्श माना जाना चाहिए।

आर्थिक भेदभाव मिटाने के लिए विनोबा ने सर्वोदय विचारधारा का प्रतिपादन किया है। उनका यह नारा है कि भारत के गांव आत्म–निर्भर हो जाएँ। वे अपने लिए उन वस्तुओं का उत्पादन करें जिनकी उन्हें आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति श्रम करें तथा उसे रोजी रोटी मिलती रहे। आर्थिक विकेन्द्रीकरण के साथ राजनीतिक एवं प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण भी लाया जाये। प्रत्येक गाँव एक स्वशासित इकाई माना जाए। ग्रामीण जनता अपने कार्यों का निष्पादन स्वयं करे और स्वशासन के माध्यम से अपनी कठिनाइयों का निराकरण भी स्वयं करे।

विनोबा ने भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के संदर्भ में 1951 में कहा था कि हमारा संविधान भारत के प्रत्येक नागरिक को शासन द्वारा रोजी–रोटी दिलान की व्यवस्था का प्रावधान रखता है। किन्तु योजना में इस तरह की कोई चर्चा नहीं है। योजना का उददेश्य सेना का विस्तार एवं भारी उद्योगों की स्थापना है न कि रोजगार की व्यवस्था करना। आवश्यकता यह है सबको रोजगार दिलाने की व्यवस्था की जाये और बाद में योजन बनायी जाये। राजनीतिक दृष्टि से यह बात कितनी भी अखरने वाली लगती हो किन्तु वास्तविक उद्देश्य यही होना चाहिए। यदि शासन को यह कार्य असंभव दिखाई दे तो ऐसे शासन की आवश्यकता नहीं है।

विश्वस्त वृति बनाम ट्रस्टीशिप की अवधारणा : विनोबा के अनुसार सही अर्थ में ट्रस्टीशिप सिद्धान्त का अभिप्राय है, शरीर, बुद्धि और संपत्ति–तीनों में से जो भी प्राप्त हो उसे सबके हित में लगाना।'' किसी भी परिस्थिति में यह अपरिग्रह का उत्तम उपाय है। प्रारम्भ से ही "ट्रस्टीशिप' शब्द का प्रयोग गलत अर्थ में हो रहा है। अतः विनोबा इस शब्द के बदले "विश्वस्त–वृति'' शब्द का प्रयोग करते हैं। उनके अनुसार विश्वस्तवृत्ति का अर्थ है– दूसरे पर विश्वास रखते हुए जीना। विनोबा मानते हैं कि व्यक्ति को स्वावलम्बी होना चाहिए साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे पर विश्वास करना चाहिए। विनोबा विश्वस्तवृत्ति का अर्थ व्यापक अर्थ में करते हैं परिवार में सदस्यों पर माता–पिता को संतान पर, संतान को माता–पिता पर, पड़ोसियों को पड़ोसियों पर, एक गांव को दूसरे गांव पर विश्वास करना चाहिए।

विनोबा उस समाजवादी रचना को "बौद्धिक आलस्य'' कहते हैं जिसमें सारे समाज को एक सांचे में ढाल कर यंत्रवत बनाने की योजना होती है जिसमें दूसरे पर विश्वास करने की आवश्यकता नहीं। लोक–संग्रह और व्यक्तिगत अपरिग्रह' का अर्थ भी विनोबा विश्वस्तवृत्ति से अपनी शक्ति को सबके भले के लिए उपयोग करना मानते हैं। विनोबा सभी शक्तियों के सामाजिक उपयोग पर जोर देते हैं। इससे स्पष्ट है कि गांधी जहाँ ट्रस्टीशिप शब्द पसंद करते हैं। विनोबा विश्वस्तवृत्ति को सामाजिक रचना का स्थायी मूल्य प्रदान करते हैं, परन्तु साथ ही इसके मूल में नैतिकता और आध्यात्मिकता पर विशेष बल देते हैं।

सवादय समाज की आर्थिक संरचना में क्रांतिकारी परिवर्तन करना चाहते हैं। विनोबा का विचार है कि लगान अनाज के रूप में लेना चाहिए। गाँव के कारीगरों तथा वैद्य जिसे जन–सेवकों को उत्पादन में से कुछ भाग मिलना चाहिए। गांव की आमदनी का कुछ भाग गांव के अनाथो, अपंगों तथा बूढ़ों को जीवन–खर्च के लिए दिया जायेगा अथवा संकट के समय उसका उपयोग होगा। गाँव में कच्चे माल से पक्का माल बनेगा। इस प्रकार गाँव का जीवन, खेती तथा उद्योग दोनों पर निर्भर करेगा। बिक्री या खरीद के लिए गाँव में सहकारी दुकान होगी।

अधिकांश उद्योगों में स्वामी ही कारीगर होगा। यदि कोई उद्योग परिवार की शक्ति के बाहर का है, तो इस पर आवश्यकतानुसार अधिकार ग्राम, क्षेत्र, प्रदेश या राष्ट्र का होगा और वही उसका संचालन करेगा। उनकी प्रबन्ध समितियों में मजदूरों के भी प्रतिनिधि होंगे। आधुनिक अर्थव्यवस्था के कारण नगरों की संख्या बढ़ रही है और उनकी आबादी में वृद्धि होती जा रही है इससे समाजशास्त्रीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। इन नगरों का सबसे बड़ा दोष यह है कि पड़ोसियों में न तो परस्पर परिचय होता है और न किसी प्रकार की सामुदायिक भावना। इनका वातावरण सर्वोदयी मूल्यों की स्थापना के प्रतिकूल पड़ता है। अतः सर्वोदय विचार नगरों के अनुकूल नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि नगर समाप्त कर दिए जाएंगे। यह अवश्य है कि नए समाज में उनका मूल्य घट जाएगा और उनकी वृद्धि पर रोक लगेगी। बड़े–बड़े नगरों को भी यथा सम्भव विकेन्द्रित करने की चेष्टा हो सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वोदयी समाज में छोटे कस्बों की संख्या में वृद्धि होगी। इसमें नागरिकों को वे सुविधाएँ प्राप्त होंगी जो आज बड़े–नगरों में उपलब्ध हैं। इन छोटे कस्बों में सामुदायिक भावना का विकास हो सकेगा और उनमें से बहुत से अवगुण न होंगे जिनके कारण आज नगरों का जीवन अभिशाप बनता जा रहा है।

ग्राम स्वावलम्बन के आदर्श की पूर्ति हेतु विनोबा का यह मानना है कि हमें समस्त प्रयासों से ग्राम उद्योग का विकास करना है। ऐसा करने से ग्राम स्ववलम्बन की भावना पूर्ण होगी। मालिक व मजदूर का भेद मिट जायेगा। समाज की दिशा में परिवर्तन हेतु यह आवश्यक है कि विकेन्द्रित व्यवस्था को अपनाये।

राजनीतिक आदर्श : सर्वोदय ऐसे किसी भी राज्यदर्शन को स्वीकार नहीं करता जिसमें सत्ता की सर्वोच्चता हो तथा शक्ति का उद्‌गम नागरिक शक्ति न होकर राज्य के आदेश व दंड हो। विनोबा "राज्यशक्ति' और 'राज्य सत्ता' के स्थान पर लोकशक्ति और "लोकसत्ता'' की स्थापना करना चाहते हैं। शास्त्रों की "राज्यान्ते नरक प्राप्ति'' और न त्वहं कामये राज्यम'' उक्तियों में उन्हें दृढ़ विश्वास है। वे राजनीति को समाप्त करना चाहते हैं। जिसकी बुनियाद हिंसा है तथा जिसमें दलीय और सत्ता की राजनीति को सुरक्षित रखने के लिए सेना, दण्डनीति और कर का विधान किया जाता है।

दादा धर्माधिकारी का मानना है कि "राज्य संस्था का उद्देश्य यही है कि एक दिन ऐसा आये जिस दिन लोगों को राज्य संस्थान या शासन व्यवस्था की आवश्यकता न रहे।'' सर्वोदय उस व्यवस्था को सर्वश्रेष्ठ मानता है जिसमें राज्य की ब्रह्मकारी शक्ति का सदैव विलीनीकरण हो जाए, यह अवस्था आत्मानुशासन और संयम की सर्वोच्च अवस्था से ही प्राप्त हो सकती है। सर्वोदय की राजनीति में लोकनीति समाई है।

सर्वोदय जिस लोकतंत्र को अभिव्यक्त करता है। उसे ग्राम स्वराज्य के रूप में स्वीकार करता है। ग्राम स्वराज्य में ग्राम इकाई के रूप में अभिव्यक्त करता है। इसमें प्रत्येक गाँव के लिए एक सभा होगी जिसका कार्य ग्राम का का विकास व व्यवस्था करना होगा। इसके प्रतिनिधियों से जिला सभा, जिला सभा से राज्य सभा व राज्य सभा से राष्ट्रसभा की कल्पना है। राष्ट्रसभा को केवल समन्वय व निर्देशन का कार्य करना है। सर्वोदय विचार शुद्धता प्रदान करने के लिए अनिवार्य रूप से यह लोकजीवन की परिशुद्धता दलरहित पद्धति से ही प्राप्त हो सकती है। सर्वोदय दलों के आधार पर निर्वाचन की इस व्यवस्था दलीय व्यवस्था को ही बदलने पर बल देता है। दलीय व्यवस्था का शीघ्र निराकरण न हो पाने की संभावनाओं क कारण सर्वोदय विचारक यह अनुभव करते हैं कि राष्ट्रीय महत्व के सभी प्रश्नों पर सभी दलों को राष्ट्र में ही चिन्तन करना चाहिए और जनता से झूठी प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिए।

विभिन्न सामाजिक आदर्श : विभिन्न सामाजिक आदर्श सर्वोदय का सामाजिक आदर्श शोषण विहीन समाज की रचना करना है। भारतीय समाज में शोषण का आधार भू–स्वामित्व है। ईश्वर निर्मित भूमि पर कुछ लोगों ने अपना अधिकार जमा लिया है। साहूकारी प्रथा ने इसे और गतिशील बनाया। मानवता का अवमूल्यन रोकने तथा आर्थिक शोषण को समाप्त करने की आवश्यकता है और ग्राम आन्दोलन की मुख्य दृष्टि इसी पर आधारित है। सर्वोदय समाज का मुख्य विचार यह है कि समाज में अस्पृश्यता, जातिभेद, साम्प्रदायिकता जैसी भावना को हेय माना जाये व नारी को सम्मान दिया जाए। प्रत्येक धर्म के लिए समानरूप से निष्ठा रखने का आग्रह इसमें निहित है। यही कारण है कि सर्वोदय की दृष्टि सर्वधर्म समभाव पर आधारित है विनोबा यह मानते हैं कि वर्तमान शिक्षा में यह शक्ति नहीं है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण कर सके। विभेदमूलक समाज की रचना का दायित्व पूर्ण कर सके। इसलिए शिक्षा में परिवर्तन के बिना देश का विकास संभव नहीं है।

विनोबा का सर्वोदय समाज : विनोबा ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जो प्रेम तथा सत्य पर आधारित हो। वे भक्ति के आन्तरिक विकास पर बल देते हुए यह कामना करते हैं कि घृणा, शक्ति एवं सहयोग का वातावरण विश्व में निर्मित किया जाए। मनुष्य का नैतिक पुनर्जागरण आवश्यक माना गया है केवल वातावरण ही नहीं अपितु व्यक्ति द्वारा स्वयं परिवर्तित होना आवश्यक है। मनुष्य के आध्यात्मिक एवं चारित्रिक गुण ही उसके भविष्य का निर्माण करते हैं प्रगति के मानव का अन्तराल भी परिवर्तित होना चाहिए। बाह्य मतभेदों का मूल आन्तरिक कलह है। अतः मानव के आन्तरिक एवं बाह्य विकास के लिए सर्वोदय समाज की स्थापना उपयोगी मानी गयी है।

विनोबा व्यक्ति की अच्छाइयों में दृढ़ विश्वास रखते हैं। उनके अनुसार अहिंसा, प्रेम, सहयोग, त्याग आदि व्यक्ति के स्वाभाविक दैविक गुण हैं। व्यक्ति दूसरों के सुख से सुखी और दूसरों के दुःख से दुःखी होता है। वह दूसरों के लिए अपने स्वार्थ का परित्याग करता है, जैसे माँ अपने बच्चे के लिए त्याग करती है। उसके हृदय में करूणा है। विनोबा व्यक्ति के विकासात्मक स्वरूप पर बल देते हैं। उनका मानना है कि व्यक्ति नित्य नवीन सीखता रहता है। भौतिक परिस्थितियों की तुलना में उसके लिए सद्‌गुण का विशेष महत्व है। अतः उसकी वास्तविक स्वतन्त्रता आत्मा के ज्ञान पर ही आश्रित है। उसे नित्य आत्मशक्ति की खोज करनी चाहिए। विनोबा आत्मा के रूप में व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करते हैं, परन्तु वे सिद्धान्त के सामने व्यक्ति को गौण मानते हैं एक स्थल पर उन्होंने कहा है–"सिद्धान्त व्यक्ति से बढ़कर होते हैं। इसलिए इनके ऊपर अमल कर व्यक्ति को प्रतिष्ठा प्राप्त हुआ करती है।''

विनोबा के चिंतन में समाज की अवधारणा : समाज के सम्बन्ध में विनोबा एक ओर गांधी के विचारों को स्वीकार करते हैं, दूसरी और संख्या के लेगुण्य सिद्धान्त, गीता के यज्ञ, दान और तप तथा समाज की ईश्वरीय व्याख्या

का अद्भुत समन्वय कर विकासवादी सिद्धान्त की स्थापना करते हैं। विनोबा भी इस धारणा का विरोध करते हैं कि शुद्ध नीति केवल व्यक्ति के लिए ही है, समाज के लिए नहीं। उनके अनुसार शुद्ध नीति की स्थापना समाज के लिए भी कल्याणप्रद है परन्तु दुर्भाग्यवश आधुनिक मानव को यह विश्वास नहीं होता। विनोबा को समाज में कहीं भी अन्तर्विरोध का दर्शन नहीं होता है। उनके अनुसार समाज में हित विरोध नाम की कोई चीज नहीं है। विनोबा का मानना है कि समाज का आधार, प्रेम, दया, सहयोग और त्याग में है। अर्थात् मानवीय मूल्यों में निहित है।

समाज की तुलना विनोबा एक परिवार से करते हैं। जिस प्रकार परिवार में छोटे–बड़े, समर्थ–असमर्थ सभी के हितों की बात की जाती है, उसी प्रकार समाज परिवार का ही एक व्यापक रूप है। विनोबा मिल के इस सिद्धान्त का स्पष्ट विरोध करते है कि समाज का लक्ष्य केवल अधिकतम व्यक्तियों के लिए अधिकतम सुख की व्यवस्था करना है। समाज का लक्ष्य सर्वोदय अर्थात सभी का सर्वांगीण विकास करना है। परन्तु जब तक सभी का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता तब तक समाज का यह कर्तव्य है कि वह सभी व्यक्तियों के लिए निम्नतम'' की गारन्टी दे। परिवार का यही नियम है कि यदि परिवार में थोड़ा अन्न रहता है तो थोड़ा ही सही परन्तु उसे सभी बाँट कर खाते हैं, ऐसा नहीं होता कि कुछ लोग खाते हैं और कुछ लोग फाका करते हैं। परिवार के लोगों का कर्तव्य है कि वह परिवार के असमर्थ व्यक्तियों के कल्याण के लिए कष्ट उठायें।

विनोबा के अनुसार आदर्श समाज सेवामय है। यह विचार उनके व्यक्ति सम्बन्धी धारणा पर आश्रित है। उन्होंने व्यक्ति को सेवा और करूणा प्रधान माना है। अतः समाज का सेवामय होना स्वभाविक है। विनोबा के अनुसार समाज की अधिकांश गड़बड़ी व्यक्ति और समाज तथा परिवार और समाज के लिए अलग–अलग नियम और न्याय के विधान रहने के कारण ही होती है। उद्योग के क्षेत्र में निजी उद्योग और सार्वजनिक उद्योग का कृत्रिम भेद किया जाता है। सर्वोदय विचार में इन दोनों में कोई भेद नहीं किया जाता है। विनोबा के अनुसार जो निजी उद्योग हैं वही सार्वजनिक उद्योग हैं और जो सार्वजनिक उद्योग हैं वहीं निजी उद्योग हैं दोनों की एकता असंभव नहीं। निजी उद्योग हाथ की अंगुलियों के समान हैं तथा सार्वजनिक उद्योग हाथ के समान है यदि अंगुलियों से कार्य हुआ, तो हाथ का ही कार्य समझा जाएगा और हाथ के द्वारा कार्य होने पर अंगुलियों के कार्य से अछूता नहीं माना जाएगा। अतः इस प्रकार विनोबा निजी उद्योग और सार्वजनिक उद्योग के बीच विरोध को समाज के विकास में बाधक मानते हैं। विनोबा मानते हैं कि परिवार में जो वितरण और सेवा का न्याय है वही न्याय समाज में भी लागू होना चाहिए। परन्तु परिवार के सम्बन्ध में लोग सर्वोदय और समाज के सम्बन्ध में अधिकतम सुख की बात करते हैं जो अनुचित है। इस प्रकार का द्वैत समाज में विरोध, संघर्ष और अशान्ति की स्थिति को उत्पन्न करता है। यही द्वैत सारी दुनिया को पीड़ित कर रहा है।

विनोबा का मानना है कि समाज रचना के यही रहने पर व्यक्ति सामाजिक हित, समाज के प्रति समर्पण के लिए तत्पर रहेगा। व्यक्ति के हृदय परिवर्तन द्वारा समाज का कल्याण हो सकता है। विनोबा का मानना है कि धर्म का पुराना रूप बदलना होगा वे शासन के स्थान पर लोकनीति की स्थापना करना चाहते हैं। समाज का कल्याण तभी होगा जब किसान व जनता को व्यापारी वर्ग अपना मालिक व स्वयं को सेवक समझे। विनोबा गीता के निष्काम भाव से किये गये कार्य का समर्थन करते हुए मानते हैं कि व्यक्ति को निष्काम कर्म करके मोक्ष को प्राप्त करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विनोबा भावे, भूदान यज्ञ, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988
2. लेजाडेल वास्टो : गांधी टू विनोबा, राइटर एण्ड कम्पनी, लंदन 1956
3. विनोबा भावे, सर्वोदय विचार और स्वराज्यशास्त्र, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1989
4. विनोबा भावे : लोकनीति, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1999
5. निर्मला देश पाण्डेय, विनोबा के साथ, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1955
6. चारुचंद्र भंडारी, भूदान यज्ञ क्या और क्यों, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1956

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 266-269

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

जनजातियाँ, कहानी और मानवाधिकार

*मनोज कुमार राघव**

शोध सारांश : जल, जंगल और पहाड़ों से घिरे विशिष्ट प्रकार के प्राकृतिक परिवेश में विशिष्ट भाषा व जीवन–पद्धति के माध्यम से मानव संस्कृति के आरंभिक धार्मिक–सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की सरंक्षिका एवं अधिकतर वन उपज पर अधिकतम और बाजार–व्यवस्था पर न्यूनतम आश्रित आदिवासी जनजातियाँ विगत लगभग तीन दशकों से साहित्यिक विमर्श के दायरे में होने के बावजूद विकास की राह पर तीव्रता से अग्रसर इक्कीसवीं सदी में भी मूलभूत सुविधाओं व मूल मानवाधिकारों से वंचित हैं।

साहित्यकार एवं समाजविज्ञानी : दोनों ही इन जनजातियों से सम्बद्ध विविध मुद्दों पर अपने–अपने दृष्टिकोण से चिंतन–मनन कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य के अनेक कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से इन जनजातियों के मौलिक आचार–विचार, रीति–रिवाज, प्रकृति के साथ अद्‌भुत सामंजस्य, उत्सवप्रियता, वनौषध सम्पदा सम्बन्धी ज्ञान व जीवटता के साथ इनके जीवन की विडम्बनाओं, शोषण व अधिकारों के लिए किए गए संघर्षों को मार्मिक व प्रभावी कथ्य एवं शैली में अभिव्यक्त किया है। गैर–आदिवासी कहानीकारों के साथ अनेक आदिवासी कहानीकारों ने अपनी थाती एवं व्यथा का सफलतापूर्वक सार्थक व प्रामाणिक अंकन किया है।

मुख्य शब्द (Key words)–संस्कृति, जनजाति, विमर्श, जीवन मूल्य, मानवाधिकार।

जंगलों, पहाड़ों से घिरे विशिष्ट प्रकार के प्राकृतिक परिवेश में अनूठी भाषा, निराली जीवन पद्धति के सहारे विषम परिस्थितियों में जीवनयापन करने वाली एवं अपने धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों को सरंक्षित रखने वाली जनजातियाँ अर्थात् आदिवासी एवं आदिवासी साहित्य विगत लगभग तीन दशकों से साहित्यिक विमर्श के दायरे में है।

अपनी सामाजिक संरचना, विशिष्ट संस्कृति, रीति–रिवाजों, परम्पराओं और धार्मिक विश्वासों की थाती सँभाले ये आदिवासी जनजातियाँ राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा से लेकर अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह तक फैले हुए हैं। राजस्थान की मुख्य जनजातियाँ मीणा, भील, गरासिया, डामोर व सहरिया हैं। मीणा जनजाति मैदानी भागों में तथा भील, गरासिया, डामोर व सहरिया जनजातियाँ प्रायः पर्वतीय प्रदेशों व जंगलों में टापरे या झोंपड़ियाँ बना कर रहती हैं। ''ये आदिवासी राजस्थान व गुजरात राज्य की सीमाओं पर बसे हुए हैं जिनकी सीमा मध्यप्रदेश को भी छूती है। यही प्रदेश आदिवासी अंचल कहा जाता है, जो राजस्थान के डूंगरपुर, बांसवाड़ा जिलों को गुजरात के पंचमहल बनासकांठा तथा मध्यप्रदेश की झाबुआ तहसील से जोड़ता है। महत्त्व की दृष्टि से भील देश में गोंड व संथाल के बाद तीसरे स्थान पर हैं एवं काफी पुराने समुदायों में से हैं।''[1]

आदिवासियों के उद्‌भव के सम्बन्ध में एकाधिक कथाएँ प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार आबू के अग्निकुण्ड से चह्वाण वंश उदित हुआ एवं आगे चलकर इसी वंश में नरू नामक राजा हुआ। राजा नरू द्वारा अर्द्धरात्रि में कलाली के घर घुसकर शराब पीकर वास (बदबू) जाने के कारण राजा आधीवासी या आदिवासी कहलाया। राजा नरू की संतान नहीं होने पर बांसवाड़ा के धारणा गाँव की इमली या आमली पर बाँधे गए एक सौ आठ पालनों में जन्म लेने वाले एक सौ आठ बालकों से आदिवासियों की एक सौ आठ खांपें (या गोत्र) चलीं जो पूरे बांसवाड़ा में फैल गई। प्राचीन काल से पर्वत, जल, जंगल और जमीन पर निर्भर रहने एवं उन्हें सरंक्षित करते रहने की भावना के कारण आदिवासी आज भी जंगल, पर्वत आदि को निजी सम्पत्ति समझता है। जल, जंगल, जमीन और आदिवासी आपस में अन्योन्याश्रित रहे हैं; इसी कारण उन्हें प्राकृतिक सम्पदा एवं संसाधनों के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी होती है। डॉ. नरेन्द्र एन. व्यास के अनुसार–''एक बार आबू रोड़ तहसील के निचलागढ़ गाँव के गरासियों के अध्ययन के दौरान मेरा गम्मा जी परमार से मिलना हुआ जो हर तरह की जड़ी–बूटियों के प्रयोग से वाकिफ थे। जड़ी–बूटियों से रोगियों का उपचार करते थे।''[2]

* *सहायक आचार्य, हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवली (टोंक)*

राजस्थानी आदिवासियों की जीवनधारा पर अधिक नहीं लिखा गया है। जिन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण और लोकानुभव पर आधारित शोधपूर्ण आलेखों के माध्यम से इन जनजातियों के जीवन के विविध आयामों को समझा जा सकता है; उन आलेखों के प्रकाशक व पाठक भी इने–गिने ही हैं। ऐसी परिस्थितियों में इनकी जीवनधारा से परिचित करवाने के लिए उपन्यास, कहानी, यात्रा–वृत्तान्त, संस्मरण, रेखाचित्र जैसी विधाएँ अधिक रुचिकर व उपयोगी सिद्ध होती हैं। हिन्दी साहित्य के कुछ कहानीकारों ने आदिवासियों की जीवनधारा और उनके वानस्पतिक ज्ञान को रुचिकर, संदेशपरक व प्रभावोत्पादक शैली में अभिव्यक्त किया है। हिन्दी साहित्य के अनूठे कहानीकार संजीव की 'लिटरेचर' कहानी एक आदिवासी युवक के जीवन के एकाधिक पक्षों को मार्मिक ढंग से स्पर्श करती हुइ कइ विडम्बनाओं को रेखांकित कर जाती है। आबूरोड़ तहसील के निचलागढ़ गाँव के गम्मा जी परमार की भाँति कहानी के आदिवासी नायक दीपक के पिता भी जड़ी–बूटियों के ज्ञाता हैं। दीपक के अनुसार–''अजीब थे मेरे पिता सहदेव तूरी। आदिवासियों का उनसे बड़ा ओझा और वैद्य मैंने देखा नहीं। लोग कहते, उनके हाथों में यष है। छू भर दें कि रोता हुआ मरीज हँसता हुआ लौट जाए। वनखेड़ा गाँव के बगल से जंगल शुरू होता था। वे उस जंगल के एकछत्र बादशाह थे। कोइ भी पेड़, कोइ भी पौधा, कोइ भी जड़, तना, पत्ता या फूल उनके लिए बेकार की वस्तु न थी। कभी–कभी मुझे भी साथ लिवा जाते तो उन्हें छू–छूकर पूछते, ''यह क्या है... यह और यह?'' फिर वे खुद ही बताते कि यह इस रोग में काम आता हैं। यह उस रोग में...।''[3]

कथाकार संजीव बड़े सहज रूप से कथ्य के माध्यम से आदिवासी जनजातियों के जड़ी–बूटियों के ज्ञान एवं उस ज्ञान के अगली पीढ़ी में हस्तांतरण की प्रक्रिया को उभारते हैं। संजीव स्पष्ट करते हैं कि आदिवासी जनजातियों में भी देश, काल, परिस्थितियों के अनुसार ढलकर अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने की क्षमता होती है। कहानी का आदिवासी नायक दीपक कॉलेज के बॉटनी विभाग में वनौषध सम्पदा पर एक प्रदर्शनी आयोजित करता है। ''चिरैता, अलकुसी (केंवाच), वासक (अडूस), अश्वगन्धा, भंगरइया (भृंग, महाभृंग) से लेकर पलाश, अर्जुन, पीपल, बबूल, चन्दन काफी कुछ था, कुछ परिचित, कुछ अपरिचित, मगर विशिष्टता यह थी कि सबकी जड़ों, तनों, पत्तों, फूलों और फलों के औषधीय गुण लिखे हुए थे चार्ट में सब के साथ। में उड़ी, ज्वारांकुश, नागर्बोइ, तुलसी और दूसरे गंध वाले पौधे और छुईमुई सबके आकर्षण के केन्द्र थे मगर उनका आश्चर्यलोक था उनका जीवनदायी उपयोग। उन्हें पता ही न था कि एंटासिड्स भी पुदीने से बनते हैं और सदाबहार से कैंसर की दवा, कि छुईमुई से नपुंसकता, मासिक धर्म आदि कई स्त्री रोग ठीक किए जा सकते हैं। मैंने उन्हें बताया कि अमलतास के फल को आदिवासी बन्दर की लाठी कहते हैं और इसे उबालकर पीते हैं। आँव को ठीक करने के लिए।''[4]

संजीव कहानी को रोचक शैली में आगे बढ़ाते हुए ये भी स्पष्ट करते हैं कि दीपक को जंगल में उपजी जड़ी–बूटियों का न केवल सैद्धान्तिक ज्ञान है; बल्कि अपनी आदिवासी संस्कृति के सहज संस्कारवश एवं अपनी प्रतिभा के कारण वह उनका व्यावहारिक प्रयोग करने में भी निपुण है। जब उसे ज्ञात होता है कि उसकी प्रियतमा ज्योति के पिता एवं जे.जे. फॉर्मेटिकल्स नामक मशहूर दवा–कम्पनी के मालिक सेठ तिरलोकचंद जी के स्नायु ठीक से काम नहीं करते, मूर्च्छा आती है, बातें याद नहीं रहतीं, नपुंसकता आ गई है, मवाद आता है यानी सुजाक, पेशाब ठीक से नहीं उतरती, जलन होती है, दिल के पास दर्द होता है, चर्म रोग उभर आते हैं; तो दीपक अपनी जड़ी–बूटियों की सम्पदा के ज्ञान का प्रायोगिक पक्ष प्रकट करता है। दीपक के शब्दो में ''सबसे पहले मैंने उन्हें टैबेकम दिया ताकि तम्बाकू के दुष्प्रभाव दूर हों, फिर गुलचीं पीसकर पिलाना शुरू किया ताकि स्नायुतंत्र की शिथिलता और दारू के दुष्प्रभाव का रोध और सुजाक और चर्म रोग, चित्त चांचल्य से निजात मिले इसके प्रभाव को गाढ़ा करने के लिए जई पीसकर पिलवाना शुरू किया, फिर चंदन के तेल का प्रयोग। महीने भर में ही सुपरिणाम आने लगे, और उनकी थकान भरी मुरर्झाइ पलकें हरी होने लगीं।''[5]

कथाकार संजीव के कहानी–नायक दीपक जैसे व्यक्तित्व अथवा दीपक के पिता सहदेव तूरी जैसे वैद्य आधुनिक समय में भी आदिवासी जनजातियों में विद्यमान हैं। डॉ. नरेन्द्र एन. व्यास ने देश के आदिवासियों पर कई अनुसंधान–पत्र लिखे हैं। उन्होंने आदिवासियों की विविधपक्षीय जीवनधर्मिता, कला, संस्कृति और जीविकोपार्जनीय दशा–दिशा के शोध, नियोजन व संरक्षण के गुरुतर दायित्व से जुड़े प्रश्नों को रेखांकित किया है। डॉ. व्यास ने आबू रोड़ तहसील के निचलागढ़ गाँव के गरासियों पर विस्तृत अनुसंधान किया है एवं इसी क्रम में इसी गाँव के एक जड़ी–बूटी विशेषज्ञ का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि ''इसी गाँव के अन्य सिद्धहस्त गरासिया मुखी हकमाजी परमार थे जिनकी स्त्री–रोगों के इलाज एवं शल्य चिकित्सक के रूप में प्रसिद्धि थी। महिलाओं की कठिन से कठिन डिलिवरी बिना रक्त स्त्राव के करने में माहिर थे।''[6] डॉ. व्यास का ये स्वानुभूत कथन साबित करता है

कि साहित्य अपनी कच्ची सामग्री समाज से ही ग्रहण करता है; साथ ही प्रत्येक कहानी मात्र कल्पना की उड़ान ही नहीं होती है। कथाकार संजीव की कहानियाँ प्रमाण हैं कि आदिवासी जनजातियों के पास भी अपना साहित्य, ज्ञान व शिल्प है। कहानी का आदिवासी नायक दीपक न केवल आदिवासियों की औषधि की बौद्धिक सम्पदा का जानकार है; बल्कि वह यह भी जानता–समझता है कि इस बौद्धिक सम्पदा पर आदिवासियों का अथवा देश का ही अधिकार होना चाहिए।

इसी कहानी 'लिटरेचर' में कथाकार संजीव आधुनिक आदिवासी युवक दीपक और यूके से मेडिसिन की ऊँची डिग्रीधारक सेठ–पुत्र जीवन के द्वंद्वात्मक संबंधों की पड़ताल करते हुए स्पष्ट करते हैं कि क्यों आदिवासी जनजातियों का वनोषधि का ज्ञान एवं इस जनजाति के प्रतिभाशाली नवयुवक सकारात्मक सदंर्भों में मुख्यधारा का भाग नहीं बन पाते। विदेशी पत्नी के साथ विदेषी जीवन–पद्धति के कायल जीवन के विचारानुसार–''शिट! है तो वह आदिवासी न! उससे कहिए कि वो एक टेपरिकार्डर पर अपना प्रचार रिकार्ड कर बजाता रहे पिछड़े अंचलों के बाजारों, फुटपाथों पर, दो–चार पहलवानों के दो–चार चार्ट और खोपड़ियाँ, साँप–बिच्छू, गिरगिट और अनाप–शनाप भर ले मोबाइल प्लास्टिक के खोखे में और खाए–कमाए। जेजे इज नॉट मिन्ट फॉर सच नेटिव्स!''[7]

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा उत्पन्न विराट मुनाफे का दानव आदिवासी संस्कृति को निगलता जा रहा है। आदिवासी क्षेत्रों में लर्गाइ र्गइ शराब की फैक्ट्रियों से बही नशे की धारा ने आदिवासी जीवनधारा को लड़खड़ा दिया है। एलोपैथी नेचुरोपैथी पर भारी पड़ र्गइ क्योंकि कम लागत व कम श्रम में ज्यादा मुनाफा होता है। जिसने भी शराब और एलोपैथी के विरोध में आवाज उर्ठाइ पूँजीवादी सत्ता के खंजर उनकी पीठ में पैबस्त कर दिए गए। कहानी के आदिवासी युवक दीपक को भी अपने पिता सहदेव तूरी की पीठ के फतुहे पर पसरे एक बड़े खूनी धब्बे के ऊपर खुभा खंजर सपनों में भी आ–आकर डराता है। अपनी माँ से पिता की हत्या कारण बार–बार पूछने पर दीपक की माँ हत्या के लिए उन सत्ताधारी मुनाफाखोर ताकतों को उत्तरदायी ठहराती हैं; जिन्हें वह 'वे' सम्बोधन से संकेतित करती हैं कि ''वे कोइ शराब की फैक्टरी लगा रहे थे। अगर उसकी लत लग जाती तो आदिवासियों की कर्माइ, खेती, ज़मीन, इज़्ज़त सब उसकी भेंट चढ़ जाते। तुम्हारे बाप ने इसका विरोध किया। उनका वहाँ के लोगों पर खासा प्रभाव था, कारण था तुम्हारे बाप की वैदगी और ओझाइ। फिर 'वे' इसकी काट के लिए मुफ्त दवाइयाँ देने लगे। उन्होंने वहीं कोंइ दवा का कारखाना भी लगा लिया था। वही दवाएँ, वे अंग्रेजी दवाएँ चटपट आराम देतीं। तुम्हारे बाप ने जा–जाकर समझाया, 'ये जहर है जहर! मुफ्त में जहर मिले तो खा लोगे?' पहले तो उनकी बात की असर नहीं हुआ लेकिन जल्दी ही उनकी बात का कोइ सच्चाई सामने आने लगी तो उनका प्रभाव फिर लौट आया। बाहर–बाहर क्या होता था, मुझे ठीक–ठीक नहीं मालूम। उनके होने से किसे पेट पर लात लगती थी, किसका नुकसान होता था, नहीं मालूम, लेकिन मैं इतना कह सकती हूँ कि 'उन लोगों', के सिवा ऐसा कोइ नहीं था जिससे उनकी अदावत हो। मगर वह अदावत भी क्या इतनी बड़ी थी कि उनके परान ही ले लें...?''[8] सम्भवतः दीपक की माँ को तो मालूम नहीं अथवा अनुमान नहीं था कि उसके पति की हत्या का वास्तविक कारण क्या था, किंतु आज का प्रबुद्ध पाठक वर्ग इस कारण से अनजान नहीं है। बड़ा प्रश्न है कि इन परिस्थितियों के चलते आदिवासियों की थाती को सुरक्षित व संरक्षित कैसे रखा जाए? डॉ. महेन्द्र भानावत के शब्दों में–"दरअसल पढ़े–लिखों ने, शहरवासियों" ने आदिवासियों को ठगा ही ठगा है। उनके भोलेपन का बड़ा लाभ लिया है।''[9] जब तक हम अपनी शिक्षा, समझ और सोच को सकारात्मक रूप से उनसे साझा नहीं करेंगे तब तक उनकी थाती हम तक हस्तांरित नहीं होगी।

संजीव की 'लिटरेचर' कहानी ही नहीं; राजेन्द्र सिंह गहलोत की कहानी 'समाधान', एसिस एक्का की कहानी' 'वनकन्या', शंकरलाल मीणा की कहानी' 'कहानी के बाहर की औरत', मंगल सिंह मुण्डा की 'धोखा', 'एक मुट्ठी चना', 'महुआ का फूल', कहानियाँ, ग्लैडसन डुंग डुंग की कहानी 'दूध पर किसका हक', इंजीनियर कृष्णमोहन सिंह मुण्डा की कहानी 'नीलमणी' की ड्यूटी' डॉ. रामदयाल मुण्डा की कहानी' 'खरगोशों का कष्ट', आदिवासी संस्कृति की पृष्ठभूमि में आदिवासियों के मानवाधिकारों के प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष हनन को चित्रित करती हैं।

आजादी के सात दशक बाद भी हाशिये पर रहकर जीवन का संत्रास भुगतते हुए आदिवासी जनजातियों के जीवन की विविधि समस्याओं, उन पर होने वाले अत्याचारों, उत्पीड़न, शोषण व व्यथा को अन्य अनेक कहानीकारों ने अपनी विशिष्ट शैली में अपनी कहानियों का विषय बनाया है। रणेन्द्र, मेहरूनिन्सा परवेज, विपिन बिहारी, रामकुमार तिवारी, शिवकुमार पाण्डेय, युगेश शर्मा, पुन्नी सिंह, भावसिंह हिरवानी, मंजु ज्योत्स्ना, पीटर पॉल एक्का, रोज केरकेट्टा, वाल्टर भेंगरा आदि कहानीकारों ने न केवल आदिवासियों की जीवन शैली को, वरन उनकी प्रतिरोध

की संस्कृति, जीवटता एवं मानवाधिकारों के लिए किए गए उनके संघर्ष को भी बखूबी उभारा है। युगेश शर्मा की कहानी'... और मांदल बजती रही', पीटर पॉल एक्का की कहानी' राजकुमारों के देश में', भावसिंह हिरवानी की कहानी 'दहशत', विपिन बिहारी की कहानी 'विहान', वाल्टर भेंगरा 'तरूण' की 'पलास' व 'संगी' कहानियाँ, आदिवासी समुदायों के शोषण, संघर्ष, गरीबी, अशिक्षा आदि जुडे से विविध पक्षों का यथार्थ चित्रण करके इनको मुख्यधारा में सम्मिलित करने के मानवाधिकार की माँग करती हैं।

अनुसूचित जातियाँ तथा अन्य पारम्परिक वन निवासी अधिनियम, 2006 की धारा 2(ब) के अनुसार, ''वन में निवास करने वाली अनुसूचित जाति व अन्य पारम्परिक वन निवासी के सदस्य या सदस्यों का वनभूमि में धारण करने न रहने अधिकार है।''[10] साथ ही; इन्हें मछली एवं पानी निकाय के अन्य उत्पादों के प्रयोग का भी अधिकार दिया गया हैं। किन्तु कहानीकार कोमल की कहानी 'साहूकार की मछली' में बुधवा को अपनी पत्नी की इच्छापूर्ति के लिए अपने जंगल की जमीन पर बने बाँध की मछली पकड़ने का भी अधिकार नहीं है। कितनी बड़ी विडम्बना है कि आदिवासियों को न केवल जल, जंगल और जमीन से वंचित किया जा रहा हैं, बल्कि उन्हें अपमानित व प्रताड़ित भी किया जा रहा है।

अपने इतिहास, संस्कृति, परम्परा और विरासत से तथाकथित सभ्यता द्वारा काट दिए जाने वाले ये आदिवासी मृत्यु दर में वृद्धि और जन्म दर में कमी के कारण आज लगातार कम होते जा रहे हैं। भूख, कुपोषण, संक्रमण, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी की समस्याएँ मानो उनकी नियति बन चुकी हैं। कल्याणकारी योजनाओं की नदी का धीमा प्रवाह उन तक पहुँचते–पहुँचते सूख जाता है। आज आदिवासी समुदाय अपने अस्तित्व को लेकर निरन्तर जूझ रहा है। आदिवासियों को भी मुख्यधारा का मानव मानकर उन्हें उनके अधिकारों से परिचित करवाकर उनकी थाती को सरंक्षित करने के ईमानदार प्रयास करना आज प्रत्येक भारतीय का सर्वोपरि कर्त्तव्य होना चाहिए। ''अगर हम आदिवासियों के प्रति सच मे संवेदनशील हैं तो हमें पाठ्यक्रम से लेकर जीवन तक हर जगह आदिवासियों को उचित जगह देनी होगी। उनके आत्मनिर्णय के हक का सम्मान करना होगा। साहित्य से लेकर समाज के लोकतंत्र के लिए यह जरूरी है।''[11]

संदर्भ–सूची

1. नरेन्द्र एन. व्यास, महेन्द्र भानावत, आदिवासी जीवनधारा, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 2008, पृ. 1
2. वही, पृ. 15
3. संजीव, संजीव की कथा–यात्रा : तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 22
4. वही, पृ. 32
5. वही, पृ. 34
6. नरेन्द्र एन. व्यास, महेन्द्र भानावत, आदिवासी जीवनधारा, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 2008, पृ. 15
7. संजीव, संजीव की कथा–यात्रा : तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 35
8. वही, पृ. 24
9. नरेन्द्र एन. व्यास, महेन्द्र भानावत, आदिवासी जीवनधारा, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 2008, पृ. 144
10. कुमार वीरेन्द्र, आदिवासी विमर्श : अस्तित्व और अस्मिता की तलाश', परीक्षा मंथन (सं. अनिल अग्रवाल), मंथन प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013–2014, पृ. 90
11. गंगा सहाय मीणा, 'आदिवासी साहित्य : स्वरूप और संभावनाएँ', समवेत (सं. नवीन नंदवाना), हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, जुलाई, 2014, पृ. 13

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 270-272

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

वैदिक साहित्य में नारी का स्थान एवं शिक्षा-दिक्षा

*डॉ. रंजना तिवारी**

प्रस्तावना : स्त्री के बिना यह सम्पूर्ण विश्व सारशून्य है। जन विस्तार की दृष्टि से निःसन्देह पुरुष की अपेक्षा नारी की महत्ता अधिक है। इसी कारण वैदिक साहित्य में इसकी कामना और पालन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसी कारण इसका नाम कन्या रखा गया अर्थात सबके द्वारा वांछनीय। भास्कराचार्य ने निरूक्त में ''कन्या कमनीया भवति" कहकर उसे कपु धातु से सिद्ध करके सबसे चाही जाने वाली कहा है।[1]

1. वैदिक काल में नारी का स्थान–वेदों का मुख्य विषय है–कर्म, उपासना और ज्ञान, जो समस्त मानव जाति के धर्म है। इनमें केवल स्त्री अथवा पुरुष को लक्ष्य करके अधिक बातें नहीं कही गयी है। जो कुछ है सबके लिए है। वेद ज्ञान के भण्डार हैं उस भण्डार में खोज करने पर नारी के महत्व को प्रकाशित करने वाले विषय भी अवश्य ही दृष्टिगोचर होते है। वेद चार है–ऋग, यजु, साम और अथर्व। इनमें से केवल ऋग्वेद में ही कुछ ऐसी बातें पाई जाती है, जो प्राचीन काल से चली आने वाली आर्यनारी की सभ्यता और संस्कृति पर प्रकाश डालती हैं। कुछ विदुषी नारियाँ अपने सद्गुणों के कारण तथा मन्त्रों का साक्षात्कार करने वाली ऋषिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। यर्जुवेद में नारी के विषय में बहुत कम चर्चा है सामवेद में तो है ही नहीं, अथर्ववेद में चर्चा अवश्य है पर ऋग्वेद से अधिक नहीं।

ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर पुत्री को पुत्रवत कहा गया है। पिता जहाँ पुत्रों के साथ सम्पूर्ण आयु व्यतीत करने में सुख अनुभव करता है वहीं वह पुत्री की उपेक्षा न करके उसके साथ भी सम्पूर्ण आयु व्यतीत करना चाहता है।

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यृनुतः उभाहिरण्यपेशसा[2]

पिता अपने घर में पुत्रियों को खेलता–कूदता किलकारियाँ मारते हुए देखता है और प्रसन्न होता है।[3] इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक युग में पिता पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं करता था वह पुत्री में ही पुत्रभाव को देखता था और दौहित्र को भी पौत्र समझता था।

शासद्वहिर्न्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा द्धन्वे।[4]

ऋग्वेद में अपनी दो बेटियों को गोद में पिता को बैठाने का आदेश दिया है।[5]

2. ऋग्वेद काल की विदुषियाँ–ऋग्वैदिकाल में ऐसी अनेक नारियों का उल्लेख मिलता है जिन्होनें कई वैदिक ऋचाओं की पूरी रचना की। जिनकी संख्या सम्वतः सत्ताईस थी। इन नारियों को "ऋषिका" अथवा ब्रह्मवादिनी कहते है।[6]

परन्तु कुछ नारियाँ ऐसी थी जो केवल ऋचाओं को मधुर स्वर से गान ही करती थी। ऋग्वेद के अनेक सूत्रों में यह उल्लेख मिलता है कि महिलाओं की रचनायें संगीत और काव्य दोनो ही दृष्टियों से पुरुष रचनाकारों से किसी भी दृष्टि में कम नही थी।

धोषा–ऋग्वेद में वर्णित ऋषिकाओं में 'द्योषा' का स्थान सर्वश्रेष्ठ था क्योंकि इनका उल्लेख ऋग्वेद में बार–बार आया था।[7] द्योषा ने भगवान अश्विन की प्रशंसा में दो ऋचाओं का निर्माण किया।

अपाला–अपाला अति ऋषि के कुल की कन्या थी। इन्होंने ऋग्वेद के दसवें मण्डल की एकानवी ऋचा की रचना की। इसी ग्रन्थ के पाँचवें मण्डल में उसने अत्रि का आवाहन किया। संभवतः अपाला चर्मरोग सें पीड़ित थी जिसके कारण पति ने उसका पति त्याग कर दिया था। अपाला ने अपनी ऋचाओं से इन्द्र का आवाहन किया जिसके फलस्वरूप वह रोगमुक्त हो गई जिसका वर्णन आठवें मण्डल में है।[8]

* *संस्कृत, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, म.प्र.*

उर्वशी–उर्वशी ऋषिका इन्द्रलोक की अभिन्न सुन्दरी थी। उर्वशी ने नृत्य और सगीत में पारंगत होने के साथ–साथ ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं की रचना की।[9]

सूर्या–सविता अथवा सूर्य की पुत्री भी इस युग की महान ऋषिका थी। सोम के साथ विवाह को उसने स्वंय ही वर्णित किया है। यह ऋचा सैंतालिस पंक्तियों में नियोजत है।[10]

वाक्–वाक् ऋषि अम्रिना की पुत्री थी। उसने ऋग्वेद के दशम मण्डल की कुछ ऋचाओं की रचना की थी। जो आज 'देवीसूक्त' से प्रसिद्ध है।[11]

लोपामुद्रा–ऋग्वेद की द्वितीय ऋषिका लोपामुद्रा थी जो अगस्त मुनि की पत्नी थी।उसने अपने पति के साथ मिलकर ऋग्वेद की एक उत्कृष्ट ऋचा की रचना की। इनके दो छन्दों की रचना स्वयं लोपामुद्रा ने की।[12]

विश्ववारा–अत्रि ऋषि की कुल की द्वितीय कन्या विश्ववारा भी वैदिक काल की प्रसिद्ध ऋषिका थी।[13] इन्होंने पाँचवें मण्डल में छः पंक्तियों में सकल वैवाहिक जीवन की प्रार्थना की है।

इन्द्राणी–इन्द्र की शक्ति इन्द्राणी थी। इन्होंने भी ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं की रचना की।[14]

रोमशा–यह कक्षीवान की दूसरी पत्नी थी। इसने भी ऋग्वेद के एक अंश की रचना की।[15]

गोधा–यह ऋग्वेद के दशम मण्डल की कुछ ऋचाओं की रचना की थी।[16]

मानधातृ–मानधातृ ने दसवे मण्डल की संख्या 134 की प्रथम पंक्तियों की तथा छठी पंक्ति के अधोभाग की रचना की। जिसमें इन्द्र की प्रार्थना की गई है।[17]

ममता–ऋग्वेद के छठे मण्डल के दसवें ऋचा की द्वितीय पंक्ति की रचना इसी ऋषिका ने की थी।[18]

जुहू–ब्रह्मा की पत्नी जुहू ने ऋग्वेद के दशम मण्डल की ऋचा की संख्या 109 की रचना की है।[19]

3. ऋग्वेद में स्त्रियों का स्थान–ऋग्वेद में स्त्रियों का स्थान सर्वोच्च था। विवाह के पश्चात् उसे पतिग्रह में गृहपत्नी, गृहस्वामिनी का अधिकार प्राप्त था।

गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथास–ऋ0 10/85/26

ऋग्वेद में स्त्री का गौरव बताते हुए उसे 'ब्रह्मा' कहा गया है। एक ओर पति, सास–ससुर आदि की सेवा शुश्रुषा तथा उनकी देखरेख का उत्तरदायित्व दिया जाता है तो दूसरी ओर उसे गृहस्वामिनी के रूप में सास–ससुर ननद आदि की स्वामिनी कहा गया है।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अवि देवश्षु।। ऋ0 10/85/46

ऋग्वेद में पत्नी को आभूषण माना गया है आज भी समाज में कहा जाता है कि पत्नी घर की रौनक होती है।[20]

ऋग्वैदिक समाज में पुत्री को दुहिता कहा गया है। जिसका शाब्दिक अर्थ है दूध दुहने वाली संभवतः आर्य के प्रारिम्भक जीवन में बालिकाओं का दूध दुहने का कार्य मुख्य था। इसलिये उन्हें इस प्रकार की संज्ञा दी गयी। ऋग्वेद के समय कन्यायें अपना पति स्वंय चुन सकती थी किन्तु माता–पिता की अनुमति भी आवश्यक होती थी। ऋग्वैदिक युग में अविवाहित कन्या को माता–पिता की सम्पत्ति में हिस्सा दिया जाता था जिससे वह अपना जीवन सुख से बिता सकें।

अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्। ऋ0 2/17/7

4. शिक्षा दिक्षा–ऋग्वेद काल में पुत्रियाँ भी आश्रमों में जाकर शिक्षा प्राप्त करती थी कन्या की शिक्षा से पूर्व यज्ञोपवीत का भी उल्लेख मिलता है। पुत्र की भाँति उसके लिए भी मेखला आदि बाँधना विहित है। नारी सभी प्रकार के यज्ञों को ब्रह्मदेव यज्ञ को धारण करे कहकर स्पष्ट किया गया हैं।

चोदयित्री सुनश्तानां चेतान्ती सुमतीनाम्। यंज्ञ दधे सरस्वती। (ऋ0 4/3/11)

उपसंहार–इस प्रकार आर्य जाति में प्राचीन काल से ही नारी का सदा समादर होता आया है। ऋग्वेद अनुशीलन से जान पड़ता है कि आर्यों में स्त्री शिक्षा का यथेष्ट प्रचार था। स्त्रियों वेदाध्ययन करती थी और कविताएँ भी बनाती थी। वे अपने त्याग–तपस्या से ऋषिका भाव को भी प्राप्त होती और मन्त्रों को साक्षात्कार करती थी। कुछ मन्त्रों से यह भी सूचित होता है कि उस समय स्त्रियाँ संगीत आदि में भी निपुण होती थीं। पति के साथ स्त्रियाँ युद्ध में भी जाती थीं। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक, दार्शनिक और सामाजिक क्षेत्र में उन्होनें अपने कौशल की प्रतिभा का परिचय दिया है।

सन्दर्भ–सूची

1. निरूक्त 4 / 2
2. ऋ. 8 / 31 / 8
3. ऋ. 6 / 75 / 5
4. ऋ. 3 / 31 / 1
5. ऋ. 1 / 81(5)
6. मनु. 2 / 129
7. ऋ. 1 / 117 / 10,36
8. ऋ. 8 / 91 / 1–7
9. ऋ. 10 / 95
10. ऋ. 10 / 85
11. ऋ. 10 / 125
12. ऋ. 1 / 179 |1–2
13. ऋ. 5 / 28 / 3
14. ऋ. 10 / 145
15. ऋ. 1 / 136 / 7
16. ऋ. 10 / 134 / 6
17. ऋ. 10 / 134
18. ऋ. 6 / 10 / 2
19. ऋ. 10 / 109
20. ऋ. 1 / 66 / 3

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VIII, Vol.-XXVII, June-Sept. 2020, Page : 273-276

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

अमरकान्त के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ
(एक विशेष संदर्भ में)

*किरन चौरसिया**

अमरकान्त के कथा–साहित्य में विशेषतः निम्नमध्यवर्ग के जीवन अनुभवों, समस्याओं, विसंगतियों एवं जिजीविषाओं का बहुत ही प्रभावशाली अंकन मिलता है। वहीं दूसरी तरफ देखा जाय तो विसंगतियों के प्रति संघर्ष की चेतना भी प्राप्त होती है। अमरकान्त जी कि एक विशेष आदत यह थी कि वे अपने कथा–साहित्य में उसी कथ्य और पात्र को ले आते हैं जो यथार्थ है, सहज है तथा जिसे ये नजदीक से देखें परखे हों। इसीलिए उनके सपाट से नजर आने वाले कथ्यों में भी वह जीवन्तता, चुभन और संवेदना की अनुभूति है जो उनके समकालीन दूसरे कथाकारों में उपलब्ध नहीं है। साथ–ही–साथ सहज–सरल संबंधों वाली कहानियाँ जीवन की अनेक जटिलताओं को जिस प्रकार समेटे रहती हैं, कि कभी–कभी आश्चर्य उत्पन्न कर देती है तथा यही अमरकान्त जी की कुछ खास विशेषता है।

समाज की कोई ऐसी समस्या या विसंगति नहीं है जिसे अमरकान्त जी यथार्थपरक ढंग से उकेरे न हों। फिर भी कुछ समकालीन लेखकों की शिकायत रहती है कि इनके दृष्टिफलक का क्षेत्र छोटा है। उपेन्द्र नाथ अश्क ने माना है कि, "यह ठीक है कि राजेन्द्र यादव जैसा विस्तृत घेरा उनका नहीं है कि एक ओर 'प्रतीक' जैसी कहानी है तो दूसरी ओर 'पास–फेल' जैसी कहानी और तीसरी ओर 'टूटना' अथवा 'अभिमन्यु की आत्महत्या' जैसी कहानियाँ।"[1] अमरकान्त दृष्टिफलक भले ही सीमित हो परन्तु सामाजिक जीवन में, साहित्य में उनकी आस्था और दिलचस्पी खूब है। जनता को स्पर्श करती हुई कोई भी ऐसी समस्या नहीं है जिसे इन्होंने चित्रित न किया हो।

धनाभाव तथा उससे उत्पन्न समस्याएँ–धनाभाव के कारण उत्पन्न सामाजिक समस्याएं जिससे संबंधों में दूरी उत्पन्न होना स्वाभाविक है। उसका चित्रण जीवन्तता से करते हैं।

(क) गरीबी–गरीबी अमरकान्त की कहानियों का मुख्य केन्द्र है। गरीबी भारतीय समाज के सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना है। स्वतंत्रता के पहले भारतीयों का सपना था कि स्वतंत्रता के बाद निर्धनता की जड़ खत्म हो जायेगी, परन्तु औद्योगीकरण, मशीनीकरण के कारण जनता की स्थिति और बदतर हो गयी। अमीर तथा गरीब के बीच का अन्तर बढ़ गया। फलस्वरूप भाग्यवाद, भ्रष्टाचार, व्यवसायों का जातिगत आधार पर भेदभाव उत्पन्न हुआ। इस समस्या को देखकर अमरकान्त जी का मन पीड़ा से भरा तथा इसी कारण इनकी कहानियों में विशेष रूप से विपन्नता के चित्र मुखर होकर उत्पन्न हुए और उसमें गरीबी के खिलाफ संघर्ष की भी चिनगारियाँ दिखाई पड़ी।

जहाँ गरीबी होती है वहाँ सब कुछ गड़बड़ होता है। व्यक्ति का रहन–सहन, वेशभूषा, व्यवहार तथा चरित्र सभी कुछ निर्धनता से प्रभावित होता है। 'दोपहर का भोजन' कहानी में गरीबी के कारण घर का माहौल कुछ इस प्रकार है, "सारा घर मक्खियों से भनभन कर रहा था। आँगन की अलगनी पर एक गंदी साड़ी टंगी थी, जिसमें पैबंद लगे हुए थे।"[2] धन के अभाव में व्यक्ति का मनोबल भी टूट जाता है। अमरकान्त जी की कहानी 'डिप्टी–कलक्टरी' में भी कुछ इसी प्रकार का दृश्य दिखायी देता है। गरीबी से उबरने के लिए युवा वर्ग भी जी तोड़ मेहनत करता है परन्तु सपना अधिकतर लोगों का टूट जाता है।

अमरकान्त जी ने अपनी कहानियों में जीवन की उस विसंगतियों को दिखाया है, जिसमें निर्धन एवं दलित वर्ग की दास्तान–ए–जिन्दगी है। उसके कथानक निर्धनता के धरातल से निकलकर एक ऐसा आश्चर्यजनक चित्र पेश करते हैं कि निर्धनता एकाएक सामने दृश्यमान हो जाती है। अमरकान्त जी की एक चर्चित कहानी 'घर' में एक

* *वरिष्ठ शोध अध्येता, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

निम्न मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक विपन्नता की दशा के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय त्रासदी का चित्र दिखायी देता है, "खुले बाक्स की आधार भूमि की तरह उस मकान का आँगन था, जिसमें तीन खाटे पडी थीं। बड़ी खाट पर पन्द्रह वर्ष, तेरह वर्ष और चौदह वर्ष के क्रम में तीन लड़के सिरहाने की तरफ नीचे पैताने की तरफ आठ वर्ष और छह वर्ष की दो बच्चियाँ चौड़ाई में सो रही थीं। एक पतले और झोलर बँसखट पर उनके पिता दाँई 'ओउम्' बने हुए थे। तीसरी चारपाई पर एक जवान लड़की पड़ी हुई थी, और उसी पर उसकी माँ पाटी के नीचे पैर लटकाये तथा हथेली पर ठोड़ी टिकाए बैठी थी और सिर उचका कर कमरे की ओर देख लेती थी।"[3]

वैसे देखा जाय तो जनसंख्या भी गरीबी का एक मूल कारण है। निम्न वर्ग का व्यक्ति जनसंख्या पर नियंत्रण करके कुछ सुधार ला सकता है। 'घर' कहानी में यह साफ दिखायी दे रहा है कि गरीबी में भी बच्चों की संख्या अधिक है।

(ख) मानवीय संबंधों पर निर्धनता का प्रभाव–निर्धनता जहाँ मनुष्य को तोड़ती है, उसे विवश करती है। वहीं वह आस–पास के संबंधों एवं पारिवारिक रिश्तों को भी प्रभावित करती है। आर्थिक अभाव नैतिक दायित्यों के भाव को पीछे छोड़ देता है। आपसी संबंधों में तभी टकराहट शुरू हो जाती है। संयुक्त परिवार के विखण्डन में भी यही स्थिति कार्य करती है और अन्त में प्रेम एवं सौहार्दपूर्ण रिश्तों के बीच दरार पड़ जाती है। अमरकान्त जी ने अपनी रचनाओं में इस टूटते संबंधों का बखूबी चित्रण किया है। व्यक्ति की निर्धनता उसको हर तरफ से कमजोर व विवश बना देती है। अमरकान्त जी इस विवशता एवं उदासीनता को अपनी कहानियों में अनेक कोणों से व्यक्त करते हैं। इन्होंने समाज के निचले वर्ग के नंगे यथार्थ और उसके टूटते सपनों के दर्द को अभिव्यक्ति दी है। डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव ने एक स्थान पर अमरकान्त की कहानियों की इसी विशेषता का उल्लेख करते हुए कहा है–"डिप्टी–कलक्टरी, एक साधारण परिवार की असाधारण, बल्कि मिथ्या आकांक्षा और निराशा की कहानी है। आकांक्षा में एक पूरे परिवार का जीवन टँगा रहता है–नए आकस्मिक क्षण की प्रतीक्षा में जो परिवार के जीवन स्तर को उच्च अभिजात समृद्धि से जोड़ देगा पर होता यह है कि निराशा औसत सुख को भी प्रतीक्षा के क्रम में नष्ट कर देती है।"[4]

श्रीवास्तव जी का भाव साफ झलक रहा है कि आर्थिक विषमता के कारण जीवन की समस्त इच्छाओं, आकांक्षाओं की बलि चढ़ जाती है और यही स्थिति व्यक्ति के अन्दर समाज और संसार के प्रति उदासीनता भर देती है।

(ग) बीमारी तथा स्वास्थ्य की समस्या–व्यक्ति के खान–पान पर ही उसका स्वास्थ्य भी निर्धारित होता है, पौष्टिक और उचित आहार के अभाव में स्वास्थ्य बिगड़ना स्वाभाविक है। प्रदूषित वातावरण के साथ–साथ भोजन का भी अभाव हो तो मनुष्य के शरीर में बीमारी जरूर लगेगी। अमरकान्त जी ने इस समस्या की तरफ भी अपना ध्यान केन्द्रित किया। निर्धनता से उत्पन्न हुई मानसिक अशान्ति व पीड़ा, ये सभी कुछ व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। मनुष्य परिस्थितियों से प्रभावित होकर टूट जाता है तथा उसका स्वास्थ्य गिरने लगता है।

अमरकान्त जी की कहानी 'जिन्दगी और जोंक' में भूख से पीड़ित व उससे प्रभावित मनुष्य के गिरते हुए स्वास्थ्य की सच्ची तस्वीर है। भूख की आग से झुलसती हुई रजुआ की यह तस्वीर, "उसकी हालत बेहद खराब थी, वह एकदम दुबला–पतला हो गया था। मुश्किल से चलता, बोलता तो हाँफने लगता। उसको किसी बात की सुध–बुध न थी। एक गन्दे अंगोछे पर पड़ा हुआ था, और उसका शरीर के दस्त से लथ–पथ था। उसकी छाती की हड्डियाँ और उभर आई थीं। पेट तथा आँतें पिचक कर धंस गई थीं और गालों में गड्ढे बन गए थे। उसकी आँखों के नीचे गहरे काले गड्ढे दिखाई दे रहे थे और उसका मुँह कुछ खुला हुआ था। पहले देखने में ऐसा लगता था कि वह मर गया है, लेकिन उसकी साँस धीरे–धीरे चल रही थी।"[5]

इसी प्रकार अमरकान्त की 'निर्वासित' कहानी है, जिसमें निर्धनता के कारण गिरते हुए स्वास्थ्य और गंदे परिवेश में साँस लेते हुए व्यक्तियों की कहानी है। आज का निर्धन व्यक्ति जिन्दगी की जरूरतों से चिपका हुआ है और उसकी स्थिति यह है कि अपने जीवन को कुछ बेहतर बनाने के लिए रात–दिन जी–तोड़ मेहनत कर रहा है। कहीं कोई विराम नहीं करता तथा यंत्रवत् अपनी जीविका के उपार्जन में संलग्न है। इसी श्रेणी की अमरकान्त जी की कहानी 'मकान' है जिसका नायक मनोहर कड़ी मेहनत करके भी अपने परिवार की हालत को सुधार नहीं पाता। उस पर भी जब खुद की पत्नी तपेदिक की मरीज हो जाती है तो उसके सपने चूर–चूर हो जाते हैं। बीबी की बीमारी की वजह से उसको कर्ज लेना पड़ता है। हमारे समाज की सबसे बड़ी समस्या यह है कि अगर व्यक्ति अमीर है तो उसे कर्ज देने वाले अनेक लोग मिलते हैं। परन्तु वही व्यक्ति गरीब (आमदनी का न होना) हो जाता है तो लोग कर्ज देने तथा पहचानने से भी कतराने लगते हैं।

बेगार की समस्या–बेगारी की समस्या प्राचीन काल से चली आ रही है। व्यक्ति पढ़ा–लिखा होने के बावजूद भी अपने से कमजोर को दबाता है। संभवतः शोषण का इतिहास सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही उत्पन्न हुआ, जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है उसी प्रकार बलवान व्यक्ति कमजोर व्यक्ति का शोषण करता है। प्राचीन समय और वर्तमान समय में फर्क बस इतना है कि आजकल शोषण के नये तरीके अपनाये जा रहे हैं। जाति धर्म से हटकर दो वर्ग ऐसे हैं जो शोषक व शोषित जाने जाते हैं। समान वर्ग के लोग भी एक–दूसरे का शोषण करते हैं। अमरकान्त जी की नई कहानियों में आर्थिक शोषण व बेगारी की समस्या को दिखाया गया है। 'जिन्दगी और जोंक' का रजुआ भाग–भागकर पूरे मुहल्ले का काम करता है। समस्या यह है कि हर कोई उससे बेगार करवाना चाहता है बदले में उसे सूखी रोटी तथा नमक दे दिया जाता है। ग्रामीण इलाके के बड़े लोगों का काम करता है परन्तु कोई उसको पेट भर खाना तक नहीं देता। जंगी नामक व्यक्ति ने काम में देरी होने पर उसे दो थप्पड़ देता है फिर ऊँचे स्वर में चिल्लाता है, आज मैं तुमसे दिन भर काम कराऊँगा देखें कौन रोकता है। रजुआ का जीवन यहाँ जानवरों से भी बदतर दिखायी देता है।

अमरकान्त की कहानी 'निर्वासित' है जिसमें गंगू नामक व्यक्ति से बेगारी का कार्य करवाया जाता है। गंगू अपनी मालकिन की डाट–डपट सुनता रहता और सिर झुकाकर काम करता रहता है। गंगू अपनी मनोदशा व्यक्त करते हुए कहता है कि बनिए की लुगाई मुझसे शाम–सवेरे घर के बर्तन भी मंजवाने लगी। मैं काम से डरता नहीं था पर उसकी बोली बहुत ही खराब लगती, छोटी–छोटी बातों पर गाली गलौज पर उतर आती है। मुझे मन में बड़ा क्रोध आता। पर मैं उसको पी जाता। इतनी सहनशीलता के बावजूद गंगू के साथ अमानवीय व्यवहारों में कोई कमी नहीं आयी। वैसे देखा जाय तो जो दबता है उसे ही और दबाया जाता है। अंत में गंगू भड़क उठता है। फिर भी अंत में नुकसान, शोषित का ही होता है। क्योंकि प्रशासन भी उन्हीं के हाथों में होती है जो अमीर तथा शोषक हैं।

अमरकान्त जी की 'दो चरित्र' कहानी भी कुछ ऐसे ही भाव को लेकर सामने आती है। उस कहानी में शोषक जनार्दन के दोहरे चरित्र का उद्घाटन होता है। जनार्दन एक भिखमंगे लड़के से दो रुपये मजदूरी तय करके घर के अनेक काम कराने के बाद उसे दस पैसे का सिक्का देते हुए तथा साथ में गाली देते हुए। उसे चोर कहकर भगा देता है ताकि पैसे न देने पड़े। वह इतना डर गया कि वहाँ से बिन पैसे उठाये भाग गया। समाज में कुछ लोग इतने क्रूर तथा निर्दयी होते हैं कि उनका कोई अंत ही नहीं है। बेगारी की समस्या समाज में अन्य बुराईयों की तरह घर कर गयी है। शिक्षित को नौकरी पर रखकर कम वेतन देना भी एक प्रकार की बेगारी है। कहीं–कहीं मध्यवर्ग भी इसमें पिसता है। चतुर तथा सम्पन्न व्यक्तियों को किसी की मजबूरी का लाभ उठाना भी अच्छी तरह आता है।

बेरोजगारी का समस्या–स्वतंत्रता के बाद भारत की सामाजिक समस्या पर यदि नजर डाला जाए तो समस्याओं के बीच में युवावर्ग निश्चित रूप से विद्यमान रहा है। इसका मूल कारण देखे तो बेरोजगारी है। भारत में बेरोजगारी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, इसकी मूल जड़ है हमारी शिक्षा–नीति। भारत की शिक्षा व्यवस्था के कारण भी युवा बेरोजगार होता चला जा रहा है। उच्च डिग्री प्राप्त कर अधिकारी बनने की महत्वाकांक्षा में उम्र बढ़ जाती है और वह बेरोजगार रह जाता है। बेरोजगारी के कारण वह घुटन तथा कुंठाओं का शिकार हो जाता है।

अमरकान्त जी की 'घर' कहानी में बेरोजगारी की समस्या को दिखाया गया है। इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवक की बेरोजगारी का चित्रण करते हुए लिखा है– "वह एक दुबला–पतला साँवला सा नौजवान था जो एम. ए. पास करके दो वर्ष से बेकार था। वैसे बेकारी कोई नयी बात नहीं थी, वह इधर 'राष्ट्र' की पहचान बन गई थी, लेकिन एम.ए. करने तक तथा उसके बाद टाइप सीखने के बावजूद उसे जो कुछ मिला, उसके कारण वह रोजगार दफ्तर को बेकारी दफ्तर कहने लगा।"[6]

यह बेरोजगारी समाज में युवावर्ग को अपंग बना रही है क्योंकि जो इंसान कम पढ़ा–लिखा रहता है वह कभी भी कोई भी रोजगार अपना कर अपनी तथा अपने परिवार की जीविका चला लेता है परन्तु योग्यता को लिया हुआ युवक योग्यता के अनुरूप ही कार्य करेगा अन्यथा उसे मानसिक पीड़ा होने लगेगी तथा वह व्यक्ति मन से कार्य न कर पाने के कारण कुंठा का शिकार हो जाता है।

इसी बेरोजगारी की समस्या को लेकर लिखी गई कहानी अमरकान्त जी की 'इंटरव्यू' है। इस कहानी में साफ दिखायी देता है कि इण्टरव्यू मात्र दिखावे का कार्य है। चुना जाने वाला पहले ही अन्दर ही अन्दर चुन लिया जाता है। हमारे समाज में युवावर्ग को शिक्षा तथा डिग्री प्राप्त करने में लम्बा समय लग जाता है उस पर भी नौकरी के

लिए दर–दर भटकना पड़ता है। यहाँ तक तो ठीक है परन्तु अमरकान्त जी बेरोजगारी की समस्या को, उसमें हुए रिका कृ भ्रष्ट व्यवस्था को दिखाना चाहते हैं जो आज भी हमारे रोजगार व्यवस्था में व्याप्त है। तभी योग्य व्यक्ति रोजगार की तलाश में घूमता रह जाता है और अयोग्य नौकरी करने लगता है।

संदर्भ–सूची

1. सुरेन्द्र चौधरी, अमरकान्त आम आदमी की प्रतिबद्धता के लिए, पृ. 146
2. डॉ. अनुकूलचंद राय, अमरकान्त के कथा–साहित्य में सामाजिक चेतना, पृ. 69
3. अमरकान्त, अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग–1, घर, दूसरा संस्करण, 2016 पृ. 509
4. डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, अमरकान्त वर्ष 1, पृ. 169
5. अमरकान्त, जिन्दगी और जोंक (प्रतिनिधि कहानियाँ), पृ. 142
6. डॉ. अनुकूलचंद राय, अमरकान्त के कथा–साहित्य में सामाजिक चेतना, पृ. 84

* * * * *